श्रीरामचरितमानस तथा श्रीमद्भागवतका संरचना एवं लक्ष्यका तुलनात्मक अध्ययन

(आगरा विश्वविद्यालयसे डी० लिट्० उपाधिके लिए
स्वीकृत एवं स्वर्णपदक प्राप्त)

लेखक :

डॉ० बालचन्द्रिका पाठक

एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत) पी-एच० डी०, डी० लिट्०

श्रीरामचरितमानस तथा श्रीमद्भागवतका संरचना एवं लक्ष्यका तुलनात्मक अध्यन

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
प्राक्कथन	१
उपक्रम	३
संरचना खण्ड	
अध्याय—१	
(क) परम्पराएँ एवं स्वरूप	८
(ख) श्रीरामचरितमानसकी परम्परा	१५
अध्याय—२	
(क) श्रीमद्भागवतका प्रमाण, प्रमेय, साधन और फलरूपत्व	२७
(ख) रूपक-द्वय	३१
(ग) मानस के सोपानोंका भक्तिपरक तात्विक विवेचन	४८
अध्याय—३	
(क) श्रीमद्भागवतका स्कन्धात्मक विभाजन एवं उनके अध्यायोंकी परस्पर संगति	५०
(ख) मानसका सोपानात्मक विभाजन	६८
सोपानोंका नामकरण औचित्य	७४
मानसका महाकाव्यत्व	७८
अध्याय—४	
(क) श्रीमद्भागवतका छन्द-विधान	८३
(ख) श्रीरामचरितमानसका छन्द-विधान	८४
मानसमें संस्कृत छन्दोंका विधान	८४
मानसका हिन्दी छन्द-विधान	८५
मानस में मात्रिक छन्दोंका विधान	१०१

विषय	पृष्ठ संख्या
अध्याय—५	
(क) श्रीमद्भागवतकी प्रसंगानुकूल भाषा	१०८
श्रीमद्भागवतमें रसानुकूल भाषा	११९
श्रीमद्भागवतका मुख्य रस	११९
(ख) मानसकी प्रसंगानुकूल भाषा	१३४
व्यंग भाषा	१३६
भाव सौन्दर्य	१४२
सूत्रात्मक भाषा	१४३
शब्द-चयनात्मक सौन्दर्य	१४३
अभिव्यंजनात्मक सौन्दर्य	१४३
चित्रात्मक सौन्दर्य	१४४
अनुभावोंकी अभिव्यंजना	१४४
ध्वन्यात्मक सौन्दर्य	१४४
वर्णनात्मक सौन्दर्य	१४५
श्रीरामचरितमानसकी रसानुकूल भाषा	१४६
अध्याय—६	
(क) वर्णनात्मक प्रसंगोंकी प्रकृति	
श्रीमद्भागवतकी प्रमुख वस्तु या धाराका लक्ष्य	१५५
श्रीमद्भागवतमें भक्तिके विविध रूप	१५९
(ख) वर्णनात्मक प्रसंगोंकी प्रकृति	१६३
तुलसीका दास्य	१७०
लक्ष्य खण्ड	
अध्याय—१	
अवतार तत्व	१७६
अवतार-प्रयोजन	१७८
श्रुति-संमत धर्मकी स्थापना	१८१
लीला-प्रयोजन	१८२
अवतार संख्या-निरूपण	१८३

विषय	पृष्ठ संख्या
अवतारोंका तात्विक-विवेचन	१८४
अवतारोंका वर्गीकरण	१८६
अवतार-अवतारीमें भेद	१८१
अवतार एवं अवतारीकी अद्वैतता	१८२
श्रीराम-कृष्णका परमब्रह्मत्व	१८४
श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें श्रीराम-कृष्णका परमब्रह्मत्व	१८७
अध्याय—२	
श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसके मंगलात्मक रूपका प्रतिपादन	२०२
(अ) व्यष्टिगत पारलौकिक मंगलके लिए श्रीमद्भागवतके अनुशीलन अनुष्ठान	२०६
श्रीरामचरितमानसके अनुशीलन अनुष्ठान	२०९
(आ) व्यष्टिगत लौकिक मंगलके लिए अनुष्ठानः	
श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस	२०९
श्रीमद्भागवतके व्यष्टिगत लौकिक मंगलार्थ	११२
श्रीमद्भागवतके समष्टिगत लौकिक मंगलार्थ	२१६
श्रीमद्भागवतके व्यक्तिगत पारमार्थिक मंगलार्थ	२२४
श्रीरामचरितमानसके अनुशीलन अनुष्ठान	२३२
श्रीरामचरितमानसके व्यष्टिगत लौकिक मंगलके लिए अनुष्ठान	२३३
श्रीरामचरितमानसके लघु अनुष्ठान	२३४
समष्टिगत लौकिक मंगलार्थ	२३८
अनुष्ठानोंके सम्बन्धमें कुछ विशेष	२३९
श्रीमद्भागवतके अनुष्ठानके विशेष नियम	२४४
श्रीरामचरितमानसके मन्त्रोंके सिद्ध करनेके नियम	२४५
अध्याय—३	
(क) अवान्तर एवं उपकथाओं द्वारा मुख्य कथाका पोषण (श्रीमद्भागवत)	२४८

विषय **पृष्ठ संख्या**

(ख) अवान्तर कथाओं तथा उपकथाओं द्वारा मुख्य-कथाका पोषण (श्रीरामचरितमानस) २५७

अध्याय—४

(क) श्रीमद्भागवतके उपदेशात्मक प्रसंग २६९

(ख) श्रीरामचरितमानसके उपदेशात्मक प्रसंग २८५

अध्याय—५

(क) श्रीमद्भागवतकी रस-परिकल्पनाके सन्दर्भमें भक्ति-रसकी शास्त्रीय पीठिका २९९

भक्ति-सम्प्रदायकी रस-प्रक्रिया ३०४

(ख) भक्ति-रसकी परम्परामें श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरित-मानसका रस-परिपाक निरूपण ३११

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसके काव्य-रसमें भक्ति-रसकी अलौकिक स्थिति ३१३

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसका रस-परिपाक निरूपण—एक और दृष्टि ३३१

अध्याय—६

(क) श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसका सादृश्य-विधान—
(अ) साम्य ३३९

(आ) वैषम्य ३६४

(ख) श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें लौकिक और अलौकिक भावोंकी अभिव्यक्ति ३७२

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें लौकिक भावोंकी अभिव्यक्ति ३७३

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें अलौकिक भावोंकी अभिव्यक्ति ३७९

विषय पृष्ठ संख्या

उपसंहार

दोनों ग्रन्थोंका परवर्ती प्रभाव उद्देश्यपूर्ति, योजनापूर्तिमें सहायक है ३९१

निष्कर्ष

साम्य चर्चा-परिशिष्ट—१
शब्द-साम्य ३९९
साम्य चर्चा-परिशिष्ट—२
भाव-साम्य ४२३
साम्य चर्चा-परिशिष्ट—३
सदाचार-परक ४६२
साम्य चर्चा-परिशिष्ट—४
ज्ञान-परक ४७५
साम्य चर्चा-परिशिष्ट—५
भक्ति-परक ४८६

सहायक साहित्य सूची

सहायक ग्रन्थ सूची (संस्कृत) ५१९
सहायक ग्रन्थ सूची (हिन्दी) ५२२
सहायक पत्र-पत्रिकाएं ५२६

प्राक्कथन

श्रीमद्भागवत रसस्वरूप श्रीकृष्णका वाङ्मय विग्रह है, तो श्रीरामचरितमानस भक्तवत्सल श्रीरामका साकार विग्रह। इनके अवाङ्मनसगोचर स्वरूपको जाननेमें श्रुतियाँ भी 'नेति-नेति' कहकर थक जाती हैं, तब भला 'कलि-मल ग्रसित विमूढ़' मुझ-जैसी सर्वथा अल्पज्ञकी क्षमता ही कहाँ उनके इस दिव्यातिदिव्य मधुर भक्ति-रसके विवेचनकी ? इस 'मति-अति-नीच' में 'ऊँचि रुचि' के प्रेरक भी तो 'रघुवंश-विभूषण' ही रहे हैं और पोषिका हैं—वात्सल्यमयी 'जनक-सुता जग-जननि जानकी' जिनके युगल पदकमलोंको मनाना (वन्दन) भी नहीं आता। हाँ, इनके प्रसादसे किंचित् अंकुर प्रस्फुटित हुआ भी तो उसके पल्लवित करनेका श्रेय भी है पूज्य पिताश्रीको ही। अब रही बात इस शोध-प्रबन्धके प्रणयनकी। सच तो यह है कि यह ग्रन्थ सम्पन्न होकर प्रस्तुत ही हो सका है परम श्रद्धास्पद पूज्य श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र' के वरद् प्रसादसे। उनके प्रति औपचारिक धन्यवादकी शब्दावली अभिव्यक्ति द्वारा मैं उनके असीम स्नेह-सौहार्द्र और आभारका अवमूल्यन नहीं करना चाहती। मैं ऋणी हूँ, और ऋणी ही बनी रहूँ उनकी और उनके चि. कन्हाईकी, जिनके स्नेह-संबलसे कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो सका।

इस शोध-प्रबन्धको प्रस्तुत करनेमें मुझे सबसे परम लाभ यह मिला कि श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरितमानसके नियमित पाठका अवसर मिला और यह अभ्यास जीवनमें सतत बना रहे—ऐसी ही आकांक्षा है। इस कार्यके लिए सर्वप्रथम मैं कृतज्ञ हूँ—श्रद्धेय वेदान्तभूषण पं० रामकुमारदासजी महाराज 'रामायणी,' साहित्यरत्न, मणिपर्वत अयोध्याकी, जिन्होंने अपने लेख 'श्रीमद्भागवत और तुलसी' के छपे हुए अंश और हस्तलिखित भागको भेजनेमें तनिक भी संकोच नहीं किया।

मैं कृतज्ञ हूँ परम श्रद्धेय गुरुवर विद्यानिवासजी मिश्र—निदेशक क. मु. विद्यापीठ, आगराकी, जिनकी अनुकम्पा और प्रेरणा सतत रूपमें प्रारम्भसे रही है।

मैं अपनेको आभार प्रदर्शनके योग्य भी नहीं मानती पितृव्यतुल्य डा० गोवर्धननाथ शुक्लका, जिन्होंने पुत्रीवत् सस्नेह अमूल्य समय देकर प्रोत्साहन दिया और समय-समयपर सुझाव दिये। श्रीमानस-सरमें नित्य निमज्जन कर श्रीमद्भागवत कल्पतरुकी छायामें शाश्वत विश्रामका सुखद संकेत उपर्युक्त पुण्यशील महज्जनोंकी कृपासे ही सुलभ हुआ है।

अत्यन्त कृतज्ञ हूँ श्रीकृष्ण-शोधपीठ, श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुराकी। यहाँसे सभी आवश्यक ग्रन्थ मुझे प्राप्त हुए हैं।

विनीता :

बालचन्द्रिका पाठक

राम-निकुंज, प्रेमनगर
एटा

उपक्रम

भारतीय जन-मानसकी पुराणोंपर प्रगाढ़ श्रद्धा है। श्रीमद्भागवतको भगवान्‌की वाङ्मयी मूर्ति स्वीकार किया जाता है—यह प्रसिद्धि लौकिक परम्परागत नहीं, अपितु पुराणोंकी है—

'तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरे।'

(प० पु० उत्तर०, भा० माहा०-३.६२)

इसी प्रकार 'श्रीरामचरितमानस' भी 'श्रीमन् मानस रामतनु'[१] माना जाता है। समाजमें भक्ति भावनाकी दृष्टिसे इन दोनों ग्रन्थोंका भगवद्रूपवत् सम्मान है। अतः इनका तुलनात्मक अध्ययन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण आध्यात्मिक-साहित्यिक कार्य है, जो अभी तक नहीं हो पाया था। श्रद्धामय स्वाध्यायके परिणाम-स्वरूप इन दोनों ग्रन्थोंके गम्भीर अनुशीलनका ही प्रस्तुत प्रयास है। यह कितना उपयोगी किंवा अनुपयोगी रहा है, इसे तो सुधी विद्वज्जन ही निश्चय करेंगे। हाँ, इतना अवश्य है कि इस प्रयत्नमें पवित्र अन्तःकरणका सम्बल आद्योपान्त रहा है।

श्रीमद्भागवतका प्रणयन प्रारम्भमें भले ही मानसी रहा हो, किन्तु पुराणों एवं स्वयं भागवतके अनुसार श्रीमद्भागवतकी अपनी वक्ता-श्रोताकी एक परम्परा रही है, जिसकी चर्चा प्रसंगोपात आगे की जायेगी।

भारतीय भक्ति वाङ्मयका उदय जिन सन्तों, महात्माओं, भक्तोंकी पवित्र लेखनीसे हुआ, वह सम्भव ही न होता यदि श्रीमद्भागवत पुराण इन महात्माओंके मध्य न होता। भक्ति-सिद्धान्तोंका सम्पूर्ण विस्तार श्रीमद्भागवतका ही महनीय प्रसाद है।

स्मरणीय बात है कि भागवत धर्म किसी एक विशिष्ट सम्प्रदायपर आधारित नहीं; किन्तु भागवत धर्मके अन्तर्गत यावन्मात्र सम्प्रदाय स्वतः आजाते हैं। वैष्णव-भक्ति-सम्प्रदायोंका तो श्रीमद्भागवत केन्द्र-बिन्दु है ही। इस प्रकार श्रीमद्भागवत एक समन्वयात्मक पद्धतिपर चलनेवाला महापुराण है।

---

१. तुलसी ग्रन्थावली, पृष्ठ-२,सं०-सीताराम चतुर्वेदी

इसे 'परमहंस संहिता'[१] से भी अभिहित किया गया है। श्रीमद्भागवतके अध्यायोंके अन्तकी पुष्पिकाओंमें 'पारमहंस्यां संहितायां' लगा हुआ है, इस महापुराणको पुराणोंका 'तिलक'[२] अर्थात् सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

भक्ति सम्प्रदायके आचार्यों, विशेषकर आचार्य वल्लभने श्रीमद्भागवतको 'चतुर्थ प्रस्थान' माना है। 'प्रस्थान'[३] शब्दका अर्थ होता है—यात्राके लिए चलना। किसी सम्प्रदायके प्रवर्तनके लिए जो आधारभूत पृष्ठभूमि देनेवाले अथवा सम्प्रदायको आगे चलानेवाले ग्रन्थ होते हैं—उन्हें प्रस्थान कहा जाता है। श्रीशंकराचार्य और उनके पूर्ववर्ती आचार्योंने सम्प्रदाय प्रवर्तनके लिए 'प्रस्थान-त्रयो' को प्रमाण माना था। 'प्रस्थान-त्रयी' में ईश, केन कठादि एकादश उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीता—यही तीन प्रस्थान है। भक्ति-सम्प्रदायके आचार्योंने भागवतधर्मके लिए श्रीमद्भागवतको चतुर्थ प्रस्थानके रूपमें स्वीकार किया है। इस सबका परिणाम यह हुआ कि भारतके अशेष भक्ति, सम्प्रदाय एवं सम्पूर्ण भक्ति-सिद्धान्त और सन्तोंका लोकमंगलात्मक साहित्य सभी इससे प्रभावित रहे। इस दृष्टिसे श्रीमद्भागवतका महत्व और माहात्म्य भक्तोंकी भक्ति-साधनाके लिए कितना अनिवार्य है यह सहज अनुमेय है।

ईसाकी आठवीं शतीसे लेकर १७वीं शती तक यावन्मात्र भक्ताचार्य और उनके सम्प्रदाय और उनकी शिष्य परम्पराएँ श्रीमद्भागवतसे प्रभावित रहे हैं, अतः १६वीं शताब्दीके हिन्दी-साहित्य-गगनके सूर्य तुलसीदास भी इस मान्यताके अपवाद नहीं हैं। गोस्वामी तुलसीदासकी अमरकृति श्रीरामचरितमानसके गहन अनुशीलनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वे कहीं परोक्ष और कहीं अपरोक्ष रूपसे श्रीमद्भागवत महापुराणसे प्रभावित रहे हैं।

---

१. श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद् वैष्णवानां प्रियं
यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परम गीयते।
श्रीमद्भागवत, १२. १३. १८

२. श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं यद्वैष्णवानां धनं····।
पद्मपुराण, उत्तर खण्ड, भा. मा. ६.८२

३. 'समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयं।
तत्वदीप निबन्ध, शास्त्रार्थ प्रकरण, श्लोक-७

विद्वानों, भक्तों एवं आचार्योंने इस दृष्टिसे पर्याप्त विचार किया था और समय-समयपर प्रभाव भी दिखलाया है; किन्तु विशिष्ट अध्ययनके रूपमें इसे प्रकट करनेका प्रयास अद्यावधि देखनेमें नहीं आया। इस शोध ग्रन्थमें यही प्रयास किया गया है। दोनों ग्रन्थोंके सतत स्वाध्यायके परिणाम-स्वरूप यह निर्विवाद रूपसे कहा जा सकता है कि गोस्वामी तुलसीदासने श्रीमद्भागवतका प्रगाढ़ अनुशीलन करके उसे अपने मानसकी पृष्ठभूमिके रूपमें स्वीकार किया था, दूसरे शब्दोंमें मानस रामभागवत ही है। प्रस्तुत अनुशीलनके मूलमें उक्त दोनों ग्रन्थोंका सतत स्वाध्याय ही है।

अद्भुत बात है कि श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरितमानस दोनोंके ही प्रणयनका तात्पर्य प्रणेताओंके लिए 'स्वान्तः सुखाय' कहा गया है। श्रीमद्भागवतमें भगवान व्यास देवर्षि नारदसे कहते हैं:—

'तथापि नात्मा परितुष्यते मे' (भा. १.५.५.)

इसके लिए ही उन्होंने नारदजीसे प्रश्न किया और देवर्षि नारदने भागवतके प्रणयनकी प्रेरणा दी। श्रीरामचरितमानसमें तो स्पष्ट कहा गया है— 'स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिबन्धमतिमञ्जुलमातनोति'[1] अन्तमें भी 'स्वान्तस्तमः शान्तये'[2] की पुनरावृत्ति की गयी है। इतना होनेपर भी दोनों ग्रन्थोंका लक्ष्य लोकमङ्गलात्मक है। भगवान व्यास तो चिन्तित ही इसलिये हो रहे हैं कि उन्होंने महाभारतका निर्माण तो कर दिया जिसमें स्त्री, शूद्रादिके लिए भी धर्मका पथ प्रशस्त हो गया है; पर उसपर भी इन्हें सन्तोष नहीं है कि क्या इससे लोकमङ्गल हो सकेगा? (भा. १.४.२९,३०)। वह स्वयं ही शंका करते हैं कि मैंने भागवत-धर्मका जो भगवानके परमप्रिय परमहंसोंका प्रिय है, उसका तो ठीकसे निरूपण ही नहीं किया, इसीसे मेरा चित्त सन्तुष्ट नहीं है (भा. १.४.३१)। देवर्षि नारदने भी व्यासके इस तथ्यका समर्थन किया है। उन्होंने स्पष्ट ही कह दिया कि आपने जिस प्रकार धर्म-अर्थ-कामका वर्णन किया है उस प्रकार भगवानको पहिचाननेकी विद्या वर्णित नहीं की है (भा. १.५.९)।

भगवान्‌की महिमाके वर्णनके बिना जो भी वाणी है, उस वाणाका उच्चारण ही जनताकी पाप प्रवृत्तिके उपरामके लिए अक्षम है। इसलिये

---

१. श्रीरामचरितमानस १. मङ्गलाचरण श्लोक ७

२. श्रीरामचरितमानस ७. १३०, श्लोक-१

भगवानके नाम और यशका वर्णन किया जाना चाहिये, जिसे सभी सन्तजन गाते हैं और वर्णन करते हैं (भा. १.५.११)। श्रीरामचरितमानसमें भी स्पष्ट है—

भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई॥
रामचरित सर बिनु अन्हवाएँ। सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ॥
कवि कोविद अस हृदयँ बिचारी। गावहिं हरि जस कलिमल हारी॥
कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगति पछिताना॥
श्रीरामचरितमानस, १.१०.४-७

श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरितमानस दोनों ही भगवल्लीला-रस है, दोनों ही ग्रन्थोंमें अनेक काव्य रूप मिलते हैं। दोनों ही ग्रन्थ विद्वानोंके लिए वरेण्य, भक्तोंके लिए सेवनीय और यज्ञोंके लिए समाधानकारक है।

भारतीय वाङ्मयमें दोनों ही ग्रन्थोंका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है और लोक जीवनके लिए दोनों ही ग्रन्थोंका अनिवार्य उपयोग है। विश्व साहित्यमें दोनों ही ग्रन्थ परमादरणीय हैं। अपनी सीमित बुद्धि और सीमित साधनोंके अनुसार ही मैंने यह तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करनेका प्रयास किया है।

संरचना खण्ड

अध्याय—१

(क) परम्पराएँ एवं स्वरूप

श्रीमद्भागवत संस्कृत-वाङ्मयकी सर्वोत्कृष्ट परिणति है, तो श्रीरामचरितमानस भाषा-निबन्ध-काव्यकी समायोजना। श्रीमद्भागवत पुराणोंका तिलक है, तो श्रीरामचरितमानस भगवद्-रसिकोंका कण्ठहार। दोनोंके लक्ष्य, साधन और शैली अभूतपूर्व एवं विलक्षण हैं, तो उसका स्वरूप भी गम्भीर, मधुर एवं प्रसादपूर्ण है। इन गौरव-ग्रन्थोंके संश्लिष्ट विन्यासमें विषयवस्तु, रूप, लक्ष्य एवं अभिव्यंजना रूप-संरचनाके तत्वोंका इतना गुम्फित तादात्म्य है, कि इनके मध्य पार्थक्य सुगमतासे नहीं किया जा सकता। भगवद्रसानुभूति कृतियोंमें यह विश्लेषण प्रायः दुष्कर ही होता है; क्योंकि अनुभूत्यात्मकतामें कलात्मकता स्वतः आ जाती है। यहाँ इसी रसात्मक लक्ष्यके विवेचनसे पूर्व दोनों ग्रन्थोंके संरचनाका विश्लेषण विवक्षित है।

श्रीमद्भागवतकी परम्पराएँ एवं स्वरूप

श्रीमद्भागवतका मूल स्वरूप निरूपण तो किया ही कैसे जा सकता है? इसे तो विद्वानोंने भगवान् व्यासकी 'समाधिभाषा',[1] 'सात्वती श्रुति' (भा. १.४.७) 'अध्यात्म दीप' (भा. १.२.३) 'ज्ञान-प्रदीप' (भा. १२. १३ १८) से अविहित कर जो महत्व प्रकट किया है, वह अपूर्व है। इससे श्रीमद्-भागवतका अलोकिकत्व स्पष्ट है, इतना ही नहीं आचार्योंने श्रीमद्भागवतको प्रस्थानत्रयी (वेद, ब्रह्मसूत्र, गीता) का संदेशवाहक[2] माना है। इससे भी उसकी सर्वोत्कृष्टता स्वतः ही सिद्ध होती है, क्योंकि भगवान वेदव्यासने इस सात्वत संहिता (श्रीमद्भागवत) का अनुभव समाधिमें ही किया (भा. १.७.-२-६)। श्रीवल्लभाचार्यने सुबोधिनीके फल-प्रकरणमें श्रीमद्भागवतको समस्त वेदोंका आभरण रूप बताया है, क्योंकि यह शास्त्र भगवत्कीर्ति प्रतिपादक है।[3]

---

१. तत्वदीप निबन्ध, शास्त्रार्थ प्रकरण, श्लोक-७

२. तत्वदीप निबन्ध-शास्त्रार्थ प्रकरण, श्लोक-९

३. 'भगवत्कीर्ति प्रतिपादक भागवतादिशास्त्रं सर्ववेदेष्वाभरणरूपम्'

—फल प्रकरण सुबोधिनी पृष्ठ-१५

ग्रन्थमें ही श्रीमद्भागवतकी दो परम्पराएँ प्रतिपादित की गयी हैं—

१. नारायण परम्परा।

२. सङ्कर्षण परम्परा।

जन-लोकमें नारायण-परम्परा ही प्रसिद्ध है, जिसका प्रतिकल्पमें अनवरत विस्तार क्रमशः होता चला गया।

नारायण परम्परा

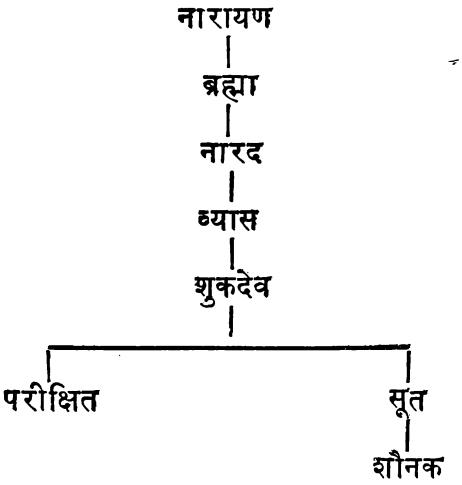

१. **कल्प**—कल्पमें श्रीमद्भागवतका विस्तार हुआ है। सामान्यतः इस लोकमें आचार्योंने 'चतुःश्लोकी'[1] भागवतको मूल भागवतका स्वरूप प्रतिपादन किया है। द्वितीय स्कन्धके अध्याय ९ के सप्त श्लोक ३० से

---

१. अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद्विद्यादात्मनो मायांयथाऽऽभासो यथा तमः॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥
—श्रीमद्भागवत-२. ९. ३२–३५

३६ श्लोक तकका मूलस्वरूप अखिल ब्रह्माण्ड-नायक भगवान्‌के द्वारा ब्रह्माको प्राप्त हुआ है।

प्रायः टीकाकार एवं आचार्य इस 'चतुःश्लोकी' के सन्दर्भमें प्रतिपादित करते हैं कि नारायणने यह चार श्लोक ही ब्रह्माको सुनाये। इन्हीं श्लोकोंके पूर्व-स्कन्ध २, अध्याय ७, श्लोक ५१ वाँ उपेक्षित हो गया है, जहाँ बताया कि सम्पूर्ण अवतार-चरित भी सुनाया गया है, यह **'इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम्'** में स्पष्ट कह दिया गया है। ब्रह्माको नारायणका उपदेश स्कन्ध २ अध्याय ५ से अध्याय ७ तक प्रारम्भ होता है, जब कि 'चतुःश्लोकी' स्कन्ध २ अध्याय ९ में है, अतः उपदेश तो पहिले ही आ चुका है। सम्भवतः ग्रन्थकारने पुनरावृत्ति करना उपयुक्त नहीं समझा होगा। भगवान् नारायणने ब्रह्मासे कह दिया कि 'रूप', 'गुण', 'कार्य' तो तुम्हें मेरे अनुग्रहसे प्राप्त हो जायेंगे। अतः 'चतुःश्लोकी' के अतिरिक्त जो भी भागवत है वह ब्रह्माको भगवान्‌के अनुग्रहसे ही प्राप्त है, एवं ब्रह्मा भी इसे नारायणका वचन ही स्वीकार करते हैं।

२. द्वितीय स्कन्धके पञ्चम अध्यायमें देवर्षि नारदके प्रश्नोंकी शृङ्खला है, एवं सप्तम अध्यायमें श्रीमद्भागवतकी कथा ब्रह्मा नारदको सुनाते हैं। स्कन्ध २ अध्याय ७ श्लोक १ से 'वाराहावतार' से क्रमशः सभी अवतारोंकी कथा इसी अध्यायके श्लोक २२ तक कहते हैं। श्लोक २३ से श्लोक २५ तक श्रीरामावतार एवं श्लोक २६ से श्लोक ५० तक श्रीकृष्णकी समस्त लीला-कथा कहकर इतिश्री कर देते हैं कि सन्तजन इसी शान्त, ज्ञान-स्वरूप, परमपदका आश्रय लेकर आनन्द-स्वरूप ब्रह्मका साक्षात्कार करते हैं। अन्ततः पुष्टि करते हैं कि भगवान्‌ने जो उपदेश किया वह यही 'भागवत' है जिसमें भगवानकी विभूतियोंका संक्षिप्त वर्णन है, तुम इसका विस्तार करो।[1] जिस प्रकार सबके आश्रय और सर्वरूप भगवान् हरिमें लोगोंकी प्रेममयी भक्ति हो, ऐसा निश्चय करके इसका वर्णन करो।[2] अतएव स्पष्ट है कि भागवतका मूल

---

१. इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम्।
संग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमेतद् विपुलीकुरु॥
—श्रीमद्भागवत २. ७. ५१

२. यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति।
सर्वात्मन्यखिलाधारे इति सङ्कल्प्य वर्णय॥
—श्रीमद्भागवत २. ७. ५२

स्वरूप बहुत संक्षिप्त है। नारदको जो विस्तारकी आज्ञा हुई है, वह भी समाधि बलपर विस्तार किया गया है।

३. भगवत्तत्वको प्रकाशित करनेवाला यह ज्ञानदीप श्रीमद्भागवत देवर्षि नारद द्वारा व्यासको प्रदान किया हुआ है। इस भागवतका स्वरूप वही है, जो शुकदेव द्वारा परीक्षितको प्रदान किया गया है। पुराणोंके प्रणेता भगवानके कलावतार भगवान् व्यास सरस्वतीके पावन तटपर अत्यन्त खिन्न होकर चिन्ता कर रहे थे, कि मैंने निष्कपट भावसे ब्रह्मचर्यादि व्रतोंका पालन करते हुए वेद, गुरुजन और अग्नियोंका सम्मान किया है, महाभारतकी रचनाके बहाने वेदके अर्थको खोल दिया है—जिसमें स्त्री-शूद्र आदि भी अपने धर्म-कर्मका ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। यथापि मैं ब्रह्मतेजसे सम्पन्न एवं समर्थ हूँ, तथापि मेरा हृदय अपूर्ण काम-सा जान पड़ता है (भा १. ५. २८-३०)। इस प्रकार अत्यन्त अन्यमनस्क, अशान्त, अकुलाये-से अपनेको अपूर्ण अनुभव कर ही रहे थे, कि देवर्षि नारदका आगमन देखकर उनका संतप्त-हृदय आनन्द-विभोर होकर मनोमालिन्यके निवारणका उपाय जानना चाहते हैं, प्रत्युत्तरमें देवर्षि नारद स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य महत्वपूर्ण एवं सारगर्भित उपदेशको स्कन्ध १ अध्याय ५ के श्लोक ८ से श्लोक १२ तक करते हैं, कि महाभाग व्यासजी ! आपकी कीर्ति पवित्र है, आप सत्यपरायण एवं दृढ़व्रत हैं। इसलिए अब आप सम्पूर्ण जीवोंके लिए बन्धनसे मुक्त करनेके लिए समाधिके द्वारा अचिन्त्यशक्ति भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण कीजिये।[1] विद्वानोंने इस बातका निरूपण किया है कि मनुष्यकी तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान और दानका एकमात्र प्रयोजन यही है कि पुण्य कीर्ति श्रीकृष्णके गुणों एवं लीलाओंका वर्णन किया जाये (भा० १. ५. २२)।

नारदके इस उपदेशके परिणाम-स्वरूप कलावतार व्यासने अपने चित्त एवं मनको समाहित कर भक्तियोगके द्वारा अपने मनको पूर्णतया एकाग्र और निर्मल करके आदि पुरुष परमात्मा और उनके आश्रयमें रहनेवाली मायाको देखा। इसी मायासे मोहित होकर जीव तीनों गुणोंसे अतीत होनेपर भी अपनेको त्रिगुणात्मक मान लेता है और इस मान्यताके कारण होनेवाले

---

१. 'समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम्' —श्रीमद्भागवत १. ५. १३

अनर्थोंको भोगता है। इन अनर्थोंकी शान्तिका साक्षात् साधन है—'केवल भगवानका भक्तियोग'। जगत्के प्राणी इस वास्तविकताको नहीं समझ पाते। इस बोधको अवगत करनेके पश्चात् उन्होंने इस 'परमहंसोंकी संहिता' श्रीमद्भागवतका प्रणयन किया। अतः स्पष्ट है कि व्यास द्वारा निर्मित इन ग्रन्थोंको ही श्रीमद्भागवत कहा जाता है, और यही प्रस्तुत शोधका विषय है। इससे पूर्व इसका जो परम्पराक्रम निरूपण किया गया है, वह अन्तः-साक्ष्य तथा अन्य पौराणिक साक्ष्योंके आधारपर किया गया है फिर भी श्रीमद्भागवतकी वह परम्परा सूक्ष्म है, जो देव-परम्पराके अन्तर्गत आती है और इसकी पृथक् कोई उपलब्धि नहीं होती। स्मरणीय है कि नारदने व्यासको सम्पूर्ण कथा-श्रवण नहीं करायी, उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि उसे 'समाधि'[1] द्वारा प्राप्त करनेमें सक्षम हैं।

४. मानवीय परम्पराके अन्तर्गत प्रवृत्तिपरक वक्ता व्यासजीने अपने निवृत्तपरक परम वीतरागी पुत्र[2] एवं शिष्य शुकदेवको पढ़ाया (भा० १. ३. ४१)। शुकदेव जन्मते ही नाभिच्छेदन संस्कारके पूर्व ही प्रव्रजित हो गये। उनके वियोगमें उनके पिता व्यास पुकारते रहे। तब शुकदेवने नहीं अपितु वृक्षोंने ही उत्तर दिया था, कारण कि—विरक्त शुकदेव तो परमब्रह्म परमात्मामें तन्मय थे।

५. सामान्यतः भागवतकी शुक-परीक्षित परम्परा ही लोक प्रचलित है। राजर्षि परीक्षितके सदैन्य प्रश्नोंके पश्चात् श्रीमद्भागवत २. ४. १२ से प्रारम्भ हो जाती है। वे निरोधात्मक दशम स्कन्धपर विशेष बल देते हैं। स्मरणीय है कि इसी परम्परामें सूत भी श्रीमद्भागवत श्रवण करते हैं (भा० १. ३. ४०-४५)। कथामें कोई भी श्रोता कहींसे भी आकर बैठ सकता है। इस तथ्यको सूत स्वयं स्पष्ट करते हैं। 'तदनुग्रहात' (भा० १. ३. ४५)

---

१. विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभोरनन्तपारस्य निवृत्तितः सुखम्।
प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मनस्ततो भवान्दर्शय चेष्टितं विभो:॥

—श्रीमद्भागवत १. ५. १६

२. यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि॥

—श्रीमद्भागवत १. २. २

से अभिप्राय है कि पुण्यश्लोक शुकदेव सूतको अपने समीप ही बैठाते हैं।

६. सूत द्वारा शौनकने सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत श्रवण की है। स्कन्ध १, अध्याय १, श्लोक ४ से नैमिषारण्य क्षेत्रमें विराजमान सूतजीसे प्रश्न किया जाता है और स्कन्ध १, अध्याय २ के श्लोक २ से कथा प्रारम्भ होती है। द्वादश स्कन्ध पर्यन्त अध्याय १३ के श्लोक २३ पर परमतत्व-स्वरूप श्रीहरिको नमस्कार कर कथाका समापन होता है।

अब प्रश्न यह है, कि उद्धवको यह परम्परा कहाँसे प्राप्त हुई? **'शिष्यों बृहस्पतेः साक्षात्'** (भा० १०. ४६. १) से स्पष्ट है कि उद्धव बृहस्पतिके शिष्य हैं, पर इन्हें बृहस्पतिसे भागवत प्राप्त हुई हो, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। जब वह गोपियोंको ज्ञानोपदेश देने गये तब नीति-शिक्षा ही प्राप्त की थी, भागवत नहीं। अतः उद्धवको भागवतकी कोई परम्परा प्राप्त नहीं हो सकी है। उद्धवने तो लीला-चरित श्रवण किया है। श्रीकृष्ण एकादश स्कन्धका उपदेश उद्धवको करते हैं। अब प्रश्न यह है, कि उद्धवने विदुरको जो कथा सुनायी है—उसका स्वरूप क्या है? यहाँ उद्धवने विदुरको केवल दशम स्कन्धकी कथासे परिचित कराया। श्रीमद्भागवतके अनुसार श्रीकृष्ण ही पूर्ण पुरुषोत्तम, सगुण-साकार परमब्रह्म हैं। इसलिए आचार्य वल्लभ द्वारा लिखित त्रिविधि लीला-नामावलीमें 'गोकुल-लीला', 'मथुरा-लीला', 'द्वारिका-लीलादि' वर्णित हैं, वे इन्हीं उद्धव-विदुर-संवादकी प्रेरणा-प्रसाद-स्वरूप हैं। इस संवादके उपरान्त महाभागवत-उद्धव विदुरजीको धन्यवाद देकर बदरिकाश्रम चले जाते हैं। अतः मूल प्रश्न यह है कि महाभागवत-उद्धवको दशमस्कन्धीय लीलाओंका महाप्रसाद कहाँसे मिला? उत्तर स्पष्ट है कि उद्धवको गोकुल-लीलाका महाप्रसाद महाभागा कृष्ण-प्राणा गोपिकाओंसे ही मिला, जिसे उद्धव विदुरके समक्ष स्पष्ट नहीं करते।

श्रीमद्भागवतकी एक विशिष्ट पृथक् परम्परा भगवान शेष[1] द्वारा प्रदत्त है (भा० ३. ८. ७-९)।

---

१. आसीनमुर्व्यां भगवन्तमाद्यं सङ्कर्षणं देवमकुण्ठसत्वम्।
विवित्सवस्तत्त्वमतः परस्य कुमारमुख्या मुनयोऽन्वपृच्छन्॥

—श्रीमद्भागवत ३.८.३

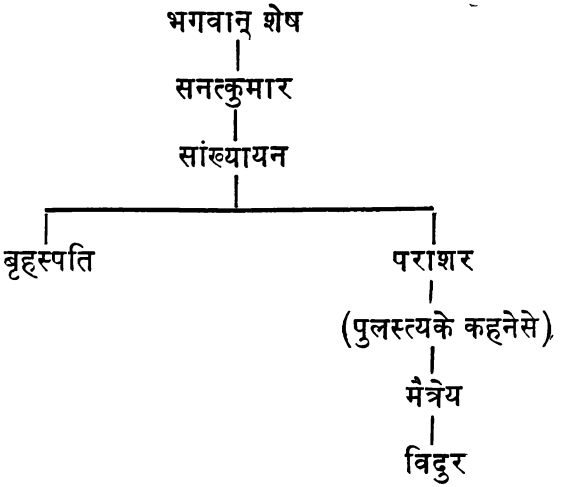

यह परम्परा भगवान सङ्कर्षणसे सनत्कुमार, सनत्कुमारसे सांख्यायन, सांख्यायनसे बृहस्पति एवं पराशर, पराशरसे पुलस्त्यके कहनेसे मैत्रेय और मैत्रेयसे विदुर तक सतत चलती है। मैत्रेय-विदुरकी यह ज्ञानियोंकी परम्परा है। विदुरको प्रबल वैराग्य हो जाता है और यह श्रवणसे भी उपराम होकर हस्तिनापुर[1] चले जाते हैं एवं यह परम्परा भी चतुर्थ स्कन्धके उत्तरार्ध तक समापनपर आ जाती है। परिमाणकी दृष्टिसे विचार करनेपर प्रतीत होता है कि भगवान सङ्कर्षणसे मैत्रेय पर्यन्त सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका स्वरूप प्रदान किया गया था।

श्रीरामचरितमानसकी परम्परा

तुलसी अपने प्रतिपाद्य तत्व श्रीरामके चरित-गानकी अवतारणा जन-जनके मानसमें करना चाहते थे। उनकी दृष्टिमें ब्रह्मासे कीट-पर्यन्त राम-भक्ति रसधारामें अवगाहनके अधिकारी हैं, इतनी व्यापक भाव-भूमिपर अपने इष्टदेवकी महत्ता प्रतिष्ठापित करनेके लिए उन्होंने श्रीरामचरितमानसमें वक्ता-श्रोता परम्पराको अपनाया जो महाकाव्यमें तुलसकी विलक्षण प्रतिभाका प्रतीक है। श्रीमद्भागवत एवं पुराणों, उपनिषदोंमें वक्ता-श्रोताके

---

१. श्रीमद्भागवत ४. ३१. ३०।

माध्यमसे प्रश्नोत्तर शैली[1] को अपनाया है। सामान्य रूपसे ही अनुशीलन करनेपर मानसकी प्रस्तावनामें ही चार वक्ता-श्रोता स्पष्ट है—

वक्ता	श्रोता
१. शिव	पार्वती
२. याज्ञवल्क्य	भरद्वाज
३. काकभुशुण्डि	गरुड़
४. तुलसी	सन्त-समाज

परम्परा-क्रमसे इस प्रकार कहा जा सकता है :—

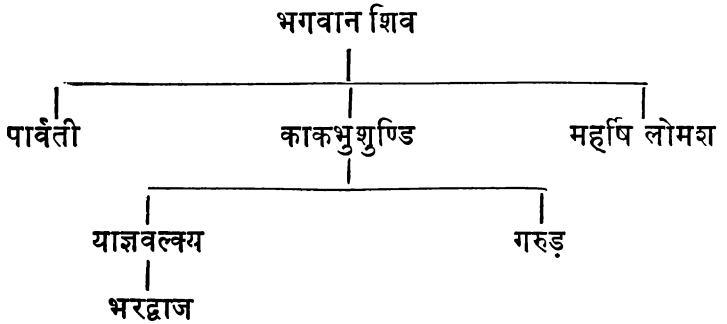

मानस-परम्पराके प्रमुख प्रस्तोता भगवान शिव ही हैं। वस्तुतः परोक्ष रूपसे तुलसी भी इसे भगवान् शिवकी एकमात्र कृपा[2] का प्रतिफल ही स्वीकार करते हैं।

श्रीमद्भागवतके सदृश श्रीरामचरितमानसकी भी सूक्ष्म परम्पराएँ अवलोकनीय हैं जिनके प्रतिष्ठापक भी शिव ही हैं :—

---

१. ब्रह्मपुराण १. १६.१२, पद्मपुराण १. १. १४–१५, विष्णुपुराण १. १. १, शिवपुराण १. १. १; १. ५. ८–९, १. १६. १–२, वायुपुराण १. १. ११–१३, १. २. १, १. ४. ५, १. ५. १, १. ९. १, श्रीमद्भागवत १. १. ४, नारदपुराण १. १. ३–३५, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण १. १. ९, वाराहपुराण १. ३, स्कन्दपुराण ३. १. १, कूर्मपुराण १. १. २–९, मत्स्यपुराण १. ११. गरुड़पुराण १. १. ३–११, ब्रह्माण्ड-पुराण १. १. ८–२०, १. १३. १, देवीभागवतपुराण १. १३–१४, १. २. २९–१. ३. २।

२. **संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी॥**

—श्रीरामचरित मानस १. ३५–१

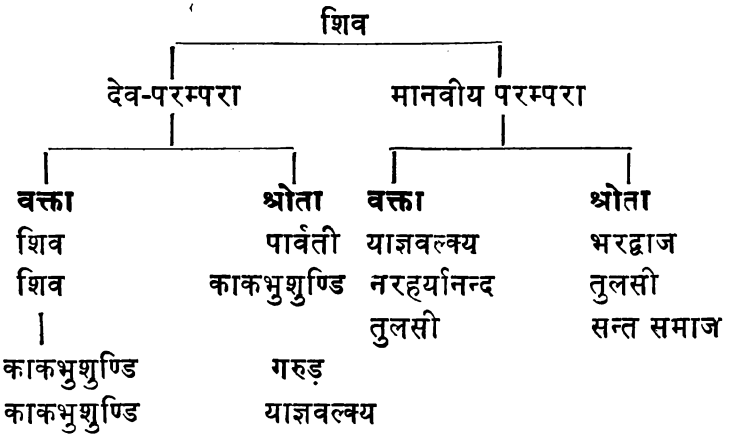

श्रीरामचरितमानसकी यह परम्परा प्रकारान्तरसे अनादि एवं शाश्वत है। भगवान् शंकर आदि आप्त-वक्ताओंकी वाणी आस्तिक समाजके लिए विशेष रूपसे प्रभावशालिनी है। इसलिए अध्यात्मरामायणकारने भी अपनी कृतिको 'पुरारि गिरि संभूता'[1] गंगा कहकर उसकी प्रतिष्ठा की।

तुलसीने अपनी रचनाको रामचरितमानस[2] कहा क्योंकि वह सर्वप्रथम महेशके मानस[3] में निर्मित हुआ था। इतना ही नहीं, अपितु —

यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमं,
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तमःशान्तये,
भाषाबद्धमिदं चकार तुलसीदासस्तथा मानसम्॥

रा. च. मा., ७-१३०. श्लोक १.

---

१. पुरारि गिरि संभूता श्रीरामार्णवसंगता।
अध्यात्मराम गंगेयं पुनाति भुवनत्रयम्॥
—अध्यात्मरामायण १. १. ५

२. रामचरितमानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा॥
—श्रीरामचरितमानस, १। ३४. ७

३. रामचरितमानस मुनि भावन। बिरचेउ संभु सुहावन पावन॥
रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा॥
तातें रामचरितमानस बर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर॥
—श्रीरामचरितमानस, १। ३४. ९, ११-१२

'भाषाबद्धक रबि मैं सोई' (मानस-१।३०. २) कहकर प्रारम्भसे ही अपनेको भावानुवादक कहना तुलसीका ही वैशिष्ट्य है।

देव-परम्परामें भगवान् शिव श्रीराम-कथाको अपने मानसमें ही परिसीमित नहीं रखते, अपितु श्रद्धापूर्वक भगवती पार्वतीके प्रश्नों[१] के उत्तरमें रामचरित विस्तारपूर्वक प्रतिपादन करते हैं। इस शंका समाधानके उपक्रमसे ही श्रीरामचरितकी कथा प्रारम्भ होती है।[२]

इस विषयवस्तुके लिए तुलसी अपनेको **'नानापुराणनिगमागमसम्मतं'**[३] कहकर अध्यात्म-रामायण[४] के ऋणी स्वीकार करते हैं परन्तु श्रीरामचरित-मानसके वक्ता-श्रोता परम्परामें केवल भगवती पार्वती ही श्रोता नहीं हैं, अपितु श्रीरामचरित-कथाके परमाचार्य भगवान् शिव द्वारा यह चरित क्रमशः भगवती पार्वती, 'महर्षि लोमश'[५] 'काकभुशुण्डि' एवं ऋषि याज्ञवल्क्यको भी प्राप्त होता है—

संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥
सोइ सिव कागभुसुण्डिहि दीन्हा। राम भगत अधिकारी चीन्हा॥
तेहि सन जागबलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥

(रा. च. मा., १।३९. ३-६)

---

१. देखिये—श्रीरामचरितमानस १. १०९. ३ से १. ११०. ६ तक

२. **प्रभु जे मुनि परमारथबादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी॥**
सेस सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना॥
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग अराती॥
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलख गति कोई॥
जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति मोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥

—श्रीरामचरितमानस, १।१०७. ५-१०, १०८

३. श्रीरामचरितमानस, १। श्लोक ७।

४. अध्यात्मरामायण, १. १. १२-१५।

५. **रामचरित सर गुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा॥**

—श्रीरामचरितमानस, ७।११२. ११

अतएव निर्विवाद है कि त्रिभुवनगुरु शिव ही 'मानस' के प्रणेता हैं जो परात्पर परब्रह्म श्रीरामसे अभिन्न[१] हैं। शिवकी अभिन्ना[२] आह्लादिनी शक्ति उमा हैं, जिन्हें 'कृपा करि' रामचरित श्रवण कराते हैं। काकभुशुण्डि सगुण साकार श्रीरामके बालस्वरूप[३]के अनन्य भक्त एवं उपासक हैं। अतः इन्हें भी बालरूप[४]की वन्दना करनेवाले शिव परम अधिकारी जानकर रामचरित श्रवण कराते हैं। अब प्रश्न यह है कि याज्ञवल्क्यको यह चरित काकभुशुण्डिसे प्राप्त होता है अथवा शिवसे ? वेद तत्व निष्णातयोगी याज्ञवल्क्य शिवके परमप्रिय-शिष्य हैं अतः गुरु-परम्परासे तो रामकथा भगवान शिवसे ही प्राप्त होना चाहिये, परन्तु यहाँ 'पुनिपावा' से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि रामचरित काकभुशुण्डिसे ही प्राप्त करते हैं भले ही प्रकारान्तर क्रमसे शिवसे प्राप्त कर चुके हैं, साथ ही 'तेहि' शब्द भी यहाँ काकभुशुण्डिसे ही प्राप्त करनेका समर्थक है। भगवान् शिवके लिए तो अत्यन्त आदरपूर्वक 'तिन' शब्दका प्रयोग ही उपयुक्त है। इस सन्दर्भमें 'तिन्ह' शब्दका प्रयोग योगी याज्ञवल्क्यके लिए प्रयुक्त किया गया है, जिनसे ऋषि भरद्वाजको परम्परागत यह श्रीरामचरित प्राप्त होता है।

भगवान् शिवसे कथा-श्रवणके पूर्व काकभुशुण्डि श्रीराम-कथा अपने गुरु महर्षि लोमश[५]से भी श्रवण कर चुके हैं। गरुड़ जिज्ञासु हैं संशय निवृत्ति हेतु ये गये देवर्षि नारदकी प्रेरणासे ब्रह्माके समीप एवं ब्रह्माके निर्देशसे भगवान् शिवके सान्निध्यमें, परन्तु शिव सत्संगकी महिमा निरूपण करते हुए इन्हें काकभुशुण्डिके समीप भ्रम-निवारणार्थ भेज देते हैं।

---

१. (क) 'ममासि हृदये शर्व भवतो हृदये त्वहम्' (पद्मपुराण, ५. ४६. २०)
(ख) न मे शिवसमानोस्ति प्रियः स्वामी सुखप्रदः। (शिवपुराण, २. १. ४।४२)
(ग) 'सेवक स्वामि सखा सिय पी के' (रामचरितमानस, १। १४. ४)

२. **वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।**
जगत पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ॥ (रघुवंश, पृष्ठ १)

३. 'इष्टदेव मम बालक रामा' (श्रीरामचरितमानस, ७। ७४. ५)

४. 'बंदउँ बालरूप सोइ रामू' (श्रीरामचरितमानस, १। १११. ३)

५ **मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरितमानस तब भाषा॥**
—रामचरितमानस, ७।११२. ९

उपरोक्त संवादोंके स्रोत रूपमें 'भुशुण्डि-रामायण', 'याज्ञवल्क्य-रामायण', एवं 'लोमश-रामायण' की भी चर्चा की जाती है परन्तु कथिक रामायणोंकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। प्रामाणिक रूपसे तो शिवपुराण[1] ही मुख्य स्रोत है। शिव-पार्वती-संवाद[2] तो अध्यात्म-रामायण[3]की प्रत्यक्ष देन है। शिवाकी शंकाका समाधानका उपक्रम दोनोंमें समान ही है।

भगवान् शंकर श्रीरामकथाके रसिकाचार्य हैं। वे केवल वक्ता रूपमें ही सर्वत्र नहीं रहते अपितु श्रोता रूपमें कथा-श्रवण भी उन्हें उतना ही आनन्दप्रद है। परस्पर वक्ता-श्रोता बने रहते ही यह परम्परा श्रीमद्भागवतकी देव-परम्परा[4]के सदृश ही है। सदाशिव एवं ऋषि अगस्त्य परस्पर श्रोता बने रहते हैं—

रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी॥
रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई॥
कहत सुनत रघुपति गुन गाथा। —रा. च. मा, १। ४७. ३-५

यह कथा-श्रवणकी लालसा उन्हें 'मराल' तन धारण करनेको भी विवश कर देती है—

तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास॥
रा. च. मा., ७। ५७

इस प्रकार मानसकी देव-परम्परा शिवसे शिवा, शिवसे लोमश, शिवसे काकभुशुण्डि, काकभुशुण्डिसे गरुड़ तक दिव्य जगतमें अनादि एवं शाश्वत चलती रहती है।

---

१. शिवपुराण, १. १७. १-२, १. २११-३

२. **धन्य-धन्य गिरिराजकुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥**
पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी॥
रामचरितमानस, १।१११. ६-८

३. अध्यात्म-रामायण, १. १. १६-१७।

४. श्रीमद्भागवत-माहात्म्य-स्कन्दपुराण, अ. ३ श्लोक ३४-४२

मानवीय परम्पराके अवतरणका भू-तलपर कोई निश्चित क्रम तो वर्णित नहीं है किन्तु देवाधिदेव शिवसे परम्परागत मुनिवर याज्ञवल्क्यको ही भू-लोकमें लानेका श्रेय है—

जागबलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिबरहि सुनाई॥

रा. च. मा., १।२९. १

इस परम्पराकी पुष्टि तुलसी सन्त समाजको करा रहे हैं—

कहिहउँ सोइ संबाद बखानी। सुनहु सकल सज्जन सुखु मानी॥

रा. च. मा., १।२४.२

यद्यपि बाल्यावस्थामें तुलसीदास यही कथा गुरु नरहर्यानन्दजीसे श्रवण कर चुके हैं—

मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत॥

रा. च. मा., १।३० (क)

अतः स्पष्ट है कि उपर्युक्त सभी 'श्रोता-वक्ता-संवाद' एक सूत्रमें शृङ्खलाबद्ध हैं। एक परम्परासे दूसरी परम्परा इतने स्वाभाविकरूपसे सम्बद्ध है कि पाठक या श्रोताको कथाकी पुनरावृत्तिकी खीजके स्थानपर विशेष-विशेष आनन्दकी प्राप्ति होकर श्रवण जिज्ञासाकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। लोकानुभवसे भी यह सर्वमान्य है कि प्रज्ञावान किसी भी प्रश्नकी शंका-निवृत्ति हेतु दृष्टान्तका आश्रय ग्रहण करते ही हैं। लोक-परम्परामें तुलसी जो कुछ अपने सन्त-समाजको सुनाना चाहते हैं, इस सन्दर्भमें गुरु-नरहर्यानन्दसे प्राप्त होनेका तो केवल संकेत करते हुए ऋषि-परम्परा 'याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद' के माध्यमसे ही प्रस्तुत करते हैं तथा याज्ञवल्क्य-भरद्वाजके लिए शिव-शिवा-संवाद[1] का प्रस्तुतीकरण करते हुए काकभुशुण्डि द्वारा गरुड़[2] की संशय-निवृत्तिका दृष्टान्त भी दे देते हैं, जब कि सम्पूर्ण कथाके प्रस्तोता भगवान् शिव हैं।

---

१. **ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥**

—श्रीरामचरितमानस, १।४६. ८

२. **उमा कहिउँ सब कथा सुहाई। जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई॥**

—श्रीरामचरितमानस, ७।५१. ६

मानसके सभी श्रोताओंकी भ्रान्ति एवं संशय समान ही हैं। रामकथाकार तुलसीके श्रोता तो अनेक हैं, पर मानसमें उनकी कोई प्रत्यक्ष भूमिका नहीं है। यद्यपि ये श्रोतागण मानसमें प्रत्यक्षरूपसे चर्चित भी नहीं हैं, पर तुलसी अपने श्रोताओंकी मनोवृत्तिसे भलीभाँति परिचित हैं। वे समझते हैं कि उनके द्वारा रामनामका माहात्म्य श्रवण कर कैसी शंकाएँ उत्पन्न हो सकती है, जिनके समाधानके बिना रामचरितपर श्रद्धा विश्वास नहीं हो सकेगा जो भ्रान्ति भरद्वाजको है[१] वही शिवा[२] को है एवं गरुड़[३] को भी ऐसा ही भ्रम होता है।

वक्ता-श्रोता परम्परामें विलक्षणता इस बातकी है कि श्रोताओंकी शंकाएँ समान होते हुए भी भ्रान्तियाँ भी एक-सी ही हैं, जब कि पात्रोंकी सृष्टि विभिन्न कोटिकी है।

देव-परम्पराके अन्तर्गत 'शिव-उमा-संवाद' ज्ञानमय संवाद[४] है।

---

१. रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही॥
एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा॥
नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावनु मारा॥
प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेक बिचारि॥
—श्रीरामचरितमानस, १।४५. ६-१०, ४६

२. रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलख गति सोई॥
जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि॥
—श्रीरामरितमानस, १।१०७. ८, १०८

३. भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम।
सर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥
—श्रीरामचरितमानस, ७।५८.

४. जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥
जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥
रजत सीप महुँ भास जिमि जथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि॥
—श्रीरामचरितमानस, १।११६. ७-८, ११७

मानवीय परम्परामें याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद कर्मकाण्ड[1] की प्रधानताको लिये है । भुशुण्डि-गरुड़-संवाद उपासना[2] के महत्वका प्रतिपादन करता है तो तुलसी सन्त-समाज दैन्य[3] का प्रतीक सेवक-सेव्य भावको लिये हैं। सभी वक्ता-श्रोताओंकी मनोवृत्तियोंमें साम्यता है। सभीमें तत्व-जिज्ञासा है, भक्तिकी मधुरता है, लीला-श्रवणमें तन्मयता है, और साधन-साध्य सभी कुछ हैं उनके सर्वस्व श्रीराम ।

इस प्रकार श्रोताओंकी समान-भ्रान्तियोंका निवारण एवं शंकाओंका समाधान उनके सर्व-समर्थ वक्ताओं द्वारा पूर्णरूपेण हो जाता है और उन्हें असीम परमानन्द एवं पूर्णत्वकी प्राप्ति होती है। भगवती शिवा कृतकृत्य है—

नाथ कृपाँ मम गत संदेहा । राम चरन उपजेउ नव नेहा ।।
मैं कृतकृत्य भइउँ अब तव प्रसाद बिस्वेस ।
उपजी राम भगति दृढ़ बीते सकल कलेस ।।

—रा. च. मा., ७।१२८. ८, १२९

भरद्वाज पग-पगपर पुलकित हैं—

संभु चरित सुनि सरस सुहावा । भरद्वाज मुनि अति सुखु पावा ।।
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी । नयनन्हि नीरु रोमावलि ठाढ़ी ।।

—रा. च. मा., १।१०३, १-२

---

१. पूजहिं माधव पद जलजाता । परसि अखय बटु हरषहिं गाता ।।
तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा । जाहिं जे मज्जन तीरथराजा ।।
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा । कहहिं परसपर हरि गुन गाहा ।।

—श्रीरामचरितमानस, १।४३. ५, ७-८

२. पीपर तरु तर ध्यान सो धरई । जाप जग्य पाकरि तर करई ।।
आँब छाँह कर मानस पूजा । तजि हरि भजनु काजु नहिं दूजा ।।
बर तर कह हरि कथा प्रसंगा । आवहिं सुनहिं अनेक बिहंगा ।।

—श्रीरामचरितमानस, ७।५६. ५-७

३. मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर ।
अस बिचारि रघुबंस मनि हरहु बिषम भव भीर ।।

—श्रीरामचरितमानस, ७।१३० (क)

गरुड़की पूर्ण सन्तुष्टि भी अवलोकनीय है—

तव प्रसाद प्रभु मम उर माहीं। संसय सोक मोह भ्रम नाहीं॥
सुनेउँ पुनीत राम गुन ग्रामा। तुम्हरी कृपाँ लहेउँ बिश्रामा॥

—रा. च. मा., ७।११४. ६-७

इससे अधिक कहनेको उनका हृदय उमड़ पड़ा है—

मैं कृतकृत्य भयउँ तव बानी। सुनि रघुबीर भगति रस सानी॥
राम चरन नूतन रति भई। माया जनित बिपति सब गई॥

—रा. च. मा., ७।१२४. १-२

सम्पूर्ण सन्त-समाजका स्वर तुलसीकी वाणीसे मुखरित हो उठा है—

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ॥

—रा. च. मा., ७।१२९. ३

उपरोक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि सभी श्रोता लीला-कथा श्रवणकर पूर्णकाम, आप्तकाम, सर्वकाम एवं निर्भ्रान्त हो जाते हैं फिर भी इस लीला-चरित गायनका क्रम अवरुद्ध नहीं होता, यथा प्रमुख प्रस्तोता शिव ही काकभुशुण्डिके श्रोता बन श्रद्धापूर्वक श्रवण करते हैं। क्या मानस-ग्रन्थकार श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंकी इस व्यास-शैलीका अनुकथन करना चाहते हैं? नहीं; तुलसी जैसे प्रज्ञावान कविको इससे क्या प्रयोजन? तुलसीका प्रयोजन तो वक्ता-श्रोताकी अद्भुत सृष्टि करके उसके माध्यमसे सर्वसाधारणके मानसमें श्रीराम-भक्तिका बीज-बपन करना है। उनकी सृष्टिसे श्रीराम-भक्ति-भागीरथी केवल तत्वविदोंके लिए ही नहीं; अपितु ज्ञान, भक्ति, उपासना, दैन्यका आश्रय लेकर कोई भी अवगाहन कर कृतकृत्य हो सकता है। इसमें श्रेष्ठत्वकी पराकाष्ठामें वशिष्ठादिसे लेकर निकृष्ट पशु-पक्षी, भालु, कपि, जटायु, काग तक जीवमात्र[1], भक्तिके अधिकारी हैं।

सामान्यतः श्रोताके प्रश्न और वक्ताके उत्तर प्रतिपाद्य वस्तुका निर्देश करते हैं।[2] भागवतकारके वक्तव्य **'सर्ववेदान्तसारं यद् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम्।**

---

१. **पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।**
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥

—श्रीरामचरितमानस, ७।८७ (क)

२. श्रीमद्भागवत, १. १. ९-२३; अध्यात्म-रामायण, १. १. ७-१५

वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥ (भां. १२. १३. १२) के सदृश मानसकारने भी मंगलाचरण, प्रतिज्ञा-वचन और प्रस्तावनामें प्रतिपाद्य वस्तुका निर्देश किया है।

ब्रह्म निरूपन धरम बिधि बरनहिं तत्व बिभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ग्यान बिराग ॥

—रा. च. मा., १।४४

भगवती पार्वती,[१] भरद्वाज,[२] गरुड़[३] के प्रश्नों तथा शंकर[४], याज्ञवल्क्य[५] और काकभुशुण्डि[६] के उत्तरोंका प्रतिपाद्य विषय "प्रभु प्रतिपाद्य रामु भगवाना"[७] ही है।

सामान्यतः पुराणोंमें श्रोताके जिज्ञासामूलक प्रश्न एवं वक्ताके उत्तरसे ग्रन्थका उपक्रम होता[८] है। यह बात विशेष लक्ष्य करने योग्य है कि भागवत-पुराण एवं श्रीरामचरितमानस[९] के उपक्रममें अद्भुत साम्य है। जिस प्रकार भागवतकारने आरम्भमें ही अद्वैत सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है,[१०] उसी प्रकार रामचरितमानसकारने भी।[११]जिस प्रकार भागवतकारने अपने

---

१. श्रीरामचरितमानस, १।१०८. ५-१ से १११ तक।
२. श्रीरामचरितमानस, १।४५. २ से ४६ तक।
३. श्रीरामचरितमानस, ७।६३. ३-४।
४. श्रीरामचरितमानस, १।११२. १ से १. ११९. ६ तक १. १२१. १।
५. श्रीरामचरितमानस, १।४६. ६-७।
६. श्रीरामचरितमानस, ७।५९. ५-८।
७. श्रीरामचरितमानस, ७।६०. ६।
८. श्रीमद्भागवत, १ ; १. ३ ; विष्णुपुराण १.१. १-१२; अध्यात्म रामायण, १।१५-१५।
९. श्रीरामचरितमानस, १।३०. १ से १. ३१. ४।
१०. **जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्**
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥

—श्रीमद्भागवत, १. १. १

११. श्रीरामचरितमानस, १।१. ११-१३।

प्रतिज्ञा-वचनमें अपने ग्रन्थकी निगमसम्मतता[1] घोषित की है उसी प्रकार रामचरितमानस[2] में भी । श्रीमद्भागवत[3] एवं अध्यात्म-रामायण[4] के अनुसार ही प्रतिपाद्य विषयका उपस्थापन भी रामचरितमानस[5] में हुआ है।

कथाके विशिष्ट स्थल (श्रीमद्भागवत)

वक्ता	श्रोता	स्थल	श्रीमद्भागवत
१. नारायण	ब्रह्मा	क्षीर समुद्र	२. ८. २८
२. ब्रह्मा	नारद	ब्रह्मलोक	२. ५. १२
३. नारद	व्यास	सरस्वती तट (बदरीनाथ)	१. ४. १५
४. व्यास	शुक	शम्याप्राश आश्रम(बदरीनाथ)	१. ७. २
५. शुक	परीक्षित	शुकताल गंगातट	१. १९. १७
६. सूत	शौनक	नैमिषारण्य क्षेत्र	१. १. ४

कथाके विशिष्ट स्थल (श्रीरामचरितमानस)

वक्ता	श्रोता	स्थल	श्रीरामचरितमानस
१. शिव	पार्वती	कैलास	१।१०४. ८
२. याज्ञवल्क्य	भरद्वाज	प्रयाग	१।४३. १
३. काकभुशुण्डि	गरुड़	सुमेरुसे उत्तर नीलगिरि	७।५५. ७
४. तुलसी	सन्त-समाज	काशी	४।म. सो.

१. निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृत —श्रीमद्भागवत, १. १. ३

२. नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि
—श्रीरामचरितमानस, १, मंगलाचरण श्लोक ७

३. श्रीमद्भागवत, १२. १३. १९-२१ ४. अध्यात्म रामायण, ७. ६. ७०-७३

५. श्रीरामचरितमानस, ७।१२२. १ से १२५-८ तक

अध्याय—२

(क) श्रीमद्भागवतका प्रमाण, प्रमेय, साधन और फलरूपत्व

१. भक्ति मार्गमें प्रमाण मूर्धन्य

श्रीमद्भागवत सम्पूर्ण सन्देहोंको निवारण करनेवाला शास्त्र है। प्रस्थान-चतुष्टयमें श्रीमद्भागवतको प्रमाणके रूपमें स्वीकार किया जाता है। जिज्ञासुको वेदोंमें यदि कहीं सन्देह हो तो श्रीमद्भगवद्गीता उस सन्देहको दूर करती है। यदि गीतासे भी पूर्ण समाधान न हो तो व्याससूत्रोंसे समाधान होता है। यदि व्याससूत्र भी पूर्ण समान न कर सकें तो श्रीमद्भागवत पूर्ण समाधान करता है। इस प्रकार प्रमाण-चतुष्टयमें श्रीमद्भागवत मूर्धन्य है और चतुर्थ-प्रस्थानोंके अन्तर्गत है इसलिए यह पुराणोंका तिलक भी कहा गया है। श्रीमद्भागवतमें भाषाके तीन रूप हैं—

(१) परमत भाषा।
(२) लौकिक भाषा।
(३) समाधि भाषा।

इन तीनोंमें 'समाधि-भाषा' ही सर्वोत्कृष्ट है। शेष दो 'समाधि-भाषा' की ही पोषिकाएँ एवं सहायिका हैं।

२. भक्तिमार्गमें प्रमेय स्वरूप श्रीमद्भागवत

श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्ध हैं। यह द्वादश स्कन्ध परमात्माके ही स्थूल अंग हैं। आचार्यवल्लभने अपने 'भागवतार्थ-प्रकरण' में श्रीमद्भागवत (१०. ६. २०) के आधारपर लिखा है—

"द्वादशांगों वै पुरुषः। इतीदं द्वादशस्कन्धं पुराणं हरिरेव सः। पुराणं हरेः स्वरूपं शब्दतोऽर्थतश्च'[1]

---

१. भागवतार्थ-प्रकरण।

परमात्माके द्वादशअंग हैं, इसीलिए भागवत द्वादश स्कन्धात्मक है। अतः शब्दसे और अर्थसे भी हरिरूप है। इसीसे श्रीमद्भागवतके स्कन्ध २, अध्याय २ के श्लोक १२ में आया है।[1] अर्थात् सर्ग-विसर्ग आदि दशविधि लीलाएँ श्रीमद्भागवतसे उत्पन्न अंगी श्रीमद्भागवत-स्वरूप ही हैं। दशविधि-लीलाओंका संकेत भागवतके उपर्युक्त श्लोकमें भी मिल जाता है जैसे :—

अदीनत्व	सर्ग
लीलात्व	विसर्ग
हसितत्व	स्थान
ईक्षणत्व	पुष्टि
उल्लासत्व	वासना
भ्रूत्व	सद्धर्म
भंगत्व	ईशानुकथा
संसूचितत्व	निरोध
भूर्यत्व	मुक्ति
अनुग्रहत्व	आश्रय

इस प्रकार दशविधि लीलाओंका एवं श्रीहरिके द्वादशांगोंका संकेत स्वयं भागवतमें ही प्राप्त हो जाता है। ये सब प्रभुमें ही विद्यमान हैं।

श्रीवल्लभाचार्यजीने श्रीमद्भागवतको तुरीय (चतुर्थ) प्रस्थान मानकर ही सन्तोष नहीं किया, अपितु इसे लीला पुरुषोत्तमका साक्षात् विग्रह ही माना और मेदपाट (मेवाड़) स्थित अपने सेव्यस्वरूप श्रीगिरिराजधारी (श्रीनाथजी) के बारह अंगोंमें श्रीमद्भागवतके बारह स्कन्धोंकी स्थिति स्वीकार की है। श्रुतियोंमें भगवान्‌को 'द्वादशावयव'[2] वाला कहा गया है। श्रीमद्भागवत भी द्वादशस्कन्धात्मक होनेके कारण पूर्ण पुरुषोत्तम-रूप है, ऐसा सिद्ध करके श्रीवल्लभाचार्यने श्रीमद्भागवतको असीम श्रद्धास्पद

---

१. **अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्भ्रू भंगसंसूचितभूर्यनुग्रहम्**
ईक्षेत चिन्तामयमेनमीश्वरं यावन्मनो धारणयावतिष्ठते ॥

—श्रीमद्भागवत, २. २. १२

२. 'द्वादशो ह वै पुरुषः'—फलप्रकरण सुबोधिनी, पृष्ठ १६

बना दिया है।[1] श्रीहरिके द्वादशांग और श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धोंकी संगति इस प्रकार है—

प्रथम, द्वितीय स्कन्ध	पादयुगल
तृतीय, चतुर्थ स्कन्ध	सविथ (जंघा) द्वय
सप्तम स्कन्ध	दक्षिण हस्त
द्वादश स्कन्ध	उक्षिप्त वामहस्त
अष्टम, नवम स्कन्ध	स्तन युगल
दशम स्कन्ध	मध्य भाग (हृदय)
एकादश स्कन्ध	शिरोभाग

३. साधन-स्वरूप श्रीमद्भागवत—

पूर्व-स्कन्ध उत्तर-स्कन्धका ही कारण रूप अथवा साधन होता है। तात्पर्य यह है कि स्कन्धोंमें कार्य-कारण सम्बन्ध है। यद्यपि बारहों स्कन्धोंमें भिन्न-भिन्न लीला-विषयोंकी चर्चाएं हैं, पर उनका पारस्परिक सम्बन्ध है—

शास्त्र स्कन्धे प्रकरणेऽध्याये वाक्यं पदेऽक्षरे।
गुरुपदिष्टो योऽर्थस्तं विमृशन्विष्णुतत्परः॥
एकं तेजस्त्रिधा यद्वत्सूर्यमण्डलरश्मिभिः।
एकं ब्रह्म तथा तद्वद्विष्णुमायात्मभिर्मतम्॥

—बोपदेवकृत हरिलीला, ११-१२

जिस प्रकार एक ही पुरुषके शरीरमें उसके अंग-प्रत्यंग एक दूसरेके पूरक ही होते हैं, उपादेयताकी दृष्टिसे उन्हें पृथक्-पृथक् नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार सम्पूर्ण शास्त्रमें स्कन्ध, प्रकरण, अध्याय, वाक्य, पद और अक्षर परस्पर सम्बन्धित हैं। यहाँ सम्पूर्ण तथ्योंकी अन्योनाश्रिततापर

---

१. श्रोतुर्वक्तुश्च लक्ष्माद्ये द्वितीये त्वंगनिर्णयः।
इतीदं द्वादशस्कन्धं पुराणं हरिरेव सः॥
पुरुषे द्वादशत्वं हि सवथौ बाहूशिरोन्तरम्।
हस्तौ पादौ स्तनौ चैव पूर्वपायौ करौ ततः॥
सवथौ हस्तस्ततश्चैको द्वादशश्च दरः स्मृतः।
उत्क्षिप्तहस्तः पुरुषो भक्तमाकारयत्युत।
स्तनौ मध्यं शिरश्चेति द्वादशांगतनुर्हरिः॥ —त. दी. नि. पु., ३

तो विचार नहीं किया जा सकता, कारण कि यदि इसमें अक्षर, पद, वाक्यको छोड़ भी दिया जाये फिर भी ३३५ अध्याय एवं स्कन्धोंमें कई-कई प्रकरणोंकी सगति स्प ट करनेपर कई गुना बड़ा ग्रन्थ ही निर्णीत किया जा सकना सम्भव है।

श्रीवल्लभाचार्यजीने भागवतके अर्थको सात प्रकारसे समझने-समझानेका प्रयत्न किया है, जिसमें एक ही अर्थको सात प्रकारसे जान लेनेपर विरोध नहीं रहता।[1] (१) शास्त्रार्थ, (२) स्कन्धार्थ, (३) प्रकरणार्थ, (४) अध्यायार्थ, (५) श्लोकार्थ, (६) शब्दार्थ, (७) अक्षरार्थ। फिर आनन्दरूप श्रीहरिकी लीलाको शास्त्रार्थ कहा गया है वह सर्गादि रूपसे दस प्रकारकी है। उसमें अधिकारी और साधन दोको और सम्मिलित कर देनेपर श्रीमद्भागवतके द्वादश अर्थ हो जाते हैं।[2] श्रीवल्लभाचार्यने श्रीमद्भागवतका इस प्रकार निरूपण करनेका कारण यह दिया है कि द्वादशांग रूप और अर्थतः श्रीमद्भागवतको धारण करनेसे स्वयं श्रीकृष्ण धृत हो जाते हैं और उनकी भक्ति प्राप्त हो जाती है।[3]

भक्तिमार्गमें फलस्वरूप श्रीमद्भागवत

आचार्यवल्लभने लिखा है—**"एतद्धारणमात्रेण कृष्णो भवति वै धृतः। अर्थस्तु परिज्ञाते ज्ञातो भक्तिं प्रयच्छति। धारणं पाठतः। तस्य भगवद्रूपत्वात्तेन रूपेण भगवान एव धृतः। हृदि स्थितः भगवान् यत्कार्यं करिष्यति तदेतनापि करिष्यति। अर्थतश्चेत्परितः ज्ञातः तदा इदमित्थतया ज्ञानं भवत्यङ्गमिति ज्ञातः सन् भक्तिं प्रयच्छति।**[4]

अर्थात्, भागवतके स्वरूपको धारण करनेसे भगवान ही हृदयमें पधारते हैं और भागवतको धारण करना पाठके द्वारा ही हो सकता है। श्रीमद्भागवत भगवद्रूप होनेसे मानो प्रभुका ही साक्षात्कार होता है। हृदयस्थ भगवान जो कार्य करते हैं वही कार्य श्रीमद्भागवत पुराण करता है। यही मानव जीवनका परम फल है। कथनका तात्पर्य इतना ही है कि श्रीमद्भागवत भक्तिरूपी फलका दान करता है।

---

१. तत्वदीपनिबन्ध, प्र० ३। २. (अ) तत्वदीपनिबन्ध, प्र० ३,
(आ) तत्वदीपनिबन्ध, प्र० ३। ३. तत्वदीपनिबन्ध, प्र० ३।
४. आचार्यवल्लभका भागवतार्थ प्रकरण।

(ख) रूपकद्वय

श्रीमद्भागवतका कल्पवृक्षत्व

विद्वरेण्य श्रीबोपदेवजीने अपनी 'हरिलीला' के श्लोक २ में श्रीमद्भागवतको कल्पवृक्ष कहा है एवं कल्पवृक्षके द्वादश स्कन्ध भी स्वीकार किये हैं—

"आनन्दस्य हरेर्लीला वक्ता भागवतागमः।
स्कन्धैः द्वादशभिः शाखाः प्रतन्वत् द्विजसेविकता॥

अर्थात् आनन्दस्वरूप श्रीहरिका वर्णन करनेवाला महापुराण श्रीमद्भागवत द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा भक्तरूपी पक्षियों) से सेवित कल्पवृक्ष है। यह द्वादश स्कन्धरूपी अपनी शाखाओंका विस्तार किये हैं।

किन्तु श्रीमद्भागवत स्वयं अपनेमें कल्पवृक्षत्व स्वीकार करनेके पक्षमें नहीं है, अपितु—

"निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥

भा., १. १. ३

भले ही कल्पवृक्ष हो, वह वृक्ष तो है। जिसका बहुत-सा अंश त्याज्य भी होता है, तथा किन्हीं अन्य प्रयोजनोंमें भी आता है। आहार्य नहीं होता किन्तु श्रीमद्भागवतका तो वैशिष्ट्य ही है कि इसमें सम्पूर्ण अंश ही आस्वाद्य है। इसीसे इसमें छिलका, गुठली, रेशा कुछ भी नहीं है। इतना भी नहीं अपितु यह तो कल्पवृक्षसे पककर स्वयं टपका हुआ रसरूप फल है। इसीसे इसे 'पिबत' कहा है, अतः ग्रन्थमें ही यह उपमा होनेके कारण कल्पवृक्षका रूपक बहुत उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। हाँ, यह अवश्य विचारणीय एवं उपयुक्त है कि श्रेष्ठत्वकी दृष्टिसे इसे कल्पवृक्षसे उपेत कर दिया जाये। श्रीमद्भगवद्गीताके 'विभूतियोग' में समस्त नदियोंमें जैसे गंगा श्रेष्ठ है।[1] इसी प्रकार वृक्षोंमें सर्वकामप्रद पुनीतत्वके रूपमें कल्पवृक्ष स्वीकार किया जा

---

१. स्त्रोतसामस्मि जाह्नवी—गीता, १०।३१।

सकता है। वस्तुतः श्रीमद्भागवतको भगवद्-आश्रितोंकी समस्त कामनाओं एवं सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिए कल्पवृक्ष कहा जाये, तो कोई अत्युक्ति नहीं है। तथापि श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें चली आती परम्परा एवं कार्य-कारण सम्बन्धकी संगतिके अनुसार इसे कल्पतरु भी स्वीकार किया जाये तो उसकी भी संगति ठीकसे बैठ जाती है।

प्रथम स्कन्ध 'अधिकारी स्कन्ध' के नामसे अभिहित है (इसकी विवेचना अगले अध्यायके स्कन्धात्मक विभाजनमें की जायेगी) किसी भी वस्तुका विचार करनेपर मूल तो अधिकारी ही होता है क्योंकि 'ग्रन्थ' अथवा 'साधन' अधिकारी विशेषके लिए होते हैं।

द्वितीय स्कन्ध 'साधन स्कन्ध' है। जड़ोंके ऊपर वृक्ष एकाकार होता है, इसे कल्पवृक्षका 'तना' कहा जा सकता है। अधिकारीके पश्चात् निर्णय करना पड़ता है कि वह अधिकारी किसका ? तब उसे साधन विशेष दिया जायेगा। अतः द्वितीय स्कन्ध 'साधन' की विवेचना करता है।

तृतीय स्कन्ध 'सर्ग' है क्योंकि सम्पूर्ण विचार ही सृष्टिमें और सृष्टिके लिए होता है। सृष्टि ही नहीं होगी तो विचार किसके लिए, क्यों होगा ? अतः प्रारम्भ हुआ है मूल सृष्टिसे। यह इसी प्रकार है जैसे वृक्षका, भले ही वह कल्पवृक्ष हो, विचार करना हो तो मूलसे ही विचार करना होगा। उसमें प्रथम जड़ें ही आयेंगी ; अतः यह तृतीय स्कन्ध 'सर्ग' है एवं इसके उन्नीस अध्यायोंको उसकी जड़ें कहा जा सकता है।

मूल सृष्टि तो तत्वात्मक है, दिव्य। यहाँ साधनका प्रश्न नहीं उठता और साध्यका भी नहीं। व्यवहार तो सृष्टिमें होता है, इसीसे विस्तार एवं विविधताकी आवश्यकता हुई। इस दृष्टिसे 'चतुर्थ' स्कन्ध 'तृतीय' स्कन्धका पूरक है। कारण कि वह विविध सृष्टिका वर्णन करता है। यहाँ सृष्टिका विस्तार हुआ। यह 'विसर्ग' अधिकारी विशेषके लिए साधन भी है इसलिए 'चतुर्थ' स्कन्ध विविध सृष्टिका निर्माण एवं वर्णन करता है। इसके लिए अधिकारी विशेष अपनाया जायेगा।

'विसर्ग' का वर्णन करते ही प्रश्न उठा कि कहाँ ? सम्पूर्ण सृष्टिका वर्णन एवं विस्तार तो कर दिया, तब इस विपुल विस्तारमें साधन कहाँ ? इस साधनको स्थान चाहिए। सम्पूर्ण सृष्टिमें ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ साधन न हो, सर्वत्र भगवद्भक्ति तो चलती ही है। अतः पंचम स्कन्ध, स्थान स्कन्ध है। यह स्कन्ध भूगोल, खगोल वर्णनको नहीं, अपितु इस

वर्णनको है कि सम्पूर्ण सृष्टिमें उपासना किस प्रकार चलती है। इस कारण यह स्कन्ध तनेके ऊपर जो मूल बड़ी शाखाएँ हैं, उनका वर्णन करता है। इसमें छब्बीस अध्याय हैं।

उपासना तो अनन्त सृष्टिमें सर्वत्र ही चलती है। यह तथ्य तो पंचम स्कन्ध प्रतिपादित करता ही है, पर इस उपासनाका कुछ परिणाम भी होता है ? अथवा केवल उपासना की जाती है ? षष्ठ स्कन्ध इस प्रश्नका उत्तर देता है। यह उपासना भगवान्‌की अहैतुकी और सर्वतोन्मुखी कृपा प्राप्त करती है और यह अनुग्रह पापी-पुण्यात्मा, सुर-असुर, गृहस्थ-तपस्वी सबको प्राप्त होता है। इस प्रकार षष्ठमें सबपर अनुग्रहका वर्णन है। विविध वर्गपर **'पोषणं तदनुग्रहः'** (२. १०, ४) करनेवाले इस स्कन्धकी उन्नीस शाखाएँ हैं।

यह जो अनेक प्रकारका वर्ग है सुर-असुर, पापी पुण्यात्मा है ही क्यों ? इतना असीम अनुग्रह होनेपर भी जीव क्षुद्र सुखोंके लिए विषयोंमें क्यों भटक रहा है ? इसी प्रश्नका कारण बतानेके लिए 'ऊति' सप्तम स्कन्ध प्रवृत्त हुआ। **'ऊतयः कर्मवासना'** (२. १०. ४) अर्थात् कर्मकी वासनासे विभेद है, और एक शरीरसे दूसरे शरीरमें, एक लोकसे दूसरे लोकमें, एक कर्मसे दूसरे कर्ममें और एक संकल्पसे दूसरे संकल्पमें भटकता है। साथ ही यह भेद ही अद्‌भुत है कि कर्म शुद्धि असुर कुल प्रह्लाद जैसे भक्तको उत्पन्न करती है। कर्म-वासनाका केवल मूल विभाजन किया गया है। इसमें १५ अध्याय हैं त्रिधा रूपमें। अर्थ और भोग-वासनाका निरूपण हिरण्यकशिपुके चरितसे, मोक्ष भगवद्-वासनाका निरूपण प्रह्लाद-चरितसे और धर्म-वासनाका विवेचन 'धर्म-वर्णन' में किया गया है। प्रत्येकका वर्णन पाँच-पाँच अध्यायोंमें है।

इस प्रकार इस प्रश्नका उत्तर कि साधना कहाँ हो ? स्थान दिया गया था, पर 'कहाँ'के साथ ही प्रश्न है कि 'कब' हो ? क्रिया देश एवं काल-विशेषमें होती है। सृष्टि विस्तार जैसे अनेक देशमें अर्थात् चौदह लोकमें है, वैसे ही सृष्टिका काल भी बहुत बड़ा है। एक सृष्टि एक कल्पपर्यन्त रहती है। उसमें चौदह मनु होते हैं। इसलिये कालकी दृष्टिसे साधन किस कालमें और कैसे होगा ? जैसे यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि साधना 'कैसे' और 'कब' होती है। 'कब' अर्थात् कालमें होनेवाली साधनाका वर्णन करनेको 'मन्वन्तर' अष्टम स्कन्धकी प्रवृत्ति है। इसमें किस कालमें किस प्रकारकी साधना होती है ? 'मन्वन्तराणि सद्धर्म' अर्थात् प्रत्येक मन्वन्तरमें कैसे धर्म-व्यवस्था किनके द्वारा रक्षित होती है, यही इस स्कन्धका विषय है। प्रस्तुत स्कन्ध वृक्षकी

अवस्था बताता है, जैसे वृक्ष ऋतु-विशेषमें रूप परिवर्तित करता है, वैसे ही यह कल्पवृक्ष काल विशेषमें कैसे रहता है ? इसका वर्णन इस स्कन्धमें है।

देश और कालकी संगति निरूपित करनेपर आवश्यक हो गया कि उन देशों, समयोंमें होनेवाली उपासनाका निर्णय कि भगवान कब ? कहाँ ? कैसे कृपा करते हैं ? यह बतानेको 'ईशानुकथा' नवम स्कन्धकी प्रवृत्ति है। वैवस्वत मन्वन्तरमें यह ईशानुकथा विशेष रूपसे पृथ्वीपर किस प्रकार अपना प्रभाव दिखलाती है, यही निरूपित है। 'नवम स्कन्ध' वंशोंका विस्तार एवं वंशावली गणनाके लिए ही नहीं है, वह बहुत संक्षिप्त है, अपितु इसमें भगवानके मानवावतारोंका ही विशेष वर्णन है। 'ईशानुकथा' में श्रीराम, परशुराम एवं श्रीकृष्ण इन्हीं तीन अवतारोंका प्रधान वर्णन है। यह भ्रम नहीं होना चाहिये कि 'वामन' भी मनुष्य हैं। यह अवतार कश्यपके यहाँ अदितिसे हुआ है। वे देवता हैं। देवलोकमें आदित्योंके अवरज उपेन्द्र हो गये। मानवावतार केवल तीन हैं। 'बुद्ध' एवं 'कल्कि' भागवतके कथनकी दृष्टिसे भविष्यके अवतार हैं। इसलिए उस समय तीन मानवावतारोंका वर्णन ईशानुकथामें है।

'ईशानुकथा' में श्रीकृष्णका चरित बहुत संक्षिप्त है, जब कि भागवतके मुख्य श्रोता परीक्षितका श्रीकृष्णसे अत्यन्त घनिष्ठ-निजी सम्बन्ध है। इसीसे श्रीकृष्णका चरित वे विस्तारसे श्रवण करना चाहते हैं। परन्तु इतना ही कारण विस्तारका नहीं है, अपितु साधनका मूल उद्देश्य वृत्तिनिरोध[1] है।

कल्पवृक्षके आधारपर भी वृत्तिका निरोध तो होना ही चाहिये, तभी साधनकी विशेषता है। 'निरोध' करना नहीं पड़ता, अपितु हो जाता है। जब वृक्षकी अवस्थाका निरूपण हो गया तब उसके प्रभावका वर्णन भी होना चाहिये। ईश्वर आविर्भावका प्रभाव क्या है ? यह प्रभाव निरोध है। श्रीकृष्ण किस प्रकार सबका निरोध अपनेमें करते हैं यही विवेचना इस दशम स्कन्धमें है। निरोध द्विविधि है (जिसका विवेचन अगले अध्यायमें किया जायेगा।)

---

१. (अ) योगश्चितवृत्तिनिरोधः—योगदर्शन, १. १।
(आ) निरोधो दशमस्कन्धे····· । —हरिलीला, श्लोक १।

इस निरोधका फल क्या ? सर्वत्र ही वृत्ति-निरोधका फल मुक्ति होता है इसीलिए निरोधके पश्चात् मुक्ति[1] का विवेचन एकादश स्कन्धमें किया गया है।

अन्तिम द्वादश स्कन्ध आश्रयतत्व[2]का है। बौद्धधर्म में मुक्ति या निर्माण दीपकके बुझ जानेके सदृश मानते हैं। जैनधर्मकी मुक्ति है—सिद्धिशिलापर अवस्थान।[3] इसी प्रकार भागवतकी यह मुक्ति क्या ? अर्थात् मुक्ति जो इस कल्पवृक्षका फल है—उसका रस कैसा ? फल होना बड़ी बात नहीं, पर फलका रस मधुर, तिक्त, कषाय कैसा ? इसे प्रकट करनेको द्वादश स्कन्ध है जो इसको प्रकट करता है कि मुक्ति कैसी ? यह मुक्ति परीक्षित की हुई। मार्कण्डेय ऋषिने देखी। श्रुतिशास्त्र सम्मत् भागवत परम्पराकी जो मुक्ति है वह आश्रय तत्व है। आश्रय करने योग्य है। इसीको स्पष्ट करनेको द्वादश स्कन्ध है। यह स्कन्ध साधनके अन्तिम परिणाम आराध्य, गुरु, शास्त्र सबके पंचविध आश्रयको स्पष्ट करता है।

श्रीरामचरितमानसका मानसरूपकत्व—

श्रीरामचरितमानसको ग्रन्थकारने मानसरोवरसे उपमित किया है। इसीसे मानसमें सोपानोंकी मनोरम कल्पना स्वाभाविक ही है। मानसके यही सोपान लोक परम्परामें वाल्मीकि-रामायणमें काण्डके नामसे अभिहित हैं।

मानसके 'सप्त प्रबन्ध सुभग सोपाना' (रा. च. मा., १. ३७. १) का वैशिष्ट्य ही यही है कि यह सुन्दर सोपान ज्ञान-वैराग्य नयनोंसे ही द्रष्टव्य है। वस्तुतः जिस मानसरोवरसे प्रस्तुत ग्रन्थको उपमित किया जा रहा है उस पर्वतीय झीलमें सोपानोंकी सम्भावना भी नहीं है। इसमें किंचित् ढलती हुई गहराई है, अतः अवरोहणके लिए सोपानोंकी कोई भी पद्धति नहीं है। यह तथ्य मानसरोवरका अन्वेषण करनेवाले वहाँ तक रबड़की नाव ले जाने-वाले स्वामी पूर्णानन्दजी[4] ने लिखा है।

---

१. 'मुक्तिरेकादशस्कन्धेऽध्यायैकत्रिंशतोदिता'—हरिलीला, श्लोक १ पृष्ठ ३५।

२. हरिलीला—पृष्ठ ४४ श्लोक १—अनु., सु. सि. 'चक्र'।

३. 'हिन्दू संस्कृति एवं दर्शन शास्त्र'—कल्याण, हिन्दू संस्कृति अङ्क।
(गीता प्रेस, गोरखपुर)

४. कैलास मानसरोवर-लेखक-स्वामी पूर्णानन्द, पूर्णानन्द प्रकाशन, पटना।

गोस्वामी तुलसीदासने अपने श्रीरामचरितमानसमें वर्णित मानसरोवरको सरयूका उद्गम माना है, यद्यपि सरयू मानसकी प्रत्यक्ष नहीं अप्रत्यक्ष नन्दिनी हैं। अपने इस ग्रन्थको भी मानसरोवरसे उपमित करते हुए दोनोंके भेदोंको स्पष्ट कर दिया है।

मानसके मानसरोवरका वर्णन ही अद्भुत हैं।[१]

इस अनुपम मानसके अत्यन्त सुन्दर और उत्तम संवादों (उमा-शम्भु संवाद ज्ञान प्रधान, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज संवाद कर्मप्रधान, भुशुण्डि-गरुड़ संवाद उपासना प्रधान, एवं स्वयं ग्रन्थकार और सन्त-समाजका दैन्य-प्रधान) के चार मनोरम घाट हैं। चारों ही घाट इतनी सुन्दर पद्धतिसे निर्मित हैं कि उनमें बाह्य पार्थक्य प्रतीत होनेपर भी वह परस्पर सम्बद्ध हैं। यह ग्रन्थकारकी ही अनुपम देन है कि ज्ञान, कर्म, उपासना एवं दैन्य प्राधान्य घाटोंकी कल्पनासे सभी प्रकारके अधिकारियोंको 'मानस' सुगम एवं सुलभ

---

१. सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा॥
राम सीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई॥
छंद सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरंद सुबासा॥
सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ग्यान बिराग बिचार मराला॥
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहुभाँती॥
अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी॥
नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा॥
सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जलबिहग समाना॥
सन्तसभा चहुँदिसि अवँराई। श्रद्धा रितु बसन्त सम गाई॥
भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा दया दम लता बिताना॥
सम जम नियम फूल फँल ग्याना। हरि पद रति रस बेद बखाना॥
औरउ कथा अनेक प्रसङ्गा। तेइ सुक पिक बहुबरन बिहंगा॥

पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग बिहारु।
माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु॥

—श्रीरामचरितमानस, १।३६. १ से ३७ तक

कर दिया। 'मानस-सर' के सप्त सोपान चर्म-चक्षुओंके विषय नहीं अपितु ज्योतिष्मती प्रवृत्तिके उदय होनेपर दिव्य दृष्टिसे इन्हें अवलोक कर मन उल्लसित हो उठता है। श्रीरघुनाथजी निर्गुण-निर्विशेष, निर्विकार स्वरूप जो मायोपाधिसे सगुण होनेपर भी समरस है, उन्हींकी निर्बाध महिमाका विवेचन इस 'सर' की अथाह गहराई है। तभी तो 'बर बारि अगाधा' रघुपति-की अबाध महिमा[1] का द्योतक है। सच्चिदानन्द ब्रह्म श्रीराम एवं उन्हींकी आह्लादिनी शक्ति श्रीसीता अभिन्ना हैं ही।[2] शक्ति सीतायश एवं शक्तिमान रामयशको पृथक् नहीं किया जा सकता। यह 'सीयराम-यश'[3] रूपी जल अमृतके सदृश है। निर्मलता, पावनता एवं मधुरता युक्त होनेसे ही यशको 'सलिल' कहा गया। माधुर्यातिशय होनेसे 'सुधा' की उपमा दी गयी। इस प्रकार 'अगुन अबाध महिमा' को प्रगाध-जल एवं 'रामसीय जस' को अमृत-जल कह दोनों ही महिमाओंका सम्यक् रूपसे एक होना प्रतिपादित किया गया। यहाँ रामयश रूपी जलका 'अगुन अबाधा' होना गहराई है एवं सीयरामयशका ऐक्य अमृत एवं मिठास है। इसमें जो उपमाएँ[4] दी गई हैं वही मनको आह्लादित करनेवाली तरंगोंका विलास है (इनका विवेचन भाषाके अध्यायमें किया जायेगा)।

सुन्दर 'चौपाइयाँ' ही 'मानस-सर' में फैली हुई 'पुरइन' (कमलिनी) हैं। 'कमलनाल' युक्त पत्रोंको 'पुरइन' कहते हैं। इन पत्रोंसे सदैव जल आच्छादित रहता है इनके हटानेपर जल मिलता है यथा 'पुरइन सघन ओट जल बेगि न पाइय मर्म' (रा. च. मा., ३. ३९) जल ही पुरइनका उपजीवन है, एक भी पुरइन नहीं जिसकी ओटमें जल न हो। पुरइन छोटी-बड़ी सब प्रकारकी होती है।[5] 'पुरइन' का कमलनाल उलझा हुआ होता है अतः इसमें

---

१. तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अन्ता॥
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा॥
—मानस, ७।९०. ५-६

२. गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥
—मानस, १।१८. ०

३. 'राम सीय जस सलिल सुधा सम' —मानस, १।३६. ३

४. 'उपमा बीचि बिलास मनोरम' —मानस, १।३६. ३

५. मानस प्रसंग—ले०—पण्डित विजयानन्द त्रिपाठी, पृष्ठ १२१

कोई क्रम नहीं होता कि चौपाई रूपी पुरइनका किस कमलकुलसे सम्बन्ध है पर अनुसन्धान करनेसे प्राप्त हो जाता है। यह कमल अष्टदलसे सहस्रदलका भी होता है। यहाँ तो अष्टदलसे बत्तीसदलका ही विवेचनीय है। उदाहरणार्थ—'इस गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न' (रा. च. मा., १. १८)। कमलकी पुरइनरूपी चौपाई अनुसन्धान करनेपर सुन्दरकाण्डके श्रीराम-सन्देश 'सो मन सदा रहत तोहि पाहीं' (रा. च. मा., ५. १४. ७) में मिलती है। इसी प्रकार—

"तीन अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढ़ि॥

(रा. च मा., ७।११७. ग)

यह कमल है जब तक इस कमलकी 'पुरइन' का पता नहीं लगता तब तक 'तेहि कपास तें काढ़ि' का अर्थ भी स्पष्ट नहीं हो पाता। अतः आशंका बनी ही रहती है, कपासका उपमेय कहाँ ? इस सम्बन्धमें मनकी कल्पना भी भ्रामक ही होगी, अतः एकमात्र उपाय कमलकी पुरइनका अनुसन्धान ही है। कहीं-कहीं पुरइनकी खोजमें असाधारण परिश्रम करना पड़ता है। कमल तो उत्तरकाण्डके अन्तमें खिला और पुरइनका संकेत प्राप्त होता है—बालकाण्डके प्रारम्भमें ही–

साधु चरित सुभ चरित कपासू।
निरस बिसद गूनमय फल जासू॥ मानस, १।१. ५)

यहाँ 'कपास' शब्द और प्रकरणगत अर्थसे 'पुरइन' पहिचानी गयी। यह 'पुरइन' तो छः सोपानोंको पार करती हुई उत्तरकाण्डमें पुष्पित हुई। साधु-चरित ही कपासका गुनमय फल है। 'कपास'के फलके तीनों गुणमय विभागोंसे 'तुरीय' रूपी रुई प्राप्त कर बत्ती बनायी जा सकेगी। इसी प्रकार मानसमें अनेकों स्थल हैं जहाँ 'पुरइन' का अर्थ स्पष्ट किये बिना अर्थ नहीं किया जा सकता, पर सब खोजनेमें आनन्द भी आता है, गम्भीर अनुशीलनका विषय भी है, इसपर तो एक अलग शोध ग्रन्थका प्रणयन ही हो सकता है।

इसी प्रकार 'छंद सोरठा सुन्दर दोहा' (रा. च. मा., १।३५.५) से मानस अलंकृत है। अतिशय शोभाके प्रकरणोंमें छन्दोंकी भरमार है। भगवान शंकरके पाणिग्रहण-संस्कार प्रसंगपर चार-चार चौपाईके अनन्तर

एक छन्द एवं एक सोरठा या दोहेकी समायोजना है। इस प्रकार ११ छन्द (रुद्रसंख्यक) स्वाभाविक रूपसे आ गये हैं। श्रीरामके विवाहोत्सवमें द्वादश (आदित्य संख्यक) छन्दोंकी समायोजना है। इसी प्रकार राम-रावण युद्ध प्रसंगमें सत्ताईस (नक्षत्र-संख्यक) छन्द इकट्ठे आये हैं। यह सभी संख्याएँ सप्रयोजन ही है।

विद्वानोंने सत्वगुणका श्वेत वर्ण, रजोगुणका रक्त, तमोगुणका नील एवं गुणातीतका पीत माना है। अतः विषयभेदसे छन्द, सोरठे सुन्दर दोहे भी श्वेत रङ्गसे सात्विक[1] 'रक्तवर्णसे राजस'[2], नीलवर्णसे तामस[3] एवं पीत वर्णसे गुणातीत[4] की शोभासे सम्पन्न हैं।

अनुपम अर्थ, उत्कृष्ट भाव-योजना एवं सुन्दर भाषा ही पराग (पुष्परज), मकरन्द (पुष्परस) एवं सुगन्धि है। ग्रन्थकारने आधिदैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिक अर्थोंसे सम्पन्न होना अपूर्वता कहा है। यह आभ्यन्तरिक सुन्दर भावोंसे परिपूर्ण रत्नराशिसे संयुक्त है और अधिकारियों (कर्मयोगी, ज्ञानयोगी एवं भक्तियोगी) के लिए सम्पूर्ण कथामें यह तीनों अर्थ अनवरत चलते हैं, यही भावोंकी अपूर्वता 'पराग' है। तीनों शब्द-शक्तियाँ (अभिधा, व्यंजना, लक्षणा) इसके अन्तर्गत हैं। 'पराग' भी अपने तीनों गुणोंसे सौन्दर्य, सौगन्ध्य एवं सारस्यसे संयुक्त है।[5] 'पराग' तो स्पष्ट रहता है अतः अर्थको पराग कहा गया और मकरन्द[6] उसके भी अन्तर्गत रहता है जिसका

---

१. लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तन पुलकावली
—श्रीरामचरितमानस, १।३२३. ९

२. राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं॥
—श्रीरामचरितमानस, ७।२१. ०

३. तब चले बान कराल। फुङ्करत जनु बहु ब्याल॥
—श्रीरामचरितमानस, ३।१९. १

४. जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
—श्रीरामचरितमानस, ३।३१. ३

५. बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
—श्रीरामचरितमानस, १. मं०. १

६. सुख मकरंद भरे श्रियमूला —श्रीरामचरितमानस, २।५२. ४

रसास्वादन भ्रमर ही करता है, अतः 'सुभाव' को मकरन्दसे विभूषित किया है।

सत्कर्मों (पुण्यराशि) के पुंज ही भौंरोंकी सुन्दर पंक्तियाँ हैं जो अनवरत उस कविता-काननमें मकरन्दरूपी 'भावों'का आस्वादन करके परिपुष्ट बनते हैं। 'पराग' तक तो सभी अर्थग्रहण कर लेते हैं, पर असीम भावरूपी मकरन्दकी प्राप्ति तो किन्हीं सुकृत-पुंजोंको भाग्यसे ही प्राप्त होती है। वस्तुत वही काव्यके अलौकिक आनन्दके अधिकारी हैं। बिना सुकृत-पुंजोंके गुण-ग्राहकता कौन ग्रहण कर सकता है ?

इस 'सर' में विहरण करनेवाले ज्ञान[१], विराग[२], विचार[३] ही मराल हैं, इन तीनों प्रकारके हंसोंका विभेद भी मानसमें है—राजहंस[४], कलहंस[५], और हंस[६]। यहाँ ज्ञान ही राजहंस है। ज्ञान[७]की उत्कृष्टता ही उसकी गति है। उसीसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। 'वैराग्य'[८] को 'कलहंस' कहा गया है, कारण कि वैराग्ययुक्त होना ही वाणीकी विशेषता है। विचार[९] को नीर-क्षीर-

---

१. ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं॥
—रा. च. मा., ३।१४. ७

२. अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥
तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥
—रा. च. मा., २।३२३. ६–७

३. करइ स्वामि हित सेवकु सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई॥
अस बिचारि सुचि सेवक बोले। जे सपनेहुँ निज धरम न डोले॥
—रा. च. मा., २।१८५. ५–६

४. 'सखीं संग लै कुअँरि तब चलि जनु राजमराल।'
—रा. च. मा., १।१३४. ०

५. बोलत जलकुक्कुट कलहंसा॥ —रा. च. मा., ३।३९. २

६. खीर नीर बिबरन गति हंसी॥ —रा. च. मा., २।३१३. ८

७. सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥
—रा. च. मा., १।११६. ६

८. सुनि बिराग संजुत कपि बानी। बोले बिहँसि रामु धनुपानी॥
—रा. च. मा., ४।६. २२

९. भरतु हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥
—रा. च. मा., २।२३१ ६

विवेकी 'हंस' कहा गया है। उपरोक्त राजहंस, कलहंस एवं हंस सर्वत्र ही मानसके सप्त-सोपानोंमें जल-विहार कर रहे हैं।

काव्यमें ध्वनि, वक्रोक्ति, गुण, जाति ही अनेक प्रकारकी मछलियाँ हैं (इनका विवेचन भी भाषाके अध्यायमें किया जायेगा) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष एवं ज्ञान वैराग्यको विचारपूर्वक निरूपण करना काव्यके नवरस हैं (इनकी विवेचना भी आगे की जायेगी) जप, तप, योग और वैराग्यके प्रसंग इस 'मानस' के जलचर जीव हैं।

इस दिव्य तड़ागके जलचर भी दिव्य हैं। सुकृती[1] पुण्यवान[2] को कहते हैं। इनके गुणगान साधुचरित (शम्भुचरित, उमाचरित, भरतचरित, हनुमत्चरित, भुशुण्डिचरित आदि) की महिमाका गायन एवं श्रीरामनामके गुणोंका गान[3] ही विचित्र पक्षियोंके सदृश है। 'रामगुण-गान' एवं 'साधु गुणगान' से तो मानस भरा पड़ा है। कारण कि सुकृती, साधु, नाम एवं श्रीराम यशरूपी जल[4] से क्षण भर भी विलग नहीं रह पाते।

सन्तोंकी सभा ही इस 'सरोवर' के चारों ओरकी अवँराई (आमकी बगीचियाँ) और श्रद्धा वसन्त ऋतुके समान कही गयी है[5]।

---

१. (अ) जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरें देही॥
—रा. च. मा., १।३०६. १

(आ) सुकृती तुम्ह समान जग माहीं। भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं॥
—रा. च. मा., १।२६३. ५

२. तुम्ह ते अधिक पुन्य बड़ काकें। राजन राम सरिस सुत जाकें॥
—रा. च. मा., १।२६३. ६

३. राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल बसहु भगत उर ब्योम॥
—रा. च. मा., ३।४२ (क)

४. राम भगति जल मम मन मीना। —रा. च. मा., ७।११०.६

५. संतसभा चहुँ दिसि अवँराई। श्रद्धा रितु बसंत सम गाई॥
—रा. च. मा., १।३६.१२

मानस प्रसंगमें तद्गत 'पुरइन' है, मीनादि लल्लीन हैं एवं वृक्षादि तदाश्रय हैं; अतः चारों ओरके आमका बगीचा मानसके आश्रय ही है। अर्थात् यह 'सर' के जलसे ही परिपुष्ट होता है। यहाँ बगीचे भी पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिणमें हैं। इसीसे 'चहुँ दिसि अवँराई' कहा गया। मानस तत्व विवरण टीकाकार लिखते हैं कि चार प्रकारके सन्तोंकी सभा आर्त्त[१], जिज्ञासु[२], अर्थार्थी[३] एवं ज्ञानी[४] जनोंकी है।

सन्तोंकी सभाकी उपमा आम्र-वृक्षसे ही दी गयी है। यथा वृक्ष परोपकारमें अनवरत-संलग्न रहते हैं:

वृक्षका मूल, डाल, पत्र, फल, लता सभीको सुखकारी है। अतः सन्तोंकी उपमा ही वृक्षों[५] से दी गयी है। इनमें आम्र सबसे सुस्वादु होता है। इसीसे इसे 'रसाल' कहा गया है। इनमें भी जिन सन्तोंका अन्तःकरण श्रीराम स्नेहसे परिप्लावित है[६] वही इस मानसके आश्रित हैं।

---

१ कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई॥
—रा. च. मा., १।३४. १३

२. भरद्वाज आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिबर मन भावन॥
—रा. च. मा., १।४३. ६

३. सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनिबृन्द।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुखकंद॥
—रा. च. मा., १।१०५

४. बृद्ध बृद्ध बिहंग तहँ आए। सुनै राम के चरित सुहाए।
—रा. च. मा., ७।६२. ४

५. संत बिटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै करनी।
—रा. च. मा., ७।१२४.६

६. राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभाँ बड़ आदर तासू॥
रा च. मा. २।२७६. ४

उन्हींकी सभा अवँराई है जिससे चारों तट[1] (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) ही सम्पन्न है।

ऋतुराज वसन्तके आगमनपर तो सम्पूर्ण प्रकृति ही मधुमयी हो जाती है। प्रकृतिमें अनुराग स्वतः उमड़ पड़ता है। नवपल्लव एवं बौरसे आम्र वृक्ष आच्छादित हो जाता है। 'जहँ बसन्त रितु रही लुभाई' (रा. च. मा., १.२२६.३) ही इस अबँराईकी विशेषता है। श्रद्धा एवं विश्वास[2] ही इस सन्त-सभाको वसन्तके सदृश सुरभित बनाते हुए हृदयस्थ आत्मदेवका साक्षात्कार कराता है।

---

१. (अ) पूर्व-तट—दीनघाट (दैन्य)

धेनु रूप धरि हृदयँ बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी॥
निज संताप सुनाएसि रोई। काहू तें कछु काज न होई॥

—रा. च. मा., १।१८३.७-८

(ब) पश्चिम-तट—ज्ञानघाट

लसत मंजु मुनि मण्डली मध्य सीय रघुचंदु।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरें भगति सच्चिदानन्दु॥

—रा. च. मा., २.। २३९.

(स) उत्तर-तट—उपासनाघाट

मुनि समूह महँ बैठे सन्मुख सब की ओर।
सरद इंदु इन चितवत मानहुँ निकर चकोर॥

—रा. च. मा., ३।१२

(द) दक्षिण-तट—कर्मघाट

तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथराजा॥
ब्रह्म निरूपन धरम बिधि, बरनहिं तत्त्व बिभाग।
कहहिं भगति भगवन्त कै, संजुत ग्यान बिराग॥

—रा. च. मा., १.।४३.७, ४४.

२. भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥

—रा. च. मा., १। मं. श्लोक २

अनेक प्रकारकी भक्ति (नवधाभक्ति, पराभक्ति, प्रेमलक्षणा आदि) के विविध-विधान क्षमा, दया, दम आदि वृक्षोंपर फैली हुई लता-वितान हैं जो सन्तरूपी विटपके आश्रयमें हैं अर्थात् यह गुण सन्तोंमें उसी प्रकार लिपटे हुए हैं जिस प्रकार लताएँ वृक्षोंमें लिपटी रहती हैं। श्रद्धातिशयतासे मनो-निग्रह एवं संयम[1] निचय रूपी पुष्पोंसे सन्त-विटप[2] स्वतः आच्छादित रहता है। अतः नित नये-नये पत्तों, फूलों एवं फलोंसे भी सन्त विटप युक्त होते हैं। जिनमें पुष्पितावस्थामें फल भी सुक्ष्मरूपमें विद्यमान रहता है। यहाँ ज्ञान ही परोक्ष-अपरोक्षरूपसे फल है। जिस प्रकार कच्चा आम ही खट्टा होता है, उसी प्रकार अपरिपक्व ज्ञान ही नीरस एवं उद्वेगजनक होता है, तब उसमें रस-बाहुल्य एवं माधुर्य आता है। 'रसो वै सः'[3] के रूपमें अखिल रसामृत मूर्ति भगवान्‌के चरणारविन्द ही रस रूप हैं। श्रुतियोंने भी परम ब्रह्मका रसरूप, आनन्दमयरूपमें विवेचन किया है।

इस 'मानस-सर' में अनेकानेक कथाओं[4] के सुन्दर श्रेष्ठ प्रसंग हैं (इनका विवेचन आगेके अध्यायोंमें किया जायेगा) वही शुक,[5] कोकिल[6]

---

१ २ ३ ४ ५ ६
१. अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्य दयार्जवम् ।
७ ८ ९ १०
क्षमौ धृति मिताहार शुचिश्च संयमादशः ॥
१ २ ३ ४ ५ ६
शौचेज्या च तपो दानं स्वाध्यायोपास्थ निग्रहम् ।
७ ८ ९ १०
व्रतोपवासः मौनादि स्नानं च नियमादश ॥

—याज्ञवल्क्य स्मृति'

२. 'पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे'

—रा. च. मा., ७। १२-छं.-५

३. तैत्तरीय उपनिषद् —२.७.१

४. औरउ कथा अनेक प्रसंगा । तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा ॥

—रा. च. मा., १.३६.१५

५. श्रीमद्भागवतसे ली गयी कथाएँ शुकदेवके मुखारबिन्दसे निःसृत हैं, अतः इन्हें 'शुक' कहा गया है।

६. कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरूह्य कविताशाखां बन्दे बाल्मीकिकोकिलम ॥ रामरक्षास्त्रोत्र, ३४

एवं रंग-बिरंगे पक्षी हैं। इस रसमय कथा-श्रवणसे जो रोमांच बार-बार हो उठते हैं, वही इस सरोवरके चारों ओर लगी वाटिका, उपवन और वन हैं। प्रेमसे उत्पन्न रोमांचको फुलवारी[1] कहा क्योंकि वाटिकामें सिंचाई बराबर उपयोगी है। ज्ञानसे रोमांचको उपवन[2] माना एवं कर्मसे रोमांचको बन[3] माना है। 'सुमन-मन' अर्थात् विशुद्ध सत्वगुण सम्पन्न भगवद्भक्तिपूर्ण मन ही श्रेष्ठ माली है जो सिंचन करके वाटिका, वन और उपवनकी रक्षा करता है। मनके द्रवीभूत होनेपर सात्विक रोमांच, पुलककी स्थिति मनपर ही निर्भर है। पुलकाङ्गमें जो असीम भावातीत सुख है वही सुविहंगोंका विहार है। इसीमें अश्रुजलसे सींचने[4] का संकेत ग्रन्थकार[5] ने स्पष्ट किया है।

जब समालोचनात्मक दृष्टिकोणसे मानस-सरको अवलोकनेका प्रयास करते हैं तब स्पष्ट हो जाता है कि ग्रन्थकारने जिस मानसरोवरसे प्रस्तुत 'मानस-सर' को उपमित किया है उससे यह सर्वथा अलौकिक अद्भुत एवं अनुपमेय ही है। ग्रन्थकारने अपने 'मानस-सर' को 'मानसरोवर' से बहुत भिन्न रखा है। हिमालयके तिब्बतीय क्षेत्रमें स्थित मानसरोवरमें न पुष्प है और न कमल। मैदानी क्षेत्रोंमें जहाँ कमल उपलब्ध रहते हैं वहाँ शिशिर ऋतुमें शीताधिक्यसे कमल सूख जाते हैं तब १६०० हजार फुट ऊपर

---

१. प्रेमसे पुलक

पुलकित गात अत्रि उठि धाए। देखि रामु आतुर चलि आए॥
करत दंडवत मुनि उर लाए। प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए॥

—रा. च. मा., ३.१२.५-६

२. ज्ञानसे पुलक

जाना राम प्रभाउ तब, पुलक प्रफुल्लित गात। —रा. च. मा., १.१२८४.

३ कर्मसे पुलक

मुनि पुलके लखि सीलु सुभाऊ। —रा. च. मा., २.१२८९.७

४. 'अँसुअन जल सींचि सींचि प्रेम बेल बोई' —मीरा पदावली

५. मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥

—रा. च. मा., ३.१५.११

मानसरोवरमें कमल होनेकी सम्भावना भी कैसे की जा सकती है ? सम्भवतः सभीको विदित है आम्र वृक्ष भी अधिक ऊँचाईपर नहीं होता, पर गोस्वामीजीके 'मानस-सर' के चारों ओर सन्त-सभारूपी अबँराई भी है। यहाँ केवल शिशिर ऋतुका आगमन नहीं होता अपितु श्रद्धारूपी वसन्त जो ऋतुराज है पदार्पण करके जानेका नाम भी नहीं लेता। यह विभिन्न लता-वितानोंसे आच्छादित सर्वत्र हरा-भरा है, जहाँ कमल खिलते ही रहते हैं, फल फलते हैं, शुक-पिक सदृश पक्षी कलरव करते रहते हैं। इतना ही नहीं लता, फल, फूल, वाटिका, उपवन बनोंको सिंचन करनेवाला माली भी रहता है। जब कि हिमालयपर हिमाच्छादित शिखरोंसे आती हुई धाराएँ सिंचन कार्यके लिए किसी मालीकी अपेक्षा नहीं करतीं। अपने इस दिव्य अलौकिक 'मानस-सर' को ग्रन्थकारने अरक्षित भी नहीं छोड़ा है। उसकी सुरक्षा एवं साज-संमालके लिए श्रेष्ठ रक्षकोंकी व्यवस्था भी की है। निरन्तर भगवच्चरितको श्रद्धापूर्वक आदरसे गान करनेवालों[१] को ही चतुर रखवाला कहा है। देव-समाजमें शिव[२] वक्ता है, मुनि-समाजमें याज्ञवल्क्य[३], पक्षि-समाजमें भुशुण्डि[४] तो नर-समाजमें तुलसी[५] वक्ता हैं। इस प्रकार केवल सामर्थ्य अपेक्षित है, गानके क्षेत्रमें तो अपने-अपने समाजमें सबका अधिकार है। इनका प्रयास 'मानस-सर' में अवगाहन[६] करनेवालोंके कल्याणार्थ ही

---

१. **जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥**

—रा. मा., च. १.३७.१

२. **हरि चरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ अमिति सुख पावा॥**

—रा. च. मा., ७.५२.७

३. **'प्रेम सहित कर सादर गाना'** —रा. च. मा., ७.५६.८

४. **रघुपति कृपाँ जथामति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा॥**

—रा. चा. मा., ७.१२९.४

५. **रघुवीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई।**

—रा. च. मा., ४.१२९.छं.-२

६. **सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।**

—रा. च. मा., १.१२.०.

होता है। अतः अधिकारी श्रोता[1] को कथाका आनन्द नित्य नूतन होता है परन्तु जो अधिकारी नहीं है उन्हें यह रखवाले न रोकते हैं और न रोकनेका प्रयास करते हैं अपितु जो विषयी हैं, जिनमें अवगुणोंका विशेष उत्कर्ष है, उनकी स्वयं स्वाभाविक रूचि कथामें नहीं होती।[2] इन अनाधिकारियोंको मार्गके व्यवधान[3] ही पथ अवरुद्ध कर देते हैं। गृहासक्त पुरुषको कुसंगका भयावह ज्वर, कुपथकी करालता, इनके मर्माहत करनेवाले शब्द हृदयको विदीर्ण कर देते हैं। जिनके पास श्रद्धा[4] रूपी पाथेय नहीं है, सन्तों[5] का साथ नहीं है, भगवद्चरणारविन्दोंमें रति नहीं है, उनका श्रीरामचरित-मानसमें कैसे प्रवेश सम्भव है? अतः जो इस अनुपम 'मानस-सर' में अवगाहन करना चाहता है, उनको सत्संग[6] ही परम सम्बल है।

---

१. सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुरबर मानस अधिकारी॥
—रा. च. मा., १.।३७.२

२. अति खल जे बिषई बग कागा। ऐहि सर निकट न जाहिं आभागा॥
संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न बिषय कथा रस नाना॥
तेहि कारन आवत हियँ हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥
—रा. च. मा., १.।३७.३-५

३. कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्ह के बचन बाघ-हरिब्याला॥
गृह कारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला॥
बन बहु बिषम मोह मद माना। नदीं कुतर्क भयंकर नाना॥
—रा. च. मा., १.।३७.७-९

४. जे श्रद्धा संबल रहित, नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहि न प्रिय रघुनाथ॥
—रा. च. मा., १.।३८.०

५. जो नहाइ चह एहिं सर भाई। सो सतसंग करउ मन लाई॥
—रा. च. मा., १।३८.८

६. बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥
—रा. च. मा., ७.।६१.०

सत्संगके बिना विषयके पर्यवसानका पता नहीं चलता है। इस ग्रन्थमें सब विषयोंका पर्यवसान भक्तिमें ही हुआ है। सत्संगसे मानवजन्य अभिमानके गलित होनेपर ही ग्रन्थकारकी भाव-योजनाको समझा जा सकता है। प्रतीयमान असामंजस्यका सामंजस्य बिठला सकता है। वही देख सकता है कि ग्रन्थकार पग-पगपर भक्तिकी अजस्र धाराको प्रवाहित किये रहता है, तब उसकी अपनी दृष्टिसे सब आसमंजस्य ठीक हो जाते हैं।

उपरोक्त मानसरोवरको हृदयके नेत्रोंसे देखने[1] और उसमें अवगाहन करनेसे ग्रन्थकारका मन तो आनन्दसे उल्लसित हो उठता है और प्रेम तथा प्रमोदका ऐसा प्रवाह उमड़ पड़ा कि उसके हृदयरूपी सरोवरसे ऐसी सुन्दर कविता सरिता[2] रूपमें-से प्रवाहित हो चली। वही कविता सरयू है जिसमें श्रीरामके निर्मल यशका ऐसा जल लहराए जा रहा है जो सब प्रकार कल्याण एवं मङ्गल-प्रदायक है। लोकमत और वेदमत रूपी सुन्दर तट हैं, जिनपर जीवन्मुक्त, विरक्त एवं विषयी श्रोताओंके समाज हैं। मानसमें अवगाहन करनेवाले तो विरले ही हैं।

स्मरणीय बात यह भी है कि मानसरोवरसे कोई नदी तो क्या कोई नाला भी नहीं निकलता। 'सरयू' का उद्गम भारतमें ही (तिब्बती क्षेत्रमें नहीं) कपकोट (अन्तिम बस स्टेशन) से लगभग २५ मील दूर सरयूको पुलसे पार करनेपर लगभग उजाड़ पर्वतीय मार्गसे जानेपर 'सौधार' नामक स्थानसे मिलता है। श्रीमद्भागवत[3] में भी बलरामजीके तीर्थयात्रा प्रसंगमें इस तथ्यकी पुष्टि की है।

---

१. अस मानस मानस चख चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही॥
भयउ हृदयँ आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥
—रा. च. मा., १।३८.६-१०

२. चली सुभग कबिता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो।
सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक बेद मत मंजुल कूला॥
—रा. च. मा., १।३८.११-१२

३, 'स्नात्वा सरोवरमगाद् यतः सरयूरान्नवत्' —श्रीमद्भागवत १०.७६.६

मानसरोवरमें लगभग ढाई ओरसे हिमनद (ग्लेशियर) आते हैं। प्रश्न उठता है कि इतना जल कहाँ जाता है ? नीचे यह जल ५०-६० मील दूर सरयूके रूपमें प्रगट हुआ है। यह कोई असम्भावित बात नहीं है। कैलास एवं मानसरोवरकी यात्रा करनेपर श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र' भी इसी निर्णयपर पहुँचे हैं। इन्होंने अपने लेख[1] में बहुत विवेचनके साथ समझाया है।

(ग) मानसके सोपानोंका भक्तिपरक तात्विक विवेचन

सामान्यतः लोकमें सोपानोंका प्राविधान आरोहण एवं अवरोहणके लिए ही प्रेषणीय है। किसी भी प्रासाद अथवा शिखरपर आरोहणके लिए सोपान होते हैं तो सरोवर या वापीमें अवरोहणके प्रयोजनके लिए हैं, किन्तु 'श्रीरामचरितसर' में तो परम प्राप्तव्य श्रीरामतत्वरूपी सलिलमें अवगाहन हेतु अवरोहणके लिए ही इन सोपानोंकी सुखद भूमिकाएँ हैं। जिस सुमति भूमि थलपर सामान्य मानव हैं, वहाँसे इस गम्भीर तत्वमें अवरोहण करते ही प्रथम सोपानसे उस परम पावनता, शीतलता, मधुरतासे युक्त दिव्य-रसकी प्राप्ति होने लगती है।

'बालकाण्ड' का सम्पूर्ण चरित ही लीलारसप्रधान है। अतः जब ललित लीला-रसका आकर्षण मानवको आकृष्ट कर लेता है तब अयोध्या-काण्डके 'करुणरस' का उद्भव होता है, भवभूतिने 'एको रसः करुण एव'[1] कहकर करुण-रसको ही एकमात्र रसस्वरूप माना है। 'भक्ति-रसायन' में मधुसूदन सरस्वतीने भी भक्तिके क्षेत्रमें करुण रसकी ही पुष्टि की है। 'अरण्य-काण्ड' में इस द्रवित हृदयको सीताराममय आकार देनेका प्रयास किया है। किष्किन्धाकाण्ड एवं लंकाकाण्ड इस दिव्य भावको हृदयङ्गम कर जीवनमें स्थिरता लानेके लिए है और उत्तरकाण्डमें तो चित्तकी परिणति ही श्रीराम-तत्वमय हो जाती है। इस प्रकार बालकाण्डसे उत्तरकाण्ड पर्यन्त भगवद्-भक्तिके तत्वके अनुसन्धानकर्ताओंको पूर्ण भावनिष्ठताकी प्राप्ति होती है। यही सोपानात्मक विभाजनकी उपादेयता है। ★

---

१. गीता-रामायण पत्र-व्यवहार विद्यालयके मानस पाठ, वर्ष २ का पाठ २५

२. उत्तर रामचरित—भवभूति, अंक ३ श्लोक ४७

अध्याय—३

(क) श्रीमद्भागवतका स्कन्धात्मक विभाजन एवं उनके अध्यायों-की परस्पर-संगति

श्रीमद्भागवत दस लक्षणयुक्त महापुराण है। इसमें द्वादश स्कन्ध हैं। यद्यपि विद्वद्वरेण्य श्रीबोपदेवजीने 'हरिलीला' में इस सम्पूर्ण ग्रन्थकी अध्याय संख्या ३३१ दी है, किन्तु श्रीधरस्वामीकी टीकाके अनुसार वर्तमान प्रतियोंमें अध्याय संख्या ३३५ है। श्रीबोपदेवजीने चार अध्यायोंको पृथक् न मानकर साथके अध्यायोंमें ही सम्मिलित कर लिया है। हरिलीला[1] की टीकामें यह स्पष्ट कर दिया गया है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य भी दशम स्कन्धमें वत्स-हरण-लीलाको प्रक्षिप्त मानते हैं। आचार्यने इस महत्वपूर्ण प्रसंगको भागवतका मूल प्रसंग इसलिए नहीं माना कि प्रस्तुत भागवतके द्वितीय स्कन्ध, अध्याय ९ के श्लोक ३६ में आपने ब्रह्माको आश्वासन दे दिया था कि 'भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्य-तिकर्हिचित्' अर्थात् तुम्हें (ब्रह्माको) कल्प-विकल्पमें कभी विमोह प्राप्त नहीं होगा, अतः उसी भागवतके दशम स्कन्धमें ब्रह्माके मोहका वर्णन एक प्रकारसे 'वदतो व्याघात' दोष है। इसलिये वल्लभाचार्यजीने इस प्रसंग-को प्रक्षिप्त मान लिया। किन्तु आचार्यने इन अध्यायोंपर टीका की है, इसका तात्पर्य यही है कि ब्रह्माको मोह हुआ अवश्य है। अतः यह कथा पुराणान्तरके आधारपर आयी है, अतः महत्वपूर्ण है। आचार्यने अपने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' ग्रन्थमें जहाँ भागवतके स्कन्धोंके क्रमानुसार भगवानके सहस्रनाम दिये हैं, वहाँ दशम स्कन्धीय नामोंमें 'ब्रह्ममोहन कर्ता च' भी कहा है और अन्तमें प्रतिपादन भी किया है कि ये सहस्रनाम भागवता-नुसारी भी हैं और प्रसंगोपान्त पुराणान्तर भाषित भी है[2]। श्रीविजय-ध्वजजीकी टीकामें पारिजात-हरण प्रसंगमें अधिक अध्याय हैं, ऐसे ही दाक्षिणात्य टीकाओंमें भी अधिक अध्याय पाये जाते हैं।

---

१. श्रीहरिलीला, बोपदेव कृत—प्रकाशन, श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरा।

२. पु०म०, श्लोक सं. २४९

प्रायः श्रीमद्भागवतके मर्मज्ञ श्रीधरस्वामीकी टीकाओंको प्रामाणित मानते हैं। इसी टीकाके अनुसार प्रकाशकोंने प्रायः श्रीमद्भागवतकी प्रतियाँ प्रकाशित की है। अतः इसीके अनुसार स्कन्धात्मक-विभाजन प्रस्तुत करनेका यहाँ प्रयास किया गया है। साथ ही अध्याय संगति भी देनेकी चेष्टा की गयी है ।

प्रथम स्कन्ध—इसे 'अधिकारी स्कन्ध' कहा जाता है। इसमें कुल उन्नीस अध्याय हैं। इस स्कन्धमें प्रमुख रूपसे तीन 'श्रोता अधिकारी' तीन 'वक्ता अधिकारी' का वर्णन है। ऋषि शौनक सामान्य कोटिके श्रोता और सूत लोमहर्षण भी सामान्य कोटिके ही वक्ता हैं।

प्रथम अध्यायमें वन्दनाके अतिरिक्त शौनककी स्थिति और प्रयोजनका निरूपण करते हुए उनके प्रश्न हैं 'शोनकःबहवृचः' अर्थात् ऋग्वेद हैं। ये ऋषियोंके साथ स्वर्ग प्राप्तिके लिए एक हजार वर्षका सत्र करने बैठे हैं 'हुतहुताग्नयः' (१.१ ५) अर्थात् यह सज्ञ है, यज्ञ नहीं। धर्मपरायण शौनकका प्रश्न है कि धर्म-रक्षक योगेश्वरके गोलोक पधारपर धर्म किसकी शरणमें गया ? इस प्रकार सामान्य श्रोता-वक्ताके लिए दो अध्याय दिये गये हैं।

द्वितीय अध्यायमें सूत सामान्य क्रमसे वन्दना करते हुए बताते हैं कि वेद वासुदेवात्मक एवं वासुदेव परायण हैं।

तृतीय अध्यायमें सूत भगवानके विराट् रूप, षोडश कलात्मकरूप एवं नाना अवतारोंका संक्षिप्त विवेचन करते हुए बताते हैं कि इसी का नाम भागवत पुराण है जिसे भगवान् वेदव्यासने निर्मित कर अपने आत्मवतां वरिष्ठ पुत्रको पढ़ाया।

चतुर्थ अध्यायमें व्यास-नारद संवादकी पीठिका प्रस्तुत की गयी है। पंचम, षष्ठ अध्यायोंमें देवर्षि नारद व्याससे भक्ति-वर्णनकी प्रवृत्तिके लिए अपने पूर्व जन्मके वृत्तान्त एवं भक्ति द्वारा ब्रह्मतत्वकी प्राप्तिका निरूपण करते हैं। सप्तम अध्यायमें परीक्षित-कुलका श्रेष्ठत्व, अष्टम अध्यायमें परीक्षितपर श्रीकृष्णकी कृपा, नवम अध्यायमें युधिष्ठिरका वैराग्य, भीष्म द्वारा श्रीकृष्ण-स्तुति एवं शरीर-त्याग वर्णित है।

दशम, एकादश अध्यायमें श्रीकृष्णका द्वारिका लौटना, द्वादश अध्यायमें प्रकारान्तरसे अपनेको परीक्षितका अनुज बना लिया। त्रयोदश, चतुर्दश, पंचदश अध्यायोंमें धृतराष्ट्रका महाप्रस्थान, युधिष्ठिरका अपशकुन दर्शन, अर्जुनका द्वारिकासे लौटना एवं महाप्रस्थान वर्णित है।

सोलहवें एवं सत्रहवें अध्यायमें परीक्षितकी शक्ति-सामर्थ्य वर्णित है कि वे धर्म एवं पृथ्वीके अधिदेवताको भी अभय दे सकते हैं। कलिकी शक्तिको दमन करनेकी क्षमता होनेसे ही कलिका अधिदेवता उनके चरणोंपर गिरकर अभय पा सका।

अठारहवाँ अध्याय परीक्षितके किंचित प्रमादका प्रतीक है, जिसके कारण उन्हें शाप मिला। उन्नीसवें अध्यायमें उत्तम श्रेणीके श्रोता आत्म-कल्याणाभिलाषी परीक्षित एवं उत्तम वक्ता परमहंस शिरोमणि श्रीशुकदेवजी हैं, जिन्हें केवल भगवानकी चर्चा और गुणगान ही प्रिय है। इस प्रकार 'अधिकारी' वाला प्रथम स्कन्ध पूरा होता है।

द्वितीय स्कन्ध— आचार्योंने इसे 'साधन' स्कन्ध कहा है। इसमें केवल दस अध्याय हैं। साधन दो प्रकारका होता है, सगुणपरक और निर्गुणपरक। दोनोंके लिए पाँच-पाँच अध्याय हैं।

सगुण साधनमें विराटका वर्णन है, क्योंकि विश्वरूप भगवानको प्रथम जानना चाहिये। इसके पश्चात् नारायणका वर्णन, सकाम उपासना और साकारका वर्णन है।

प्रथम अध्यायमें वैराग्यकी आवश्यकता एवं साधनकी महत्ताका प्रतिपादन है। द्वितीय अध्यायमें धारणाकी श्रेष्टता एवं सगुण साकार नारायणके ध्यानका वर्णन है। तृतीय अध्यायमें सकाम उपासना, सांसारिक कामनाओंकी व्यर्थता एवं मानव जीवनका सार्थक्य भगवत् सेवा परायणता है। चतुर्थ अध्यायमें शुकदेवजीका मंगलाचरण, भगवानकी महिमा एवं प्रभावका प्रतिपादन है। पंचमसे सप्तम अध्याय तक भागवतका वह स्वरूप है, जो ब्रह्माने नारदको सुनाया है। अष्टम अध्यायमें परीक्षितके प्रश्नोंकी शृंखला है। ये प्रश्न इतने व्यापक हैं कि सम्पूर्ण भागवत पुराण ही इनका उत्तर है।

दशम अध्यायमें सम्पूर्ण सृष्टि ही नारायणात्मक है 'सर्वं सत्विदं ब्रह्म' का ज्ञान देनेको ही विराट्का वर्णन है।

तृतीय स्कन्ध—इसमें महापुराणका प्रथम लक्षण 'सर्ग' है। 'सर्ग' का अर्थ है मूल सृष्टि। इस स्कन्धमें तैंतीस अध्याय हैं। सृष्टि तो त्रिगुणात्मक ही होगी, अतः सात्विक सृष्टि वर्णनको नौ अध्याय हैं। इसमें विदुर-उद्धव-संवादके प्रथम चार अध्याय हैं।

प्रथम अध्यायमें भगवद्भक्त त्यागी विदुरकी तीर्थ-यात्रा, उद्धवकी प्राप्ति, विदुरकी जिज्ञासापर उद्धव द्वारा द्वितीय, तृतीय चतुर्थ अध्याय तक श्रीकृष्णलीलाओंका गायन है। उद्धवके कहनेसे विदुर मैत्रेयके समीप, हरिद्वार जाते हैं। पञ्चम अध्यायमें विदुर मैत्रेय मिलन एवं प्रश्न, षष्ठ अध्यायमें मैत्रेयने सृष्टिके उत्पत्तिकी प्रक्रिया बतायी कि विराट्से किस प्रकार सृष्टि उत्पन्न हुई। सप्तम अध्यायमें तत्वज्ञानका निर्देश एवं विदुरकी जिज्ञासाका शमन है। अष्टम अध्यायमें मैत्रेय अपनी भागवत श्रवण परम्परा बताते हैं। नवम अध्यायमें ब्रह्मा द्वारा भगवानकी स्तुति है एवं उनको भगवदीय आज्ञाका निर्देश है। दशम अध्यायमें ब्रह्माके तपका वर्णन एवं सृष्टिकी प्रेरणा है।

राजस प्रकरणके निरूपणमें हिरण्याक्ष-चरित सात अध्यायोंमें है। एक अध्यायमें विविध सृष्टि वर्णित है। तेरहवें अध्यायमें संक्षिप्त वाराह-चरित एवं इसी अध्यायसे उन्नीसवें अध्याय पर्यन्त विस्तृत हिरण्याक्ष-चरित वर्णित है।

इक्कीसवें अध्यायसे चौबीसवें अध्याय पर्यन्त वैराग्योत्पादनके लिए चार अध्यायोंमें कर्दमोपाख्यान वर्णित है। कर्दम-चरित वैराग्यकी पुष्टि, तपस्याका प्रभाव एवं ऐश्वर्यके सामर्थ्यको प्रकट करके भी प्रकट करके भी विरक्ति एवं त्यागकी प्रेरणा देता है।

तुरीय तत्वके ज्ञानके लिए अन्तिम नौ अध्यायोंमें कपिलोपदेश है जो पच्चीसवें अध्यायसे तैंतीसवें अध्याय पर्यन्त तुरीय तत्वका प्रतिपादन करता है।

चतुर्थ स्कन्ध—चतुर्थ स्कन्ध 'विसर्ग' वर्णन का है। विसर्गका अर्थ है—विविध सृष्टि। विविध सृष्टि भी त्रिगुणात्मक है। इसके प्रथम अध्यायमें 'अत्रि' की तपस्याका वर्णन है क्योंकि यह तपस्या आराध्यके निश्चयके बिना हुई है, इसलिये इसे 'तामस' कहा जाता है।

द्वितीय अध्यायसे सप्तम अध्याय तक सती-चरित है, यह पूरा प्रसंग ही 'तामस' प्रकरण है। द्वितीय अध्यायमें भगवान शिव एवं दक्ष-प्रजापतिका मनोमालिन्य है। इसमें दक्षका शिवके अभ्युत्थान न करनेपर शाप, नन्दीश्वरका ब्राह्मणोंको, भृगुका शिव उपासकोंको शाप वर्णित है।

तृतीय अध्यायमें सतीका पितृगृहके यज्ञोत्सवमें जानेका आग्रह, शिवके समझानेपर भी दुराग्रहका शमन न होना वर्णित है। चतुर्थ अध्यायमें सतीका यज्ञमण्डपमें आक्रोशपूर्वक बोलना, पंचम अध्यायमें दक्ष-यज्ञविध्वंस एवं दक्ष-वध है। यहाँ तकके सम्पूर्ण प्रकरणमें क्रोध, मोह और दुःखकी प्रतिक्रियाका विवेचन है जो तामस प्रवृत्तियोंका प्रतीक है। षष्ठ अध्यायमें देवों द्वारा शिवकी स्तुति, सप्तम अध्यायमें विष्णुका प्राकट्य एवं सबके द्वारा शिवके स्तवनसे इस तामस प्रकरणका उपसंहार होता है।

राजस प्रकरण भी इस स्कन्धके सात अध्यायोंमें वर्णित है। अष्टम अध्यायमें ध्रुवका अपमान, ध्रुवका वनगमन, देवर्षि नारदके उपदेशसे ध्रुवकी तपस्या, नवम अध्यायमें भगवानका ध्रुवके समक्ष प्राकट्य, ध्रुवकी स्तुति तथा ध्रुवका पितृगृह लौटना है। दशम एवं एकादश अध्यायमें भाई उत्तमके मारे जानेपर ध्रुवका यक्षोंपर आक्रमण एवं स्वायम्भुव मनुके समझानेपर ध्रुवका शान्त होना वर्णित है। द्वादश अध्याय ध्रुवको ध्रुवपदकी प्राप्तिका है। यह सब वर्णन सकाम आराधना एवं उससे फलकी प्राप्तिके हैं। संघर्ष, युद्ध एवं सकाम कर्मसे सबसे श्रेष्ठतम पदकी प्राप्ति होनेसे यह राजस प्रकरण है। त्रयोदश अध्याय वेनके चरितका उपक्रम करनेके लिए ही हुआ है। इसमें राजा अङ्गका यज्ञ एवं पुत्र प्राप्तिका प्रयत्न, चतुर्दश अध्यायमें वेनका अभिषेक, उसका उपद्रव, मुनियोंके हुङ्कार द्वारा वध और अङ्गके शरीरसे निषादोत्पत्तिका वर्णन है। यह वेन-चरित भी उत्कृष्ट राजस वृत्तिका परिचायक है।

पंचदश अध्यायसे पृथु-चरित प्रारम्भ होता है। यह नौ अध्याय 'सात्विक-प्रकरण' के हैं। पंचदश अध्यायमें पृथुका प्राकट्य, अभिषेक, आत्मस्तुतिसे अरुचि, षोडश अध्यायमें पृथुकी कीर्तिका गान है। सप्तदश अध्यायमें प्रजारक्षणके लिए पृथुका धरापर आक्रोश है। यह क्रोध भी प्रजाके दुःखकी प्रतिक्रिया है, प्रजापालकके कर्तव्यकी प्रेरणा है इसलिए सात्विक है। अष्टादश अध्यायमें पृथुका धरादोहन, उन्नीसवेंमें पृथुका यज्ञ-प्रयास, और उसमें विघ्न देनेवाले इन्द्रको भी भगवान् ब्रह्माके कहनेसे क्षमा कर देनेका वर्णन, बीसवेंमें नारायणका प्राकट्य एवं पृथु द्वारा स्तवन है। इक्कीसवेंमें पृथुका प्रजाको उपदेश, बाईसवेंमें पृथुका सनत्कुमारोंकी प्राप्ति और सनत्कुमारोंका पृथुको उपदेश है। तेइसवेंसे पृथुका योगस्थित होकर देहत्याग और पृथुपत्नी अर्चिका पृथुके साथ सती होना वर्णित है, यह सम्पूर्ण चरित

परम सात्विकताकी प्रेरणा देता है। इस सात्विक प्रकरणमें चौबीसवाँ अध्याय प्रचेताओंको भगवान् रुद्रका उपदेश देना भी है। इन त्रिगुणोंसे पार होनेके लिए 'पुरंजनोपाख्यान' से तुरीय-तत्त्वका प्रतिपादन किया गया है। पच्चीसवें अध्यायमें पुरंजनकी यात्रा, अन्वेषण, पुरंजनीकी प्राप्ति एवं सर्वथा पुरंजनीके वशमें हो जाना, छब्बीसवेंमें पुरंजनका आखेट खेलने वनमें जाना, सत्ताईसवेंमें पुरंजनपुरीपर चण्डवेगका आक्रमण, काल-कन्या एवं प्रज्वारके वशमें हो जाना, अट्ठाइसवेंमें पुरंजनका देहत्याग, वैदर्भी रूपमें पुनर्जन्म, ब्राह्मणके द्वारा प्रबोध कराना वर्णित है। उन्नीसवेंमें इस पुरंजनोपाख्यान रूपी रूपकका स्पष्टीकरण किया गया है। तीसवेंमें प्रचेताओंको भगवान् विष्णुका दर्शन, उनकी स्तुति एवं इक्कीसवेंमें प्रचेताओंको देवर्षि नारदकी प्राप्ति एवं नारद द्वारा उनको उपदेश वर्णित है। इस प्रकार तुरीय तत्त्वका उपसंहार होता है।

पञ्चम स्कन्ध—इस स्कन्धका नाम 'स्थान' या 'स्थिति' है। इसमें वर्णित है कि भगवान् नारायणकी सब स्थानोंमें किस प्रकार, कैसे उपासना होती है एवं स्थानोंका विभाजन कैसे हुआ है? प्रथम अध्यायमें स्थानोंके मुख्य-विभाजन, प्रियव्रतकी विरक्ति, ब्रह्माके द्वारा विवाह करके शासनमें लगनेका आदेश, प्रियव्रतके द्वारा जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर द्वीपोंका विभाजन है।

द्वितीय अध्यायमें इन द्वीपोंपर प्रशासन करनेवाले प्रियव्रत पुत्र आग्नीध्रका चरित्र है। आग्नीध्रके ही पुत्रोंसे यह सब द्वीप शासित हुए। तृतीय अध्यायमें जम्बूद्वीपके अधिपति महाराज नाभिका चरित्र प्रारम्भ किया गया है और उसीमें ऋषभदेवके अवतारका वर्णन है। चतुर्थमें ऋषभदेवके पुत्रोंकी उत्पत्ति, पञ्चममें ऋषभदेवका पुत्रोंको उपदेश, षष्ठमें ऋषभदेवका देहत्याग वर्णित है। यह सब निरूपण इसलिए है कि भारतवर्षके वर्तमान नामकरणके मूलाधार ऋषभके श्रेष्ठ पुत्र भरतका चरित्र वर्णन किया जाये। इस वर्षका नाम पहले 'अजनाम वर्ष' था, राजा भरतके समयसे ही भारतवर्ष पड़ा।[1]

सप्तम अध्यायमें भरतकी भगवद्भक्ति एवं विरक्ति वर्णित है। अष्टम अध्यायमें मृग-शावककी प्राप्ति, उसमें भरतकी अनुरक्ति एवं उस आसक्तिके

---

१. श्रीमद्भागवत, ५. ७. ३।

कारण भृगत्वकी प्राप्तिका वर्णन है। नवम अध्यायमें ब्राह्मणकुमारके रूपमें उत्पन्न होना, उनकी असीम निःस्पृहता इतनी है कि बलिदानके समयमें भी देहकी आसक्तिसे मुक्त रह सकते हैं। दशममें जड़भरतका राजा पहूगणको उपदेश प्रारम्भ होता है, जो चतुर्दश पर्यन्त चलता है। चतुर्दशमें ही भवाटवीका वर्णन है। यह स्पष्ट करता है कि जिसके कारण भारतका नामकरण हुआ, वह कितने महत्वशाली, प्रज्ञावान एवं निष्ठावान थे। पन्द्रहवेंमें भरतके वंशका संक्षिप्त परिचय है।

सोलहवें अध्यायसे भू-मण्डलका वर्णन प्रारम्भ होता है। भू-मण्डलका अर्थ होता है—जहाँ तक तारे दिखायी देते हैं। उस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी कल्पना अभी विज्ञानके पास भी नहीं है[१]। प्लक्ष आदि सम्पूर्ण द्वीप इस भू-मण्डलमें ही हैं। भागवतकी परिभाषामें यह सम्पूर्ण दृश्य जगत पार्थिव होनेसे भूमि ही कहा जाता है[२]। सोलहवें अध्यायमें जम्बूद्वीपका विवेचन करते हुए 'मन्दर'[३]का वर्णन है। सत्रहवें अध्ययामें विष्णुपद[४] से प्रारम्भ कर स्पष्ट किया है कि प्रत्येक द्वीपोंके प्रत्येक खण्डोंमें किस प्रकार भगवान्‌की आराधना चलती है।

भागवतका प्रयोजन भूगोल- खगोल वर्णनमें नहीं है, अपितु दूरस्थ देशोंमें यथा अठारहवें अध्यायमें वर्णित 'भद्राश्चवर्ष'[५], 'हरिवर्ष'[६], 'केतुमालवर्ष'[७], 'रम्यकवर्ष'[८] 'हिरण्मयवर्ष'[९], 'उत्तरकुरूवर्ष'[१०], में कैसे भगवानकी आराधना होती है।

उन्नीसवें अध्यायमें किम्पुरुषवर्ष एवं भारतवर्षका विवेचन है, इन अध्यायोंमें ही वर्णित है कि सब वर्ष जम्बूद्वीपके ही भाग हैं। बीसवें अध्यायमें जम्बूद्वीपके अतिरिक्त छः द्वीप प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक तथा पुष्करका विवेचन तथा इनमें होनेवाली आराधनाका वर्णन है।

---

१. श्रीमद्भागवत, ५।१६. १। २. भागवत परिचय सं०—सुदर्शनसिंह 'चक्र'
३. श्रीमद्भागवत, ५।१६. ११। ४. श्रीमद्भागवत, ५।१७. १।
५. श्रीमद्भागवत, ५।१८. १। ६. श्रीमद्भागवत, ५।१८. ७।
७. श्रीमद्भागवत, ५।१८. १५। ८. श्रीमद्भागवत, ५।१८. २४।
९. श्रीमद्भागवत, ५।१८. २९। १०. श्रीमद्भागवत, ५।१८. ३४।

भू-मण्डल और अज्ञात अन्तरिक्षके मध्यमें स्थित लोकालोकके वर्णनसे इस अध्यायका उपसंहार होता है।

इक्कीसवें अध्यायमें सूर्यकी स्थितिका वर्णन प्रतीकात्मक है। बाईसवें अध्यायमें सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र एवं शनि प्रभृति ग्रहोंकी स्थिति एवं उनके द्वारा निर्माण होनेवाले संवत्सर, परिवत्सर, इड़ावत्सर, अनुवत्सर अथवा वत्सर आदिका वर्णन है। तेईसवें अध्यायमें सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डलको सुप्त 'शिशुमार-चक्र' से उपमित किया है। इस शिशुमार-चक्रमें किस नक्षत्रकी कहाँ स्थिति है? इस वर्णनको ज्योतिषके विद्वान अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते हैं। चौबीसवें अध्यायमें भूमिके नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल नामके सात भू-विवरोंका विवेचन है। पच्चीसवें अध्यायमें भगवान शेष अर्थात् आकर्षण शक्तिके मूलाधारका प्रतीकात्मक वर्णन है। अन्तिम छब्बीसवें अध्यायमें 'नरकों' का वणन इसलिए है कि कर्मलोकोंके वर्णनमें कर्म-फलके भोगनेका विवेचन भी 'स्थान' में होना ही चाहिये।

षष्ठ स्कन्ध—भगवानके अनुग्रहका नाम ही 'पोषण' है। यह अनुग्रह सब प्रकारके जीवोंको सर्वत्र प्राप्त होता है। प्रथम तीन अध्यायोंके 'अजामिलोपाख्यान' में पापीपर भगवद्-अनुग्रह वर्णित है। प्रथम अध्यायमें अजामिलके अपकर्म, द्वितीय अध्यायमें विष्णु-दूतों द्वारा भागवत धर्मनिरूपण एवं अजामिलका परमधामगमन, तृतीय अध्यायमें कर्मनियन्ता यमराज भगवान्‌के नाम एवं भगवद्स्मृतिकी महत्ताका प्रतिपादन करते हैं।

साधकोंका भगवद्-अनुग्रह कैसे कल्याण करता है? इसके लिए भी तीन अध्याय हैं। चतुर्थ अध्यायमें दक्षकी उपासना, उनके द्वारा भगवानकी स्तुति एवं भगवान्‌का प्रादुर्भाव, पञ्चम अध्यायमें नारदके उपदेशोंसे दक्षपुत्रोंकी विरक्ति एवं नारदको दक्षका शाप, षष्ठ अध्यायमें दक्ष-कन्याओं द्वारा सृष्टिका विस्तार वर्णित है।

भगवानका अनुग्रह असुरका किस प्रकार पोषण करता है यह सप्तमसे चतुर्दश अध्याय तक वृत्रकी कथामें वर्णित है। सप्तम अध्यायमें अपमानित देवगुरुका अन्तर्धान हो जाना, असुरोंसे पराजित देवोंका ब्रह्माके समीप जाना एवं ब्रह्माके आदेशसे विश्वरूपको पुरोहित रूपमें वरण करना है। अष्टम अध्यायमें विश्वरूप द्वारा नारायण-कवचका उपदेश है। उक्त उभय अध्याय भगवान द्वारा देवताओंके पोषणके हैं।

नवम अध्यायमें वृत्रकी उत्पत्ति, उससे संत्रस्त देवताओंका नारायणकी शरणमें जाना एवं भगवान्‌की प्रेरणासे देवताओंका दधीचि ऋषिके समीपजाना वर्णित है। दशम अध्यायमें दधीचि ऋषिकी अस्थियोंसे निर्मित वज्रसे वृत्रासुरसे युद्ध वर्णित है। एकादश अध्यायमें युद्धभूमिमें भी वृत्रकी उत्कृष्ट भगवद्भक्ति, द्वादश अध्यायमें वृत्र-वध, त्रयोदशमें वृत्र-वधसे उत्पन्न ब्रह्महत्यासे इन्द्रका परित्राण वर्णित है। इस प्रकार सुर-असुर दोनोंके ही 'पोषण' का निरूपण इन अध्यायोंमें है।

चतुर्दशसे सप्तदश अध्याय पर्यन्त चित्रकेतु-चरित सिद्धोंपर भगवानके अनुग्रह अर्थात् 'पोषण' का प्रतिपादन करता है। चतुर्दश अध्यायमें राजा चित्रकेतुको अंगिरा ऋषिका दर्शन, इनके वरदानसे पुत्र-प्राप्ति, पुत्रके मरनेपर राजाका विलाप है। पन्द्रहवें अध्यायमें शोक-संतप्त राजाको अंगिरा एवं नारदका उपदेश प्राप्त होता है। सोलहवें अध्यायमें चित्रकेतुका वैराग्य एवं भगवान् संकर्षणका उसे उपदेश प्राप्त होता है। सत्रहवें अध्यायमें सिद्ध चित्रकेतु द्वारा भगवान् शिवका परिहास, शिवा द्वारा प्रदत्त शाप एवं चित्रकेतुकी निःस्पृहता वर्णित है।

अठारहवें और उन्नीसवें दो अध्यायोंमें मरुद्गणोंपर भगवद्-अनुग्रहका वर्णन है। स्वयं आराधना न करनेपर भी माता द्वारा पुंसवन व्रत एवं स्तुतिसे गर्भस्थ शिशुका 'पोषण' भी प्रभु करते हैं।

सप्तम स्कन्ध—'ऊति शब्दका अर्थ है कर्मवासना **'ऊतयः कर्मवासना'** (भा., २. १० ४)। वासनाओंका विभाजन अर्थ, भोग, मोक्ष और धर्म अर्थात् चारों पुरुषार्थोंमें ही सन्निहित है। अर्थ एवं भोगवासनाका निरूपण प्रथम पाँच अध्याय हिरण्यकशिपु-चरितमें किया गया है।

प्रथम अध्यायमें हिरण्यकशिपु-चरितके उपक्रममें जय-विजयका शाप एवं उस शापसे हिरण्याक्ष व हिरण्यकशिपुका जन्म, द्वितीय अध्यायमें हिरण्याक्ष-वध होनेपर हिरण्यकशिपुका शोकसे संतप्त हो स्वजनोंको सान्त्वना देना एवं राजा सुयज्ञकी आख्यायिका लेकर यमराजका उपदेश वर्णित है। तृतीय अध्यायमें हिरण्यकशिपुकी तपस्या एवं ब्रह्मा द्वारा वर-प्राप्ति, चतुर्थ अध्यायमें हिरण्यकशिपुके इतने अद्वितीय ऐश्वर्यका वर्णन है, जिसके अर्थ एवं भोगकी तुलना सृष्टिमें किसीसे नहीं की जा सकती। पञ्चम अध्यायमें

हिरण्यकशिपुका भगवत-द्वेष इतना प्रबल है कि अपने पुत्र प्रह्लादके वधको ही तत्पर है।

यहाँसे दशम अध्याय पर्यन्त प्रह्लादकी भगवत-निष्ठा एवं निष्ठाका परिपाक द्रष्टव्य है। षष्ठ एवं सप्तम अध्यायमें प्रह्लादका दैत्य बालकोंको उपदेश, अष्टम अध्यायमें भगवान् नृसिंहका प्राकट्य, हिरण्यकशिपु-वध, देवों द्वारा नृसिंहका स्तवन, नवम अध्यायमें प्रह्लाद द्वारा भगवान् नृसिंहका अनुग्रह और प्रह्लादकी निष्कामता इस मोक्ष वासनाकी चरम परिणितको सूचित करता है। इसी अध्यायमें त्रिपुर-दहन प्रसग प्रतिपादित करता है कि भगवद्-विमुख भोग व ऐश्वर्य कितना ही वृहद् क्यों न हो, वह भगवान्के द्वारा ही नष्ट किया जाता है।

एकादशसे पञ्चदश अध्याय पर्यन्त धर्मका निरूपण है। एकादश अध्यायमें मानव धर्म, वर्ण-धर्मोचित वृत्तियोंका निरूपण, द्वादश अध्यायमें ब्रह्मचर्य और वानप्रस्थ आश्रमोंके नियम, त्रयोदश अध्यायमें संन्यासियोंका धर्म एवं अवधूतका उपाख्यान देकर अवधूत-धर्मका निरूपण किया है। चतुर्दश अध्यायमें गृहस्थ-धर्म एवं पञ्चदश अध्यायमें भी गृहस्थोंके लिए मोक्ष-धर्मका विवेचन किया गया है।

अष्टम स्कन्ध—'मन्वन्तराणि सद्धर्म' (भा.,२. १०.४)में किस मन्वन्तरमें किनके द्वारा सद्धर्मका पालन, विस्तार, धर्म-पालनकी प्रेरणा प्राप्त होती है, यह अष्टम स्कन्धके चौबीस अध्यायोंका वर्णन है।

वस्तुतः श्रीमद्भागवत प्रथमसे सप्तम स्कन्ध पर्यन्त स्वायम्भुव मन्वन्तरका वर्णन करता है। अष्टम स्कन्धसे दूसरे मन्वन्तरोंका वर्णन प्रारम्भ होता है। (भा.,८. १. १) प्रथम अध्यायमें भगवान् यज्ञका चरित है। इस मन्वन्तरकी विशेषता है कि यज्ञ ही इन्द्र भी रहे हैं। यहीं द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ मन्वन्तरों तकका वर्णन है और चतुर्थ मन्वन्तरमें ही भगवान्ने हरि रूपमें अवतार लेकर ग्राहसे गजेन्द्रकी रक्षा की।

द्वितीय अध्यायमें ग्राहके द्वारा गजेन्द्रका ग्रस्त होना, तृतीय अध्यायमें गजेन्द्र स्तुति एवं ग्राहसे उसका उद्धार, चतुर्थ अध्यायमें गज और ग्राहका पूर्व-चरित एवं गजेन्द्रको अपने साथ ही भगवान् बैकुण्ठ ले गये।

पञ्चम अध्यायमें पाँचवें तथा छठे मन्वन्तरका वर्णन है, इस छठे चाक्षुष मन्वन्तरमें भगवान्ने 'अजित' रूपसे अवतार ग्रहण कर समुद्र-मंथन

कराया। असुरों द्वारा देवोंकी पराजय होनेपर ब्रह्मा द्वारा भगवान्‌की स्तुति की गयी। षष्ठ अध्यायमें भगवान्‌का प्राकट्य, भगवान्‌के द्वारा असुरोंसे सन्धि करके समुद्र-मंथनका आदेश और देवताओं व दैत्योंने मिलकर समुद्र-मन्थनका उद्योग प्रारम्भ कर दिया। सप्तम अध्यायमें मन्थनसे हलाहलकी उत्पत्ति, भगवान् शिव द्वारा विष-पानकी कथा है। अष्टम अध्यायमें समुद्रसे कामधेनु, उच्चैःश्रवा, ऐरावत, कौस्तुभ, लक्ष्मी, वारुणी आदि रत्नोंके अनन्तर अमृतका कलश लिए धन्वन्तरिका प्राकट्य हुआ एव असुरों द्वारा अमृतका छीना जाना और भगवान्‌का मोहिनी-रूप धारण करना वर्णित है। नवम अध्यायमें भगवानके द्वारा अमृत बांटा जाना, दशम अध्यायमें देवासुर-संग्राम और एकादश अध्यायमें युद्धकी समाप्तिका वर्णन है। इन वर्णनोंका तात्पर्य भगवान्‌के कच्छपावतार एवं मोहिनी-अवतारका सकारण प्रकट होना है। द्वादश अध्यायमें भगवान शिव द्वारा मोहिनी-रूप दर्शन की प्रार्थना और शिवका आसक्त होकर उन्मत्तवत् भागना और श्रीहरिकी मायाका स्मरण कर स्वरूपमें स्थिति हो जाना वर्णित है।

त्रयोदश अध्यायमें आगामी सात मन्वन्तरोंका वर्णन है। चतुर्दश अध्यायमें प्रत्येक मन्वन्तरके जो षट्विधि अधिकारी मनु, मनुपुत्र, सप्तर्षि, इन्द्र, देवता और अवतार हुए हैं और ये प्रत्येक मन्वन्तरमें क्या करते हैं? इसका विवेचन है। पन्द्रहवें अध्यायमें चाक्षुष मन्वन्तरके उत्तरार्धका ही वर्णन है। इसमें बालिका स्वर्गपर विजय पाना, सोलहवें अध्यायमें अदितिने देवताओंकी पराजयसे दुःखी होकर कश्यपकी शरण ली और कश्यपने उसे पयोव्रतका उपदेश दिया। सत्रहवें अध्यायमें भगवान् अदितिको प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं और अठारहवें अध्यायमें भगवान् वामनका प्रादुर्भाव और बलिकी यज्ञशालामें पधारना वर्णित है। उन्नीसवें अध्यायमें भगवान् वामनका तीन पग पृथ्वी मांगना, एवं शुक्राचार्यका विरोध है। बीसवें अध्यायमें वामनका विराट् रूप होकर दो ही पगमें पृथ्वी एवं स्वर्गको नाप लेना, इक्कीसवें अध्यायमें बलिका बन्धन, बाईसवें अध्यायमें बलि द्वारा भगवान्‌की स्तुति और भगवान्‌का प्रसन्न होकर सुतल लोक जानेका आदेश देना है। तेईसवें अध्यायमें बलिका सुतल-लोक जाना एवं भगवान्‌का उपेन्द्र पद वर्णित है।

चौबीसवें अध्यायमें मत्स्यावतारकी कथा इसलिये है कि मत्स्यने वेदोंका रक्षण किया। जैसे भगवान् भू-भार हरण करनेको प्रत्येक मन्वन्तरमें

अवतार लेते हैं, रक्षा करते हैं, यह रक्षा पद एवं शरीरकी होती है, उसी प्रकार मत्स्यावतार लेकर ज्ञान परम्परारूप वेदकी रक्षा करते हैं, इसी प्रकार देव-रक्षा, साधनोंकी रक्षा एवं सद्धर्मकी रक्षा प्रति मन्वन्तरोंमें करते रहते हैं।

नवम स्कन्ध—नवम स्कन्ध 'ईशानुकथा' है। भगवान् और भगवान्के भक्तोंके अनेक आख्यानोंसे युक्त चरित्रको 'ईशानुकथा' कहते हैं। प्रथम अध्यायमें वैवस्वत मनुके पुत्रोंकी उत्पत्ति एवं राजा सुद्युम्नकी कथाका वर्णन है। द्वितीय अध्यायमें मनुको दस पुत्रोंकी प्राप्ति, उनमें कवि, करूषके वंशोंका वर्णन है। तृतीय अध्यायमें महर्षि च्यवन और सुकन्याका चरित्र, राजा शर्यातिके वंशके वर्णनके अन्तमें रेवतकी पौत्री रेवतीजीका विवाह ब्रह्माके आदेशसे श्रीबलरामजीको करा दिया गया। चतुर्थ अध्यायमें नाभाग और अम्बरीषकी कथा दी गयी है। पञ्चम अध्यायमें अम्बरीषपर क्रोध करनेवाले दुर्वासाके पीछे पड़े चक्रसे दुर्वासाकी रक्षा, छठे अध्यायमें इक्ष्वाकु वंशका वर्णन, मान्धाता और सौभरि ऋषिकी कथा है जिन्होंने मान्धाताकी पचास कन्याओंसे विवाह किया। सातवें अध्यायमें राजा त्रिशंकु और हरिश्चन्द्रकी कथा है। आठवें अध्यायमें सगर-चरित है, उन सगरपुत्रोंने ही भारतीय उपसागरोंको खोदा। नवें अध्यायमें भागीरथकी तपस्या एवं गंगावतरण, दशवें अध्यायसे संक्षिप्त श्रीरामचरित, ग्यारहवें अध्यायमें पूरा होता है। बारहवें अध्यायमें इक्ष्वाकु वंशके शेष राजाओंका चरित, तेरहवें अध्यायमें निमि वंशका वर्णन इसलिए है कि श्रीजानकीजीका प्रादुर्भाव इसी कुलमें हुआ। चौदहवें अध्यायसे चन्द्रवंशका बर्णन प्रारम्भ होता है। इसमें पुरूरवा-उर्वशीका वैदिक आख्यान दिया गया है। पन्द्रहवें अध्यायमें परशुरामका प्रादुर्भाव, सहस्रबाहु अर्जुनकी दुष्टता तथा परशुराम द्वारा क्षत्रियोंका संहार, इसी अध्यायमें विश्वमित्र द्वारा शुनःशेपकी रक्षा तथा कौशिक गोत्रमें कई भेदोंका कारण बताया गया है। सत्रहवें अध्यायमें पुरूरवासे लेकर ययाति तकके वंशका वर्णन है। अठारहवें अध्यायमें ययातिका देवयानी और शर्मिष्ठासे विवाह, पुरूरवा द्वारा ययातिके वृद्धत्वकी स्वीकृति एवं उन्नीसवें अध्यायमें ययातिका वैराग्य वर्णित है। बीसवें अध्यायमें पुरुवंशके वर्णनमें दुष्यंत-शकुन्तला द्वारा चक्रवर्ती सम्राट् भरतकी उत्पत्ति है। इक्कीसवें अध्यायमें भरत वंशका विस्तार होते हुए क्रपाचार्यके वर्णन तक है। बाईसवें अध्यायमें पुरुवंशका वर्णन थोड़े विस्तारसे है। महराज शन्तनु, धृतराष्ट्र, पाण्डु और

पाण्डुपुत्रोंका वर्णन है। तेइसवें अध्यायमें यदुवंशकी उस शाखाका वर्णन है, जिसमें उग्रसेन वसुदेव आदि हुए और चौबीसवें अध्याय तक वसुदेवके पुत्रों एवं श्रीकृष्ण-चरितका वर्णन आ जाता है।

इस प्रकार इस नवम स्कन्ध ईशानुकथामें प्रमुखतः बारहवें तक श्रीरामचरित, तेरहवेंसे सोलहवें तकके चार अध्यायोंमें परशुराम-चरित और अन्तिम आठ अध्याय षोडश कला सम्पन्न परम-पुरुषके प्रादुर्भावकी भूमिकाके निर्वहणके लिए है।

दशम स्कन्ध (पूर्वार्द्ध)—सम्पूर्ण दशम स्कन्ध 'निरोध' स्कन्ध है। श्रीकृष्ण-चरितके उपक्रमके रूपमें हो प्रथम अध्याय देवकीके विवाह वर्णनका है। यहीं असुर कंसका निरोध भगवान्‌में भयकी भावनासे प्रारम्भ होता है। द्वितीय अध्यायमें देवताओं द्वारा गर्भस्तुति है, इसमें देवताओंका मनोनिरोध है। तृतीय अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य है। चतुर्थ अध्यायमें कंसका पश्चाताप तत्कालिक है पर इसमें देवकी-वसुदेव बन्धन मुक्त हो जाते हैं। पञ्चममें श्रीकृष्ण-चरित प्रारम्भ हो जाता है, इसमें नन्दोत्सवके अठारह श्लोकोंको भागवतके मर्मज्ञ सम्पूर्ण भागवतका प्रतीक मानते हैं। यहींसे गोपियोंका मनोनिरोध प्रारम्भ होता है। छठा अध्याय 'पूतना-मोक्ष' का है, जिसने शुकदेव[1] का मनोनिरोध किया है। सातवें अध्यायमें शकट-भंजन और तृणावर्त त्राण लीला हुई। इन्हीं दो लीलाओं द्वारा गोपियोंका सम्पूर्ण मनोनिरोध प्रकट किया है। आठवें अध्यायमें नाम-करण संस्कारएवं श्रीकृष्ण-चापल्य है। शुकदेवने चोरी-लीलाका कहीं वर्णन नहीं किया है। केवल गोपियोंके मुखसे उपालम्भ दिया गया है। मृद्-भक्षण लीलामें पृथ्वीका निरोध है, साथ ही नन्द एवं यशोदाके पूर्वजन्मका परिचय केवल इसलिए है कि इनका निरोध तो पूर्वजन्ममें ही हो गया था। नवाँ अध्याय वात्सल्य रसमें उतना ही मधुर है जितना शृंगार रसमें महारास। श्रीकृष्णका ऊखल-बन्धन यशोदा मैयाके वात्सल्यशक्तिकी पराकाष्ठा है। यह लीला सगुणकी व्यापकता और भक्तिके प्रभावका निरूपण करती है दशम अध्यायमें कुबेरके पुत्र नलकूवर मणिग्रीवके उद्धारकी चर्चा वनस्पति जगतके निरोधका वर्णन करती है। ग्यारहवें अध्यायमें दामोदरकी मुक्ति, फलक्रम, गोकुल परित्याग

---

१. अहो बकी यं स्तनकालकूटं जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम॥

—श्रीमद्भागवत, ३. २. २३

कर वृन्दावन बसना, वत्सासुर और बकासुरके उद्धारसे गोप-बालकोंका मनोनिरोध प्रारम्भ होता है। बारहवें अध्यायमें अघासुरसे परित्राणकी लीला सखाओंके प्रति असीम स्नेहका प्रतीक है कि साक्षात् अघके मुखमें गये, बालकोंको कोई उपालम्भ नहीं दिया, अपितु अघको निष्प्राण कर खेलनेको दे दिया।

तेरहवें अध्यायमें ब्रह्माका मोह, मोहके परित्राण-स्वरूप ब्रह्माका निरोध एवं चौदहवें अध्यायमें स्तुति है। पन्द्रहवें अध्यायमें गोप-बालकोंके प्रति श्रीकृष्णके अतिशय स्नेहके कारण धेनुक-बध लीला हुई। सोलहवें एवं सत्रहवें अध्यायमें श्रीकृष्णके कालियह्रदमें आनेका कारण बताया कि श्रीकृष्ण-भक्त-वत्सल ही नहीं अपितु भक्त-पक्षपाती है। जहाँ महर्षिने मछलियोंकी रक्षाके लिए गरुड़को शाप दिया, उसी ह्रदमें कालिय आकर बसा, तो मछली तो क्या, उसके ऊपरसे उड़नेवाले पक्षी भी मरते रहे, उसमें स्वयं श्रीकृष्णने स्वजनोंको निर्मल यमुना देनेको प्रवेश किया। निदाघ वर्णन भी है। अट्ठारहवें अध्यायमें प्रलम्ब मोक्ष है। यह जानते हुए भी कि यह असुर है, पर गोप-बालकोंके रूपमें आनेके कारण सखा स्वीकार कर लिया। उन्नीसवें अध्यायमें दावाग्नि-पान लीला है। यह द्वितीय बार अग्नि पान किया गया है। पहिला दावाग्नि कालियह्रदके तटका है। भागवतकार कहते हैं कि इन दोनों घटनाओंमें अग्नि एवं वायुका निरोध है। कालिय-मर्दनमें विषका निरोध है। यह दावाग्नि विष-दूषित वनस्थलीको जलाकर शुद्ध करने आया देव-अग्नि है। और गोप-गायोंको जलाने आया, मुंजाटवीका दावाग्नि असुर दावाग्नि है।[1]

बीसवें अध्यायमें वर्षा एवं शरदके वर्णनके माध्यममें ऋतुओंका निरोध है। इक्कीसवें अध्यायमें गोपी-गीत पूर्वरागका प्रतीक है। बाईसवां अध्याय चोर-हरण लीलाका है, जो पूर्वरागके परिणामस्वरूप उपासना और उपासनाका परिपाक अनावरणमें ही पूर्ण होता है। तेइसवें अध्यायमें मथुराके ब्राह्मणों एवं उनकी पत्नियोंका मनोनिरोध है। चौबीससे सत्ताईस अध्याय पर्यन्त देवराज इन्द्रका मनोनिरोध कर गोवर्धन धारण, इन्द्रके गर्व-शमनका वर्णन है। गोपोंको सामूहिक रूपसे ब्रह्मस्थितिमें लाने एवं बैकुण्ठ दर्शनका वर्णन है।

---

१. नन्दनन्दन, लेखक—सुदर्शनसिंह 'चक्र'

उन्नीसवेंसे लेकर तैंतीसवें अध्याय पर्यन्त 'रासपंञ्चाध्यायी' है। इसमें उन्नीसवें अध्यायमें वेणुवादनसे गोपियोंका आवाहन, प्रत्याख्यान द्वारा उत्कण्ठाको तीव्र करना, अल्पकालिक संयोग देकर अन्तर्धान होना है। तीसवें अध्यायमें गोपियोंकी विरहविदग्धता है। इक्तीसवें अध्यायमें गोपी-गीत है, यह गोपियोंकी आकुलता एवं प्रेमस्थितिका वर्णन करता है। बत्तीसवें अध्यायमें श्रीकृष्णका प्राकट्य एवं गोपियोंका सान्त्वना देना है। तैंतीसवें अध्यायमें 'महारास' है, जिसका माहात्म्य इस प्रकार है कि जैसे नन्हा-सा शिशु निर्विकार भावसे अपनी परछाईके साथ खेलता है।[1]

चौंतीसवें अध्यायमें गोपोंकी अम्बिकाबन यात्रा, अजगर बने विद्याधरका उद्धार, गोपियोंका हरण करनेपर यक्ष शंखचूड़ वध वर्णित है, इसमें यक्ष और विद्याधर दोनोंका निरोध है। पैंतीसवें अध्यायमें 'युगलगीत' गोपियोंकी कृष्णाशक्तिको प्रकट करता है। छत्तीसवें अध्यायमें अरिष्टकासुर-बध, कंसका नारद द्वारा उत्तेजित होनेपर अक्रूरको ब्रज भेजनेकी कथा है। यहींसे मथुरालीलाका उपक्रम है।

सैंतीसवें अध्यायमें केशी-वध है, यह ह्यग्रीवके समान ही वेदविरोधी है। व्योमासुरके वधमें विशेषता यह है कि सम्पूर्ण श्रीकृष्णचरितमें श्रीकृष्णको यहीं क्रोध आया है, कारण कि व्योमने उनके सखाओंको ही नष्ट करनेका प्रयत्न किया है। देवर्षि नारद श्रीकृष्णकी अग्रिम लीलाओंका यहीं संकेत कर देते हैं। अड़तीसवें अध्यायमें अक्रूरकी भावनाओंका वर्णन, उन्तालीसवें अध्यायमें गोपियोंकी व्याकुलता, अक्रूरका जलमें दर्शन। चालीसवें अध्यायमें अक्रूर द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति है। इकतालीसवें अध्यायमें मथुरा प्रवेश है। यहाँसे मथुरावासियोंके निरोधका वर्णन प्रारम्भ हो जाता है। रजक-वध एवं मालीपर कृपा वर्णित है। बयालीसवें अध्यायमें कुब्जापर कृपा, धनुषभंग एवं कंसकी भय-त्रस्तता वर्णित है। तैंतालीसवें अध्यायमें कुवलयापीड़-वध एवं चौवालीसवें अध्यायमें चाणूर मुष्टिक आदि मल्लों तथा कंसका वध वर्णित है। पैंतालीसवें अध्यायमें वसुदेव-देवकीको बन्धन-मुक्त करके प्रसन्न करना, नन्द बाबाकी विदा, गुरुकुल-वास, गुरु-दक्षिणाके रूपमें मृत गुरुपुत्रको प्रदान करना है। छियालीसवें एवं सैंतालीसवें अध्यायमें उद्धवका ब्रज-आगमन एवं भ्रमर-गीत है। यह चरित इसलिये

---

१. रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः।

—श्रीमद्भागवत, १०. ३३.१७

महत्वपूर्ण है कि उद्धवको श्रीकृष्णने अन्तरंग मित्र मंत्री बनाया जो यदुकुलके नाशके पश्चात् भी जीवित रहे, अतः इनमें भक्ति अपेक्षित रहे, इससे इन्हें ब्रज भेजते हैं और उद्धव गोपियोंको समझानेमें सफल न हुए, अपितु भक्तिकी दीक्षा लेकर ही लौटे। अड़तालीसवें अध्यायमें कुब्जा एवं अक्रूरके घर जाते हैं। उञ्चासवें अध्यायमें अक्रूर हस्तिनापुर जाकर मथुरा लौट आते हैं, यहाँसे हस्तिनापुरके लोगोंका और पाण्डवोंका मनोनिरोध है।

दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध)—दशम स्कन्धके उत्तरार्धमें अधिक वर्णन तो युद्ध एवं विवाहका है। पचासवें अध्यायमें जरासंधका युद्ध, कालयवनका आगमन, मथुरावासियोंको द्वारिका ले जानेका वर्णन है। इक्यावनवें अध्यायमें कालयवनका भस्म होना, मुचुकुन्दको श्रीकृष्ण-दर्शन, एवं मुचुकुन्दकी स्तुति है। बावनवेंसे चौवनवें अध्याय तक रुक्मिणी-हरण, रुक्मीसे युद्ध तक है। पचपनवें अध्यायमें प्रद्युम्नका जन्म, शम्बर द्वारा हरण एवं शम्बरासुर-का वध वर्णित है। छप्पनवें अध्यायमें स्यमन्तकोपाख्यानमें सत्राजित द्वारा श्रीकृष्णको मिथ्या कलंक लगा। इसीसे मणिके अन्वेषणमें जाम्बवन्तकी गुफामें प्रवेश, जाम्बवतीसे विवाह, मणिके देनेपर सत्यभामासे विवाह वर्णित है। इसमें प्रतिपादित है कि एक लोभ कितने अनर्थोंका कारण होता है। अट्ठावनवें अध्यायमें शेष मुख्य रानियों कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्या, भद्रा, लक्ष्मणा, नाग्नजितीसे विवाह वर्णित है। उनसठवें अध्यायमें भौमासुर-वध, पारिजात-हरण, सोलह हजार एक सौ आठ राजकन्याओंसे भगवान् श्रीकृष्णका विवाह वर्णित है। साठवें अध्यायमें रुक्मिणीसे परिहास है। यहाँ राजकन्याओंका मनोनिरोध है।

इकसठवें अध्यायमें श्रीकृष्णकी पटरानियोंके पुत्रोंकी नामावली एवं अनिरुद्धके विवाहमें रुक्मीका मारा जाना वर्णित है। बासठ एवं त्रेसठवें अध्यायमें अनिरुद्धका वाणासुरकी पुत्री ऊषासे प्रणय, परिणय एवं श्रीकृष्ण-का वाणासुरसे युद्ध वर्णित है। यहाँ असुर एवं रुद्रगणोंका निरोध है।

पैंसठवें अध्यायमें नृगके उद्धारसे स्पष्ट है कि धर्म कितना आशंका-पूर्ण है? और भगवदाश्रयके बिना धर्मात्माका भी उद्धार नहीं होता। पैंसठवें अध्यायमें बलरामजी की ब्रजयात्रा है। छियासठवें अध्यायमें पौण्ड्रक-वध और काशी-दहनसे प्रकट है कि दम्भसे किया गया भगवद्-चिन्तन भी निरोध करता है और अभिचार विपत्ति लाता है। सड़सठवें अध्यायमें द्विविदका उद्धार, अड़सठवें अध्यायमें दुर्योधनकी पुत्रीका साम्बसे

विवाह और श्रीबलराम द्वारा हस्तिनापुर-कर्षणमें उनका पराक्रम वर्णित है। उनहत्तरवें अध्यायमें देवर्षि नारद द्वारा भगवानकी गृहचर्या दर्शनमें सगुण-साकारकी व्यापकताका प्रत्यक्ष रूप है। सत्तरवें अध्यायमें जरासन्धके कैदी राजाओंके दूतका आगमन एवं नारदजी द्वारा युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञका निमंत्रण देना है। इकहत्तरवें अध्यायमें श्रीकृष्णका इन्द्रप्रस्थ पधारना, बहत्तरवें अध्यायमें पाण्डवोंके राजसूय यज्ञका आयोजन, तिहत्तरवें अध्यायमें जरासन्धके द्वारा बन्दी राजाओंकी मुक्ति, चौहत्तरवें अध्यायमें राजसूय यज्ञमें श्रीकृष्णकी अग्रपूजा और शिशुपाल उद्धार वर्णित है। पचहत्तरवें अध्यायमें दुर्योधनका दौरात्म्य, जो महाभारतके बैरका बीज है, और भू-भार हरणका कारण भी। छिहत्तरवें एवं सतहत्तरवें अध्यायमें शात्वके युद्धका वर्णन है। अठहत्तरवें अध्यायमें बलराम द्वारा रोमहर्षण सूतका वध, उनके पुत्र उग्रश्रवाको सम्पूर्ण विद्या प्रदान और उन्यासीवें अध्ययामें ऋषियोंको कष्ट देनेवाले बल्बल दैत्यका वध करके पुनः तीर्थयात्राका वर्णन है। अस्सीवें और इक्यासीवें अध्यायमें दरिद्र सुदामाका भव्य स्वागत श्रीकृष्णके भक्त-वात्सल्य एवं सख्य-प्रेमका निरूपण करता है। बयासीसे चौरासीवें अध्यायमें श्रीकृष्णका कुरुक्षेत्र जाकर ग्रहण-स्नान वर्णित है, इसमें गोप-गोप्पियोंका पुनः मिलन, पटरानियोंका द्रोपदीसे वार्तालाप एवं वसुदेवका कुरुक्षेत्रमें यज्ञोत्सव वर्णित है। पच्चासीवें अध्यायमें वसुदेवको ब्रह्मज्ञान और देवकीके आग्रहपर सुतल लोक जाकर अग्रजोंको लानेमें पातालके लोगोंका निरोध है। छियासीवें अध्यायमें सुभद्रा-विवाह, ऋषियोंके साथ मिथिला गमनकी कथामें विशेषता यह है कि श्रीकृष्णका देश व काल दोनोंपर समानाधिकार है, क्योंकि एक ही साथ ब्राह्मण श्रुतिदेव एवं नरपति बहुलाश्वके यहाँ पहुँचना देश-विजय है एवं ब्राह्मणके यहाँ एक दिन और बहुलाश्वके यहाँ एक माह रहे पर दोनों काल समान कर दिये। सत्तासीवें अध्यायमें वेदस्तुति है। जो सगुण साकारका भक्त नहीं है, उनका भी मनोनिरोध इस प्रकार सम्पन्न किया गया है। अट्ठासीवें अध्यायमें भस्मासुरकी कथा भगवान् शिवकी आशुतोषताको व्यक्त करती है कि शिवपर आया संकट विष्णु निवारण करते हैं। नवासीवें अध्यायमें भृगु द्वारा त्रिदेवोंकी परीक्षा है जिसमें विष्णुके परम शान्त परमाराध्य रूपका प्रतिपादन करते हैं। ब्राह्मणके मृत कुमारोंको भूमा-पुरुषके पाससे लानेके वर्णनमें श्रीकृष्णका भूमापुरुषसे अभिन्नत्व स्पष्ट है।

इस स्कन्धका अन्तिम अध्याय श्रीकृष्णकी रानियोंके प्रेम-वैचित्र्यका है। संयोगमें भी वियोगकी अनुभूतिका होना अद्भुत एवं विलक्षण निरोधकी परिणति है।

एकादश स्कन्ध—यह 'मुक्ति-स्कन्ध' है। बिना वैराग्यके मुक्ति नहीं होती अतः प्रथम अध्यायमें यदुकुलके शापका वर्णन करके दिखलाया गया है कि संसार कितना नश्वर है। श्रीकृष्णकी साक्षात् उपस्थितिमें यादवोंके विनाशका प्रसंग बना। द्वितीय अध्यायसे पञ्चम अध्याय पर्यन्त वसुदेवजीके पास नारदजीका आना और उन्हें निमि और नौ योगेश्वरोंका संवाद सुनाना जो ज्ञान-भक्तिसे परिपूर्ण है। छठें अध्यायमें उद्धवके उपदेशकी भूमिका है। इसमें ब्रह्मादि देवता भगवान्से स्वधाम पधारनेकी प्रार्थना करते हैं। यहीसे उद्धव प्रश्न करते हैं और श्रीकृष्ण चौबीस अध्यायोमें उपदेश करके ज्ञान-वैराग्य, भक्ति, वर्णाश्रम, धर्मकी व्याख्या करते हैं। तीसवें अध्यायमें यदुवंशका संहार है जो देहासक्तिकी निवृत्तिके लिए है।

श्रीकृष्ण इकतीसवें अध्यायमें निवृत्ति परायण हो सशरीर स्वधाम पधारते हैं।

द्वादश स्कन्ध—यह 'आश्रय' स्कन्ध है। 'स आश्रयः परं ब्रह्म' इसकी प्राप्तिके लिए इस स्कन्धमें पञ्चविध आश्रयोंका निरूपण है।

'विवेकाश्रय' प्रथम तीन अध्यायोंमें, क्रमशः वंशावली, कलि-वर्णन और कलि-धर्म वर्णन है। यह तीन अध्याय तीनों गुणोंसे विरक्त करके भगवत-प्राप्तिको प्रेरित करते हैं।

द्वितीय 'ज्ञानाश्रय' है। इसमें लय-चिन्तनार्थ चतुर्थ अध्यायमे चार प्रकारकी प्रलयका निरूपण है। पञ्चम अध्यायमें ब्रह्मोपदेश है।

तृतीय 'शास्त्राश्रय' है। छठें अध्यायमें वेद, वेदोंके शाखाभेद, सातवें अध्यायमें पुराणोंके लक्षणोंका वर्णन कर इस आश्रयको पुष्ट कर दिया है।

चतुर्थ 'भगवदाश्रय' है। आठवें और नवें अध्यायमें मार्कण्डेयजीकी तपस्या, नारायण दर्शन, माया-दर्शन है। दशवें अध्यायमें भगवान् शङ्करसे आशीर्वाद प्राप्तकर भगवदाश्रयकी पुष्टि की गयी है ग्यारहवें अध्यायमें मूर्ति-

पूजा द्वारा भगवदाश्रय वर्णित है। इसी अध्यायमें सूर्यको नारायण मानकर उपासना करनेवाले 'सौर' सम्प्रदायमें वर्णित सूर्य-व्यूहकी उपासनाका विवेचन है।

पाँचवाँ भागवत-ग्रन्थाश्रय है। द्वादशवें अध्यायमें सम्पूर्ण भागवतकी अनुक्रमणिका और तेरहवें अध्यायमें विभिन्न पुराणोंकी श्लोक-संख्या और श्रीमद्भागवतके श्रेष्ठत्वका प्रतिपादन कर भागवताश्रयकी पुष्टि की गयी है।

अध्याय—३

मानसका सोपानात्मक विभाजन

कविकुलचूड़ामणि तुलसीदासने अपने लोकप्रिय ग्रन्थ 'श्रीरामचरित-मानस' की परिकल्पना मानसरोवरके रूपमें की है। मानस-रूपकमें दोनोंके साधर्म्यका विशद चित्र दिया गया है। एक सरोवरकी सात सीढ़ियोंके समान काण्डोंको 'सोपान' की संज्ञासे अभिहित किया है। 'मानस' में उपक्रम और उपसंहार दोनों ही स्थलोंपर 'सप्त सोपान' का सांकेतिक स्पष्टीकरण द्रष्टव्य है।[1]

ज्ञान-दृष्टि एवं भक्ति-दृष्टिसे सोपानोंका विवेचन करनेके पूर्व उनकी पुष्पिकाओंपर भी विचार कर लेना उपयुक्त होगा। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित रामचरितमानसके नवीनतम प्रामाणिक संस्करणमें सातों सोपानोंकी पुष्पिकाएँ इस प्रकार दी गयी है—

१. इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने प्रथमः सोपानः समाप्तः।

२. श्रीराम

३. इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने

विमल वैराग्य सम्पादनो **नाम** तृतीयस्सोपानः समाप्तः।

अन्तिम चारमें, 'इति———विध्वंसने' तीसरेके सदृश ही है। शेष अंश इस प्रकार है—

४. विशुद्ध संतोष सम्पादनो **नाम** चतुर्थः सोपानः समाप्त।

५. ज्ञानसम्पादनो **नाम** पञ्चमस्सोपानः समाप्तः।

---

१. (क) सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना॥

—रा. च. मा., १।३६.१

(ख) एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना॥

—रा. च. मा., ७।१२८.३

६ विमलविज्ञानसंपादनो **नाम** षष्ठः सोपानः समाप्तः ।

७. अविरलहरिभक्तिसंपादनो **नाम** सप्तम सोपानः समाप्तः ।

'मानस' के रचनाक्रमको देखते हुए स्पष्ट होता है कि पहले अयोध्या-काण्ड, फिर बालकाण्डके उत्तरार्ध, फिर अन्य काण्डोंकी रचना हुई । उपर्युक्त पुष्पिकाओंसे भी इसका समर्थन प्राप्त होता है । अयोध्याकाण्डमें पुष्पिका नहीं है, केवल 'श्रीराम' है । ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक कविमें 'सोपान' और 'पुष्पिका'का विचार नहीं आया था । बालकाण्डका उत्तरार्ध लिख लेनेपर मानस-रूपककी कल्पना आयी । उसे प्रथम सोपान कहा गया । उसकी पुष्पिका लिखी गयी, किन्तु विशेषणरूपमें किसी मोक्षसाधनका उल्लेख नहीं किया गया । अरण्यकाण्डमें इसका व्यवस्थित क्रम चला । पं० शम्भुनाथ चौबे, डा० माताप्रसाद गुप्त आदिने अयोध्याकाण्डमें भी बालकाण्डकी-सी पुष्पिका दी है । प्रथम सोपानके साथ डा० गुप्तने ज्ञानसम्पादनोंके बदले 'विमलज्ञानसम्पादनो' रखा है । बाबू रामदास गौड़ने कुछ प्राचीन प्रतियोंके आधारपर प्रथम दो सोपानोंकी पुष्पिकाओं' में क्रमशः विमलसन्तोष-सम्पादनो नाम और 'विमलज्ञानवैराग्यसम्पादनो' नामका सन्निवेश स्वीकार किया है[1] ।

स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि प्रथम दो सोपानोंकी पुष्पिकाओंमें तुलसीने मोक्ष-साधनका निर्देश क्यों नहीं किया । वे इतने धर्मनिष्ठ हैं, और उक्त सोपानोंमें धर्मके विविध पक्षोंका सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिकरूपमें विशद चित्रण भी है, फिर भी उन्होंने 'धर्मसम्पादनो नाम'की योजना नहींकी है । ऐसा प्रतीत होता है कि रामचरितमानसके पूर्वार्द्ध (अर्थात् बालकाण्डके उत्तरार्ध और अयोध्याकाण्ड) में मोक्षधर्म गौण है, उसमें काव्यधर्मकी प्रधानता है । अतएव प्रथम दो सोपानोंकी पुष्पिकाओंमें मोक्ष-साधनका उल्लेख नहीं है । बादमें भी कविने उसकी आवश्यकताका अनुभव नहीं किया । 'रामचरितमानस' की भाँति ही आधुनिक 'कामायनी' के पूर्वार्धमें इस काव्यधर्मकी विशिष्टता पाते हैं और उत्तरार्धमें मोक्षधर्मकी ।

डा० बलदेवप्रसाद मिश्रने भी उक्त पुष्पिकाओंके आधारपर सात सोपानोंके नामकरणपर विचार किया है[2] प्रथम सोपानमें तृष्णा-त्रय, वित्त-

---

१. मानसमें रामकथा, पृष्ठ १४७ ।

२. मानसमें रामकथा, पृष्ठ १४८-१५४ ।

पुत्र-लोक, आहार-विहार-समाजप्रियता और कंचन-कामिनी-कीर्तिके प्रति वैराग्यपर बल दिया गया है। इसलिए वह 'विमलसंतोष' का सम्पादक है। द्वितीय सोपानमें समग्र ऐश्वर्यके प्रति अनासक्तिमय त्यागका निरूपण है। अतः उसको 'विमलविज्ञानवैराग्यसम्पादन' कहा गया है। तृतीय सोपानमें सीताको दूर हटाकर रामने विभव भोगोंके प्रति 'विमल-वैराग्य' दिखलाया है। चतुर्थ सोपान तृष्णा, आसक्ति तथा भोग-वासनासे रहित अनासक्ति-योग और अकर्मण्यताके प्रति वैराग्यका निदर्शक होनेसे 'विशुद्ध-सन्तोष' का सम्पादक है। 'विमलज्ञानसम्पादनो नाम' पञ्चम सोपानमें आराधक, आराधना और आराध्यके स्वरूपका निरूपण है। 'विज्ञान' मोह आदिके नाशक प्रयोगात्मक ज्ञानका द्योतक है। रावण महामोहका प्रतीक है। उसके नाश द्वारा षष्ठ सोपानमें 'विमल विज्ञान' का सम्पादन किया गया है। सप्तम सोपान रामराज्यकी स्थापना है और काकभुशुण्डि द्वारा को गयी भक्तिरसकी पीयूषवर्षाके फलस्वरूप अविरल हरिभक्तिका सम्पादन है।

पं०विजयानन्द त्रिपाठीका मत है कि 'मानस' के सात सोपान सातों पुरियों[1] की भाँति मोक्ष-प्रदायक हैं। प्रथममें अवध, सरयू, रामनवमी आदिका माहात्म्य वर्णित है, वह अयोध्या है। द्वितीयमें रामवनवास कृष्णकी विरह-कथाके समान है, वह 'मथुरा' है। तृतीयमें मायाका बाहुल्य है, वह मायापुरी है। चतुर्थमें काशीका महत्व द्योतित है, वह 'काशी' है। पञ्चममें शिव-कांची और विष्णु-कांचीके द्वैविध्यके अनुसार हनुमत-चरित और रामचरित वर्णित है, वह कांची है। षष्ठमें महाकालकी प्रधानता है वह 'अवंतिका' है। सप्तममें रामने द्वारिकाधीशकी भाँति ऐश्वर्य सम्पन्न होकर राज्य किया है अतः 'द्वारिका' है।

---

१. **अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।**
पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिकाः॥
बालकाण्ड है अवध, अवध मथुरा मन भावन।
हरिद्वार आरन्य, कासिका किष्किन्धा मन॥
काञ्ची सुन्दर लसत, लंक उज्जैन सुहावन।
उत्तर द्वाराबती, पुरी सातों मन भावन॥
लसत जहाँ सोपान प्रति, ऐसो रामचरित सर।
विजयानन्द सेवत सुलभ सब सुखकर कलिकलुष हर॥

—मानस प्रसङ्ग, पं० विजयानन्दजी त्रिपाठी पृष्ठ ७९

अनेक टीकाकारोंने 'ज्ञान--नयन' से द्रष्टव्य सातों सोपानोंमें दर्शन-शास्त्रके विभिन्न सम्प्रदायोंकी छायाका भी अनुसन्धान किया है। उनके मतानुसार पहला सोपान सांख्य-शास्त्र है, दूसरा वैशेषिक-शास्त्र, तीसरा मीमांसा-शास्त्र, चौथा योगशास्त्र, पाँचवा न्याय-शास्त्र छठा वेदान्त और सातवाँ 'साम्राज्य-शास्त्र' है[१] सांख्य-योग और न्याय-वैशेषिकको तुलसीका प्रतिपाद्य मानना सर्वथा असंगत है। 'विनय-पत्रिका' में उन्होंने इनपर तीव्र आक्षेप किया है[२]।

मानसके सोपान वस्तुतः भक्तिके सोपान हैं। फिर भी उनकी यदि ज्ञानपरक व्याख्या की जाय तो किसी सीमामें 'योग-वाशिष्ठ' में प्रतिपादित सात ज्ञानभूमियों[३] के अनुसार की जा सकती है। प्रथम सोपान 'शुभेच्छा' का प्रतिपादक है। प्रस्तावनामें भरद्वाज एवं पार्वतीने श्रीराम-कथा श्रवण करनेकी 'शुभेच्छा' प्रकट की है। द्वितीय सोपानमें 'विचारणा' का, सदाचारपरक प्रवृत्तिका निरूपण किया गया है। इस सोपानमें निबद्ध सभी सत्पात्र धर्म परायण हैं। तृतीय सोपानमें 'तनुमानसा' का उपस्थापन है। राम विषयोंमें अनासक्त हैं। नारद, शवरी, लक्ष्मणको दिये गये उपदेशोंमें वैराग्यकी विशेषता है। चतुर्थ सोपान 'वैराग्य' चित्तकी विषय-विमुखता और निषेधात्मक वृत्तिका द्योतक है, 'सन्तोष' मनकी क्षोभ रहित अवस्था तथा आत्मानुभवकी ओर अग्रसर चित्तकी भावात्मक वृत्तिका ज्ञापक है। अतः चतुर्थ सोपान 'सत्वापत्ति' का व्यञ्जक है। तारा और सुग्रीवके अज्ञान-निवारणके प्रसंग पाठककी विषय विरक्तिको दृढ़ करते हैं। पञ्चम सोपानमें 'असंसक्ति' है। उसमें महामोहके प्रतीक रावण[४] की लंकाका दहन अविद्याजन्य संस्कारोंके नाशका प्रतीक है। विभीषणका लंका-त्यागकर रामकी शरणमें जाना परमात्मतत्वमें साधककी दृढ़-स्थितिका निदर्शक है। षष्ठ सोपानमें 'रामायण' की मूलकथाकी समाप्तिपर पाठकके

---

१. मानस पीयूष, १।३६. १, पृष्ठ ५३६।

२. विनय-पत्रिका १११।४ तथा देखिये महिम्नस्तोत्र ६ और उसपर मधुसूदनी व्याख्या।

३. योगवाशिष्ठ, ३।११८. २-१५, ६।१. १२०. १-९.।

४. विनय-पत्रिका ५८. ७।

मनमें रामको सत्यता एवं जागतिक पदार्थोंके मिथ्यात्वकी भावना दृढ़ होती है। अतएव इस सोपानमें 'पदार्थाभाविनी' भूमिकाकी व्यञ्जना हुई है। सप्तम सोपानमें विशेषकर विज्ञान दीपकके प्रकरण, ज्ञानका निरूपण 'तुर्यगा' का प्रत्यायक है। तुलसी भक्तिवादी हैं, इसलिये उन्होंने भक्तिको ज्ञानसे उच्चतर भूमिपर प्रतिष्ठित किया है। यह भक्तिका वैशिष्ट्य है कि वह तुरीया भी है और सप्तपदा ज्ञानभूमिसे बहुत ऊपर तुरीयातीत भी है[1]।

अब भक्तिके केन्द्र-बिन्दुसे ही सातों सोपानोंका निरीक्षण ज्ञान वैराग्य नेत्रोंसे करना है। 'ज्ञान नयन निरखत' का तात्पर्य यह है कि भक्तिके सोपान मूढ़ोंको दृष्टिगोचर नहीं हो सकते। उन्हें देखनेको ज्ञान-दृष्टि अपेक्षित है[2]। वे सोपान रामभक्तिके पंथ हैं अर्थात् उनके पारायणसे रामभक्तिकी उपलब्धि होती है। वैराग्य आदि भक्तिके साधन हैं। इससे यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिये कि सातवें सोपानपर पहुँचकर ही भक्ति-जल प्राप्त होता है। वास्तविकता तो यह है, मानस तो भक्ति-जलसे हो लबालब भरा है। पहले ही सोपानके आरम्भसे भक्ति-रस मिलने लगता है। पाठक ज्यों-ज्यों गहराईमें उतरता जाता है, त्यों-त्यों भक्ति-जलमें प्रवेश करता जाता है और सातवें सोपानपर पहुँचकर तो वह भक्ति-रसमें पूर्णतः निमग्न हो जाता है।

सप्त सोपान 'मानस' के चार घाट हैं,[3] व्याख्याताओंने उनके जो विवरण दिये हैं, उन्हें इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

---

१. तुलसी दर्शन मीमांसा, पृष्ठ २५५-५७।

२. पावन पर्बत बेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना।.
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी॥
भाव सहित खोजइ जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी॥
—श्रीरामचरितमानस, ७।११९. १३. १५

३. सुठि सुन्दर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि।
तेइ ऐहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥
—श्रीरामचरितमानस, १।३६

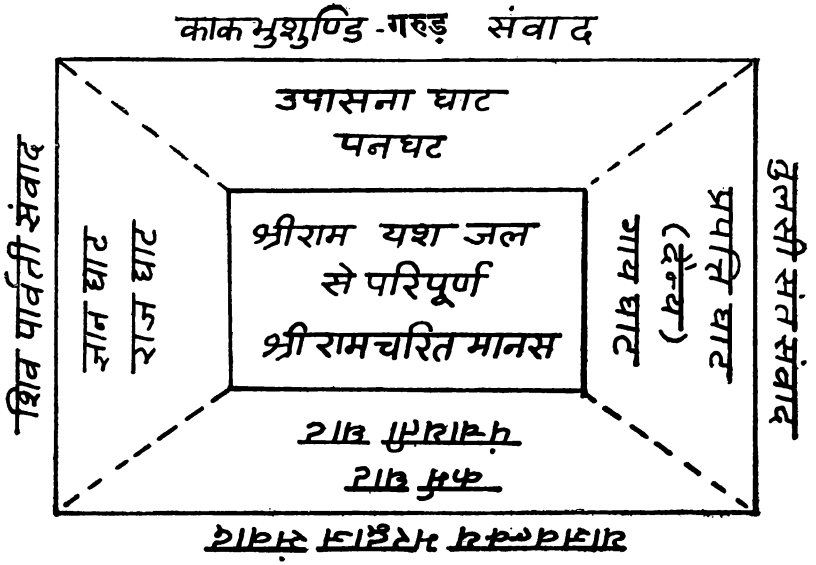

ग्रन्थकारके अनुसार ज्योतिष्मती दिव्यदृष्टि[1] के उद्भूत होनेपर उसके आलोकमें ही ज्ञान-नेत्रोंसे 'रामचरित मनि-मानिक' द्रष्टव्य हैं। सप्त सोपानोंके चारों घाट मणि-माणिक्य एवं मुक्ताओंसे बने तेजोमय हैं।[2] देवाधिदेव शंकरकी कथा मणि है, याज्ञवल्क्यकी कथा माणिक्य है, भुशुण्डिजीकी कथा गजमुक्ता है, अतः स्पष्ट है कि ज्ञानघाटके सोपान मणिमय, कर्मघाटके सोपान माणिक्यमय, उपासना घाटके गजमुक्तारूप और दैन्य-घाटके मुक्तामय हैं। पृथक्-पृथक् रूपसे इनकी महिमाका भी प्रतिपादन किया गया है।

सोपानोंके नामकरणका औचित्य

वस्तु-विन्यासकी दृष्टिसे 'मानस' का सोपानात्मक विभाजन तुलसीकी मौलिक प्रतिभा एव कल्पनाका परिपाक है। वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म-रामायण, पउमचरित, कम्बरामायण, रंगनाथ-रामायण, तोरवे, बंगला,

---

१. श्रीगुरुपद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिब्य दृष्टि हिय होती॥
—श्रीरामचरितमानस, १।०. ५

२. मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
—श्रीरामचरितमानस, १।१०. १

असमिया, उड़िया, भावार्थ, गिरधर और पंजाबी सभी रामायणोंमें काण्डात्मक-विभाजन ही स्वीकार किया गया है। वस्तुतः यह परम्परा वाल्मीकि-रामायणसे अद्यावधि ग्रहण की गयी है। 'काण्ड' का अर्थ है बाँस' या 'सरकण्डे' की दो गाँठोंके मध्यका भाग। गाँठोंको 'पर्व' से भी अभिहित किया गया है। महाभारतका विभाजन 'पर्व' के द्वारा ही किया गया है। पर जब 'पर्व' को सरोवरसे उपमित किया गया तब 'पर्व' या काण्डकी कोई सांगता या उपयुक्तता नहीं प्रतीत होती। यद्यपि आज भी प्रथम[1] से सप्तम सोपानों[2] के उपसंहारमें छपे होनेपर भी काण्डके नामसे ही अभिहित किया जाता है। प्रायः सभी प्रतियोंमें उपलब्ध भी है। वस्तुतः यह वाल्मीकि-रामायणकी लोक प्रचलित अनुकृति-मात्र ही है, पर ग्रन्थकारने तो स्वयं ग्रन्थका विभाजन सोपानात्मक ही किया है, न कि काण्डात्मक। इन सोपानोंके सम्बन्धमें विवेचनीय तथ्य यही है कि ये बाह्य-चक्षुओंसे नहीं अपितु ज्ञान-नेत्रोंसे ही द्रष्टव्य हैं। (इनका विशद् विवेचन रूपकद्वयमें किया जा चुका है)

वस्तु विन्यासकी दृष्टिसे सोपानोंके ढाँचे (Structure) के सम्बन्धमें एक निश्चित क्रम ग्रन्थकारने नहीं अपनाया है। बालकाण्ड ३६१ दोहेका सबसे बड़ा काण्ड है। इससे छोटा अयोध्याकाण्ड ३२६ दोहेका है, अरण्यकाण्डमें ४६ दोहे हैं और किष्किन्धाकाण्डमें ३० दोहे। यह क्रम-परिवर्तित सुन्दरकाण्डसे हो गया, क्योंकि सुन्दरकाण्डमें ६० दोहे होनेसे अरण्यकाण्ड एवं किष्किन्धाकाण्डसे बड़ा है। इस क्रमसे उत्तरोत्तर बृहद् रूप होता गया, यथा लंकाकाण्डमें १२१ दोहे एवं उत्तरकाण्डमें १३० दोहेके पश्चात् दो श्लोकोंसे ग्रन्थका समापन हो रहा है।

आलंकारिक दृष्टिसे शोभा सम्पन्नताके लिए यह क्रम प्रथमसे चतुर्थ सोपान तक छोटे एवं पञ्चमसे सप्तम तक उत्तरोत्तर बृहद् होना चाहिये था।

---

१. इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकल कलि कलुष विध्वंसने प्रथमः सोपानः समाप्तः।

२. इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकल कलि कलुष विध्वंसने सप्तमः सोपानः समाप्तः।

सोपानक्रम—

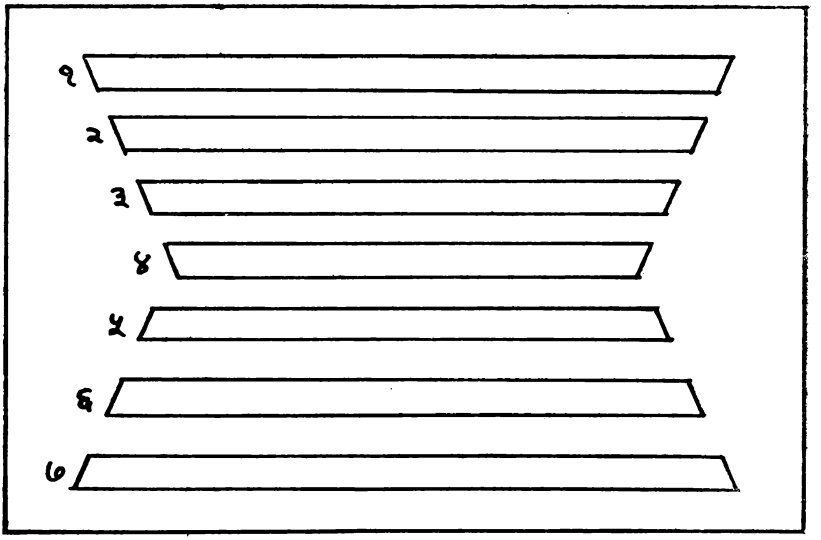

इस क्रम-विधानमें प्रथम-सप्तम, द्वितीय-षष्ठ, तृतीय-पञ्चम बराबर होने चाहिये, पर ऐसा नहीं है। विस्तृत कलेवरमें 'मानस' वस्तु-शिल्पकी दृष्टिसे अक्रमबद्ध होते हुए भी असंगत नहीं है, वह पूर्णत्वको प्राप्त है।

कथा-विधान किसी भी काव्यकृतिका प्रमुख आधार होता है। काव्य-प्रणयन करते समय कवि निश्चय ही पूर्व प्रचलित कथामें कुछ न कुछ परिवर्तन करता है। इस परिवर्तनका उद्देश्य कविके स्वकल्पित आदर्शकी पूर्ति होती है। श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धकी राम-कथा, वाल्मीकि-रामायण तथा अध्यात्म-रामायणकी कथाको अपनी कृतिके आश्रय रूपमें ग्रहण करनेपर भी मानसके कथा-विधानमें पर्याप्त अन्तर है।

तुलसीका उद्देश्य मानसमें विभिन्न घटनाओं और दृश्योंको काव्यात्मक रूपसे अधिकाधिक प्रभावशाली करना था। सम्पूर्ण मानसमें लोक-मंगलका विधान है। प्रथम सोपानमें श्रीराम एवं चारों भाइयोंके विवाहोत्सवका वर्णन है। अतः परम्परागत 'आदिकाण्ड' के नामसे न करके 'बालकाण्ड' के नामसे अभिहित करना उचित है। द्वितीय सोपान

अयोध्याकाण्डमें अयोध्यासे सम्बन्धित घटनाओं एवं कार्योंकी विवेचना है। तृतीय सोपान अरण्यकाण्डमें श्रीरामकी वन-लीलाओंका वर्णन है। चतुर्थ सोपानको किष्किन्धाकाण्ड कहना भी उचित है, कारण कि यहाँ ऋष्यमूक पर्वत एवं किष्किन्धाकी घटनाओंकी विवेचना है। पञ्चम सोपानको सुन्दरकाण्ड कहना वाल्मीकि[1] की अनुकृतिके अनुसार ही प्रतीत होता है अन्यथा विशेष सुन्दरकी विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती। किसीका कथन है—

सुन्दरे सुन्दरो रामो सुन्दरे सुन्दरी कथा।
सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किं न सुन्दरम्॥

मानसके इस सोपानमें श्रीरामका वर्णन तो संक्षिप्त ही है, केवल उनके युद्धके उद्यमकी विवेचना है। वस्तुतः इस सोपानमें पवन-तनयके पराक्रमका वर्णन है, अतः यह सोपान श्रीरामके लीला-वर्णनको नहीं, अपितु उनके अनन्य दुलारे भक्त आंजनेयके शौर्य, पराक्रम एवं वीरताका वर्णन करता है। अन्तमें श्रीरामके औदार्य एवं विभीषण शरणागतिका भी वर्णन है; किन्तु इसी आधारपर तो यह सुन्दर नहीं कहा जा सकता क्योंकि श्रीरामका औदार्य तो मानसमें पग-पगपर परिलक्षित है। श्रीराम एवं सीताके सौन्दर्यका प्रतिपादन भी इसमें नहीं है। उनके सौन्दर्य माधुर्यकी चर्चा तो बालकाण्डमें आ चुकी है। यहाँ श्रीसीताकी निष्ठा एवं उनके असीम दुःखका प्रतिपादन अवश्य है।

जहाँ तक कथाके सुन्दर होनेकी बात है तो इसमें 'लंका-दहन' ही उल्लेखनीय है, अतः काव्यकी दृष्टिसे या रस-परिपाककी दृष्टिसे यह तो पाठक एवं आलोचककी दृष्टिपर है कि वह सुन्दर कहे या नहीं। रस

---

१. सुन्दरे सुन्दरो सीतामक्षतां मारुतेर्मुखात।
श्रुत्वा हृष्टस्तथैवास्तु स रामः सततं हृदि॥

—वाल्मीकीय रामायण, सुन्दरकाण्ड समाप्ति वन्दना

मनोभिरामं नयनाभिरामं श्रोत्राभिरामं वचसोऽभिरामम्।
एवं सदा सर्वगतोऽभिरामं वन्दे सदा दाशरथि च रामम्॥

—वाल्मीकीय रामायण, सुन्दरकाण्ड समाप्ति वन्दना

तो वीभत्स और अद्‌भुत भी कहा जाता है। इसके प्रेमी तो अवश्य सुन्दर कहेंगे ही।

षष्ठ सोपान लंकाकाण्ड अपने नामके सर्वथा अनुकूल है। यद्यपि इसे अन्य रामायणोंमें युद्धकाण्डसे अभिहित किया गया है। 'सप्तम सोपान' का नाम उत्तर भी सार्थक एवं उपयुक्त है, क्योंकि उत्तरका अभिप्राय ही है—पीछेकी घटनाओंकी विवेचना। तुलसीने 'मानस' में 'वाल्मीकि-रामायण' के जिन उपाख्यानोंको चित्रित किया है, उनमें किसी न किसी सिद्धान्तका निरूपण निहित है। प्रमुख घटनाओंका क्रम इस प्रकार है :—रामागमनके पूर्व हनुमानका भरतसे मिलना, रामका अभिवादन, रामका राज्याभिषेक, अंगद-राम संवाद। तत्पश्चात् तुलसीने रामराज्यके वर्णन एवं उपसंहारके प्रकरणमें अनेक संवाद दिये हैं। राम-सनकादिके मिलन प्रसंगमें सत्संग महिमा, राम-भरत वार्ताके अन्तर्गत सन्त-असन्त वर्णन, खल प्रकृतिका विश्लेषण, पुरवासी (राम) गीतामें राजारामकी इह-लौकिक और आयुष्मिक श्रेयस्कारिणी शिक्षाका उल्लेख। वशिष्ठ-राम संवादमें भी भक्तिकी प्रखरता वर्णित है। नारद द्वारा प्रस्तुत शीतल अमराईमें स्थित रामकी झाँकी उनकी जं वन-गाथाका उपसंहार है। इसके आगे शंकर-पार्वती संवाद और शंकर-गरुड़-भुशुण्डि-संवाद है। अन्तमें रामकथाका माहात्म्य है। अतः स्पष्ट है कि मानसके उत्तरकाण्ड एवं रामायणके उत्तरकाण्डमें बहुत कम साम्य है। कारण स्पष्ट है, वाल्मीकि-रामायण आख्यान-प्रधान है और मानस उद्‌देश्य प्रधान।

अतः सोपानोंका नामकरण घटना विशेषके आधारपर उपयुक्त एवं सार्थक है।

मानसकारकी रुचि ही सारग्रहिणी है। वस्तुतः तुलसीने 'मानस' में 'वाल्मीकि-रामायण, 'अध्यात्म-रामायण', 'श्रीमद्‌भागवत', प्रसन्नराघव' और हनुमन्नाटकसे अधिक सहायता ली है। श्रीमद्‌भागवतके तो अनेकानेक श्लोकोंको चुन-चुनकर उनका रूपान्तर करके 'मानस' में संजोया है।

डा० बलदेवप्रसाद मिश्रने मानसके आधार ग्रन्थोंके सम्बन्धमें बताया कि मूल कथा ली गयी है—वाल्मीक-रामायणसे, संवाद एवं विवेचनकी शैली ली गयी है—भक्तिपरक अध्यात्म-रामायणसे, भाव-प्रवणता और आकर्षणके कुछ तथ्य लिये हैं धार्मिक एवं ललित साहित्यसे। इसलिये

गोस्वामीका कवि-रूप 'नानापुराणसम्मतं यत्' के पश्चात् भी कह उठा 'रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि'।

मानसका महाकाव्यत्व

तुलसी-भक्तमालके सुमेरु हैं और उनका 'मानस' हिन्दी काव्य-मालाका सुमेरु। यही एक ऐसा अनूठा महाकाव्य है जिसमें भक्तिकी भूमिपर इतिहास, पुराण, धर्म-शास्त्र, कथाकाव्य, चरितकाव्य और लोक-काव्यका अद्भुत समन्वय किया गया है। उसका प्रतिपाद्य विषय पुरातन होते हुए भी नित्य-नवीनताकी कमनीय कान्तिसे युक्त है। उसमें कवित्व, शिवत्व और मोक्ष-तत्वकी अलौकिक त्रिवेणी है। प्रस्तुत प्रकरणमें महाकाव्यकी दृष्टिसे काव्य रूपकी संक्षिप्त आलोचना अभीष्ट है।

महाकाव्यकी जो भी प्रतिष्ठित परिभाषाएँ हैं, उनके निष्कर्षपर रामचरितमानस खरा उतरता है। उसमें भावोंकी मार्मिक व्यञ्जना है, हृदय-संवादी रसप्रवाह है, ध्वनि-चमत्कारकी अतिशयता है। गुणों एवं अलंकारोंका उत्कृष्ट सन्निवेश है, वैदिग्ध-मण्डित उक्तियोंकी मनोहर भंगिमा है, औचित्यका अधिकतम निर्वाह है, अन्तर्वृत्तियों और बाह्य-रूपोंकी सुन्दर बिम्ब-योजना है, शब्द और अर्थका रमणीय समन्वय है, कवि कल्पनाका अनन्त ऐश्वर्य है।

प्रगतिशील परम्परावादी तुलसीने काव्य-शास्त्रीय लक्षणनिरूपण[1] के आधारपर रूढ़िपालन भी किया है और स्वच्छन्दतासे भी काम लिया है—

सर्गबन्ध—महाकाव्य सर्गबन्ध रचना है। मानस काण्डों अथवा सोपानोंमें विभक्त है। 'मानस-रूपक' के कारण तुलसीने काण्डोंको सोपान कहा है।

कथावस्तु—महाकाव्यका वृत्त ऐतिहासिक अथवा प्रख्यात होना चाहिये। मानसकी कथावस्तु इतिहास-पुराणों, काव्यों, नाटकों आदिमें

---

१. भामह—काव्यालंकार, १. १९-२३, दण्डी—काव्यादर्श, १.१४-२२, रुद्रट—काव्यालंकार, १६, ४-१९, विश्वनाथ—साहित्य-दर्पण, ६. ३१५-२७।

प्रचुरतासे वर्णित है। मानसमें रामकथाका विशद् वर्णन है, कहीं व्यास-शैलीमें, और कहीं समास रूपमें[1]। तुलसीने इसे अपने ढंगसे संजोया है।

सन्धि-विधानका लक्ष्य कथानकको सुगठित बनाता है, परन्तु उसकी योजना वहीं सम्भव है जहाँ इतिवृत्त बहुत विस्तृत न हो। मानसके अति-व्यापक आयाममें उसका निर्वाह असाध्य है।

नायक—उच्चकुलमें उत्पन्न मानव या देवता महाकाव्यका नायक हो सकता है। चार प्रकारके नायकोंमें धीरोदत्त ही महाकाव्यके योग हैं। धीरोदत्त नायक श्रीराममें सभी सामान्य और विशिष्ट गुण विद्यमान हैं। तुलसीने 'हंस-बंश-अवतंस' और 'रघुकुल-भूषण राम' को नायक बनाकर एकान्वितिका विशेष निर्वाह किया है। वे नर-रूप परमब्रह्म हैं। उपलब्ध महाकाव्योंके आधारपर संस्कृतके काव्यशास्त्री इस प्रकारके नायककी कल्पना नहीं कर सकते थे।

प्रतिनायक भी महाकाव्यका महत्वपूर्ण पात्र है। मानसका रावण विश्वविजयी और उत्साह आदि गुणोंसे सम्पन्न है। उसके शीलमें कमी है, इसलिए वह विजेतव्य है।

रस—महकाव्यमें सभी रसोंकी और अंगी रसके रूपमें श्रृंगार, वीर अथवा शान्तकी निबन्धना की जानी चाहिए। मानसमें शास्त्र सम्मत दसों रसों श्रृंगार, वीर, शान्त, वात्सल्य, हास्य, करुण, अद्भुत, रौद्र, भयानक और वीभत्सकी न्यूनाधिक व्यञ्जना हुई है[2] उसका अंगीरस भक्तिरस है।

---

१. श्रीरामचरितमानस, १।३३. १-३, ७।१२५. १।

२. श्रीरामचरितमानसमें क्रमशः उदारहरण—१।३२४. ६ (श्रृङ्गार), ३।२९.७ (विप्रलम्भ), ३।१८. ६-१२ (वीर), १।१९२. (शान्त), १।२०३.८ (वात्सल्य), १।९२ (हास्य), २।१४३. ४-६ (करुण), १।२००.७ (अद्भुत), १।२५१. ८ (रौद्र), ६।१००.१६ (भयानक), ६।८७. ५ (वीभत्स)।

जीवन, संस्कृति एवं प्रकृति–महाकाव्यमें व्यापक जीवन, मानव संस्कृति और प्रकृतिके विभिन्न रूपोंका चित्रण अपेक्षित है। मानसमें बाल्य, यौवन, उल्लास, विषाद आदि विभिन्न जीवन दशाओं, यज्ञ, नामकरण, विवाह आदि संस्कारों, नगर, बारात, मण्डप आदि वस्तुओं, यात्रा. युद्ध आदि व्यापारों, और ऋतुओं, प्रभात-संध्या, दिन-रात, वन-पर्वत आदि प्राकृतिक विषयोंका यथेष्ट वर्णन है। उसमें अन्तर्जगत् और बाह्यजगत्की नाना परिस्थितियोंका काव्योचित चित्रांकन है।

रचना शैली—महाकाव्यमें कम-से-कम आठ सर्ग होने चाहिये, न अति संक्षिप्त, न अति विस्तृत। मानसमें इस नियमका पालन नहीं है—

१. मानसमें सात सोपान हैं। प्रथम, द्वितीय सोपान विस्तृत, तृतीय, चतुर्थ पञ्चम अपेक्षाकृत छोटे, शेष दो सामान्य।

२. सर्गके अन्तमें छन्द-परिवर्तन एवं आगामी वस्तुका निर्देश होना चाहिये। मानसके प्रत्येक सोपानकी अन्तिम चौपाइयोंके पश्चात् नियमतः 'छन्द' की योजना है। वस्तु-निर्देश उपेक्षित है। इसके उद्देश्यकी पूर्ति दूसरे ढङ्गसे है। तुलसीने परवर्ती सोपानके आरम्भमें पूर्ववर्ती सोपानकी कथाके सूत्रको मिलाया है।

३. आरम्भमें मंगलाचरण, प्रतिज्ञावचन, सुजन-प्रशंसा, दुर्जन-निन्दा प्रयोजन आदि वांछित है। मानसमें इन सबकी निबन्धना हुई।

४. भावोत्कर्षके लिए अलकारोंका सन्निवेश आवश्यक है। 'मानस' आद्योपान्त अलंकृत शैलीमें है।

५. नायकका अभ्युदय दिखाया जाना चाहिये। तदनुरूप 'मानस' में रावण-वधके पश्चात् रामराज्यका विशद् वर्णन है।

प्रयोजन—काव्यमात्रका प्रयोजन चतुर्वर्ग-प्राप्ति है। यह स्वयं सिद्ध है कि वही महाकाव्यका भी फल है। 'मानस' भक्ति-रसका काव्य है। अतः कवि और भावुक दोनोंके केन्द्र-बिन्दुसे उसका प्रयोजन अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंसे भी महत्तर परम पुरुषार्थ-रूपा भक्तिकी प्राप्ति है। भक्ति स्वयं रस है।

सभी दृष्टियोंसे 'रामचरितमानस' उत्कृष्ट कोटिका महाकाव्य है। उसका लक्ष्य महान है। वह ब्रह्मानन्दमयी भक्ति और ब्रह्मानन्द-सहोदर रस दोनोंका निष्पादक है। उसमें व्यावहारिक, पारमार्थिक सत्यका सुन्दर एवं मंगलविधायी निरूपण है।

परम्परानिष्ठ, धर्मप्राण और लालित्य-प्रेमी भारतवर्षका वाङ्मय विभिन्न प्रकारकी निष्पन्न कृतियोंसे सुसम्पन्न है। 'श्रीरामचरितमानस' उन सबसे अनूठा है। यह हिन्दी भाषी जनताका धर्मशास्त्र है, भक्ति दर्शन है, इतिहास-पुराण है और साहित्यिक दृष्टिसे हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है।

अध्याय–४

श्रीमद्भागवतका छन्द-विधान

छन्दयुक्त काव्यसे जो संगीतात्मकता और प्रवाहशीलता उत्पन्न होती है, वह न केवल श्रवणीयता तथा मोहकताकी ही वृद्धि करती है, अपितु प्रभावोत्पादन और भावग्रहणमें भी सहायक होती है। विभिन्न प्रकारकी भावाभिव्यक्ति तथा रसोंकी प्रभावोत्पादकता अनुकूल छन्दोंके माध्यमसे ही उत्तम रूपसे सम्पन्न होती है। वह सब प्रतिकूल छन्दके प्रयोगसे सम्भव नहीं। इसका सबसे अपरिहार्य वैशिष्ट्य है कि वह स्मृति-पथमें अक्षुण्य बना रहता है।

छन्द शब्द 'छद्' धातुसे व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है—प्रसन्न करना, आच्छादन करना और बांधना।

'छादयन्ति द्वा एवं छन्दांसि' —ऐतरेय, १. ६. १

आचार्य वास्कने भी 'निरुक्त' में लिखा है—

'छन्दांसि छादनात्'[1]

गणोंका महत्व—

हमारे यहाँ छन्दोंका स्वरूप स्पष्ट करनेके लिए गण-विचार किया गया है। वर्ण वृत्तोंमें तीन-तीन वर्णोंका एक-एक गण मान लिया गया है। इनमें लघु (।) और गुरु (ऽ) के भेदसे गण आठ भागोंमें विभक्त कर दिये गये हैं। इनमें चार शुभ और चार अशुभ गण हैं।

शुभाशुभके अनुसार इनके देवता, फल और संज्ञाका भी निर्देश कर दिया गया है। काव्यके प्रारम्भमें जो गण हों उसका फल गणके अनुरूप

---

१. निरुक्त, दैवतकाण्ड-७. १२

होता है। एतदर्थ कालिदासके श्रुतबोध[1] के अनुसार काव्य रचयिता फलकी दृष्टिसे अपने काव्यमें मङ्गलाचरणकी सर्जना करते थे।

वर्णवृत्त छन्दों एवं देवकाव्यमें अशुभ गण दोषप्रद नहीं माने गये हैं। यथा—दोषौ गणानां शुभ देव्यवाच्ये न स्यात्तथैवाक्षरवृत्तसंज्ञे। मात्रोत्थपद्ये-तुविचारणीयो न्यासाद् गुरोश्चैव लघोरनित्यात् ('छन्द प्रभाकर')

'सुवृत्त-तिलक' कारका मत है कि प्रत्येक छन्द प्रत्येक भावके अनुकूल नहीं होता। कोई भी छन्द तभी फबेगा जबकि उसका प्रयोग भावानुकूल होगा, उदाहरणार्थ 'अनुष्टुप' छन्दका प्रयोग 'कथा-विस्तार' एवं शान्ति उपदेशके लिए उत्तम माना गया है। (क्षेमेन्द्र—सुवृत्त-तिलक-३.१६) इसी प्रकार उत्साह और शौर्य प्रदर्शनके लिए शार्दूल विक्रीड़ित छन्द उपयुक्त माना गया है। (क्षेमेन्द्र—सुवृत्त-तिलक-३.२२) श्रीमद्भागवत में आद्योपरान्त अनुष्टुप शैलीका तो प्राधान्य ही है।

श्रीमद्भागवतकी अनुष्टुप-शैली एवं छन्द-विधान

अनुष्टुप छन्द संस्कृतका प्रथम छन्द है, जो आदिकवि वाल्मीकिके मुखसे निःसृत है। इससे पूर्व मंत्र संहिता एवं आरण्यकोंमें वैदिक छन्दोंका प्रयोग हुआ है। इतिहास (वाल्मीकीय रामायण और महाभारत) अनुष्टुप छन्दमें ही है। स्मृतियाँ भी इसी छन्दमें हैं। सभी पुराणोंकी रचनाका प्रधान छन्द अनुष्टुप है, यद्यपि इन सब ग्रन्थोंमें कुछ दूसरे छन्दोंका भी प्रयोग हुआ है।

श्रीमद्भागवतके कुछ स्थलोंपर गद्यका प्रयोग है। ऐसे स्थानोंपर हैं, जहाँ विशेष भावकी अभिव्यक्तिके लिए सशक्त गद्य आवश्यक है अथवा वर्णन विवरणात्मक है—जैसे भूगोल, खगोल आदि।

अनुष्टुप छन्द प्रबन्ध-वर्णनके लिए सबसे उपयुक्त होनेके कारण श्रीमद्भागवतमें सभी वर्णनात्मक प्रसंग इसी छन्दमें हैं। श्रीमद्भागवतमें

---

१. यो भूमिः श्रियमातनोति यो जलं वृद्धिश्चाग्निर्मृतिम्।
सो वायुः परदेशदूरगमनं तद्व्योम शून्यं फलम्॥
यः सूर्यो रुजमादराति विपुलं योन्दुर्यशो निर्मलम्॥
नो नाकश्च सुखप्रदः फलमिदं प्राहुर्गणानां बुधाः॥

कालिदास, श्रुत बोध

कुल ३२ प्रकारके छन्द हैं। अनुष्टुपके अतिरिक्त दूसरे छन्द जहाँ भी आये हैं, निम्नलिखित कारणोंसे आये हैं—

(क) **स्तवनके लिए**—स्तुति भाव-प्रधान होती है। भावनाका प्रवाह छ द विशेषमें ही चरम माधुर्यके साथ प्रकट होता है। उदाहरणके लिए शुक-स्तुति, (भा.,१।१९ ३२-३३) ब्रह्माकी स्तुति (भा. १०।१४.१-४०) का छन्द-विधान।

(ख) **गीतोंके लिए**—स्पष्ट ही है कि गीत हृदयके भावुक सुकुमार अन्तस्तलसे उमड़े हुए उद्‌गार हैं। गीतमें कोमलतम भावनाओंका स्वर माधुर्य अधिक प्रकट होनेके लिए विशेष छन्दोंका विधान है, जिससे संगीतात्मकता स्वतः आ गयी है, जैसे—'वेणुगीत,' (भा., १०.२१.१-२०) 'गोपीगीत'। (भा., १० ३१.१-१९)

(ग) **किसी विशेष भावको मूर्त्त करनेके लिए**—प्रभावोत्पादकता शब्द योजनापर आश्रित है। विशेष भावोंकी भव्यता, उच्चता मुखरित हो उठती है छन्द-विधानसे। उदाहरणके लिए युद्धादिका वर्णन मूर्त्त हो उठता है। (भा., ३.१९.९-१०)

(घ) **संक्षिप्तीकरण**—बड़े छन्दोंमें यह सरलतासे किया जा सकता है। 'दशविधिलीला' को कितना संक्षिप्त किया गया है। (भा., १०.३.४०)

(ङ) **वर्ण्य विषयको अलंकृत करनेके लिए**—प्राकृतिक सौन्दर्य, बैकुण्ठ आदिके विवेचनको अलंकृत करनेवाले भी छन्द हैं। (भा., ३.१५.१६-२२)

श्रीमद्‌भागवतमें और दूसरे पुराणोंमें भी छन्दोंके सम्बन्धमें अलंकार-ग्रन्थोंमें जो नियम बनाये हैं, उनको मानकर चलनेकी परिपाटी नहीं है। इसीलिये पुराणों एवं श्रीमद्‌भागवतमें भी प्रचलित नियमोंसे भिन्न ढंगके छन्द पाये जाते हैं। इन वृत्तोंके सम्बन्धमें आचार्य 'शेषेगाथा' कहकर काम चलाते हैं।

श्रीमद्‌भागवतमें कुछ छन्द तो ऐसे हैं जो बहुत प्रसिद्ध हैं, और कुछ ऐसे हैं जो किसी काव्यमें देखनेमें नहीं आते, जैसे 'राजहंसिका', 'नर्कुटक'। 'राजहंसिका' को हिन्दीमें मैथिलीशरण गुप्तने 'साकेत' में अपनाया है। इसपर आलोचकोंने आक्षेप भी किया है। इसके प्रत्युत्तरमें श्रीगुप्तने यह भी लिखा है कि आलोचक उस छन्दपर आक्षेप कर रहे हैं जिसमें भागवतकार 'गोपी-गीत' गाते हैं।

जो छन्द श्रीमद्भागवतमें, काव्योंमें प्रचलित ढंगके हैं, उनमें भी अनेक मिश्रित हैं। एक छन्दमें कई छन्दोंके लक्षण अलग-अलग चरणोंमें पाये जाते हैं।

प्रचलित छन्दोंके लक्षण मानसके छन्दोंके साथ दिये जा रहे हैं। अतः उनका विवरण यहाँ देनेकी आवश्यकता नहीं है। यहाँ छन्दोंका केवल नाम-निर्देश किया जा रहा है। अप्रचलित छन्दोंकी तो अलंकार ग्रन्थोंमें चर्चा ही नहीं है।

१. शार्दूल विक्रीडित—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥

भा. १-१-१

प्रारम्भमें शार्दूल विक्रीडितका होना, एक तो मगणसे प्रारम्भ होनेके कारण मङ्गलार्थक है। दूसरे जीवोंके पापरूप मत्तगजेन्द्रोंके लिए श्रीमद्-भागवत शार्दूल-विक्रीडित है, इसकी सूचना करता है।

यद्यपि 'ज' दग्धाक्षर है और उसीसे ग्रन्थ प्रारम्भ हो रहा है, किन्तु ग्रन्थ मोक्षपरक होनेसे यह मायाको दग्ध करनेमें समर्थ है अतः दग्धाक्षर यहाँ दूषण नहीं, अपितु भूषण हैं।

२. द्रुत-विलम्बित--

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥

भा. १.१.३

३. अनुष्टुप--

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः।
सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत॥ भा. १.१.४

४. भुजङ्गप्रयात--

अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः।
तृषार्तोऽवगाढो न सस्मार दावं न निष्क्रामति ब्रह्मसम्पन्नवन्नः॥

भा., ४-७.३५

५ इन्द्रवज्रा--

तन्नः परं पुण्यमसंवृतार्थमाख्यानमत्यद्भुतयोगनिष्ठम्।
आख्याह्यनन्ताचरितोपपन्नं पारीक्षितं भागवताभिरामम्॥

भा., १.१८-१७

६. उपेन्द्रवज्रा--

स वै भवान् वेद समस्तगुह्यमुपासितो यत्पुरुषः पुराणः।
परावरेशो मनसैव विश्वं सृजत्यवत्यत्ति गुणैरसङ्गः॥

भा., १.५-६

७. वंशस्थ—

नमन्ति यत्पादनिकेतमात्मनः शिवाय हानीय धनानि शत्रवः।
कथं स वीरः श्रियमङ्ग दुस्त्यजां युवैषतोत्सृष्टमहो सहासुभिः॥

भा., १.४.११

८, वसन्ततिलका—

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि॥

भा., १.२-२

९. स्वागता—

वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम्।
कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः॥

भा., १०.३५.२

१०. मालिनी—

तव वरद वराङ्घ्रावाशिषेहाखिलार्थे ह्यपि मुनिभिरसक्तैरादरेणार्हणीये।
यदि रचितधियं माविद्यलोकोऽपविद्धं जपति न गणये तत्त्वत्परानुग्रहेण॥

भा., ४. ७.२८

११. मन्द्राक्रान्ता—

उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्र-
व्यालान्विष्टे विषयमृगतृष्यात्मगेहोरुभारः।

द्वन्द्वश्वभ्रे खलमृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थः
पादौकस्ते शरणद कदा याति कामोपसृष्टः ।। भा., ४।७ २८

१२. शिखरिणी

पुरा कल्पापाये स्वकृतमुदरीकृत्य विकृतं
त्वमेवाद्यस्तस्मिन् सलिल उरगेन्द्राधिशयने ।
पुमान् शेषे सिद्धैर्हृदि विमृशिताध्यात्मपदविः
स एवाद्याक्ष्णोर्यः पथि चरसि भृत्यानवसि नः ।। भा. ४.७ ४२

१३. स्रग्धरा –

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् ।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषाऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः ।।
भा , ९।१०.४

१४. इन्द्रवंशा—

नामान्यनन्तस्य हतत्रपः पठन् गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरन् ।
गां पर्यटंस्तुष्टमना गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन् विमदो विमत्सरः ।।
भा., १.६.२७

१५. आर्या—

अजित जितः सममतिभिः साधुभिर्भवान् जितात्मभिर्भवता ।
विजितास्तेऽपि च भजतामकामात्मनां य आत्मदोऽतिकरुणः ।।
भा., ६.१६.३४

यद्यपि इसमें सम्पूर्ण लक्षणोंका समावेश नहीं है, किन्तु यह आर्याकी ही उपजाति है ।

श्रीमद्भागवतमें मिश्रित छन्द-विधान

श्रीमद्भागवतमें कुछ छन्द मिश्रित हैं, इनमें एक या दो छन्दोंके चरण सम्मिलित हैं--

१६ उपजाति (इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा)

तदा शुचस्ते प्रमृजामि भद्रे यद्ब्रह्मबन्धोः शिर आततायिनः ।
गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैरुपाहरे त्वाऽऽ क्रम्य यत्स्नास्यसि दग्धपुत्राः ।।
भा. १.७.१६

इसमें इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्राके चरण सम्मिलित हैं।

१७. वंशस्थेन्द्रवंशा—

शिवाय लोकस्य भवाय भूतये य उत्तमश्लोकपरायणा जनाः।
जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रयं मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम्॥

भा. १.४-१२

इसमें वंशस्थ है, इन्द्रवज्रा है, पुनः वंशस्थ हैं।

१८. इन्द्रवज्रा-वंशस्थ—

पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना।
परितुष्यति शारीरं आत्मा मानस एव वा॥ भा. १.५.२

१९. इन्द्रवज्रोपेन्द्रवजेन्द्रवंश—

तदा शुचस्ते प्रमृजामि भद्रे यद्ब्रह्मबन्धोः शिर आततायिनः।
गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैरुपाहरे त्वाऽऽ क्रम्य यत्स्नास्यसि दग्धपुत्रा॥

भा. १ ७.१६

इसमें इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा और वंशस्थके समन्वित चरण हैं।

अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ पादौ यदीसा वुपजातयस्ताः। एवं
किलान्यास्वपि मिश्रितासु स्मरन्ति जातिष्विदमेवनाम्॥

इसके अनुसार ये दो-दो, तीन-तीन छन्दोंके चरणोंके श्लोक हैं। इन छन्दोंके अतिरिक्त अप्रचलित छन्द भी हैं—

अप्रचलित छन्द-विधान

२०. प्रमाणिका—

एतावद्वर्णितगुणो भक्त्या भक्तेन निर्गुणः।
प्रह्लादं प्रणतं प्रीतो यतमन्युरभाषत॥ भा. ७.९-५१

२१. शालिनी—

एवं राजा विदुरेणानुजेन प्रज्ञाचक्षुर्बोधित आजमीढः।
छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान्दृढिम्नो निश्चक्राम भ्रातृसदर्शिताध्वा॥

भा. १ १३.२८

२२. वातोर्मी—

दृष्टः किं नो दृग्भिरसग्रहैस्त्वं प्रत्यग्द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यम् ।
माया ह्येषा भवदीया हि भूमन् यस्त्वं षष्ठः पञ्चभिर्भासि भूतैः ॥

(भा., ४।७. ३७)

२३. राजहंसिका या ललित—

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥

(भा., १०।३१. १)

'जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः' इसको राजहंसी, राजहंसिका अथवा ललित भी कहते हैं। इसमें कई प्रकारकी विशेषताएँ हैं।

(क) द्वितीय अक्षर चारों चरणोंमें एक-सा है, जैसे जय १. श्रय २. दयि ३. त्वयि ४। (ख) पहिला अक्षर और सातवां अक्षर चारों चरणोंमें एक-सा है। जैसे जयतिका और ज जन्मनाका ज और (ग) इसमें विराम, एक तो छठे अक्षरपर है, दूसरा ग्यारहवें अक्षरपर है। इसका उच्चारण पहिले अक्षरसे ग्यारहवें अक्षर तक कर लिया जाय, तब भी छन्द-भंग नहीं होता और सातवें अक्षरसे ग्यारहवें अक्षर तक करके फिर पहले अक्षरसे छठे अक्षर तक उच्चारण किया जाय, तब भी छन्द-भंग न होगा, यति-भंग भी न होगा। जैसे 'जयति तेऽधिकम् जन्मना व्रजः' जन्मना व्रजो जयति तेऽधिकम् इत्यादि और यह अनेक राग-रागिनियोंमें गाया भी जा सकता है।

२४. स्तावि णी—

स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः श्रीनिवासश्रियाकान्तया त्राहि नः ।
त्वामृतेऽधीश नाङ्गैर्मखः शोभते शीर्षहीनः कबन्धो यथा पूरुषः ॥

(भा., ४।७. ३६)

२५. रुचिरा—

पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु सम्भृतम् ।
पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम् ॥

(भा., २।२. ३७)

२६. प्रहर्षिणी—

यज्ञोऽयं तव यजनाय केन सृष्टो विध्वस्तः पशुपतिनाद्य दक्षकोपात् ।
तं नस्त्वं शवशयनाभशान्तमेधं यज्ञात्मन्नलिनरुचा दृशा पुनीहि ॥

(भा., ४।७.३३)

२७. मंजुभाषिणी—

जगदुद्भवस्थितिलयेषु दैवतो बहुभिद्यमानगुणयाऽऽत्ममायया ।
रचितात्मभेदमतये स्वसंस्थया विनिवर्तितभ्रमगुणात्मने नमः ॥

(भा., ४।७. ३९)

२८. मत्तमयूर—

अंशांशास्ते देव मरीच्यादय एते ब्रह्मेन्द्राद्या देवगणा रुद्रपुरोगाः ।
क्रीडाभाण्डं विश्वमिदं यस्य विभूमन् तस्मै नित्यं नाथ नमस्ते करवाम ॥

(भा., ४।७. ४३)

२९. नर्कुटक—

जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः ।
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते
क्वचिदजयाऽऽत्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥

(भा., १०।८७. १४)

३०. वैतालीय—

प्रियरावपदानि भाषसे मृतसञ्जीविकयानया गिरा ।
करवाणि किमद्य ते प्रियं वद मे वल्गितकण्ठ कोकिल ॥

(भा., १०।९०. २१

३१. औपच्छन्दसिक—

इदमप्यच्युत विश्वभावनं वपुरानन्दकरं मनोदृशाम् ।
सुरविद्विट्क्षपणैरुदायुधैर्भुजदण्डैरुपपन्नमष्टभिः ॥

भा., ४।७. ३२)

३२. पुष्पिताग्रा—

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि ।
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥

(भा., १।९. ३२)

प्रसङ्गोपयुक्त छन्द-विधान

(१) **स्तवनात्मक**—

स्तवनात्मक छन्द दो प्रकारके होते हैं–

(क) गाम्भीर्यपूर्ण (ख) भावपूर्ण।

गाम्भीर्यपूर्ण छन्दका सबसे उत्तम उदाहरण 'वेदस्तुति' है, जिसमें श्रुतियोंके तात्पर्य, रूप, निर्गुण-सगुण परम ब्रह्मतत्वका प्रतिपादन है, इसलिये यह नर्कुटक छन्दमें वर्णित हुआ है—

'जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः।
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते
क्वचिदजयाऽऽत्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः॥'

(भा., १०।८७. १४

भावपूर्ण स्तुतिमें कुन्तीकी परायणता द्रष्टव्य है—

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम्॥

(भा., १।८. ३६)

(२) **गीतात्मक**—श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें तीन गीत प्रसिद्ध हैं, जिनमें दोको 'गीत' और एकको 'युगलगीत' कहा जाता है। 'युगल-गीत' इसलिए कहा जाता है कि इसमें दो-दो श्लोकोंका अन्वय एक साथ होता है। प्रथम 'गोपी-गीत' पूर्व रागका है, द्वितीय वियोगात्मक है। वस्तुतः द्वितीयको ही 'गोपी-गीत' कहते हैं, यह बहुत ही प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय है। इसका छन्द 'राजहंसिका' या ललित भी कहा जाता है। छन्दके विवरणमें इसकी विशेषता द्रष्टव्य है–

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥

(भा., १०।३१.१)

(३) **संक्षिप्तीकरण**—

'भागवतकारने विस्तृत वर्णनको संक्षिप्त करनेके लिए विशेष छन्दोंका विधान किया है। श्रीकृष्णकी पटरानियाँ द्रौपदीको अपने-अपने विवाहका

विवरण सुना रही हैं। एक ही श्लोकमें सम्पूर्ण 'रुक्मिणी-विवाह प्रसंग' समाविष्ट हो गया है। रुक्मिणी-कथन—

चैद्याय मार्पयितुमुद्यतकार्मुकेषु राजस्वजेयभटशेखरिताङ्घ्रिरेणुः।
निन्ये मृगेन्द्र इव भागमजावियूथात् तच्छीनिकेतचरणोऽस्तुममार्चनाय॥

(भा., १०. ८३ ८)

(४) विशेष भावको मूर्त्त करनेके लिए—

छन्दकी गति विशेष भाव, क्रियाका बिम्ब प्रस्तुत करनेमें पूर्ण समर्थ है। प्रलम्बासुर बलरामको आकाशमें उड़ाकर ले जा रहा है। बिजलीसे संयुक्त काले बादलके सदृश असुरकी उड़ान छन्दमें मूर्त्त हो उठी है—

तमुद्वहन् धरणिधरेन्द्रगौरवं महासुरो विगतरयो निजं वपुः।
स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ तडिद्युमानुडुपतिवाडिवाम्बुदः॥

(भा., १०. १८. २६)

(५) वर्ण्य-विषयको अलंकृत करनेके लिए—

श्रीकृष्णके शंखध्वनिकी बात तो सामान्य है, किन्तु इसका अलंकृत-रूप अवलोकनीय है—

'स उच्चकाशे धवलोदरो दरोऽप्युरुक्रमस्याधरशोणशोणिमा।
दाध्मायमानः करकञ्जसम्पुटे यथाब्जषण्डे कलहंस उत्स्वनः॥

(भा., १. ११. २)

भगवान्‌के होठोंकी लालीसे लाल हुआ वह श्वेत वर्णका शंख बजते समय करकमलोंमें ऐसा शोभायमान हो रहा है जैसे लाल रंगके कमलपर बैठकर कोई राजहंस उच्चस्वरसे मधुर गान कर रहा है।

भागवतकारने ग्रन्थमें अनुष्टुप प्रधान होनेपर भी सभी प्रचलित-अप्रचलित छन्दोंका समावेश किया है। यह प्रसङ्गोपयुक्त छन्द-नियोजना रस, भाव और प्रसंगके अनुकूल तो है ही, साथ ही सम्पूर्ण रचनामें एक सन्तुलन एवं व्यवस्था बनाये रखनेमें पूर्णसमर्थ हैं।

निष्कर्ष—

इस प्रकार हम देखते हैं कि छन्दोंके सकारण वैविध्यका श्रीमद्भागवत-महापुराण एक विलक्षण भाण्डागार है। छन्दोंके ही कारण श्रीमद्भागवतके मार्मिक प्रसङ्ग चिरकालसे गेय बने हुए हैं, जो भावुकोंका चित्ताकर्षण निरन्तर करते चले आ रहे हैं। यथार्थ तो यह है कि छन्दोंके ही कारण हमारे आर्ष ग्रन्थ पुराणादि चिरजीवी रहे हैं, भविष्यमें भी रहेंगे।

अध्याय–४

(ख) श्रीरामचरितमानसका छन्द-विधान

'मानसमें संस्कृत छन्दोंका विधान'

श्रीरामचरितमानसके प्रत्येक सोपानका समारम्भ संस्कृत श्लोकोंसे हुआ है। कविकी इस नव-छन्द-नियोजनामें रुचि-वैचित्र्य एवं काव्य-शास्त्रीय परम्परा दोनोंका ही निर्वाह देखा जा सकता है। बालकाण्डमें संस्कृत श्लोकोंकी संख्या सात, अयोध्याकाण्डमें तीन, अरण्यकाण्डमें दो, किष्किन्धा-काण्डमें दो, लङ्काकाण्डमें तीन एवं उत्तरकाण्डमें तीन है। इस प्रकार काण्डोंके मङ्गलाचरणोंकी संख्या बीस है।

यह कहना किसी भी प्रकार अनुपयुक्त न होगा कि मानसकी श्लोक-रचना आलंकारिकोंके कठोर शास्त्रीय अनुशासनका प्रतिनिधित्व ही नहीं करती और न केवल देवी-देवताओंकी प्रसन्नता सम्पादन मात्रके लिए ही उसका उपयोग हुआ है, अपितु उसके द्वारा कविने अपने आगामी कथा भागकी ओर भी कतिपय महत्वपूर्ण संकेत दिये हैं। उदाहरणके लिए उत्तर-काण्डके श्लोकको लिया जाये तो उसमें पुष्पक-विमानपर आरूढ़ श्रीरामके प्रत्यागमन एवं भरतादि भाइयोंके स्नेहपूर्ण सम्मेलनकी झाँकीका संकेत हमें प्राप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त रामराज्यकी पूर्ण शान्ति एवं समरसताका उद्घाटन करनेवाले कुछ चित्र भी प्रकट हो जाते हैं। (मानस-उत्तरकाण्ड, मंगलाचरण, श्लोक १)। दूसरे श्लोकके अन्तर्गत जब हम एक बार 'जानकीकरसरोज जलालितौ' की समीपतामें आ जाते हैं तब हमें आगामी पृष्ठोंमें 'निजकर गृह परिचर्या करहीं। रामचन्द्र आयसु अनुसरहीं॥' (मानस, ७।२३. ६) के साथ जानकीजीकी पतिपरायणताका सहज स्वरूप जाना-पहिचाना प्रतीत होने लगता है।

श्लोक संसृष्टिकी द्वितीय दिशा है पात्रोंके व्यक्तित्वोद्घाटनकी, उनके शक्ति एवं चरित्रके सम्बन्धमें सूक्ष्म निदेशनकी। उदाहरणके लिए द्वितीय सोपानके अन्तर्गत श्लोक रचनामें शिव-स्तुतिके उपरान्त कथानायकको

लक्ष्य करते हुए जिस शब्दावलीका उपयोग किया है, उससे न केवल उनके वन-गमनका ही संकेत मिलता है, अपितु उनके धीर-गम्भीर, शील एवं चरित्रकी भी एक झलक मिल जाती है। इस झलकसे सम्पर्क स्थापित कर चुकनेके उपरान्त इसी अयोध्याकाण्डमें जब हम कैकेयीकी कठोरताके प्रसंगमें श्रीरामके पक्षसे 'मन मुसुकाहिं भानु कुल भानू। राम सहज आनन्द निधानू॥' (मानस, २।४०. ५) की शब्दावलीका उपयोग करते देखते हैं, तो हमारा यह शील सम्बन्धी पूर्व परिचय और भी अधिक दृढ़ हो जाता है। सच तो यह है कि गोस्वामी तुलसीदासने इन मंगलाचरणात्मक संस्कृत श्लोकों द्वारा पात्रोंके शीलके सम्बन्धमें जो भी थोड़े-बहुत सूक्ष्म संकेत दिये हैं वे अपनी स्थानीय संकुलता और परिमितिमें भी क्षणस्थायी न होकर चिरंतन हैं। यही कारण है कि 'प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः' (मानस, २. मंगलाचरण श्लोक २) के द्वारा ध्वनित होनेवाले श्रीरामके शीलकी साक्षिता 'राम सहज आनंद निधानू' से ही प्रकट नहीं होती, वरन् पूर्ववर्ती बालकाण्डकी 'सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा। हरषु बिषादु न कछु उर आवा' (मानस, १।२५३. ७) हृदय न हरष विषाद कछु बोले श्रीरघुबीर'॥ (मानस, १।२७०) सदृश अनेक पंक्तियोंके द्वारा श्रीरामके अखण्ड सौन्दर्यशील समन्वित स्वरूपकी पुष्टि होती है।

इसी प्रकार मानसके पञ्चम सोपान सुन्दरकाण्डमें श्रीराम-वन्दनाके उपरान्त सांकेतिकरूपमें 'पवनतनय' के शीलोद्घाटनकी ओर प्रवृत्त होते हैं। श्रीआंजनेय (मानस, ५ मंगलाचरण श्लोक ३) के शील सन्दर्भमें भक्ति और शक्तिका जो समन्वित वैशिष्ट्य है वह सहजरूपसे प्रतिबिम्बित हो उठा है।

इस प्रकार मानसान्तर्गत संस्कृत श्लोक काव्यशास्त्रकी बनी परम्पराका अनुधावन नहीं करते और न संस्कृत महाकाव्योंकी परम्परासे अपना सम्बन्ध जोड़कर ही अपना महत्व समाप्त करते हैं, वरन् पात्रोंके शील, भक्ति, औदार्यके साथ आगामी कथाभागकी ओर सूक्ष्म निर्देश देकर अपनी सार्थकता भी प्रयोजित करते हैं।

मानसका हिन्दी छन्द-विधान

श्रीरामचरितमानसके छन्दात्मक संविधानकी ओर दृष्टि-प्रक्षेप करनेपर स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक सोपानका समारम्भ तो संस्कृतके वार्णिक छन्दोंसे

हुआ ही है किन्तु हिन्दीके (लौकिक) प्रचलित दोहा-चौपाई मात्रिक छन्दोंको ही महाकाव्यका कलेवर-विधायक कहा जाये तो कोई अत्युक्ति न होगी। चौपाई छन्दको काव्यकी इतिवृत्तात्मक अभिव्यंजनाके लिए अन्यतम रूप-सा स्वीकार किया जाता है।

श्रीरामचरितमानस तथा पद्मावतक वस्तुपरकी धारामें चौपाई छन्दका जो विधान है वह 'अपभ्रंश' के प्रबन्ध काव्योंकी कडवक-योजनासे पूर्ण प्रभावित है।[1] मानसकारके दोहा-चौपाईवाली मसनवी पद्धति अपनानेके दो प्रमुख कारण प्रतीत होते हैं। प्रथम कारण है कि मसनवी शैली अबधी भाषाके अनुकूल पड़ती है। द्वितीय कारण है—ग्रन्थकी प्रबन्धात्मकताको प्रगतिमय रखने तथा वर्ण्य विषयकी अखण्डता, अबाधताको सम-विषम सभी स्थलोंपर समान रखनेके लिए मसनवी पद्धति सर्वाधिक सुगम सरलतासे स्मरणीय एवं रुचिकर होती है।

कविने अपनेको शास्त्रीय नियमोंसे सर्वथा जकड़कर काव्य रचना नहीं की है, वरन् भावानुकूल शब्द सङ्गीत, प्रवाह-माधुर्य, ध्वनि और लयको भी विशेष महत्व दिया है। यह अनेक राग-रागनियोंमें गेय भी होती है, अतः हिन्दी साहित्यमें परिमार्जित सुबोध शैलीमें मसनवी पद्धतिके आविर्भावका प्रथम और एकमात्र श्रेय तुलसीको ही जाता है। 'मानस' के हिन्दी छन्दोंकी समायोजना तथा उनके सकारण प्रस्तुतीकरणपर विचार करनेसे पूर्व मानसके सभी सोपानोंके प्रारम्भिक संस्कृत मंगलाचरणोंके वार्णिक छन्दोंकी चर्चा करना समीचीन प्रतीत होता है।

समस्त आर्ष उपजीव्य ग्रन्थ अनुष्टुपमें ही लिखे गये हैं। आदिकवि वाल्मीकिके मुखसे निःसृत यह आदि-छन्द[2] है जिसपर सम्पूर्ण रामकथा ही आधारित है। व्यासजीके भागवतमें अनुष्टुपकी प्रधानता है, महाभारतमें अनुष्टुपका प्राधान्य है, प्रायः सभी पुराणोंमें इसी छन्दका प्राधान्य है। अनुष्टुपका महत्व इसलिए भी है कि वह छोटा है, गेय है और रचनामें सरल है।

---

१. हिन्दी महाकाव्यका स्वरूप-विकास—डा० शम्भूनाथसिंह १९५६ पृष्ठ १९३।

२. मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥
—बाल्मीकि रामायण, १।२.१५

बालकाण्डके मंगलाचरणोंके सात श्लोकोंमें प्रथम पाँच अनुष्टुप, एक शार्दूल-विक्रीडित तथा एक उपजातीय (इन्द्रवज्र+उपेन्द्रवज्रा) है।

अनुष्टुप छन्द

तुलसीने रामचरितमानसके बालकाण्डका श्रीगणेश इसी छन्दसे किया है—

श्लोके षष्ठं गुरुर्ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः॥

अर्थात् चारों चरणोंमें आठ-आठ वर्ण होते हैं। प्रत्येक चरणका पाँचवाँ-वर्ण लघु तथा छठा गुरु होता है। दूसरे और चौथे चरणोंमें सप्तम वर्ण लघु और पहिले तीसरेमें सप्तम वर्ण गुरु होते हैं—

वर्णानामर्थसंघानां रसानां छन्दसामपि।
मङ्गलानां च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ॥

इस छन्दका प्रारम्भ मगण (ऽऽऽ) से है, यह शुभ गण है, इसकी संज्ञा देव है। देवता 'भूमि' और फल मंगलश्रीका विस्तार है।

मानसमें इस प्रकारके वृत्तके सात श्लोक हैं—बालकाण्ड-श्लोक १ से ५, लंकाकाण्ड श्लोक-३, उत्तरकाण्ड दोहा १०७ के बाद श्लोक ९ (रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं·····)

२. शार्दूल विक्रीडित—

इस वृत्तके प्रत्येक चरणमें उन्नीस अक्षर, अन्तिम वर्ण गुरु होता है। प्रत्येक चरणका स्वरूप इस प्रकार है मगण (ऽऽऽ) सगण (।।ऽ) जगण (।ऽ।) सगण (।।ऽ) तगण (ऽऽ।) तगण (ऽऽ।), यथा—

'यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः।'

(मानस, १। मं. ६)

गण—इस छन्दका प्रारम्भ मगणसे है। मानसमें इस प्रकारके **१०** वृत्त आये हैं—अयोध्या० मंगलाचरण-श्लोक **१**; अरण्यकाण्ड, मंगलाचरण-श्लोक **१**, २; किष्किन्धाकाण्ड, मंगलाचरण १, २ इत्यादि।

३. वसन्ततिलका—

प्रत्येक चरणमें १४-१४ अक्षर होते हैं, चरणका स्वरूप इस प्रकार है—तगण (ऽऽ।) मगण (ऽ।।) जगण (।ऽऽ) जगण (।ऽ।) और तगण (ऽऽ।)। यथा—

नान्याऽस्पृहा रघुपते हृदये ममदीये सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा ।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ।।

(मानस-५। मं. २)

इस श्लोकका प्रारम्भ तगण (ऽऽ।) से होता है, इस गणका देवता 'आकाश' और फल 'शून्य' है। इस वृत्तमें बालकाण्डके मंगलाचरणका श्लोक ७ भी लिखा गया है।

४. इन्द्रवज्रा—

इस छन्दमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरणमें ११-११ अक्षर होते हैं, इनका स्वरूप है—तगण (ऽऽ।), तगण (ऽऽ।), जगण (।ऽ।), तगण (ऽऽ।) यथा—

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।।

(मानस, २। मं ३.)

इस छन्दका प्रारम्भ तगणसे है, इस प्रकारका एक ही छन्द मानसमें आया है।

५. वंशस्थविलम्—

इसमें चार चरण होते हैं, प्रत्येक चरणमें १२-१२ वृत्त होते हैं, इनका स्वरूप है—जगण (।ऽ।) तगण (ऽऽ।) जगण (।ऽ।) रगण (ऽ।ऽ) यथा—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः ।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा ।।

(मानस, २। म. २)

इस प्रकारका दूसरा छन्द मानसमें नहीं आया है, इसका गण अशुभ है।

६. नगस्वरूपिणी—

इस छन्दमें चार चरण होते हैं—प्रत्येक चरणमें आठ वर्ण होते हैं। एक जगण (।ऽ।) एक रगण (ऽ।ऽ) एक लघु (।) एक गुरु (ऽ)। यथा—

नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं।।
भजामि ते पदांबुजं। अकामिनां स्वधामद।।

(मानस, ३। दोहा ३ के पश्चात्)

अत्रि द्वारा सम्पूर्ण स्तुति इसी वृत्तमें है। उत्तरकाण्डमें भी एक वृत्त है (विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे) प्रस्तुत छन्द प्रयाणगीत (Marching Song) की गतिशीलताको ध्वनित कर रहा है।

७. मालिनी—

इस छन्दमें चार चरण, प्रत्येक चरणमें १५-१५ अक्षर होते हैं। स्वरूप इस प्रकार है :—नगण (।।।) नगण (।।।) मगण (ऽऽऽ) यगण (।ऽऽ) यगण (।ऽऽ) यथा—

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि।।

(मानस, ५। मं. ३)

नगण शुभ गण है, संज्ञा देव है, देवता 'शेष' और फल 'सुखद' है। इस प्रकारका दूसरा छन्द मानसमें नहीं है।

८. स्रग्धरा—

प्रत्येक चरणमें २१-२१ अक्षर होते हैं। चरणका स्वरूप इस प्रकार है—मगण (ऽऽऽ) रगण (ऽ।ऽ) भगण (ऽ।।) नगण (।।।) तीन यगण (।ऽऽ, ।ऽऽ, ।ऽऽ) यथा—

केकीकंठाभनीलं सुरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्नं।

(मानस, ७। मं. १.)

लंकाकाण्डके मङ्गलाचरणका प्रथम श्लोक भी इसी वृत्तमें है। इस श्लोकका प्रारम्भ भी शुभगण (मगण) से हुआ है।

९. तोटक—

इसका प्रत्येक चरण १२-१२ अक्षरोंका होता है चार सगण (।।ऽ) प्रत्येक चरणमें होते हैं। अर्थात् तीसरा, छठा, नवाँ और बारहवाँ वर्ण गुरु होता है। मानसमें केवल दो स्तुतियाँ इस वृत्तमें की गयी हैं। यथा—

जय राम रमारमनं समनं। भवताप भयाकुल पाहि जनं।
अवधेस सुरेस रमेस बिभो। सरनागत मागत पाहि प्रभो॥

(मानस, ७। दोहा १३ के पश्चात्)

लंकाकाण्डमें दोहा ११० के बाद ब्रह्माकी स्तुति 'जय राम सदा सुखधाम हरे' इसी वृत्तमें है।

१०. रथोद्धता—

इसके चारों चरणोंमें ११-११ अक्षर होते हैं, इसका स्वरूप इस प्रकार है—रगण (ऽ।ऽ) नगण (।।।) रगण (ऽ।ऽ) जगण (।ऽ।) यथा—

कोसलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ॥
कुन्दइन्दुदरगौरसुन्दरं अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिदम्।
कारुणीककलकंजलोचनं नौमि शङ्करमनङ्गमोचनम्॥

(मानस, ७। मं २-३)

इस प्रकारका छन्द मानसमें अन्यत्र नहीं है।

११. भुजंगप्रयात—

प्रत्येक चरणमें १२-१२ अक्षर होते हैं। प्रत्येक चरणमें चार यगण (।ऽऽ), (।ऽऽ), (।ऽऽ), (।ऽऽ) होते हैं।

नमामीशमीशान निर्वाणरूपं। विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपम्।
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं। चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहं॥

(मानस, ७। दोहा १०७ के बाद)

इस छन्दका प्रारम्भ यगण (।ऽऽ) से हुआ है, यह शुभगण है। इसका देवता 'जल' फल बुद्धि-शुद्धि है।

इस वृत्तका एकमात्र उदाहरण यही विप्रकृत शिवस्तुति है। वैसे भी शंकरको भुजंग (सर्प) प्रिय है, अतः उन्हें शीघ्र प्रसन्न करनेके लिए यह छन्द सहायक है।

मानसमें मङ्गलाचरणोंके अतिरिक्त भी संस्कृत छन्दोंका प्रयोग है; किन्तु वह छन्द स्तुतिपरक ही हैं, यथा वेदस्तुति—

जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुज बल हने॥

(मानस, ७। दोहा १२ के बाद)

मानसमें मात्रिक छन्दोंका विधान

संस्कृतमें वार्णिक छन्दोंका ही प्राधान्य है। मात्रिक छन्द एकाध ही हैं--जैसे 'आर्या'। मानसमें 'आर्या' छन्द-देखनेमें नहीं आया, अतः आर्ष ग्रन्थोंकी भाँति प्रत्येक काण्डके मङ्गलाचरण संस्कृतके वार्णिक छन्दोंमें ही किये हैं।

मानसके वस्तु-विन्यासमें जैसा कि कहा जा चुका है हिन्दीके जिन प्रचलित छन्दोंका सम्बन्ध विशेष है—वे हैं चौपाई, दोहा, सोरठा। भाव-आवृत्ति, बल-नियोजना, छन्द-वैविध्य आदिकी दृष्टिसे मानसी कलेबरको जिन विशेष मात्रिक छन्दोंसे सुशोभित पाते हैं वे हैं क्रमशः—हरिगीतिका, त्रिभंगी, त्रोटक, चौपइया। मानसकी इतिवृत्तात्मक योजनासे सम्बन्ध रखने-वाले एक और भी मात्रिक छन्द है जिसके प्रत्येक चरणमें चौपाइयोंकी भाँति सोलह मात्राएँ होती हैं, किन्तु जिसके अन्तमें जगण (।ऽ।) होता है। महाकवि जायसीने अपने ग्रन्थ 'पद्मावत' में यत्र-तत्र इसी छन्दका उपयोग किया है। डा० शम्भूनाथ सिंहने इसीको अपने ग्रन्थमें अडिल्ल 'डिल्ला' या 'अरिल्ल छन्द' कहकर अभिहित किया है।[1] मानसकारने जिस क्रमको अपनाया है, तदनुसार इन छन्दोंकी अवस्थिति तथा उपयोगितापर विचार किया जा रहा है।

सोरठा—

मङ्गलाचरणके पश्चात् सोरठेसे ही काव्यका श्रीगणेश होता है।

सोरठाके प्रथम और तृतीय चरणमें ग्यारह-ग्यारह और द्वितीय तथा चतुर्थ चरणमें तेरह-तेरह मात्राएँ होती हैं। इसके द्वितीय और चतुर्थ चरणमें जगण (।ऽ।) नहीं होना चाहिये। पहिले व तीसरे चरणमें अन्त्यानु-प्रासकी प्रवृत्ति भी स्पष्टतः है--

---

१. हिन्दी महाकाव्यका स्वरूप-विकास, डा० शम्भूनाथ सिंह १९५६, का.शी, पृष्ठ ५५०

जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुन सदन॥

(मानस, १। मं. सोरठा १)

मानसकारने किसी विशेष चमत्कारके संकेतके समय सामान्यतः सोरठेका प्रयोग किया है। यथा—

संकर चारु जहाजु, सागरु रघुबर बाहु बलु।
बूड़ सो सकल समाजु चढ़ा जो प्रथमहि मोह बस॥

(मानस, १।२६१)

अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड एवं उत्तरकाण्डमें सोरठा छन्दकी व्यापकता है। एकाध स्थलपर दोहाके साथ भी यह अपनी महत्ता स्थापित किये हैं। सम्पूर्ण मानसमें किष्किन्धाकाण्डके मंगलाचरणके पश्चात्‌के दोनों सोरठे अप्रासंगिक हैं। कारण कि रामकथाका काशीसे तो कोई सम्बन्ध नहीं है, परन्तु यहाँ तुलसीका काशी-प्रेम एवं शिव-निष्ठा परिलक्षित है। यहाँसे ग्रन्थका प्रणयन भी काशीमें हुआ, अतः काशी-स्तवनका औचित्य उपयुक्त ही है। मानसकारने मुख्यतया सोरठेका प्रयोग दो रूपोंमें किया है—एक कथाके प्रारम्भमें, द्वितीय अर्द्धालियोंके अनन्तर निष्कर्षको व्यक्त करनेमें।

२. **चौपाई**—

रामचरितमानसका प्रमुखतम वृत्तात्मक स्वरूप है चौपाई। इसमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरणमें १६ मात्राएँ होती हैं। अपवादस्वरूप कहीं-कहीं १५ मात्राओंकी भी चौपाइयाँ मिल जाती हैं। चरणान्तमें जगण (।ऽ।) और तगण (ऽऽ।) नहीं होना चाहिये।

बंदउँ गुरु पद पदुम परागा। सुरुचि सुबास सरस अनुरागा॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू। समन सकल भव रुज परिवारू॥

(मानस १। मं. १-२)

काव्य-सौन्दर्य विधायक तत्वोंका समाहार मानसकी चौपाइयोंमें प्राप्त होता है। मानसमें चौपाइयोंकी अवस्थितिमें सर्वत्र एक क्रम नहीं है, साधारणतः आठ अर्द्धालियों के बाद एक दोहेकी संयोजना की गयी है, किन्तु कहीं-कहीं ९,११,१२,१३,१४,१५,१८,२० और कहीं-कहीं इससे भी अधिक

अर्द्धालियोंका प्रयोग किया गया है। इस प्रकारके उदाहरण उत्तरकाण्डमें अधिक हैं। विषम संख्यक चौपाइयोंके सम्बन्धमें यह कह देना अनुचित न होगा कि इस छन्द-विधानके लिए मानस अपभ्रंशके प्रबन्ध काव्योंकी कड़वक योजनासे प्रभावित है। अपभ्रंशमें दो चरणोंको एक छन्द माननेकी प्रथा है[1]॥ मानसकारने भी इसी परम्पराका अनुसरण करते हुए मानसमें ९,१३,१५,१८ और कहीं-कहीं ३७ तककी संख्यामें अर्द्धालियोंका प्रयोग किया है, जो अपनेमें स्वतन्त्र हैं।

चौपाइयोंके प्रयोगमें गोस्वामीजीकी सबसे विलक्षण विशेषता यह परिलक्षित होती है कि उन्होंने उसमें १६ मात्राओंवाले डिल्ला, पादाकुलक, पज्झटिका, सिंह, अरिल्ल, मत्त समक, विश्वलोक, पदपादाकुलक आदि मात्रिक छन्दोंका तथा तोटक, विद्युन्माला, दोधक, जलोद्धत, गति, सौरभ, सुरसरित, द्रुतपदा, स्वागता आदि अनेक वर्णवृत्तोंकी विशेषताओंको भी समाहित कर लिया है।

स्मरणीय है कि मानसमें केवल सुन्दरकाण्ड ही दोहे या सोरठेसे नहीं प्रारम्भ होता, अपितु मंगलाचरणके पश्चात् चौपाईसे ही प्रस्तुतीकरण किया गया है। कारण कि किष्किन्धाके अन्तमें ही जामवन्त 'पवन तनय' को लंकागमनके लिए प्रेरित कर चुके हैं। अतः कथा स्वतः आगे चल रही है। कथाके अनवरुद्ध प्रवाहको तथा हनुमानजीकी लंका-गमनोद्यताकी उत्कण्ठाको सूचित करनेके लिए बीचमें दोहा या सोरठा देकर वेग भंग नहीं किया गया है।

दोहा—

चौपाईके उपरान्त 'मानस' के प्रमुख वृत्तोंमें दोहा छन्दको ही परिगणित किया जा सकेगा।

दोहेके प्रथम एवं तृतीय चरणमें तेरह-तेरह मात्राएँ और द्वितीय तथा चतुर्थ चरणोंमें ग्यारह-ग्यारह मात्राओंका विधान है। दूसरी और चौथी पंक्तिमें अन्त्यानुप्रास भी अनिवार्य रूपसे पाया जाता है। मानसके दोहे सामान्यतः इसी शैलीमें हैं--

---

१. प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ—जैन साहित्यकी हिन्दी साहित्यको देन, रामसिंह तोमर, पृष्ठ ४६८

'जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान॥

(मानस, १।१)

उपादेयता एवं स्थानगत विशेषताके सम्बन्धमें कहा जा सकता है कि संस्कृत श्लोकोंके उपरान्त कथा-भागको प्रारम्भ और अग्रसर करनेका कार्य प्रमुखतः दोहेके द्वारा ही सम्पादित किया गया है। तदुपरान्त कुछ अर्द्धालियोंके समाप्त होते ही यह उनके निष्कर्ष को व्यक्त करनेमें भी प्रयुक्त हुआ दिखायी देता है। बाल, लंका एवं उत्तरकाण्डके अन्तर्गत कहीं-कहीं इसकी स्थानीय स्थितिमें कुछ परिवर्तन भी दिखायी देता है। लंकाकाण्डमें कई बार कुछ चौपाइयोंके उपरान्त पहिले छन्द एवं तत्पश्चात् दोहेका प्रयोग किया गया है। उत्तरकाण्डमें चौपाइयोंके बाद कई बार एक दोहेके स्थानपर दोहा-युग्मका प्रयोग भी देखा गया है।

हरिगीतिका—

श्रीरामचरितमानसकी सम्पूर्ण छन्द-नियोजनामें चौपाई, दोहा और सोरठा छन्दकें उपरान्त 'हरिगीतिका' को ही परिगणित किया जा सकता है। प्रचुरताकी दृष्टिसे भी मानसमें इसका स्थान नगण्य नहीं है। सच तो यह है कि मानसमें प्रयुक्त विविध वृत्तोंमें कविकी मनःस्थिति एवं उन्मेषण (मूड एण्ड रेवीलिशन) को जिस सरस सौन्दर्य हरिगीतिका छन्द पा सकनेमें समर्थ हुआ है, चौपाईको छोड़कर दूसरे छन्द उसे नहीं ही प्राप्त कर सके हैं।[1]

इस छन्दमें चार चरण, प्रत्येक चरणमें २८ मात्राएँ होती हैं। चरणके १६ एवं १२ मात्रापर यति होती है। मानसमें कहीं-कहीं १४-१४ पर विराम है। इस प्रकारके छन्द संख्यामें १४१ आये हैं।

सहज संगीतकी गेयता, मधुरता, सरसता और प्रभविष्णुता आदिकी दृष्टिसे हरिगीतिका गोस्वामीजीका सबसे प्रिय छन्द है। श्रीरामजन्म, धनुर्भंग, जानकी-विवाह जैसे सरस प्रसंगोंमें कविने विशेष रुचि और मनोयोगके साथ इस छन्दका विधान किया है। इसकी 'स्थानगत विशेषता' के

---

१. मानसकी छन्द नियोजना—राजकुमार पाण्डेय, पृष्ठ १०४.

सम्बन्धमें कहा जा सकता है कि 'मानस' में चौपाईके उपरान्त ही सामान्यतः इसका उपयोग अधिक खुलकर हुआ है। तदुपरान्त दोहा या सोरठा छन्दका नियोजन आता है। जहाँ तक छन्दकी उपयोगिताका सम्बन्ध है, वहाँ कविने इसके द्वारा मानसी आख्यानको आगे बढ़ानेका नहीं, वरन् व्यापक रूपसे अर्द्धालियोंके अन्तिम चरणकी पुष्टि एवं पुनरावृत्ति अथवा सारांश देनेके हेतु सम्पादित कराया है। जैसे श्रीरामकथाकी महत्ताका प्रतिपादन--

भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। राम कथा जग मंगल करनी॥

(मानस, १।९.१०)

की पुनरावृत्ति उसके पश्चात् ही प्रथम हरिगीतिका छन्दमें द्रष्टव्य है—

मंगल करनि कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कबिता सरित की ज्यों सरित पावन पाथ की॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भलि होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी॥

५. त्रिभंगी छन्द—

इसमें चार चरण होते हैं। प्रत्येक चरणमें ३२-३२ मात्राएँ होती हैं। १०,८,८ और ६ पर विश्राम होता है। चरणान्तका अक्षर गुरु होता है। श्रीरामचरितमानसमें इस छन्दकी नियोजना विशेष रूपसे संस्तुतिके वातावरणमें की गयी है। इस प्रकार यह भी अपनी प्रकृति इतिवृत्तात्मक न होकर कविकी आध्यात्मिक मनःस्थितिका परिचय दे सकनेमें विशेष सफल हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि मानसकारने कहीं-कहीं इस छन्दविशेषकी संयोजनामें भी अपनी व्यक्तिगत रुचि एवं व्यवहार बुद्धिका परिचय देते हुए उसे तीस एवं उन्तीस मात्रा तकका बना दिया है।

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई॥

(मानस, १।१८५ के पश्चात्)

६. चौपैया--

इस छन्दके प्रत्येक चरणमें ३०-३० मात्राएँ होती हैं। १०,८,१२ मात्राओंपर विराम होता है। चरणान्तमें एक 'सगण' और एक गुरु होता

है। 'मानस' में इस छन्दका उपयोग भी संस्तुतिके वातावरणको ही विशेष-रूपसे पुष्ट करता दिखायी देता है। उदाहरणार्थ—श्रीरामजन्मपर कविकी शब्दावली द्रष्टव्य है—

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी।
भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥

(मानस, १।१९१ के बाद)

७. तोमर छन्द—

यह मात्रिक छन्द है। प्रत्येक चरणमें १२-१२ मात्राएँ होती हैं। चरणान्तमें गुरु लघु रहता है। इस छन्दका प्रयोग युद्ध-वर्णन प्रसंगोंके अन्तर्गत ही हुआ है। अरण्यकाण्डमें खरदूषण युद्धमें ६, और लंकाकाण्डके राम-रावण युद्धमें १६ छन्द आये हैं। यथा—

तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल॥
कोपेउ समर श्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम॥

(मानस, ३।१९ के बाद)

जब कीन्ह तेहिं पाषंड। भए प्रगट जंतु प्रचंड॥
बेताल भूत पिसाच। कर धरें धनु नाराच॥

(मानस, ६।१०० के बाद)

८. डिल्ला या अरिल्ल छन्द—

इस मात्रिक छन्दके चारों चरणमें सोलह-सोलह मात्राएँ होती हैं। प्रत्येक चरणके अन्तमें 'भगण' का होना अनिवार्य है। लंकाकाण्डमें दोहा-११४ के पश्चात् 'राम-स्तुति' शिव द्वारा इसी छन्दमें की गयी है—

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक॥
मोह महा घन पटल प्रभंजन। संसय बिपिन अनल सुर रंजन॥

छन्द विषयक निष्कर्ष—

इस प्रकार मानसके छन्द-विधानके सन्दर्भमें कहा जा सकता है कि कविने अक्षरशः पिंगलशास्त्रका अनुगमन करनेके स्थानपर रस एवं

प्रसंगके अनुकूल संगीतात्मक स्फूर्ति प्रवाह अर्थ-सौन्दर्य, सुबोधता एवं विशदता आदि तत्वोंको ही दृष्टि पथपर रखकर छन्द-साधना की है। कहीं-कहीं उन्होंने अपने छन्द-विधानमें जायसी आदि पूर्व कवियोंकी परम्परागत रचना-पद्धतिका भी अनुगमन किया है और समग्र रूपमें इस व्यवहार-विहित परम्परानुगमनको ही उनके छन्द सम्बन्धी दृष्टिकोणका मूल विधायक कहा जा सकता है।

दूसरी बात यह भी उल्लेख्य है कि छन्द-परिवर्तनके सम्बन्धमें भी मानसकारने भारतीय आलंकारिकोंके इस बहुमतको कि महाकाव्यके प्रत्येक सर्गमें एक ही छन्द हो और उसके अन्तमें भिन्न छन्दोंका प्रयोग हो, आँख मूंदकर स्वीकार करनेकी सहजताका परिचय नहीं दिया। उन्होंने इस दिशामें दण्डीकी 'सर्वत्र भिन्न वृत्तान्तैरूपेतं लोक रंजनम्' (काव्यादर्श १.१९) एवं विश्वनाथ कविराजकी 'एक वृत्तमयैः पद्यैरवसानेन्यवृत्तकैः' (साहित्य-दर्पण ६ ३१९) वाली घोषणाका अनुधावन न करते हुए हेमचन्द्रके 'काव्यानुशासन' को ही विशेष रूपसे अपना मार्गदर्शक निर्धारित किया। यही कारण है कि उनकी 'अर्थानुरूप छन्दस्त्वम्' (काव्यानुशासन, अध्याय ८) की उक्तिको अधिकांशतः चरितार्थ करते हुए हमारे महाकविने अपने प्रत्येक सोपानके अन्तर्गत विविध छन्दोंका उपयोग किया है। उनकी रसानुकूल छन्द-संघटना-को देखते हुए कहीं-कहीं तो ऐसा आभास भी हमें मिलता है कि हमारे कविने आचार्यों द्वारा प्रकल्पित छन्दके मूलस्वरूप एवं उसकी प्रभविष्णुता आदि सूक्ष्म विशेषताओंको भी दृष्टि-पथपर रखकर इस दिशामें अग्रसर होनेकी चेष्टा की है। उदाहरणार्थ—मानसके बालकाण्डमें हमारे कविने अपने उपास्यदेवका मङ्गलस्तवन भी शार्दूलविक्रीड़ित छन्दके माध्यमसे किया है। 'यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं' (मानस, १। श्लोक ६) यद्यपि उनकी छन्द नियोजनामें हमें सर्वत्र इस प्रकारकी सूक्ष्मता एवं समवधानताका पता नहीं चलता, फिर भी जिस किसी अंशमें उन्होंने इस सूक्ष्मताका परिचय दिया अवश्य है, वह उनके तत्सम्बन्धी कौशलकी पराकाष्ठाका ही सजग प्रमाण है।

अध्याय—५

(क) श्रीमद्भागवतकी प्रसंगानुकूल भाषा

प्रतिभाके सम्बन्धमें 'व्यासोच्छिष्टमिदं जगत्' उचित ही कहा जाता है। भगवान् व्यासके ग्रन्थोंमें भी श्रीमद्भागवत सर्वश्रेष्ठ है। श्रीमद्भागवतके अठारह हजार श्लोकोंमें-से कमसे-कम छः हजार श्लोक ऐसे हैं, जिनके भाषा-लालित्यकी तुलना नहीं है। जहाँ भाषा भागवतीय प्रसंगोंको प्राणवान बना रही है, ऐसे कतिपय स्थल प्रत्येक स्कन्धसे उदाहरणार्थ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

भावात्मक अलंकृत भाषाकी मंजुल झंकारसे काव्य स्वतः झंकृत हो उठता है। अलंकार युक्त शब्दरत्न भाषाकी विस्तार परिधिमें सहज रूपसे सिमटते चले जाते हैं। श्रीमद्भागवतमें काव्यका यह अलंकृत सौन्दर्य उसकी भावमयी आत्माके उल्लासके साथ सर्वत्र संगति बनाये हुए हैं। प्रथम स्कन्धमें ही भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुतिमें अन्तरात्माकी अनुभूतिकी जो गहराई है, वह सजीव हो उठी है। जबकि भक्ति रसार्णवमें आपाद्-मस्तक निमज्जित भीष्म पितामह पुकार उठते हैं—

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥

(भा., १।९.३३)

त्रिभुवन-कमनीय, तमाल-श्याम, पीत-वसनधारी श्रीकृष्णकी जिस रूप-माधुरीके दर्शन पग-पगपर होते हैं, वह दिव्य है। रूप-सौन्दर्य वर्णनके लिए सभी भक्त कवि श्रीमद्भागवतके ऋणी हैं।

समस्त मानवीय पुरुषार्थका परम फल वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान और दानका एकमात्र प्रयोजन है—पुण्यकीर्ति श्रीकृष्णके गुणों और लीलाओंका गायन। यह कितनी सशक्त भाषामें वर्णित है—

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्॥

(भा., १।५-२२)

इस श्लोकमें वाणीके सार्थक्यका प्रतिपादन है। रस, भाव अलंकारादिसे संयुक्त होनेपर भी श्रीकृष्ण-गुणानुवादसे रहित वाणी वर्जित ही है—

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः॥

(भा., १।५-१०)

वह भी कोई जलाशय है जिसमें कौए ही आयें, हंस न आयें। वाणीकी ऐसी उपमा अपने आपमें कितनी ललित है–परखा जा सकता है।

बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः॥

(भा., २।३-२०)

शरीरके अंगोंके औचित्य-अनौचित्यको श्लोक तो प्रतिपादन कर ही रहा है, किन्तु जब भाषा कहती है 'जिह्वासती दार्दुरिकेव' तो मेढ़ककी स्वाभाविक टर्राहट कितनी व्यक्त होकर गूंज उठतीं है।

स एवमुत्सिक्तमदेन विद्विषा दृढं प्रलब्धो भगवानपां पतिः।
रोषं समुत्थं शमयन् स्वया धिया व्यवोचदङ्गोपशमं गता वयम्॥

भा., ३।१७.२९

वरुणकी विवशता भाषामें साकार हो उठी है। 'व्यवोचदङ्गोपशमं गता वयम्' में वक्ता अपनेको कितना असहाय, विवश और असमर्थ देख रहा है। जब वह अपमान करनेवाले शत्रुको भी 'अंग' कहता है तो भाषा बहुत कुछ कह जाती है।

युद्धकी भयावहतामें कोमल मयूरको 'भीमरवाः शिखण्डिनः' कहकर भाषामें प्रसंगानुकूल भयंकरता स्वतः मुखरित हो उठी है—

तस्यार्षास्त्रं धनुषि प्रयुञ्जतः सुवर्णपुङ्खाः कलहंसवाससः।
विनिःसृतो आविविशुर्द्विषद्बलं यथा वनं भीमरवाः शिखण्डिनः॥

भा., ४।११.३

इसी प्रकार सम्पूर्ण सम्बन्धोंकी कसौटी क्या है? इसका दो टूक निर्णय करनेमें भाषाका ललित-रूप अवलोकनीय है—

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात् पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ।
दैवं न तस्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥

भा, ५।५.१८

सत्पुरुषके समस्त सद्गुणोंको एक ही श्लोकमें पुष्पोंके सदृश गूँथ दिये हैं—

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसंगम् ।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥

भा. ५।५.२

महापुरुषकी ऐसी परिभाषा अन्वेषण करनेपर भी न मिलेगी।

बोल तो रहे हैं—यमराज, किन्तु कितनी सशक्त भाषामें कहते हैं कि अनजानमें किया भगवन्नामोच्चारण भी फल देकर रहता है, वस्तु शक्ति श्रद्धाकी अपेक्षा नहीं करती—

यथागदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया ।
अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः ॥ भा., ६।२.१९

'यथागदं' कहकर उसको कितना आकर्षक बनाया गया है।

अधोक्षजालम्भमिहाशुभात्मनः शरीरिणः संसृतिचक्रशातनम् ।
तद् ब्रह्म निर्वाणसुख विदुर्बुधास्ततो भजध्वं हृदये हृदीश्वरम् ॥

भा., ७।७.३७

इसमें 'शरीरिणः संसृतिचक्रशातनम्' शब्द ही कृपाणको तीक्ष्ण धारावत् काटनेकी तीव्र ध्वनिको ध्वनित कर रहा है।

इसी प्रकार—

विष्वक्स्फुरन्तं ग्रहणातुरं हरिर्व्यालो यथाऽखुं कुलिशाक्षतत्वचम् ।
द्वार्यूर आपात्य ददार लीलया नखैर्यथाहिं गरुडो महाविषम् ॥

भा., ७।८.२९

भाषा ही हिरण्यकशिपुकी स्फूर्ति, नृसिंहके शौर्य-उत्कर्षके समक्ष उसकी हतप्रभताको व्यक्त कर रही है। नृसिंहके समक्ष हिरण्यकशिपु ऐसा प्रतीत हो रहा है। जैसे 'व्याल' के समक्ष 'आखु'। सर्पको व्याल कहकर भयंकरता एवं चूहेको 'आखु' कहकर उसे अत्यन्त अल्प कर दिया है।

कितनी मार्मिकतासे प्रह्लाद कह रहे हैं कि मानवमात्रकी उच्चतम अभिलाषा जो सम्भव है वह समस्त लोकपालोंकी आयु, लक्ष्मी, ऐश्वर्य भी मेरे पिताके क्रुद्ध होनेपर नष्ट हो जाते थे, उन्हींको आपने मार दिया—

दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपाना-
मायुः श्रियोविभव इच्छति याञ्जनोऽयम् ।
येऽस्मत्पितुः कुपितहासविजृम्भितभ्रू-
विस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः ॥ भा. ७.९.२३

भृकुटि-भंगिमा सांकेतिक रोष 'कुपितहासविजृम्भितभ्रूविस्फूर्जितेन' में मूर्तिमान् हो उठा है। सशक्त भाषाका यह सूत्रात्मक-रूप काव्यमें कम ही मिलता है।

कलुषित-मनके दौर्बल्यसे मानव कितना असहाय तथा विवश हो उठा है, इसे एक ही सूत्रमें जैसे व्यक्त कर दिया है—

जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति मावितृप्ता
शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ।
घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्ति-
र्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥ भा., ७।९.४०

इस श्लोकमें इन्द्रियोंसे संत्रस्त मनकी दीनता भाषामें प्रकट हो उठी है॥

भगवान् विष्णु अकेले ही समुद्र-मंथन जैसे कठिन कार्यको कर रहे हैं। मेघके समान साँवरे शरीरपर सुनहला पीताम्बर, कानोंमें बिजलीके समान कुण्डल, सिरपर लहराते हुए घुंघराले बालोंकी शोभा संयुक्त, बनमालासे विभूषित रक्त नेत्रोंकी शोभाका जो वर्णन है, वहाँ भाषा उनके उस विशाल स्वरूपके अनुरूप है—

मेघश्यामः कनकपरिधिः कर्णविद्योतविद्युन्
मूर्ध्नि भ्राजद्विलुलितकचः स्निग्धरो रक्तनेत्रः ।
जैत्रैर्दोर्भिर्जगदभयदैर्दन्दशूकं गृहीत्वा
मथ्नन् मथ्ना प्रतिगिरिरिवाशोभताथोद्धृताद्रिः ॥ भा. ८.७.१७

इस श्लोकमें 'मथ्नन् मथ्ना प्रतिगिरिरिवाशोभताथोद्धृताद्रिः' में जैसे यह विश्वविजयी भुजदण्डोंसे मथते हुए दूसरे मंदराचल सदृश लग रहे हैं।

प्रह्लादकी भक्ति एवं भगवान् वामनकी कृपा कितने स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त है—

नेमं विरिञ्चो लभते प्रसादं न श्रीर्न शर्वः किमुतापरे ते।
यन्नोऽसुराणामसि दुर्गपालो विश्वाभिवन्द्यैरपि वन्दिताङ्घ्रिः॥

भा., ८।२३.६

विश्ववन्द्य भगवान्की महत्ता 'नेमं विरिञ्चो लभते प्रसादं' तथा 'विश्वाभिवन्द्यैरपि वन्दिताङ्घ्रिः' शब्दोंमें स्पष्ट व्यक्त है।

सूत्रात्मक भाषामें सम्पूर्ण श्रीरामचरितको एक ही श्लोकमें संयोजित कर दिया है। भाषामें कहीं भी शैथिल्य नहीं आया अपितु वर्णन भी अलंकृत हो उठा है—

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषाऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः॥

भा., ९।१०.४

भाषाका व्यंगात्मकरूप द्रष्टव्य है, जब समुद्र अन्तस्तलमें उमड़े हुए क्षोभको व्यक्त कर रहा है—

कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं
त्रैलोक्यपरावणमवाप्नुहि वीर पत्नीम्।
बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै
गायन्ति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः॥ भा. ९.१०.१५

'विश्रवसोऽवमेहं' में 'मेहं' ही नहीं, अपितु 'अवमेहम्' कहा गया है। सम्भवतः त्रैलोक्य विजयी रावणको यह उपाधि तो किसीने भी नहीं दी होगी।

श्रीमद्भागवतका 'दशम् स्कन्ध' तो प्रसंगानुकूल भाषा एवं भाव-सौन्दर्य दोनोंकी दृष्टिसे रत्नराशि है। यथा—बाल कृष्णकी शकट-भंजन प्रसंगमें सुकुमारता—

अधः शयानस्य शिशोरनोऽल्पकप्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्तत ।
विध्वस्तनानारसकुप्य भाजनं व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ॥

भा., १०।७ ७

'शिशोरनोऽल्पकप्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं' में शिशु है, किन्तु 'अनल्प' है। 'अनल्प' का प्रयोग ही विचित्र है। इसकी मधुरिमा, 'महत्तम्' कहनेमें व्यक्त नहीं होती। शिशु दीखता तो अल्प है, किन्तु अल्प है नहीं। अरुणिमा एवं सुकुमारताके लिए शिशुके चरणोंका वर्णन 'प्रवालमृद्वङ्घ्रि' से अधिक सुन्दर निरूपण किया नहीं जा सकता।

मुधुरिमामें जहाँ गोपीगीतके छन्द अपनी भाषा और भावकी क्षमता नहीं रखते हैं, वहां गाम्भीर्यपूर्ण भाषा और भावकी दृष्टिसे वेदस्तुतिकी भी तुलना नहीं है।

'गोपीगीत' के करुण प्रसंगमें भाषा कितनी सुकुमार कोमलकान्त-पदावलीमें प्रकट है—

विरचिताभयं वृष्णिधुर्यं ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ।
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥

भा., १०।३१.५

'वृष्णिधुर्यं' में कोमलता, सुकुमारता साकार हो उठी है। इसी प्रकार 'युगलगीत' का लालित्य, माधुर्य अवलोकनीय है—

मदविघूर्णितलोचन ईषन्मानदः स्वसुहृदां वनमालो ।
बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं मण्डयन् कनककुण्डललक्ष्म्या ॥

भा., १०।३५ २४

'बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं' में भाषा लालित्यकी एवं श्रीकृष्णके सुकुमार सौन्दर्यको पूर्णतया प्रकट कर रही है।

गाम्भीर्यपूर्ण भाषाका उदात्तरूप 'वेद-स्तुति' जैसे तत्वज्ञानके गम्भीर विवेचनमें द्रष्टव्य है—

जय जय जह्यजामजित दोषगृभीतगुणां
त्वमसि यदात्मना समवरुद्धसमस्तभगः ॥
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते
क्वचिदजयाऽऽत्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः ॥

भा., १०।८७.१४

'जह्यजामजित' तथा 'दोषगृभीतगुणां' जैसे शब्द श्रुतियोंके गम्भीर वचनोंको व्यक्त कर रहे हैं कि 'इस गुणमयी मायाने दोषके लिए जीवोंके आनन्दमय सहज स्वरूपका आच्छादन करके उन्हें बन्धनमें डालनेके लिए ही सत्वादि गुणोंको ग्रहण किया है। जगतमें जितनी भी साधना, ज्ञान, क्रिया आदि शक्तियाँ हैं, उन सबको जगानेवाले आप ही हैं, इसलिये आपके मिटाये बिना यह माया मिट नहीं सकती। इस विषयमें यदि प्रमाण पूछा जाय तो आपकी श्वास-भूता श्रुतियाँ हैं—हम ही प्रमाण हैं।' कोई छन्द इसमें ऐसा नहीं है जिसे उद्धृत न किया जा सके। यहाँ केवल प्रथम छन्द मात्र ही दिया है।

इतनी सूत्रात्मक भाषा काव्यमें कम ही मिलती है जहाँ सम्पूर्ण ज्ञान-को एक ही श्लोकमें निबद्ध कर दिया है—

अविद्यमानोऽप्यवभाति हि द्वयो ध्यातुर्धिया स्वप्नमनोरथौ यथा।
तत् कर्मसङ्कल्पविकल्पकं मनो बुधो निरुन्ध्यादभयं ततः स्यात्॥

भा., ११।२.३८

'तत् कर्मसंकल्प विकल्पकं मनो बुधो निरुन्ध्याद्' अर्थात् मनका स्वरूप क्या है? उसके साथ करना क्या है? निरुन्ध्यात् अर्थात् उसका निरोध करे। विचारवान पुरुषको चाहिये कि सांसारिक कर्मोंके सम्बन्धमें संकल्प-विकल्प करनेवाले मनको रोक दे।

भक्तके सर्वोत्कृष्ट स्वरूपका प्रतिपादन करनेमें भाषाका प्रवाह भावके साथ तादात्म्य किये चल रहा है—

विसृजति हृदयं न यस्य साक्षाद्धरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः।
प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः॥

भा., ११।२.५५

गुरु, दीक्षा, अनुष्ठान विधि तथा पुरुषोत्तमकी आराधनारूप सम्पूर्ण साधनाको भावकी दृष्टिसे एक ही श्लोकमें सन्निवेश कर दिया है—

लब्धानुग्रह आचार्यात् तेन संदर्शितागमः।
महापुरुषमभ्यर्चेन्मूर्त्याभिमतयाऽऽत्मनः॥ भा., ११।३.४८

प्रलयकालीन समुद्रमें उमड़ती हुई भयंकर लहरोंके स्वरूपका भाषा-चित्र ही उपस्थित कर देती है—

तस्यैवमुद्वीक्षत ऊर्मिभीषणः प्रभञ्जनाघूर्णितवार्महार्णवः ।
आपूर्यमाणो वर्षद्भिरम्बुदैः क्षमामप्यधाद् द्वीपवर्षाद्रिभिः समम् ॥

भा., १२।४.१४

'ऊर्मिभीषणः प्रभञ्जनाघूर्णितवार्महार्णवः' ये शब्द जैसे प्रलय-समुद्रके लिए उपयुक्त हो है। वायु नहीं, मरुत नहीं, आँधी नहीं', अपितु प्रभंजन अर्थात् तूफानकी पराकाष्ठा।

'क्षीराब्धि-मंथन-प्रसंग' में मन्दराचलको पीठपर धारण करनेवाले महाकच्छपकी विशालता और असीम शक्तिके साथ हो मंदराचलके वेगको शब्दोंने मूर्तिमान कर दिया है—

पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दरगिरिग्रावाग्रकण्डूयना-
न्निद्रालोः कमठाकृतेर्भगवतः श्वासनिलाः पान्तु वः ।
यत्संस्कारकलानुवर्तनवशाद् वेलानिभेनाम्भसां
यातायातमतन्द्रितं जलनिधेर्नाद्यापि विश्राम्यति ॥

भा., १२।१३.२

'पृष्ठे भ्राम्यदमन्दमन्दर गिरिः' अर्थात् पीठपर तो मन्दर-गिरि अमन्द घूम रहा है, किन्तु भगवान् कच्छपको लग रहा है कि उनकी पीठका अग्रिम भाग खुजलाया जा रहा है, इससे उन्हें नींद आ रही है। यह वर्णन ही इतना प्रभावशाली है कि ऐसा प्रभाव अनुवादकी भाषामें नहीं आ सकता।

संस्कृतके आचार्योंने कहा है—'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' गद्यमें प्रसंगानुकूल भाषा श्रीमद्भागवतमें कैसी है ? इसके लिए केवल दो गद्य उद्धृत किये जा रहे हैं। यह भाषा किसी व्याख्याकी अपेक्षा नहीं करता।

प्रकृति वर्णनको कोमलकान्त पदावलीयुक्त सुललित गद्य भाषाका स्वरूप—

सा च तदाश्रमोपवनमतिरमणीयं विविधनिविडविटपिविटपनिकर-संश्लिष्टपुरटलतारूढस्थलविहङ्गममिथुनैः प्रोच्यमानश्रुतिभिः प्रतिबोध्यमानस-लिलकुक्कुटकारण्डवकलहंसादिभिर्विचित्रमुपकूजितामलजलाशयकमलाकरमुप बभ्रम । (भा., ५।२.४)

भाषाकी रौद्र रसात्मकता—

इति तेषां वृषलानां रजस्तमःप्रकृतीनां धनमदरजउत्सिक्तमनसां भगवत्कलावीरकुलं कदर्थीकृत्योत्पथेन स्वैरं विहरतां हिंसाविहाराणां कर्मातिदारुणं यद्ब्रह्मभूतस्य साक्षाद् ब्रह्मर्षिसुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूतसुहृदः सूनायामप्यननुमतमालम्भनं तदुपलभ्य ब्रह्मतेजसातिदुर्विषहेण दन्दह्यमानेन वपुषा सहसोच्चचाट सैव देवी भद्रकाली ॥ (भा., ५।९.१७)

इसमें देवी भद्रकाली प्रकट नहीं होतीं अपितु उच्चचाट । यह 'उच्चचाट' देवीके प्रकट होनेकी जिस रोष परिपूर्ण भंगिमाको प्रकट करता है वह अवर्णनीय है ।

भाव-सौन्दर्य—

भागवतकारने भाषाकी अपेक्षा भावको प्राधान्य दिया है, तथापि सहज पाण्डित्यसे भाषाका सुन्दरतम और प्राणमयरूप कहीं भी शिथिल किंवा विकृत नहीं हो पाया है । भावोंकी गम्भीरता और मर्मस्पर्शिता तो लोकोत्तर ही है, जो भक्तिके शाश्वत प्रवाहके कारण सहज हो गयी है । प्रायः प्रसादपूर्ण सहज भावात्मक शैलीका उदात्त रूप प्रस्फुटित हुआ है--

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजांघ्रये ॥ भा., १.८.२२

भगवत्स्तुतियोंमें भावात्मक सौन्दर्य और भी प्रखर हो उठा है—

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ।
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥
भा., १।८.३६

चित्रात्मक सौन्दर्य—

भाषाका वैशिष्ट्य है कि यह वातावरण, घटना एवं पात्रका सजीव बिम्ब प्रस्तुत करनेमें सक्षम है । श्रीकृष्णके परिहाससे अनभिज्ञ रुक्मिणी शोकके आवेगको संभाल नहीं पा रही—

पदा सुजातेन नखारुणश्रिया भुवं लिखन्त्य श्रुभिरञ्जनासितैः ।
आसिञ्चती कुंकुमरुषितौ स्तनौ तस्थावधोमुख्यतिदुःखरुद्धवाक् ॥
भा., १०।६०.२३

अवरुद्ध कण्ठ, अश्रु पूरित मुख कमलको नीचे किये हुए कमलके सदृश कोमल नखोंकी कान्तिसे कुछ लाल प्रतीत होनेवाले चरणोंसे धरती कुरेदने लगी है ।

इसी प्रकार भीष्म प्रतिज्ञामें श्रीकृष्णके शस्त्र-ग्रहणमें उनकी आतुरता एवं अस्तव्यस्तता साकार हो उठी है—

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गु र्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः॥

(भा., १।९. ३७)

'अवप्लुतो रथस्थः' में श्रीकृष्णकी लहरा रही अलकोंका वेग, रथसे कूदनेकी आतुरताका वेग मूर्तिमान हो गया है। 'गतोत्तरीयः में सम्पूर्ण वेगकी तीव्रता है, 'चलद् गुः' में पृथ्वी कांप रही है। 'हरिरिव हन्तुमिभं' कहकर श्रीकृष्णकी अचिन्त्य शक्तिका सम्पूर्ण चित्र उपस्थित हो गया है।

सूत्रात्मक भाषा—

पुराणोंकी व्यास और समास पद्धति ही है। एक सम्पूर्ण बातको पहिले संक्षिप्त कहकर तब उसे विस्तारसे कहा जाता है। श्रीमद्भागवतमें यह परम्परा कम अपनायी गयी है, किन्तु कई स्थानोंपर है, जैसे वाराह-चरित। पुराणोंकी यह समास शैली सूत्रात्मक है। भागवतमें इसके बहुत अधिक उदाहरण हैं। सम्पूर्ण अवतारोंको द्वितीय स्कन्धके सप्तम अध्यायमें इसी प्रकार श्लोकोंमें निबद्ध किया है, सम्पूर्ण वाराह-चरित एक ही श्लोक में—

यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रत्क्रौडीं तनुं सकलयज्ञमयीमनन्तः।
अन्तर्महार्णव उपागतमादित्यं तं दंष्ट्याद्रिमिव वज्रधरो ददार॥

(भा., २।७. १)

इस प्रकार भागवतकारने सम्पूर्ण प्रसंग अथवा चरित एक ही श्लोकमें सँजो दिये हैं, और भाषामें किंचित भी शैथिल्य नहीं आया, अपितु वह अलंकृत हो उठी है।

शब्द चयनात्मक सौन्दर्य—

भाषाका शब्द चयनात्मक सौन्दर्य निम्न श्लोकमें द्रष्टव्य है—

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः।
आलिङ्गनस्थगित मूर्मिभुजैर्मुरारे र्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः॥

(भा., १०।२१. १५)

'आवर्त लक्षित मनोभव भग्न वेगाः' इसमें 'मनोभव' 'भग्नादि' शब्दोंका मनोवेगको व्यक्त करनेके लिए शब्द चयन अपूर्व सुन्दर हुआ है।

अभिव्यंजनात्मक सौन्दर्य—

श्रीमद्भागवतमें अभिव्यजनात्मक सौन्दर्य तथा भावात्मक सौन्दर्य दोनोंका मणिकांचन संयोग है।

सत्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ शरीरिणां श्रेय उपायनं वपुः।
वेदक्रियायोगतपः समाधिभिस्तवार्हणं येन जनः समीहते॥

(भा., १०।२. ३४)

श्रेय भी समस्त देह-धारियोंका और उसे उपहारके रूपमें उपस्थित करता है, श्रीकृष्णका श्रीअंग। यहाँ अभिव्यंजना कितनी मार्मिक है।

लक्षणात्मक भाषा—

प्रसङ्ग है स्थानकी पवित्रताके वर्णनका, केवल एक ही शब्दमें उस पवित्रताको सजीव कर दिया है—

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः।

(भा., १।१. ४)

'अनिमिष क्षेत्रे' में देवभूमिके पावनत्वका तो प्रतिपादन है ही, भाषाने उसे गम्भीरतासे पवित्रताको अलंकृत कर दिया है।

बिम्ब-विधान—

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्
या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसम्भ्रमाक्षम्।
वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य
सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति॥

(भा., १।८. ३१)

'दशाश्रुकलिलाञ्जनसंभ्रमाक्षम्' में भाषा भयसे भयभीत, रोते हुए कज्जलाश्रु आँखोंको अनेक ओरसे संभ्रमित बालका चित्र मूर्तिमान कर देती है। इनमें 'कलिला जन' और संभ्रम' दोनों ही शब्दोंकी शक्ति प्रसङ्गके अनुरूप बिम्ब प्रस्तुत कर रही है।

श्रीमद्भागवतमें रसानुकूल भाषा

रस-विवेचन—

साहित्यके आचार्योंने नव-रस स्वीकार किये हैं—

१ शृंगार	२. हास्य	३. करुण
४. वीर	५. रौद्र	६. वीभत्स
७ भयानक	८. अद्भुत	९. शान्त[1]

किन्तु भक्तिके आचार्योंने दो रस और माने हैं—सख्य और वात्सल्य[2]। इन्हें रस माना जाना चाहिये, क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि सख्यके वर्णनमें अथवा वात्सल्यके वर्णनमें रसानुभूति नहीं होती। जैसे दास्यको शान्तके अन्तर्गत गिना जा सकता है, उसी तरह सख्यको शान्तके अन्तर्गत नहीं गिना जा सकता। इसी प्रकार वात्सल्यको शान्त या माधुर्यके अन्तर्गत नहीं किया जा सकता और न इनकी रसवत्ता अस्वीकार की जा सकती है। इसलिए इन दोनों रसोंपर भी विचार किया जाना चाहिये। श्रीमद्भागवतमें इन दोनों रसोंका भी परिपाक है।

श्रीमद्भागवतका मुख्य रस

भाषामें शान्त रस—

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमास दोनों ही आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं। दोनोंका ही मूल लक्ष्य अन्तःकरणकी शुद्धिपूर्वक भक्तिकी प्राप्ति है। इसलिए दोनों ग्रन्थोंका मूल रस शान्त है, क्योंकि अध्यात्मकी चरम परिणति शान्त रसमें ही है। चित्तकी परम शान्ति ही दोनोंका अभीष्ट है। इसलिए भागवतका अधिकांश वर्णन शान्त-रसका है और शान्त रसके अनुरूप ही भाषा है।

भक्तिका स्वरूप ही परम शान्त और आनन्दमय है। हृदयकी अशान्तिको दूर करके, उसके कल्मषको नाश करके उसे भगवन्मय कर देना, यही शान्त रसका—उस शान्त रसका जो भागवतमें वर्णित लक्ष्य है।

---

१. साहित्य-दर्पण, रस-गंगाधर, काव्यादर्श।

२. भक्ति-सन्दर्भ—जीव गोस्वामी।
भक्ति-रसामृत सिन्धु—रूप गोस्वामी।

स वेद धातुः पदवीं परस्य दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः।
योऽमायया संततयानुवृत्त्या भजेत तत्पादसरोजगन्धम् ॥

(भा., १।३ ३८)

इसमें भगवान्‌की महत्ताका वर्णन है। भक्तिकी प्रबलता ही है, जब देवी कुन्ती विपत्तिका वरदान मांगती है, क्योंकि विपत्तिमें भगवान्‌की स्मृति आती है—

विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनादसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः।
मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिता ॥

(भा., १।८.२४)

भक्तिके द्वारा किस प्रकार मनुष्य अभयको प्राप्त करता है। वह स्पष्ट वर्णन है—

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम्।
उद्विग्नबुद्धेरसदात्मभावाद् विश्वात्मना यत्र निवर्तते भीः ॥

(भा, ११।२. ३३)

भय प्राप्त होता ही क्यों है ? उससे परित्राण कैसे पाया जाये ? सशक्त भाषामें देखने योग्य है—

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्याद् ईशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्मायया तो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥

(भा., ११।२. ३७)

श्रीमद्भागवतमें शान्त रसके उदाहरणोंकी संख्या करना कठिन है। यह थोड़ेसे उदाहरण केवल संकेतके लिए दिये गये हैं।

शृङ्गार-रस—

साहित्यके आचार्योंने शृंगारको 'रसराज' माना है। श्रुतिकहती है—'रसो वै सः'। परमात्मा ही रसस्वरूप है। श्रीराम एवं श्रीकृष्ण दोनों आनन्दघन कहे जाते हैं। इसलिए दोनोंके वर्णन सहज स्वाभाविक रसमय हैं। इसलिए श्रीमद्भागवतमें शृङ्गार-रस प्रचुर आयेगा ही, और अवतारके स्वरूपके अनुरूप आयेगा।

श्रीमद्भागवतमें शृंगार रसके दोनों रूप हैं। (१) संयोग शृंगार और (२) विप्रलम्भ शृंगार। संयोग शृंगारमें भी दो भाग हैं। नख-शिख-वर्णन और संयोग वर्णन। मोहिनीका एक वर्णन—

दिक्षु भ्रमत्कन्दुकचापलैर्भृशं प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम्।
स्वकर्णविभ्राजितकुण्डलोल्लसत्कपोलनीलालकमण्डिताननाम्॥

(भा,. ८।१२.२०)

गेंद खेलते हुए मोहिनीका यह वर्णन है। 'प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम्' में नेत्र-भंगिमाका कितना मनोहारी वर्णन है।

श्रीकृष्णका नख-शिख वर्णन तो बहुत प्रसिद्ध है। मैया यशोदाका नख-शिख वर्णन—

क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रती सूत्रनद्धं
पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकम्पं च सुभ्रुः।
रज्ज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कङ्कणौ कुण्डले च
स्विन्नं वक्त्रं कबरविगलन्मालती निर्ममन्थ॥

(भा., १०।९. ३)

पुत्रस्नेहवती माताका यह रूप ध्यान करने योग्य है।

श्रीकृष्णका सखाओंके मध्य बैठा हुआ जो स्वरूप है उसका वर्णन—

बिभ्रद् वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे
वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु।
तिष्ठन् मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन् नर्मभिः स्वैः
स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग् बालकेलिः॥

(भा., १०।१३. ११)

कितना सूत्रात्मक और पूर्ण वर्णन है।

शर-शैय्यापर पड़े पितामह भीष्मके मुखसे ही श्रीकृष्णका एक नख-शिख वर्णन—

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥

(भा. १।९.३३)

यह 'त्रिभुवनकमन' सचमुच ही भुवन मनोहरका वर्णन है।

संयोग-शृङ्गारके वर्णनमें श्रीमद्भागवतकी रासपञ्चाध्यायी बहुत प्रसिद्ध है—

कर्णोत्पलालकविटङ्ककपोलधर्मवक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ।
गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेशस्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥

(भा, १०।३३.१६)

नृत्यलग्ना गोपियोंका कितना सुन्दर वर्णन है । नृत्यकी तीव्र गति को भाषा स्पष्ट कर रही है ।

गोपियोंके मध्य बैठे श्रीकृष्णका यह वर्णन—

योप्यो लब्ध्वाच्युतं कान्तं श्रिय एकान्तवल्लभम् ।
गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तं विजह्रिरे ॥

(भा., १०।३३. १५)

'तमनङ्गदीपनं' सचमुच ही अनंग-दीप्त हो रहा है । स्नेह, सौहार्द्र, सामीप्य सबके लिए भागवतीय भाषा चित्र प्रस्तुत कर रही है ।

विप्रलम्भ शृङ्गारका वर्णन यहीं गोपी-गीतमें बहुत स्पष्ट है—

शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृषा ।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥

(भा., १०।३१. २)

इसमें अनुनय है, उपालम्भ है, समर्पण है। भाषा 'सुरतनाथ', 'अशुल्कदासिका' के द्वारा भावको पूर्णतया अभिव्यक्त कर रही है । तथा—

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय संनिधिम् ॥

(भा., १०।३०. ४०)

विमुक्ता गोपीका हृदय भाषाके द्वारा हाहाकार कर रहा है । वियोग शृंगारमें वियोगकी सम्भावनासे ही कितनी व्याकुलता प्रकट हो रही है—

योऽह्नः क्षये व्रजमनन्तसखः परीतो
गोपैर्विशन् खुररजश्छुरितालकस्रक् ।
वेणुं क्वणन् स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन
चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम ॥

(भा., १०।३९.३०)

'अमुमृते नु कथं भवेम' भाषामें कितनी वेदना है, कितना दुःखमय भविष्य सूचित होता है।

भागवतका भ्रमरगीत बहुत प्रसिद्ध है। इसके माधुर्यसे आकर्षित होकर हिन्दीके अनेक कवियोंने भ्रमर-गीतकी रचना की है। केवल एक श्लोक उदाहरणके लिए पर्याप्त है—

विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारै-
रनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात्।
स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका
व्यसृजदकृतचेताः किं नु संधेयमस्मिन्॥

(भा., १०।४७.१६)

'किं नु सन्धेयमस्मिन्' में कितना मान है। इस मानमें कितनी आत्मीयता है।

वियोगकी बात तो दूर, द्वारिकाकी रानियोंको तो प्रेम वैचित्र्यकी प्राप्ति हो गयी है। श्रीकृष्णके सान्निध्यमें ही उन्हें वियोगका अनुभव हो रहा है। इस प्रेम-वैचित्र्यका वर्णन साहित्यमें बहुत कम मिलता है—

ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः।
तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित्॥

(भा., १०।६०.१५)

भाषा जैसे मूर्तिमान विप्रलम्भको उपस्थित करती है।

हास्य—

श्रीमद्भागवतके वक्ता हैं—परमहंसशिरोमणि श्रीशुकदेवजी। और श्रोता राजा परीक्षितके लिए जीवनके कुल सात दिवस ही शेष हैं। उनको मृत्यु सामने ही दीख रही है। ऐसी परिस्थितिमें श्रीमद्भागवतमें हास्य नहीं है, यह बहुत स्वाभाविक है। जैसे श्रीरामचरितमानसमें सख्य-रसका परिपाक नहीं हुआ है, वैसे ही श्रीमद्भागवतमें हास्यको सत्कृत नहीं किया जा सका है।

करुण—

भक्तिके लिए हृदयका द्रवित होना परम आवश्यक है, क्योंकि बिना द्रवित हुए हृदय शुद्ध नहीं होता। श्रीमद्भागवतके स्कन्ध ११, अध्याय १४ के श्लोक २३ में कहा है—

'कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना'

चित्तकी शुद्धिके लिए उसका द्रवीभूत होना आवश्यक है और चित्त द्रवीभूत होता है— करुणके आश्रय से। इसीलिए भक्तिमें करुण रसका बहुत महत्व है।

करुण रसके भी दो रूप हैं— वियोग-जन्य और शोक-जन्य।

वियोग-जन्य करुण गोपियोंका बहुत प्रसिद्ध है। श्रीकृष्णके मथुरा-गमनपर उनकी जो अवस्था हुई है, बहुत संक्षिप्त रूपमें उसका वर्णन है—

यावदालक्ष्यते केतुर्यावद् रेणू रथस्य च।
अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः॥

(भा., १०।३९. ३६)

'लेख्यानीवोपलक्षिताः' वे कैसी मूर्तिकी भाँति निस्पन्द, चेतनाहीन खड़ी रह गयी हैं, इसे भाषा एक ही शब्दमें बतला रही है।

मैया यशोदाका वर्णन है, वह बोल नहीं पा रही हैं—

अक्रूर आगतः किं वा यः कंसस्यार्थसाधकः।
येन नीतो मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः॥

(भा. १०।४६. ४८)

उसका वात्सल्य और वियोग अवर्णनीय होनेपर भी भाषा बहुत कुछ मूर्तिमान करती है।

शोक-जन्य करुणका वर्णन तो भागवतमें अनेक स्थानोंपर है।

पुत्रके वियोगमें माँका रुदन–

त्वं तात नार्हसि च मां कृपणामनाथां
त्यक्तुं विचक्ष्व पितरं तव शोकतप्तम्।
अज्ञस्तरेम भवताप्रजदुस्तरं यद्-
ध्वान्तं न याह्यकरुणेन यमेन दूरम्॥

(भा., ६।१४. ५६)

कृतधुतिके इस रुदनमें 'कृपणाम्', 'अनाथाम्' जैसे शब्द उसकी व्याकुलताको व्यक्त कर रहे हैं।

राजा चित्रकेतुकी दशाका वर्णन है—

पपात बालस्य स पादमूले मृतस्य विस्रस्तशिरोरुहाम्बरः।
दीर्घं श्वसन् बाष्पकलोपरोधतो निरुद्धकण्ठो न शशाक भाषितुम् ॥

(भा., ६।१४. ५१)

'न शशाक भाषितुम्' में शोककी तीव्रताको व्यक्त करनेके लिए बहुत पर्याप्त है।

उशीनर नरेशके वियोगमें उसकी रानियोंका वियोग है—

त्वया कृतज्ञेन वयं महीपते कथं विना स्याम दुरुत्तमेन ते।
तत्रानुयानं तव वीर पादवोः शुश्रूषतीनां दिश यत्र यास्यसि ॥

(भा., ७।२. ३४)

'दिशं यत्र यास्यसि' जहाँ जा रहे हैं उसी दिशाका हमें निर्देश करो, कितना मर्मभेदी वाक्य है।

भाषामें वीर—

सगुण साकारकी लीलाका वर्णन करते समय प्रत्येक भक्त कवि आराध्यके दो रूप सहज भावसे मानता है।

(१) आनन्दघन रूप जो परम मधुर है।

(२) सर्वसमर्थ-रूप जो अत्यन्त शक्तिशाली है।

इस अनन्त शक्तिशाली-रूपके ऐश्वर्यका प्राकट्य भक्ति-काव्योंमें अनेक रूपोंमें होता है। श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्ण एवं श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामके सभी वीर-रूपों (युद्धवीर, दानवीर, दयावीर आदि)का पूर्ण विकास हुआ है, किन्तु युद्धवीरमें ही वीर-रस परिपाकको प्राप्त करता है। श्रीकृष्णके वीर-रूपकी शोभा भीष्मके मुखसे सुनने योग्य है—

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये।
मम निशितशरैर्विभिद्यमानत्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥

(भा., १।९. ३४)

'विभिद्यमानत्वचि' होनेपर भी 'विलसत्कवचेऽस्तु' यह शोभा तो श्रीकृष्णकी ही देखी जा सकती है।

भयातुरको अभयदान देनेमें श्रीकृष्णको क्षणार्ध भी सोचना नहीं पड़ता। अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया, किन्तु श्रीकृष्णने उसे भी शान्त कर दिया। इसलिए शुकदेवजीको कहना पड़ा—

यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियम्।
वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यद् भृगूद्वह॥

(भा., १।८.।५)

श्रीकृष्णको कोई दीर्घकालीन युद्ध प्रिय नहीं है। वे लीला पुरुषोत्तम युद्धको भी लीलाकी भाँति पूर्ण कर देते हैं। दूसरोंकी बात दूर, भगवान् शकरसे उनका युद्ध हुआ और इस युद्धको भी उन्होंने खेल ही बना रखा। श्रीकृष्ण एवं शंकरका परस्पर दिव्यास्त्रोंका प्रयोग जैसे खेल चल रहा है—

ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम्।
आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य च॥

(भा, १०।६३. १३)

वाणासुरके साथ तो श्रीकृष्णका युद्ध और भी खेलको तरह है—

तस्यास्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना।
चिच्छेद भगवान् बाहून् शाखा इव वनस्पतेः॥

(भा., १०।६३. ३२)

उसकी भुजाओंको कितनी सरलतासे काट रहे हैं। 'शाखा इव वनस्पतेः' जैसे कोई वृक्षकी शाखाको काट रहा हो। वाणासुरका प्रतिकार जैसे कोई मूल्य ही नहीं रखता।

भगवान् परशुरामका भी वीर रूप देखने योग्य है—

तमापतन्तं भृगुवर्यभोजसा धनुर्धरं बाणपरश्वधायुधम्।
ऐणेयचर्माम्बरमर्कधामभिर्युतं जटाभिर्ददृशे पुरीं विशन्॥

(भा., ९।१५. २९)

भाषामें रौद्र–

वीर-रसका ही परिपाक रौद्रमें है, इसलिए वीरके साथ रौद्र आता ही रहता है। भगवान् परशुरामका ही रौद्र रूप है—

अथार्जुनः पञ्चशतेषु बाहुभिर्धनुःषु बाणान् युगपत् स संदधे ।
रामाय रामोऽस्त्रभृतां समग्रणोस्तान्येकधन्वेषुभिराच्छिनत् समम् ॥

(भा.. ९।१५. ३३)

'एकधन्वेषुभिराच्छिनत्' सन्मुख सहस्रबाहु है। पाँच सौ धनुषोंसे शर-वर्षा कर रहा है और परशुराम एक धनुषसे उसका प्रतिकार कर रहे हैं।

श्रीकृष्णका रौद्र भी है–

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गुर्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ॥

(भा., १।९. ३७)

'चलद् गुः' पृथ्वी कांप रही है ।

श्रीरामके रौद्र-रूपका वर्णन भागवतमें है–

यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपातसम्भ्रान्तनक्रमकरो भयगीर्णघोषः ।
सिन्धुः शिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी पादारविन्दमुपगम्य बभाष एतत् ॥

(भा., ९।१०. १३)

'यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपात' की शब्दावली ही उस रोषको प्रगट करती है, जिससे समुद्र खोलने लगा था ।

भाषामें वीभत्स––

वीभत्सके भी दो रूप हैं–(१) युद्धमें रक्त-प्रवाह आदि और (२) सामान्य घिनौने वर्णन। भक्ति-काव्यमें वीभत्सके दूसरे रूपके लिए स्थान नहीं है। 'श्रीमद्भागवत' एवं 'मानस' दोनोंमें प्रथम रूप है, और यह रूप वीर व रौद्र वर्णनके साथ सहजरूपसे आता है। यही पर्याप्त है ।

श्रीमद्भागवतकी सूत्रात्मक भाषामें जिस वीभत्सका वर्णन है, उसीको मानसकारने लंकाके युद्ध वर्णन प्रसंगमें विस्तृत किया है—

संछिद्यमानद्विपदेभवाजिनामङ्गप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः ।
भुजाहयः पूरुषशीर्षकच्छपा हतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ॥
करोरुमीना नरकेशशैवला धनुस्तरङ्गायुधगुल्मसंकुलाः ।
अच्छूरिकावर्तभयानका महामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः ॥

(भा., १०।५०. २६-२७)

मानसके वीभत्स वर्णनमें इसके विस्तारवाले उदाहरण ही दिये गये हैं।

भगवान् नृसिंहका भी एक उदाहरण इस रसका देखने योग्य है--

संरम्भदुष्प्रेक्ष्यकराललोचनो व्यात्ताननान्तं विलिहन् स्वजिह्वया।
असृग्लवाक्तारुणकेसराननो यथान्त्रमाली द्विपहत्यया हरिः॥

(भा., ७।८ ३०)

'यथान्त्रमाली द्विपहत्यया हरिः' आँतोंकी माला पहिने रक्त लथपथ नृसिंहका यह रूप भाषामें साकार हो उठा है।

भद्रकालीके वीभत्स रूपको श्रीमद्भागवतके गद्यकी भाषा व्यक्त कर रही है। कितनी सशक्त भाषा है—

भृशममर्षरोषावेशरभसविलसितभ्रुकुटिविटपकुटिलदंष्ट्रारुणेक्षणाटोपाति-भयानकवदना हन्तुकामेवेदं महाट्टहासमतिसंरम्भेण विमुञ्चन्ती तत उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां तेनैवासिना विवृक्णशीर्ष्णां गलात्स्रवन्तमसृगासवमत्युष्णं सह गणेन निपीयातिपानमदविह्वललोच्चैस्तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्त च विजहार च शिरः कन्दुकलीलया। (भा., ५।८.१८)

भाषामें भयानक—

भयानक रसके भी दो रूप हैं– (१) युद्धकालकी भयानकता (२) सहज प्राकृत हिंसक पशु, सरीसृपादि। श्रीमद्भागवतमें दोनों ही रूप हैं।

भगवान् नृसिंहके सम्बन्धमें तो कहा गया है--

'नृसिंहरूपस्तदलं भयानकम्' (भा., ७।८.२०)

तथा—

करालदंष्ट्रं करवालश्चलक्षुरान्तजिह्वं भ्रुकुटीमुखोल्बणम्।
स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकन्दराद्भुतव्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणम्॥

(भा., ७।८-२१)

'भ्रुकुटीमुखोल्बणम्' तथा 'हनुभेदभीषणम्' यह भाषा ही उनकी भयानकता-को सम्पूर्णरूपसे व्यक्त करती है।

भाषामें भद्रकालीकी जिस भयानकताका वर्णन है उसपर कोई टिप्पणी देना अनावश्यक है—

इति तेषां वृषलानां रजस्तमःप्रकृतीनां धनमदरजउत्सिक्तमनसां भगवत्कलावीरकुलं कदर्थीकृत्योत्पथेन स्वैरं विहरतां हिंसाविहाराणां कर्मातिदारुणं यद्ब्रह्मभूतस्य साक्षाद्ब्रह्मर्षिसुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूतसुहृदः सूनायामप्यननुमतमालम्भनं तदुपलभ्य ब्रह्मतेजसातिदुर्विषहेण दन्दह्यमानेन वपुषा सहसोच्चचाट सैव देवी भद्रकाली। (भा., ५।९.१७)

भयानकताका द्वितीय रूप--

क्षुद्रश्वरं सुमनसां शरणे मिथित्वा
रक्तं षडङ्घ्रिगणसामसु लुब्धकर्णम्।
अग्रे वृकानसुतृपोऽविगणय्य यान्तं
पृष्ठे मृगं मृगय लुब्धकबाणभिन्नम्॥
(भा., ४।२९.५३)

इसमें भयके सभी कारण वृक, लुब्धक आदि आ गये हैं और भाषा उस रूपको साकार कर रही है।

भाषामें अद्भुत—

संस्कृत साहित्य और हिन्दी साहित्यमें अद्भुत तथा भयानक-रस प्रधान कोई कवि नहीं है। शृङ्गार एवं करुण प्रधान ही अधिक हैं। वीर और रौद्र प्रधान, हिन्दीमें भूषणका नाम बहुत प्रख्यात है। वीभत्समें नाम लेनेके लिए अधिक प्रसिद्ध न सही चिरकीनका नाम लिया जाता है। हास्य-रस प्रधान कवि वर्तमान कालमें अनेकों हैं। यद्यपि प्रायः सबका हास्य सामयिक है। हास्यमें स्थायी साहित्यका निर्माण नहीं हुआ है, कोई प्राचीन-कवि हास्य रसका नहीं है, किन्तु आश्चर्यकी बात है कि अद्भुत और भयानक-रस-प्रधान कोई कवि नहीं है, जबकि स्थायी साहित्यके लिए पर्याप्त सामग्री है। श्रीमद्भागवतमें भगवान् वामनका अवतार अद्भुत-रस प्रधान है। भयानकताके लिए हिंसक पशु सदासे ही रहे हैं, किन्तु इस ओर कोई भगवती भारतीका वरद-पुत्र आकर्षित नहीं हुआ।

श्रीमद्भागवत तो भक्ति-काव्य है, उसमें यह रस भी अपनी सीमामें भली प्रकार आया है—

यत् तद् वपुर्भाति विभूषणायुधैरव्यक्तचिद् व्यक्तमधारयद्धरि।
बभूव तेनैव स वामनो वटुः सम्पश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः॥
(भा., ८।१८.१२)

श्रुत्वाश्वमेधैर्यजमानमूर्जितं बलिं भृगूणामुपकल्पितैस्ततः ।
जगाम तत्राखिलसारसंभृतो भारेण गां सन्नमयन्पदे पदे ॥

(भा., ८।१८.२०)

जो शरीर विभूषण आयुधयुक्त था, वही देखते-देखते वामन ब्रह्मचारी बन गया। 'दिव्यगतिर्यथा नटः' कहकर अद्भुतता मूर्तिमान कर दी गयी है।

यही वामन-ब्रह्मचारी बलिकी सभामें तीन पग भूमि दान लेकर बढ़ने लगा—

तद् वामनं रूपमवर्धताद्भुतं हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम् ।
भूः खं दिशो द्यौर्विवराः पयोधयस्तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदासत ॥

(भा., ८।२०.२१)

यह इतना बड़ा हो गया कि सम्पूर्ण लोक इसके शरीरके अन्तर्गत दीखने लगे। एक और उदाहरण—

तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः
सोऽन्तःशरीरं मशको यथाविशत् ।
तत्राप्यदो न्यस्तमचष्ट कृत्स्नशो
यथा पुरामुह्यदतीव विस्मितः ॥

(भा., १२।९.२७)

श्रीरामचरितमानसमें बालक श्रीरामके मुखमें कौवेके प्रवेशका वर्णन है। श्रीराम फिर भी पैरोंसे चलनेवाले बालक थे और कौआ उनके मुखमें प्रविष्ट हुआ था। भागवतका वर्णन उससे भी अद्भुत है। प्रलय समुद्रमें वट-पत्रके दोने-पर नन्हें बाल-मुकुन्द सो रहे हैं। बहुत छोटे शिशु हैं, लेकिन उनकी नासिका छिद्रमें जटा-दाढ़ीधारी महर्षि मार्कण्डेय मच्छरकी तरह प्रविष्ट हो गये। बाल-मुकुन्दके उदरमें तो उनको सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड देखना ही था।

सख्यरस—

सम-रसतामें ही सख्यका विकास होता है। सख्यमें देना-लेना, खाना-खिलाना, आना-जाना यह छः परस्पर चलनेवाले व्यवहार हैं। श्रीमद्भागवतमें सख्यका स्वरूप गोप-बालकोंमें पूर्णतया विकसित हुआ है। गोप-बालकोंमें श्रीकृष्णके प्रति कितनी प्रीति है—

मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका रामादयः प्राणमिवैन्द्रियो गणः।
स्थानागतं परिरभ्य निर्वृताः प्रणीय वत्सान् व्रजमेत्य तज्जगुः॥

(भा., १०।११.५३)

'प्राणमिवैन्द्रियो गणः' जैसे इन्द्रियोंमें प्राण आ गया हो। प्रीतिका इससे उत्तम वर्णन भाषा कैसे करेगी ?

सब सखा श्रीकृष्णके साथ बैठकर भोजन कर रहे हैं। सख्यका यह भोजन भाषामें बहुत सुन्दर स्पष्ट किया गया है—

केचित् पुष्पैर्दलैः केचित् पल्लवैरंकुरैः फलैः।
शिग्भिस्त्वग्भिर्बिषद्भिश्च बुभुजः कृतभाजनाः॥

भा., १०।१३.९

श्रीकृष्णको यह सह्य नहीं है कि उनके मित्र भोजन छोड़कर बछड़े लेने जायें। वे कहते हैं--'आशान्मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम्' (भा., १०। १३.१३) इतना ही नहीं है, वे सर्वेश्वर अजित उनसे पराजित होते हैं। उन्हें पीठपर लेकर ढोते हैं—

उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः।
वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणीसुतम्॥

(भा., १०।१८.२४)

सख्यका एक रूप सुदामाके चरितमें भी देखनेको मिलता है। श्रीकृष्ण सुदामासे स्वयं मांगते हैं—

'किमुपायनमानीतं ब्रह्मन् मे भवता गृहात्'। (भा., १०।८१.३)

सुदामाके चार घरसे मांगे हुए चार प्रकारके मिले-जुले चिवड़े स्वयं छीन लेते हैं और बड़े प्रेमसे खाते हुए कहते हैं—

नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनं सखे।
तर्पयन्त्यङ्ग मां विश्वमेते पृथुकतण्डुलाः॥ (भा., १०।८१.९)

यह मित्रका उपहार है। इसलिये बहुत प्रिय है। घर लौटनेपर श्रीकृष्णके दिये हुए अकल्पनीय वैभवको देखकर भी सुदामा कहते हैं—

तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री दास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात् ।
महानुभावेन गुणालयेन विषज्जतस्तत्पुरुषप्रसङ्गः ॥
(भा., १०।८१ ३६)

भाषा यहाँ सुदामाके सख्य विभोर हृदयके अन्तःकरणको बड़े स्वाभाविक रूपसे प्रकट कर रही है ।

वात्सल्य रस—

श्रीमद्भागवतमें यह बहुत अधिक है । वात्सल्यका वर्णन दो प्रकारका होता है । बालका चापल्य और माता-पिताका उसके प्रति स्नेह ।

देवकीका स्नेह भागवतमें वर्णित नहीं है, किन्तु सन्मुख शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज परम पुरुषको देखकर जब माँ कह उठती हैं—

जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन ।
समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥ (भा., १०.३.२९)

'समुद्विजे भवद्धेतोः'—तब माताका वात्सल्य ही है कि वह परम पुरुषके लिए भी कंससे आशंका मानती हैं ।

भैया यशोदाके वात्सल्यका वर्णन है । गोपियाँ अनेक बार उलाहना देती हैं । उनका उपालम्भ अस्वाभाविक भी नहीं है, नन्दनन्दन ऊधम भी कम नहीं करते हैं—

हस्ताग्राह्ये रचयति विधिं पीठकोलूखलाद्यै-
श्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद्वित् ।
ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वाङ्गमर्थप्रदीपं
काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥
एवं धाष्टर्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ
स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथाऽऽस्ते ।
इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभि-
र्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी न ह्यपालब्धुमैच्छत् ॥
(भा., १०।८.३०-३१)

'कुरुते मेहनादीनि वास्तौ'—ऊधमकी हद हो गयी है । 'सुप्रतीको यथाऽऽस्ते' और मैयाके पास खड़े कैसे हैं ? भोले बने हुए । 'सुप्रतीको' में भाषा बहुत

कुछ कह देती है, लेकिन मैयाका वात्सल्य ही है---'व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी' मैया अपने बालकको नहीं देखती हैं। गोपियां उलाहना भी दे रही हैं, और हँस भी रही हैं, इसलिए उनका तात्पर्य समझनेमें मैयाको क्यों भ्रम हो, 'न ह्यपालब्धुमैच्छत्' मैयाका वात्सल्य बहुत स्पष्ट है।

बालकपर वात्सल्यमयी माताको क्रोध नहीं आयेगा---ऐसी बात नहीं है। मैयाको क्रोध आता है, जब वह मिट्टी खा लेते हैं—

कस्मान्मृदमदान्तात्मन् भवान् भक्षितवान् रहः।
वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम्॥

(भा, १०।८.३४)

'अदान्तात्मन्' इसमें मैयाका रोष स्पष्ट है।

श्रीकृष्णका माताके प्रति स्नेह भी बहुत स्पष्ट रूपसे वर्णित है—

स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः।
दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने॥

(भा., १०।९.१८)

माताका परिश्रम देखकर स्वयं बँध जाते हैं।

भाषा मांके वात्सल्यको कितना स्पष्ट व्यक्त करती है—

कृष्ण कृष्णारविन्दाक्ष तात एहि स्तनं पिब।
अलं विहारैः क्षुत्क्षान्तः क्रीडाश्रान्तोऽसि पुत्रक॥
हे रामागच्छ ताताशु सानुजः कुलनन्दन।
प्रातरेव कृताहारस्तद् भवान् भोक्तुमर्हति॥

(भा., १०।११.१५-१६)

माँ पुकार रही हैं---'क्षुत्क्षान्तः क्रीडाश्रान्तोऽसि' मेरे नन्हें बच्चे! तुम खेलमें थक गये हो, भूखसे दुबले हो रहे हो।

इस प्रकार श्रीमद्भागवतमें रसानुकूल भाषाके इतने अधिक उदाहरण हैं कि उन सबको उद्धृत करनेपर एक पृथक ग्रन्थ ही बन जायेगा।

(ख) मानसकी प्रसंगानुकूल भाषा

प्रतिपाद्य वस्तुकी आनन्द-विधायिनी अभिव्यंजन-शैली कला है। अतः काव्यकलाका सारा सौन्दर्य शब्द और अर्थके समुचित सामंजस्यपर निर्भर है। 'शब्दार्थौ काव्यम्,' 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्,' 'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्द काव्यम्' अथवा 'आखर अरथ अलंकृति नाना' आदिका यही तात्पर्य है। व्यवस्थित वस्तु-विन्यास, प्रसंगानुकूल भाषा, विभाव आदिके उचित संयोजनसे रसानुकूल चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता, उपयुक्त अलंकार एवं संवादोंकी समायोजना उस सामंजस्यको रमणीक बनाते हैं।

समर्थ काव्य भाषाका मूलभूत घने शब्दार्थ-सन्तुलन है। काव्य-कलाके विशेषज्ञ तुलसीने शब्दार्थ-नियोजनके इस धर्मका निपुणताके साथ निर्वाह किया है। प्रसंगानुकूल भाषामें उनकी नपी-तुली शब्दावली उस प्रतिपाद्य अर्थके संप्रेषणमें सर्वथा समर्थ है। मानसकार प्रारम्भमें ही कहते हैं—

भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन बिबिध प्रकारा॥
कबित बिबेक एक नहिं मोरें। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरें॥

(मानस, १।८.१०-११)

यह मानसकारका विनय एवं अप्रतिशील ही है, अन्यथा मानस तो काव्यके समग्र गुणसे ओतप्रोत है। भाषा प्रसंगके अनुरूप है, रसके अनुकूल है एवं पग-पगपर वर्ण्य-विषयका बिम्ब उपस्थित कर देनेमें पूर्ण सक्षम है। प्रसंगानुकूल भाषाके उदाहरण मानसमें इतने अधिक हैं कि उनका पूर्णतः संकलन एक पृथक् ग्रन्थ हो जायेगा। यहाँ केवल अंगुल्यनिर्देशके लिए थोड़े उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

'प्रगटेउ बिषमबान झषकेतू' (मानस, १।८२.८)

'कामदेव' जैसा सौन्दर्य माधुर्यका देवता, जिसका धनुष ही पुष्पका बना है। यहाँ :विषमबान' और 'झषकेतू' कहकर उसके पौरुष-भावको प्रकट कर

देता है। भगवान् शङ्करकी बारात एवं उनके वर-स्वरूपका यहाँ वर्णन नहीं कर रहे, केवल एक पंक्ति है—'गरल कंठ उर नर सिर माला' (मानस, १।९१.४) यह जैसी अटपटी बारात है, उनका जैसा अटपटा वेष है, उसे सूचित करनेको ही 'नीलकण्ठ' न कहकर 'गरल कंठ' कहा गया तथा 'नर सिर माला' तो स्वतः भयंकरताको प्रकट कर रही है। ऐसी बारातको देखकर कहा ही क्या जा सकता है ? बालकोंने ठीक ही हिमांचलके घर कहा—'बरु बौराह बसहँ असवारा' (मानस, १।९४.८)। इसमें अनुप्रास तो है ही 'बौराह' शब्द ही वरके 'बौड़मपने' को प्रकट कर रहा और 'बसहँ' उनका 'वाहन' भी 'लचर पचर' बूढ़ा बैल है। जहाँ एक और भगवान् शिवका यह वर्णन है, वहीं दूसरी ओर उन्हींका स्वरूप है—

कुंद इंदु दर गौर सरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनिचीरा॥
तरुन अरुन अंबुज सम चरना।..... (मानस, १।१०५.६-७)

भगवान् शिवके शरीरकी शोभाके लिए तीनों उपमाओंकी सार्थकता है। 'कुंद' के समान मृदुल, इन्दुके समान ज्योतिर्मय एवं शंखके समान सुदृढ़ श्वेत शरीर है। इसी प्रकार 'तरुन अरुन अंबुज' चरणोंकी कोमलता, अरुणिमा दोनोंको मूर्तिमान कर देता है। यहाँ शब्दोंका यथोचित विन्यास प्रसंगके अनुरूप है। इसी प्रकार दूल्हा वेषमें भगवान् शंकर 'कुंडल कंकन पहिरे ब्याला' (मानस, १।९१.२) में जानबूझकर अटपटा वेष बनाये हैं, वही प्रभु कैलासमें विराजते हैं तब 'भुजग भूति भूषन त्रिपुरारी' (मानस, १।१०५.८) हैं। वहाँ 'ब्याल,' यहाँ 'भुजग' स्पष्ट कहते हैं कि वहाँ सर्प फण फैलाये लहरा रहे हैं इसलिये 'ब्याल' है और यहाँ आभूषण बने शान्त शोभित हो रहे हैं इसलिए 'भुजग' है।

भगवान् शिवकी जिस शोभाको भाषाने व्यक्त किया है, वही श्रीरामकी शोभाकी वर्णन-शैली है—

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम'। (मानस, १।१९६)

उपमामें यहाँ किंचित् अन्तर किया गया है। भगवान् शिव भूति-भूषण हैं, इसलिए सौकुमार्य 'कुंद' तक ही रह गया, किन्तु श्रीरामके वर्णनमें 'नील सरोरुह' सौकुमार्यको नहीं, अंग गन्धको प्रकट करता है। 'नीलमणि' अंग-कान्तिको और सौकुमार्यको प्रकट करनेके लिए 'नील नीरधर' है। सौकुमार्य-में यह उपमा पराकाष्ठा की है।

व्यंग भाषा

मानसका अपना वैशिष्ट्य है कि प्रसंगके अनुरूप भाषा स्वतः मुखरित हो उठी है। जिसे पग-पगपर परखा जा सकता है। स्वयंवर सभामें बैठे नारद समुत्सुक हैं कि शीलनिधिकी कन्या विश्वमोहिनी उन्हें वरण कर ले। समीप बैठे शिवगण व्यंग करते हैं—'रीझिहि राजकुंअरि छबि देखी। इन्हहि बरिहि हरि जानि बिसेषी॥' (मानस १.१३३.४) में व्यंग कितना युखरित हो उठा है। इतना ही मुखर है नारदका रोष और उनकी भाषा—

डहकि डहकि परिचेहु सब काहू। (मानस, १।१३६.३)

अरण्यमें राजा प्रतापभानु और कपटी मुनि समागमके प्रसंगमें नाम पूछते हैं तो मुनिका उत्तर द्रष्टव्य है—'नाम हमार भिखारि अब, निर्धन रहित निकेत' (मानस, १.१६०) इस वाणीमें केवल कपट नहीं है, अपितु 'भिखारि अब' में यह 'अब' शब्द ही अन्तर्व्यथाको बहुत कुछ व्यक्त कर देता है। इसमें अपने पहिले वैभवका स्मरण है, वर्तमानके प्रति क्षोम है, शत्रुको सन्मुख देखकर रोष है, यह सब 'अब' शब्द प्रकट कर रहा है। इसी प्रसंगमें युद्धमें जब प्रतापभानु मारा जाता है—'जूझे सकल सुभट करि करनी' (मानस, १।१७४.६) में भाषा सम्पूर्ण चित्र ही सन्मुख उपस्थित कर देती है। 'जूझे सकल' एवं 'करि करनी' शब्द ही स्पष्ट करते हैं कि कोई भागा नहीं, पूरे शौर्यका प्रदर्शन किया, किन्तु बहुत शीघ्र मारे गये।

रावणने लंकापर अधिकार प्राप्त कर लिया, वहाँ जो कुबेरके सेवक थे—उनके लिए कहा गया है—'जच्छ जीव लै गए पराई' (मानस, १।१७८.४) में भाषा बोल रही है कि यक्ष भयातुर होकर सब छोड़कर भाग गये अपने प्राणोंको बचाकर। रावणका वर्णन है—'रन मद मत्त फिरइ जग धावा' (मानस, १।१८१.६) में भाषा ही कहती है कि जैसे कोई पागल हाथी अन्धा-धुन्ध बिना लक्ष्यके विनाश करता दौड़ रहा है।

श्रीरामके बाल-चापल्यके वर्णन प्रसंगमें है—

भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ॥
(मानस, १।२०३)

गोस्वामी तुलसीदासका बाल-वर्णन बहुत कम है, किन्तु जितना भी है, वह बहुत स्वाभाविक है। 'इत उत अवसर पाइ' तथा 'दधि ओदन लपटाइ'

ये शब्द ही अपने आपमें बाल-स्वरूपका पूर्ण चित्र उपस्थित कर देते हैं। इसी प्रकार 'सुभग सोन सरसीरुह लोचन' (मानस, १।२१८.६) में नेत्रोंका वर्णन 'सरसीरुह' के साथ 'सोन' लगकर श्रीरामके रतनारे नेत्रोंका बिम्ब सन्मुख कर देता है।

पुष्प-वाटिका प्रसंगमें 'कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि' (मानस, १।२२९.१) में जो रणक है, वह जैसे किंकनी नूपुरकी ध्वनिको मुखर कर रही है। इसी प्रकार 'मुख सरोज मकरंद छबि करइ मधुप इव पान' (मानस, १।२३१) में पूर्व रागकी मुग्धताका अत्यन्त सजीव वर्णन है।

श्रीरामके सौन्दर्य वर्णनमें 'सोभा सीवँ सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजाभ सरीरा। (मानस, १।२३२.१) में 'जलपात' नहीं 'जलजाभ' कहकर सौकुमार्यको मूर्तिमान कर दिया है। केशोंके वर्णनमें 'चिक्कन कच कुंचित गभुआरे'। (मानस, १।१९८.१०) 'गभुआरे' में सब कुछ कह दिया है। वस्तुतः इस शब्दका पर्याय नहीं है। केशकी चार विशेषताएँ हैं— 'बारीक, सघन, स्निग्ध एवं घुंघराले। 'चिक्कन' एवं 'कुंचित' कहकर स्निग्ध एवं घुंघराले कह दिया, किन्तु एक ही शब्द 'गभुआरे' में सघनता, सक्षमताका भव्यतासे वर्णन कर दिया है। इन्हीं केशोंका वर्णन द्वितीय स्थलपर द्रष्टव्य है—'मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों' (मानस, ३।१७ छं.) वनमें श्रीराम केशोंका जटा-जूट बना चुके हैं, किन्तु किंचित वर्णनपर ध्यान दें तो ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रलयको प्रस्तुत रुद्रका वर्णन किया जा रहा हो। मरकत शैल शिखरपर करोड़ों फुंकार करते भुजगोंके मध्य विद्युत चमक रही है, युद्धोद्धत श्रीरामके ओजका वर्णन इससे अधिक सुन्दर शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं हो सकता।

रंगभूमिमें श्रीजानकीजीका वर्णन है—

'पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला॥'

(मानस, १।२४७ ६)

'अवचट चितए' में अचानक जैसे भूलसे देख लिया हो। शब्दोंमें कितनी उपेक्षा, अकस्मात्पना एवं शीघ्रता है, यह शब्दकी शक्ति ही बता रही है। इसी प्रकार 'गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी' (मानस, १।२५८.१) जिसने कमल-कोषमें अवरुद्ध भ्रमरीको देखा नहीं है, उन्हें वाणीको मुखमें रोकनेकी यह विवशता समझमें नहीं आ सकती। महाराज जनकके शब्दोंसे उत्तेजित

लक्ष्मण 'माखे लखनु कुटिल भइँ भौहें। रदपट फरकत नयन रिसौहें॥' (मानस, १।२५१.८) में लक्ष्मणका चित्र उपस्थित कर दिया है तथा महाराज जनकका चित्र ही प्रकट हो गया है—'बीर बिहीन मही मैं जानी' (मानस, १।२५१-३) में जितनी निराशा और तिरस्कार है लक्ष्मणके वर्णनमें उतना ही आवेश एवं शौर्य है।

'उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे॥' (मानस, १।२६५ २) में कवचका यह 'सनाह' नाम जैसे उसे व्यर्थ किये दे रहा है और 'गाल बजावन' तथा 'अभागे' शब्दोंके द्वारा उपस्थित नृप-मण्डलीका उचित तिरस्कार व्यक्त हुआ है। ये भाग्यहीन हैं, मंद मति हैं— ये शब्द ही प्रकट कर देते हैं।

आक्रोशपूर्वक परशुरामका कथन 'कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा' (मानस, १।२६९.३) में शब्द ही उनका रोष व्यक्त कर देते हैं। इसीके प्रत्युत्तरमें श्रीरामके शील एवं उनकी विनम्रताको शब्द ही व्यक्त कर देते हैं— नाथ 'संभुधनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दास तुम्हारा॥' (मानस, १।२७०.१) लेकिन लक्ष्मण तो मृदु वाणी भी जो बोलते हैं वह जैसे छुरेकी तीक्ष्ण धारा है—'पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू॥' (मानस, १.२७२.२) लक्ष्मणका व्यंग शब्दों द्वारा पूरा मुखरित हो उठा है—'माता-पितहि उरिन भए नीकें। गुर रिनु रहा सोचु बड़ जीकें॥' (मानस, १।२७५.२) यह व्यंग पराकाष्ठापर पहुँच जाता है जब कहते हैं— 'टूट चाप नहिं जुरिहि रिसाने। बैठिअ होइहिं पाय पिराने॥' (मानस, १।२७७.२)। श्रीरामकी ओजपूर्ण वाणीको शब्द ही व्यक्त कर रहे हैं— 'छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहिं पावँर आना॥' (मानस, १।२८३.३)। इस ओजने परशुरामको हतप्रभ कर दिया है। 'राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू॥' (मानस, १।२८३.७) का प्रयोग ही अद्‌भुत है, यही समझ पाना कठिन है कि राम अथवा धनुषको ही रमापतिका बता रहे हैं। इसके पश्चात् तो जैसे उबलते दुग्धमें जलके छींटे पड़ गये हों, परशुरामकी वाणी ही विनम्रतासे परिपूर्ण हो जाती है,— 'जय रघुबंस बनज बन भानू।..... .....जय सुर बिप्र धेनु हितकारी'॥ (मानस, १।२८४.१-२)।

श्रीरामके वर-वेष-प्रसंगमें उनकी शोभाका वर्णन 'केकि कंठ दुति स्यामल अंगा' (मानस, १।३१५.१) से की है। शरीरकी श्यामलताका वर्णन

मानसमें अनेक प्रकारका है, किन्तु यहाँ 'केकि कंठ' अर्थात् मयूरके कण्ठके समान द्युतिमान है। यह उपमा व्याह विभूषण बनाये दूल्हा श्रीरामके लिए प्रसंगके सर्वथा अनुकूल आयी है।

प्रभु मनसहिं लयलीन मनु चलत बाजि छबि पाव।
भूषित उड़गन तड़ित घनु जनु बर बरहि नचाव॥

(मानस, १।२१६)

यहाँ अश्वको अश्व भी कहा जा सकता था किन्तु 'बाजि' कहकर उसकी गतिमें बाजकी-सी तीव्रता, घुमाव और नियंत्रण सब स्पष्ट कर दिया है। 'जनु वर बरहि' में अश्वको मयूर कहना अश्वके नृत्यको स्पष्ट कर रहा है।

देवों द्वारा पुष्प-वर्षाका वर्णन तो बहुत स्थानोंपर है पर यहाँ कहा गया है—'बृंदारका गन सुमन बरिसहिं राउ जनवासेहि चले' (मानस, १।३२५ छं.) जैसे देवता ही बराती हो गये हैं, वह सुमन ही नहीं बरसा रहे अपितु सुन्दर मन भी न्यौछावर कर रहे हैं।

'निज पानि मनि महुँ देखिअति मूरति सुरूप निधान की' (मानस, १।३२६.छं.) में जानकीकी लज्जा, प्रेम, मुग्धता सब शब्दोंमें चित्रित हो गयी है।

'सहित बधूटिन्ह कुअँर सब तब आए पितु पास।' (मानस, १।३२७) में 'बधूटिन्ह' शब्द अल्प-वयको कितनी मधुरता, स्पष्टतासे व्यक्त कर रहा है यह देखने योग्य है। महाराज दशरथ अयोध्या आनेपर कुल बधुओंकी इस अल्प वयको प्रकट कर रहे हैं—'बधू लरिकिनीं पर घर आई। राखेहु नयन पलक की नाईं॥' (मानस, १।३५४.८) तथा तुरन्त ही—'लरिका श्रमित उनीद बस·····(मानस, १।३५५) भी कह रहे हैं।

शृंगवेरपुरमें निषादराजकी कितनी ओजपूर्ण भाषा है—'सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ॥' (मानस, २।१८९. २) इसमें 'जिअत न सुरसरि' से यह बात स्पष्ट है कि निषादको विजयकी आशा नहीं है। अयोध्याकी दिग्विजयिनी सेनाके साथ कोई निषाद विजयकी आशा कर भी कैसे सकता है? यह जानकर भी निश्चयकी दृढ़ता व्यक्त हो रही है। 'सन्मुख लोह····' से प्रकट है कि आक्रमणके बचावकी कोई प्रस्तुति नहीं है, केवल युद्धमें मर जानेकी उत्कण्ठा है। आजका कोई भी कूटनीतिज्ञ कहेगा कि 'निषाद मूर्ख था। उसे चाहिये कि निषादोंको आज्ञा देता कि

नौकाओंको ऐसा कर दो कि मँझधारमें पहुँचकर सब डूब जायें।' परन्तु निश्छल राम भक्तके हृदयमें यह कुत्सित भावना आना सम्भव ही नहीं था।

श्रीभरत कहते हैं—'लालन जोगु लखन लघु लोने' (मानस, २।१९९.१) इसमें अनुप्रासके लालित्यको विस्मृत कर भी दिया जाये तब भी 'लघु लोने' में जो वात्सल्य व्यक्त है वह दृष्टिसे ओझल नहीं किया जा सकता, जबकि भरतसे लक्ष्मण कुछ घण्टे ही छोटे हैं, पूरे दिनका अन्तर भी नहीं है।

श्रीभरतके चरणोंका वर्णन भी अवलोकनीय है—

'झलका झलकत पायन्ह कैसें। पंकज कोस ओस कन जैसें॥

(मानस, २।२०३.१)

'पंकज कोस ओस कन' में चरणोंकी अरुणिमा, कोमलता और उसमें पड़े हुए फफोलोंको जैसे मूर्तिमान कर दिया है।

'रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही। निर्भय चलेसि न जानेहि मोही॥'

(मानस, ३।२८.११)

इसमें जटायूके डाँटनेमें जो दृढ़ता है और तिरस्कार है, शब्द उसे व्यक्त कर देते हैं।

कतहुँ होइ निसिचर सैं भेटा। प्रान लेहिं एक एक चपेटा॥

(मानस, ४।२३.१)

'एक-एक चपेटा' व्यक्त कर रहा है कि बहुत अधिक वानर हैं। राक्षसोंको मारनेके लिए उनको एक-एक थप्पड़ ही पर्याप्त होता है।

'मुठिका एक महा कपि हनी' (मानस ५।३.४) में 'महाकपि' ध्यान देने योग्य है, क्योंकि लंकामें प्रवेश करते समय हनुमानका रूप 'मसक' समान है। वह नन्हा कपि ही मुष्ठिका मार रहा है, पर मुष्टिका कैसी है? यह सूचित करनेको 'महाकपि' आया है।

'निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारीं।' (मानस, ५।२४.९.)

हनुमानजीको राक्षसोंने भली प्रकार बाँधा था। उस बंधनसे वह कैसे सरककर निकल गये, यह 'निबुकि' शब्दने नेत्रोंके सन्मुख उपस्थित कर दिया है।

अब धौं कहा करिहि करतारा। (मानस, ६।१७. ८)

यह वर्णन अपने आपमें ही कह रहा है कि राक्षस कितने भयग्रस्त हैं।

अंगद रावण संवादमें अंगदका कथन है—

धर्मसीलता तव जग जागी (मानस, ६।२१.८)

इसमें कितना तीखा व्यंग है, जो कितने उपयुक्त अवसरपर आया है। पुनः अंगद कहता है—

कहु रावन रावन जग केते (मानस, ६।२३.१२)

तब तब तो शब्द परिहासकी सीमापर पहुँच जाता है। अंगदका व्यंग न केवल अकेले रावणका अपितु उसकी पूरी भरी सभामें उसका उपहास करनेवाला है। क्योंकि रावणने अपनी पराजय कथाएँ लंकामें छिपायी ही होंगी।

जब रावण कह देता है कि—

आये कीस काल के प्रेरे (मानस, ६।३९. ३)

रावणके इस दम्भमें कैसी ढोलकी पोल है, इसे ग्रन्थकार कह देता है—

जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना (मानस, ६।३९. ६)

बहुत संक्षिप्त प्रसंग है—हनुमानजीसे संजीवनी लेने जाते समय सरोवरमें एक मकरी (मादा मगर) अपने उद्धारके समय कहती है—

'कपि तव दरस भयउँ निष्पापा' (मानस, ६।५७. १)

इन शब्दोंमें उसका विगतके प्रति शोक, पश्चाताप और वर्तमानके प्रति सन्तोष है यह स्पष्ट है। वह कहती है कि यह मकरी शरीर पापका परिणाम था, तुम्हारे 'दरस' से यह शरीर ही नहीं छूटा अपितु निष्पाप हो गयी।

कुम्भकर्णकी भयानकताको शब्द ही प्रकट कर रहे हैं—

कुम्भकरन रन रंग बिरुद्धा। सन्मुख चला काल जनु कुद्धा॥

(मानस, ६।६६.१)

यही कालके सदृश लगनेवाला कुम्भकर्ण जब श्रीरामसे युद्ध प्राप्त करता है तब कितना दयनीय हो जाता है, फिर भी उसका भयानकत्व जाता नहीं।

'काल त्रोन सजीव जनु आवा।' (मानस, ६।७०. ३) तथा 'धरनि धसइ धर धाव प्रचण्डा' (मानस, ६।७०. ६) ये शब्द कुम्भकर्णकी विशालता और उसके कबंधके दौड़नेकी भयानकताको प्रकट कर रहे हैं।

लंकाके युद्धान्तमें भगवान् शंकर स्तुति कर रहे हैं। स्तुति करनेवाला जैसा है, उसकी स्तुति भी वैसी ही है, निर्गुण भी और सगुण भी—

'अगुन सगुन गुन मन्दिर सुन्दर' (मानस, ६।११४. छं.)

'गुन मंदिर सुन्दर' में यह भाषा 'जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने' (मानस, ७।१२. छं १) को साकार किये दे रही है।

उत्तरकाण्डके मंगलाचरण—'जन अवगुन प्रभु मान न काऊ' (मानस, ७।०. ६) में भरतका कितना दृढ़ विश्वास एवं अपूर्व निष्ठा है।

'भरि लोचन बिलोकि अवधेसा' (मानस, ७।११०.११)

'भरि लोचन बिलोकि' में कितनी लालसा है, उत्कण्ठा है, समझा जा सकता है।

प्रसंगानुकूल भाषाके ये बहुत थोड़े उदाहरण हैं। मानस ऐसे उदाहरणोंसे सर्वत्र भरा पड़ा है। जितना अधिक अन्वेषण किया जाये मानसकी भाषामें अनन्त रत्नराशिका भण्डार प्रकट होता रहेगा। विस्तार-भयसे यह प्रसंग यहीं छोड़ना पड़ रहा है।

भाव सौन्दर्य—

श्रीरामचरितमानसमें भी श्रीमद्भागवतके समान ही भाषाकी अपेक्षा भावको प्राधान्य दिया गया है, किन्तु भाषाका अलंकृत, सप्राण, सुन्दरतम सौष्ठव कहीं भी शिथिल नहीं हुआ है। भावोंका लोकोत्तर गाम्भीर्य तो है ही। भक्तिका प्रवाह ही शिथिल हो जाता, यदि भाव-शैथिल्य आता। लेकिन मानस तो लोकको भाव निमग्न कर देता है।

पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना॥

(मानस, १।२१०. छं. ६)

भाव गाम्भीर्यके साथ भाषाका प्रवाह, अलंकृति और 'मम मन मधुप' की अभीप्सा स्वतः अपनी महिमाका वर्णन करती है।

भावात्मक भाषा-सौन्दर्य स्तुतियोंमें अत्यन्त मुखर हो उठा है—

मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन॥

(मानस ७।५०.१)

'मामवलोकय'—मेरी ओर देखिये। इस आग्रहमें कितनी लाक्षणिकता और दृढ़ अनुरोध है।

देखकर क्या करना है आपको, यह तो पंकज-लोचन और सोच-विमोचन सम्बोधन ही कह देते हैं।

सूत्रात्मक भाषा—

श्रीरामचरितमानसमें पुराणोंके समान समास-व्यास पद्धति नहीं अपनायी गयी है, किन्तु मानसमें भी सूत्रात्मक-शैली स्थान-स्थानपर स्वीकृत है—

बधि बिराध खरदूषनहि, लीलाँ हत्यो कबन्ध।
बालि एक सर मारच्यो तेहि जानहु दसकन्ध॥

(मानस, ६।३६)

अनेक घटनाओंका एक दोहेमें वर्णन तो है ही–'लीलाँ हत्यो कबन्ध' में कबन्ध-वध कैसे बिना श्रम हुआ, यह भी कह दिया गया।

शब्द चयनात्मक सौन्दर्य—

कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दसन बिसद बर बारे॥

(मानस, ७।७६. ३)

'कलबल बचन' से अधिक उपयुक्त शब्द शिशुकी तोतली वाणीके लिए मिलना कठिन ही है।

'दुइ दुइ' में दसनका नन्हापन भी स्पष्ट हो गया है।

अभिव्यञ्जनात्मक सौन्दर्य—

बाउ कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला॥

(मानस, १।२७९. ४)

लक्ष्मण-परशुराम संवाद तो पूरा ही व्यञ्जना-शैलीका श्रेष्ठ उदाहरण है, किन्तु यहाँका व्यंग अद्‌भुत है। जैसे प्रत्येक शब्द ठीक विपरीत अर्थ देनेको ही प्रयुक्त हुआ है।

चित्रात्मक सौन्दर्य—

चारु चरन नख लेखति धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी॥

(मानस, २।५७. ५)

श्रीजानकीकी बिना बोले भी जैसी बहुत कुछ कह रही हो, उनका चरण नखसे धरनी-लेखन उनका ऐसा चित्र उपस्थित करता है, जो सजीव ही नहीं है, नूपुर-मुखरके समान स्वयं भी मुखर है।

श्रीरामचरितमानसमें ऐसे प्रसङ्गानुकूल भाषाके सहस्रशः उदाहरण दिये जा सकते हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ ही प्रसङ्गानुकूल भाषाका आदर्श उदाहरण है।

अनुभावोंकी अभिव्यञ्जना

श्रीरामचरितमानसमें पग-पगपर अनुभावोंकी मुन्दर संयोजना है। पुष्प-वाटिका प्रसङ्गकी एक झाँकी द्रष्टव्य है—

'भाल तिलक श्रमबिन्दु सुहाए।' (मानस, १।२३२. ३)

मास मार्गशीर्ष है, प्रातःकालका समय है। स्नान करके ही पुष्प-चयन हेतु आये हैं। फिर भी 'श्रम-बिन्दु' का क्या अभिप्राय? श्रीरामके मनमें विशुद्ध सात्विक प्रेमका जो स्फुरण हुआ है, उसका अनुभाव यह स्वेद बिन्दु है।

ध्वन्यात्मक सौन्दर्य—

एक-एक शब्द अपने स्थानोंपर ऐसे उपयुक्त है कि दूसरा शब्द उसका स्थान नहीं ले पाता–

'धाए रामु सरासन साजी' (मानस, ३।२६.१०)

यहाँ श्रीरामके मनमें मारीचके लिए कोमलता है, दया है, अनुराग है, अतः 'सरासन' का ही प्रयोग उपयुक्त है, 'धनुष-कोदण्ड' नहीं। इसी प्रकार 'कोदंड खंडेउ राम तुलसी' (मा, १।२६०. छं.) इसमें श्रीरामका रोष-शौर्य एवं ओज है।

वर्णनात्मक सौन्दर्य—

मानसकार दो पुरियोंका वर्णन कर रहे हैं। एक जनक-पुरीका वर्णन है और दूसरा लंका-पुरीका। दोनों नगरोंको देखनेवाले अभी दूरसे ही देख रहे हैं। जनक-पुरीकी शोभा श्रीराम देख रहे और लंकाको पवनतनय। दोनोंका वर्णन भाषाके अन्तर्गत देखने योग्य है—

बापीं कूप सरित सर नाना। सलिल सुधासम मनि सोपाना॥
गुंजत मंजु मत्त रस भृङ्गा। कूजत कल बहुबरन बिहंगा॥
बरन बरन बिकसे बनजाता। त्रिबिधि समीर सदा सुखदाता॥

सुमन बाटिका बाग बन बिपुल बिहंग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवत सोहन पुर चहुँ पास॥

बनइ न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहँइँ लोभाई॥

(मानस, १।२११. ६ से २१२. १)

जनक-पुरी कितनी सुहावनी है। इसमें भाषा भी सुकोमल ललित और हृदय-हारिणी है।

अब लंकका विवेचन लीजिये—

कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुन्दरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथीं चारु पुर बहु बिधि बना॥

(मानस, ५।२. छं. १)

लंका स्वर्णकी बनी है। बहुत सुदृढ़ नारी है। उसमें राक्षस अत्यन्त पुष्ट हैं। उनका रूप-रंग जैसा होगा, आप अनुमान कर हा सकते है। इस लंकाके विवेचनमें राक्षसोके आकार-प्रकारको वर्णित करनेवाली भाषा सर्वथा प्रसङ्गके अनुकूल है।

निष्कर्ष

भाषाकी तीन वृत्तियाँ होती हैं—अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना। श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनों ग्रन्थोंमें तीनों वृत्तियोंके उत्कृष्टतम स्वरूप अभिव्यक्त हुए है।

भाषा स्वरूपतः कई प्रकारकी होती है—सौम्य-उग्र, नम्र-कर्कशा, अनलंकृता-अलंकृता, ललिता-रुक्षा, लघु निक्षेपा (छोटे वाक्यवाली)

दीर्घ निक्षेपा (लम्बे समासयुक्त), सरला-जटिला, सूत्रात्मिका-व्याख्यात्मिका, तर्कात्मिका-भावात्मिका, प्रतीकात्मक-इङ्गितात्मक(संकेतात्मक),चित्रात्मिका-काव्यात्मिका आदि अनेक रूप भाषामें होते हैं। श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें इन सभी रूपोंका प्रयोग उपयुक्त स्थानोंमें उत्कृष्ट शैलीमें हुआ है।

श्रीरामचरितमानसमें रसानुकूल भाषा

श्रीमद्भागवतके समान मानस भी भक्ति ग्रन्थ होनेके कारण शान्त-रस प्रधान है। मानसमें भक्तिको सर्वश्रेष्ठ तत्व स्वीकार किया गया है—

प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही॥
भगति हीन गुन सब सुख ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे॥
भजनहीन सुख कवने काजा।..... ॥

(मानस, ७।८३.४-६)

इसलिए विवेचन शान्त-रससे किया जा रहा है।

शान्त-रस—

मानसकी प्रायः सब स्तुतियाँ, सब उपदेश प्रसंग, सब वर्णनात्मक प्रसंग शान्त-रसके हैं। उदाहरणके लिए एक दोहा ही पर्याप्त है—

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥

(मा. १।१९२)

भाषा रसके अनुरूप, सर्वथा गम्भीर, ऐसी सरिताकी भाँति है, जिसमें प्रवाह तो है, किन्तु लहरें नहीं हैं।

शृङ्गार—

शृङ्गार रसके दो रूप हैं। (१) संयोगात्मक (२) वियोगात्मक अथवा सम्प्रयोग और विप्रयोग। विरहके बिना संयोगके माधुर्यका ठीक आस्वादन नहीं होता। जैसे भूखेको ही भोजनका पूरा स्वाद मिलता है, वैसे ही वियोगसे संयोगका पूर्ण परिपाक होता है।

भगवान् श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। गोस्वामी तुलसीदास उनको अपना स्वामी मानते हैं। मानसमें श्रीसीता-रामके संयोग शृङ्गारका वर्णन मर्यादाके अनुरूप ही है। शृङ्गारका अङ्ग है—नख-शिख वर्णन। श्रीरामका नख-शिख वर्णन तो अनेकों स्थानोंपर आया है, परन्तु श्रीजानकीका नख-शिख वर्णन मर्यादाके अनुरूप न होनेसे स्पष्ट रूपमें कहीं नहीं आया है। यह आया है बड़े कलात्मक ढंगसे। श्रीजानकीका हरण होनेपर श्रीराम उपमाओंके द्वारा उनके नख-शिखका वर्णन करते हैं। इस प्रकार मर्यादा भी बनी रहती है—

खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना॥
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहि भामिनी॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥
श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं॥

(मा. ३।२९. १०-१३)

श्रीरामका नख-शिख तो अनेक स्थलोंपर स्पष्ट है और वहाँ भाषा उस वर्णनके कितने अनुकूल है, जब कहते हैं—

'काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥'

(मानस, १।१९८. १)

यह 'छबि' धाम शरीर ऐसा है जिसे उपमासे भी कठिनाईसे व्यक्त किया जा सका है। 'नील कंज' शरीरके वर्ण एवं सुगन्धितको सूचित करता है। यद्यपि नीले कमलका नाम इन्दीवर है, लेकिन 'इन्दीवर' न कहकर नीलकंज कहा, इतनेपर भी संतोष न हुआ तब 'बारिद गम्भीरा' कहा। जल भरे मेघके समान श्याम और सुकुमार हैं, यह पूरा वर्णन ही भाषा साकार करती है। इसी प्रकार—

'पीत झगुलिआ तनु पहिराई।' (मानस, १।१९८. ११)

'झगुलिआ' शब्द ही कहता है कि शरीरपर जो वस्त्र हैं वह बहुत ढीला है और झीना है।

संयोग शृङ्गारके वर्णनमें मानसकी पंक्ति अवलोकनीय है—

'अरुन पराग जलजु भरि नीकें। ससिहि भूष अहि लोभ अमी कें॥'

(मानस, १।३२४.९)

'ससिहि भूष अहि लोभ अमी के' में सब कुछ कह दिया है बड़ी सुकुमारतासे।

विप्रलम्भ—

वियोग वर्णन तो मानसमें बहुत मार्मिक है। सम्पूर्ण अयोध्याकाण्ड प्रायः वियोग वर्णनका ही है और यह करुणमें परिवर्तित हो जाता है—

'हा गुन खानि जानकी सीता' (मानस, ३।२९. ७)

'हा गुन खानि' में श्रीरामका हाहाकार रो उठा है। वे विप्रयोगमें प्रलाप करने लगते हैं, ऐसा ही प्रलाप वे लंकामें करते हैं, जब लक्ष्मणको शक्ति लगती है।

करुण—

वियोग शृङ्गार और करुणके मध्य पार्थक्य करना बहुत कठिन है, क्योंकि विप्रलम्भ स्वयं करुण बन जाता है। काव्य परम्परा तो है कि प्रेमिकाकी वियोग दशाका वर्णन विप्रलम्भ माना जाता है, किन्तु कोई कारण नहीं है कि पुत्र वियुक्त माता-पिताका वर्णन या अत्यन्त प्रिय भाईसे पृथक् भाईके वियोगके वर्णनको वियोग न माना जाये। इस प्रकार यदि वियोगको करुणसे पृथक् करेंगे तो करुणकी परिधि बहुत संक्षिप्त रह जायेगी, सम्भवतः किसीकी मृत्युसे होनेवाला रुदन ही करुण रह जाये मानसमें यह रुदन भी है। अतएव सीमांकन सदा ही विवादास्पद एवं कठिन कार्य है। हमारा यह विषय नहीं है।

मानसमें अनेक स्थानोंपर भाषा ऐसी है कि उसे सजल-नयन हुए बिना सहृदयको पढ़ना कठिन हो जाता है, जब सुमंत्र कहते हैं—

रहिहि न अंतहुँ अधम सरीरू। जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू॥
भए अजस अघ भाजन प्राना। कवन हेतु नहिं करत पयाना॥
अहह मंद मनु अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका॥

(मानस, २। १४३. ४-६)

शब्द जैसे हृदयको मसलते हैं, विदीर्ण किये दे रहे हैं। 'अहह मंद मनु अवसर चूका' में कितना पश्चाताप और वेदना है।

मानवमात्र ही नहीं पशुओंका भी वियोग वर्णित है—

'रथु पहिचानि बिकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे॥

(मानस, २।१४६.७)

घोड़ेकी वह क्षण-क्षण होती क्षीणता बहुत स्पष्ट व्यक्त की गयी है। महाराज दशरथका कथन--

'हा जानकी लखन हा रघुबर।' (मानस, २।१५४.८)

में उनका अन्तर्हृदय हाहाकार कर रहा है।

वीर—

आचार्योंने वीर रसमें दानवीर, दयावीर, धर्मवीर और युद्धवीरका विवेचन किया है। जहाँ तक भाषाकी बात है, भाषाका ओज युद्धवीरके वर्णनमें मानसमें बड़ी सहजतासे प्रकट हुआ है। खरदूषणकी चौदह हजार राक्षसोंकी सेनाके समक्ष अकेले श्रीराम धनुष लेकर खड़े हैं। उनके शौर्य-वचन—

हम छत्री मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं॥
जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। मुनि पालक खल सालक बालक॥
जौं न होइ बल घर फिरि जाहू..... (मानस, ३।१८.९-१२)

यह वीरता है, जैसे शत्रुपर दया दिखलायी जा रही हो—'जो न होइ बल घर फिरि जाहू' भाषा इतनी सहज और ओजपूर्ण है कि चौदह सहस्र राक्षसोंका युद्ध श्रीरामको 'मृगया' जान पड़ता है और कह देते हैं कि 'तुम्हारे जैसे दुष्ट पशुओंको हम खोजते फिरते हैं। तुम सब बिना ढूंढे आ गये, अतः आजका परिश्रम बचा।'

श्रीहनुमानजी तो महावीर ही कहे जाते हैं। उनकी वीरता सुन्दर-काण्डसे लंकाकाण्ड पर्यन्त छायी हुई है—

'खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥'
(मानस, ५।१७.४)

कालका मारा बिचारा अक्षय कुमार भी आ गया—

'आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥
(मानस, ५।१७.८)

लंकाके युद्धमें—

'हनूमान अङ्गद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे।।'

(मानस, ६।४६.६)

इस प्रकार मानसमें सर्वत्र ही वीरताके वर्णन प्रसंगमें भाषा उसे अलंकृत ही करती है।

रौद्र—

वीर ही उग्र होकर रौद्र बन जाता है। जब तक सौम्यता है, वीर-रस है जहाँ उसमें उग्रता आयी कि वह 'रौद्र' हो गया।

मानसमें यह रस बालकाण्डमें लक्ष्मणसे प्रारम्भ होता है—

'माखे लखनु कुटिल भइँ भौंहें। रदपट फरकत नयन रिसौंहें।।'

(मानस, १।२५१.८)

इस रौद्र रूपमें जब लक्ष्मण कहते हैं—

'काचे घट जिमि डारौं फोरी' (मानस, १।२५२.५)

में भाषा ही कहती हैं, जैसे सचमुच ही ब्रह्माण्डको फोड़ने जा रहे हैं। परशुराम तो रौद्रकी मूर्ति ही हैं। उनके स्वभावको भाषा ही बोल रही है—

'सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते' (मानस, १।२६७.६)

उनके शब्दोंमें पग-पगपर रौद्र-रूप प्रकट होता है।

'कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा' (मानस, १।२६९.३)

में लगता है कि जैसे परशुरामको सीधे बोलना आता ही नहीं। मानसमें लक्ष्मण-परशुरामका ही रौद्र रूप नहीं है, अपितु श्रीरघुनाथ, हनुमान एवं अंगदका रौद्र-रूप भी है जिसमें सर्वत्र ही रसको भाषा मूर्तिमान करती है।

वीभत्स—

वीभत्स वर्णनमें—

'कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं'

(मानस, ५।२.छं.३)

राक्षसोंकी वृत्ति ही ऐसी है कि उनके लिए गाय, भैंस, बकरा, गधा और मनुष्य समान रूपसे भक्षण करने योग्य हैं। 'भच्छहीं' कहता है कि वे बुरी

तरह इनको चबा रहे हैं, कच्चा मांस ही खा रहे हैं। लंकाके युद्धमें वीभत्स अधिक व्यापक रूपमें है—

'खैंचहिं गीध आँत तट भए' (मानस, ६।८७.५)

गीध आँत खींच रहे हैं, ये शब्द ही मनको विकृत कर देते हैं।

भयानक—

भयानक रस वीभत्सके समान दो रूपोंमें होता है, (१) युद्धकी भयानकता, (२) वनके हिंसक पशु, सरीसृपादिकी भयानकता मानसमें दोनों ही भयानकता हैं एवं तद्रूप भाषा—

'जोगिनि गहें करबाल। एक हाथ मनुज कपाल॥'
(मानस, ६।१००.छं.२)

यहाँ जिस कोटिके प्राणियोंका वर्णन है वह अपने आपमें ही भयानक हैं। हाथमें मनुष्यका कपाल लिए तलवार उठाये जोगिनियोंसे वर्णन स्वतः भयानक हो गया है।

बनकी भयानकता भी सांकेतिक है—

कंदर खोह नदीं नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा। करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥
(मानस, २।६१.८)

'नहि जाहिं निहारे' और 'धीरजु भागा' इनमें भयानकताको बहुत स्पष्ट कर दिया गया है।

अद्भुत—

मानसमें हिन्दीके दूसरे काव्योंके समान अद्भुत-रस कम है, पर है—

'इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा' (मानस, १।२००.७)

'इहाँ उहाँ दुइ बालक' में एक ही बालक यहाँ भी तथा वहाँ भी है। यह भाषा ही अद्भुत रस प्रकट कर रही है—

बलि बाँधत प्रभु बाढ़ेउ सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्हीं सात प्रदच्छिन धाइ॥
(मानस, ४।२९)

दो घड़ीमें विराट् पुरुषकी सात प्रदक्षिणा किसीको भी आश्चर्य चकित ही करेगी।

.....**'राम गहन कहँ भुजा पसारी'**

जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा। तहँ भुज हरि देखउँ निज पासा॥
ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात॥
सप्ताबरन भेद करि जहाँ लगें गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि॥

(मानस, ७।७८ ७,७ ३)

श्रीरामने 'भुजा पसारी' और यह प्रसार कहाँ तक? 'सप्ताबरन भेद करि' जहाँ तक गति है यह भुजा पीछे ही चली आ रही है। इस भुजाके पसारनेमें ही अद्भुत-रस है तथा 'बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं' (मानस, ७.७९.२) आपके मुखमें मच्छर चला जाये तो क्या दशा होती है? छोटेसे बालक श्रीरामके मुखमें कौआ चला गया। उसने सारा ब्रह्माण्ड देखा। बालक हैरान नहीं हुआ, कौआ ही हैरान हो गया। उसकी जानमें जान तब आयी जब मुखसे बाहर आ सका।

हास्य—

हास्य भी मानसमें समकालीन दूसरे हिन्दी साहित्यके समान अत्यल्प है। संस्कृतमें भी हास्य अल्प ही है। परशुराम-लक्ष्मण-संवादमें लक्ष्मणके व्यंगको हास्य कहना उचित नहीं है, क्योंकि हास्य वह होता है जिससे हास्य किया जाये उसे हँसी आ जाये—जैसे भगवान शङ्कर जब विवाह करने चले तब विष्णुका कथन--

बिष्नु कहा अस बिहसि तब बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब निज निज सहित समाज॥

(मानस, १।९२)

जिनके प्रति व्यंग किया गया है—

'मनहीं मन महेसु मुसुकाहीं' (मानस, १।९२.३)

भगवान् शङ्करकी बारात तो बारात ही है। ऐसी है जैसी पहिले किसीकी नहीं—

कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू।
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्ट पुष्ट कोउ अति तनखीना॥
(मानस, १।९२.७-८)

यह भाषा ही हास्य उत्पन्न करनेवाली है। इसीलिए विष्णुका कथन—

'बर अनुहारि बरात न भाई' (मानस, १।९२.१)

बरातको बरके अनुहारि होना चाहिये, इस अवसरपर 'अनुहारि' कितना उपयुक्त आया है। 'अनुकूल' शब्द भी छन्द भंग नहीं करता, किन्तु 'अनुहारि' का रस देनेमें यह समर्थ नहीं।

सख्य—

सख्य रस तो है किन्तु मानसमें सख्यका परिपाक नहीं है। श्रीराम क्रीड़ा भी करते हैं, किन्तु उनकी क्रीड़ा कैसी है? यह तो भरतको तब भी स्मरण है जब वे वन जाते हैं—

'मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहुँ खेल जितावहिं मोही'
(मानस, २।२५९.८)

वहाँ जो क्रीड़ा है—वह क्रीड़ा सख्यकी न रहकर वात्सल्यकी बन गयी है। छोटे भाईको हारते जानकर भी उसे विजयी बनाया जा रहा है।

वात्सल्य—

मानसमें वात्सल्य सहज एवं स्वाभाविक है—

'कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना। मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना।'
(मानस, १।१९७.८)

'दुलारइ' में माताका वात्सल्य मूर्तिमान हो उठा है।
इसी प्रकार—

'धूसर धूरि भरें तनु आए। भूपति बिहसि गोद बैठाये॥
(मानस, १।२०२.९)

में पिताका वात्सल्य है। धूल-धूसरित देखकर उन्हें हँसी ही आयी है। महाराज दशरथका वात्सल्य कहने ही योग्य नहीं है—

'चौथेंपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी॥'
(मानस, १।२०७.२)

यह महाराजका वात्सल्य ही है कि विश्वामित्र जैसे उग्र तपस्वीको भी 'विप्र' कहकर कह रहे हैं कि 'आपने विचार कर बात नहीं कही है।' छोटे भाईके प्रति श्रीरामका वात्सल्य अनेक स्थानोंपर प्रकट है—

'नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥'

(मानस, १।२१७ ५)

यह भाईके प्रति वात्सल्य भाषामें ही प्रकट हो रहा है। महारानी सुनयनाका वात्सल्य श्रीरामके प्रति—

'सो धनु राजकुअँर कर देहीं। बाल मराल कि मंदर लेहीं॥'

(मानस, १।२५५.४)

उन्हें श्रीराम-लक्ष्मण बाल-मराल ही प्रतीत हो रहे हैं। वैसे भी हंस बलवान पक्षी नहीं है, लेकिन यहाँ तो मराल बाल है।

अध्याय—६

(क) वर्णनात्मक प्रसंगोंकी प्रकृति

श्रीमद्भागवतकी प्रमुख वस्तु या धाराका लक्ष्य—

श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य तत्व भक्ति-तत्व है, अतः भक्तिरस साधन-भूत भी है और साध्य भी। भागवतके प्रधान श्रोताका प्रश्न भक्तिका ही संकेत देता है। उत्तरदाता परमहंस शुकाचार्य भक्ति-तत्वका ही प्रतिपादन करते हैं। यहाँ तक कि श्रीमद्भागवतमें परम-तत्व आश्रय रूप श्रीकृष्ण साधन बन गये हैं और इनकी भक्ति साध्य।

अतः श्रीमद्भागवतकी संक्षिप्त रूपरेखा (भा, २।१०.१-७) श्लोकोंमें जिन दशविधि लीलाओंकी चर्चा है-वे लीलाएँ भक्ति-संवर्द्धिनी हैं। भागवतमें यावन्मात्र भगवद्वतार भक्तिरसका ही संवर्धन परिपोषण करते हैं। (देखिये श्रीमद्भागवत २.७.)

अतः भागवतके वर्णनात्मक प्रसंगोंकी प्रवृत्ति भक्ति-रसकी सुरसरिमें ही निमज्जित होनेकी है। अतएव—

उपक्रमोपसंहाराभ्यासो पूर्वताफलम्।
अर्थवादोपपत्तीश्च लिंगंतात्पर्य निर्णये॥

के अनुसार श्रीमद्भागवत ग्रन्थके ६ प्रयोजन—१. उपक्रम, २. उपसंहार, ३. अपूर्वता, ४. फल, ५. अर्थवाद, ६. उपपत्ति आदि तत्वोंपर विचार करने-पर श्रीमद्भागवतका तात्पर्य भक्ति-रसके पोषणके लिए ही निर्णीत होता है।

भागवतीय भक्तिका स्वरूप रसात्मक अद्वैत-सिद्धि, किंवा गोपीभाव किंवा निर्गुण प्रेमलक्षणा भक्ति है, जिसकी सिद्धि ज्ञान-वैराग्यसे होती है।

(१) **वस्तु**—श्रीमद्भागवत महापुराण आदि, अन्त और मध्यमें वैराग्ययुक्त आख्यानोंमें संयुक्त है। अमृतमयी हरिलीलाकथासे परिपूर्ण है। सम्पूर्ण वेदान्तका जो सार है, वह ब्रह्मात्मैक्य अर्थात् अद्वितीय

तत्व श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य है। उसमें निष्ठा हो, जिसका एकमात्र प्रयोजन कैवल्य है, यही श्रीमद्भागवतका लक्ष्य है।[1]

श्रीमद्भागवतकी प्रमुख वस्तु या धारा इसी लक्ष्यको लेकर चलती है। भागवतमें जो आख्यान हैं, उन आख्यानोंका तात्पर्य केवल इतिहासका वर्णन करना नहीं है, अपितु उनका तात्पर्य इस कैवल्यैक प्रयोजनकी सिद्धिके लिए वैराग्य और विवेककी जागृति है।

'कथा इमास्ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम्।
विज्ञानवैराग्यविवक्षया विभो वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम्॥'

(भा., १२।३.१४)

इसलिए श्रीमद्भागवतकारका कथन है कि भगवत गुणानुवादका श्रवण ही निरन्तर अमंगलनाशक है। श्रीकृष्णकी अमला-भक्तिकी ही इच्छा करनी चाहिये। श्रीकृष्ण-भक्तिमें लगा मन ही अद्वैत तत्वमें परिनिष्ठित हो जाता है—

यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः संगीयतेऽभीक्ष्णममङ्गलघ्नः।
तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः॥

(भा., १२।३.१५)

श्रीमद्भागवत तो प्रारम्भमें ही प्रतिज्ञा करके चला है—

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।

(भा., १।१.२)

इस ग्रन्थमें छल-विहीन कैतवरहिते परमधर्मका निरूपण है। सामान्य धर्ममें छल भी होता है। अर्थवाद ही धर्मका छल है, किन्तु श्रीमद्भागवतमें अर्थवाद नहीं है। इसमें परमधर्म है। इसके अधिकारी मत्सरहीन सत्पुरुष

---

१ **आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यानसंयुतम्।**
हरिलीला कथाव्रातामृतानन्दितसत्सुरम्॥
सर्ववेदान्तसारं यद् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम्।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम्॥

—श्रीमद्भागवत, १२.१६.११-१२

है। इस ग्रन्थके द्वारा उस वास्तविक वस्तुका ज्ञान होता है जो त्रयतापको निर्मूल करके परम कल्याण प्रदान करती है।

(२) अवान्तर प्रसंगोंसे तादात्म्य—

श्रीमद्भागवतकी इस प्रमुख धारा और लक्ष्यका स्वरूप तो कैवल्यैक प्रयोजनके द्वारा स्पष्ट कर ही दिया गया, किन्तु मानव-मन अनन्त कालसे भेद-भ्रमके संस्कारोंसे परिपूर्ण है। इन संस्कारोंसे परित्राण पाना उसके लिए सरल नहीं है। इसलिए अनेक अवान्तर प्रसंगोंसे विवेक-वैराग्यको जागृत करके उसे अपने लक्ष्यपर ले आना है।

(३) भागवतका लक्ष्य—अद्वैत भक्ति—

श्रीमद्भागवत भक्तिका ग्रन्थ है। भागवत शब्दका अर्थ 'भगवानका' होता है। 'भगवता इदमं भागवतम्' 'भगवता प्रोक्तम् भागवतम्' भगवान्का है, इसलिए भागवत है, भगवान्के द्वारा कहा गया है, इसलिये भागवत है और भगवान्के लिए जो अजस्र प्रवाह-धारा भागीरथीके सदृश भगवतरूप समुद्रमें जाकर एकाकार हो जाये, इसी स्थितिको लक्ष्य करके कैवल्यैक प्रयोजन कहा गया है।

(४) श्रीकृष्ण लीलानुकथनसे अद्वैत भक्तिकी सिद्धि—

प्रेमका स्वभाव है प्रेमास्पदसे एकीकृत हो जाना। जहाँ कामका स्वभाव है प्रेमास्पदको उपयोग्य बनाकर विकृत करना, वहीं प्रेमका स्वभाव है, प्रेमास्पदके प्रति आत्मोत्सर्ग। श्रीकृष्णका भागवतमें जो स्वरूप निरूपित है, उसे ध्यानमें रखें तो श्रीकृष्ण लीलानुकथनका प्रयोजन स्पष्ट हो जाता है।

श्रीमद्भागवतमें अनेकों स्थानोंपर **'वासुदेवेऽखिलात्मनि'** (१०.१३.३६) **'कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्'** (१०.१४.५५), **'योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक्** (१०.३३.३६) जैसे वाक्य आये हैं।

श्रीकृष्ण ही अखिलात्मा हैं, जो अद्वैत वस्तु कही गयी है, वह श्रीकृष्ण ही हैं, इसलिए श्रीकृष्ण लीला-श्रवण, मनन, चिन्तनका प्रयोजन राजा परीक्षितके मनमें बहुत स्पष्ट है।[1]

---

१. यच्छ्रृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा सत्वं च शुद्ध्यत्यचिरेण पुंसः।
—श्रीमद्भागवत, १०.७२

इस लीला-कथाके श्रवणसे, भागवत-कथासे जो अरति, वितृष्णा है, वह दूर हो जाती है और अन्तःकरणकी अविलम्ब शुद्धि हो जाती है। अन्तःकरणकी शुद्धिका अर्थ है मल-विक्षेप दोषोंका नाश। इन दोनोंके नष्ट हो जानेपर सहज करुणामय श्रीहरि भक्तके आवरणको स्वयं नष्ट कर देते हैं।

(५) अद्वैत भक्तिमें साध्य और साधनका स्वरूप निर्णय—

वस्तुतः जब तत्त्वको अद्वैत कहते हैं, तब स्वतः वह शब्दातीत हो जाता है और उसे केवल अहंसे ही सम्बोधित किया जा सकता है, क्योंकि यदि कोई दूसरा नाम भी देंगे तो नाम देनेवाला स्वयं तो शेष रह ही जायेगा। अपनेको अस्वीकार तो नहीं किया जा सकता। अपनी सत्ताका बोध सबको है, इसलिए सत्ता यदि एक है, अद्वितीय है तो उसे 'मैं' कहना होगा। इसीलिए विशिष्टाद्वैतको मानकर भी श्रीरामानुजाचार्यने कहा है 'सकलमिदमहं च वासुदेवः' यह कैवल्य बौद्धिक न रहकर अनुभूति बने—यही साध्य है। भक्तिके क्षेत्रमें इसीको सायुज्य बोलते हैं।

सन्मुख जो सम्पूर्ण सृष्टि प्रतीति हो रही है, इसकी सत्ताको भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि मनुष्य कुतर्कग्रस्त नहीं है, शास्त्रनिष्ठा और सत् श्रद्धासे युक्त है तो सृष्टि संचालनमें उसे सन्देह नहीं होगा। इस सृष्टिका कोई संचालक है, भागवत उसी सर्व-संचालकको श्रीकृष्ण कहता है। यह जो सर्व-संचालक श्रीकृष्ण है, भक्तिके द्वारा इनकी उपलब्धि होती है। भागवत इसी तत्वका प्रतिपादन करता है। भागवतकी भक्ति नवधा[1] मानी गयी है। इसमें श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन यह साधनात्मक भक्ति है। ये सबकी दास्यके आश्रयसे सम्पूर्ण होती है, किन्तु यह साधनात्मक भक्ति प्रत्येक साध्यावस्थामें व्याप्त रहती है। दास्य, सख्य, वात्सल्य, आत्म-निवेदन इन सबमें भी श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन चलता ही है। केवल इनके स्वरूपमें किंचित् परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन भावके अनुरूप है। जैसे सख्यमें अर्चनका नाम शृंगार करना होता है। यही वात्सल्यमें है।

---

१. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
(भा., ७।५.२३)

दास्यभाव सार्वभौम भाव है। यह अन्य भावोंमें भी अन्तर्निहित रहता है। वियोग और संयोगमें जहाँ भी श्रीकृष्णके ऐश्वर्यकी स्मृति जागृत होती है, दास्य भी जाग्रत हो जाता है। यहाँ तक कि नन्दबाबा उद्धवसे कहते हैं 'हमारे मनकी एक-एक वृत्ति, एक-एक संकल्प' श्रीकृष्णके चरण कमलोंके आश्रित ही रहे ! उन्हींकी सेवाके लिए उठे और उन्हींमें लगी भी रहे। हमारी वाणी नित्य निरन्तर उन्हींके नामोंका उच्चारण करती रहे और शरीर उन्हींको प्रणाम करने, उन्हींकी आज्ञा-पालन और सेवामें लगा रहे। उद्धवजी ! हम सच कहते हैं, हमें मोक्षकी इच्छा बिल्कुल नहीं है। हम भगवानकी इच्छासे अपने कर्मोंके अनुसार चाहे जिस योनिमें जन्म लें, वहाँ शुभ आचरण करें, दान करें और उसका फल यही पावें कि हमारे अपने ईश्वर श्रीकृष्णमें हमारी प्रीति उत्तरोत्तर बढ़ती रहे।[२]

भागवतकी इस नवधा-भक्तिके अतिरिक्त आचार्योंने वात्सल्य और शान्तको भी भक्ति माना है। इन सब भावोंका पर्यवसान भगवान्‌से एकत्व-की प्राप्ति ही है। अतः भक्तिके प्रत्येक भावका पर्यवसान अद्वैत भक्तिमें ही है।

श्रीमद्भागवतमें भक्तिके विविध रूप—

(अ) दास्य—अक्रूर, उद्धव, सात्यकि, दारुक आदि दास्य भक्तिके उपासक हैं। इनको श्रीकृष्णका दास्य प्राप्त है। ये दास्यके द्वारा श्रीकृष्णसे एकात्मैक्य अनुभव करते हैं। यह एकात्मैक्य सर्वथा समर्पण-रूप होता है, जहाँ दासकी अपनी इच्छा और सत्ता सर्वथा विलीन हो जाती है।

(आ) सख्य—गोपबालक और उत्तर-चरितमें अर्जुन सख्य भक्तिके आदर्श उदाहरण हैं। सख्यमें आदान-प्रदान है, किन्तु सख्य भक्ति है, इसलिये उसमें स्वसुखेच्छा नहीं है। तत्सुखसुखित्व ही है। अन्तर इतना ही है कि वात्सल्य एवं माधुर्यमें वाणी और क्रिया स्पष्ट उनको सुख देनेकी होती है किन्तु

---

२. मनसो वृत्तयोनः स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः।
वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥
कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया।
मङ्गलाचरितैर्दानैः रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥
(भा., १०।४७.६६-६७)

सख्यमें वाणी और क्रियामें आन्तरिक भावसे प्रायः वैपरीत्य रहता है। श्रीमद्भागवतके १०,१५,२० से २६ तकके प्रसंगमें श्रीकृष्णके सख्य कहते हैं कि 'तालके फलोंकी मीठी सुगन्ध आ रही है। हमारा मन ताल खानेको बहुत उत्सुक है। अतः वह हमें दो।' पूरी कथा देख जाइये, किसी बालकने ताल छुआ ही नहीं है। उनकी धारणा थी कि श्रीराम और श्रीकृष्ण फल खाकर प्रसन्न होंगे। जब दोनों भाइयोंने ताल नहीं छुए, तब किसीने नहीं छुआ। बालक भूख लगनेकी बात कहते हैं तब जब यह समझते हैं कि श्रीकृष्ण भूखा है। इसे भोजन करना चाहिये।

(इ) वात्सल्य—मैया यशोदा, माँ रोहिणी, नन्दबाबा, मथुरामें वसुदेव-देवकी वात्सल्य भक्तिके उदाहरण हैं। वात्सल्य भक्तिकी एक विशेषता है कि इसमें देना ही देना है। प्राप्तिकी इच्छा सर्वथा हो नहीं है।

(ई) माधुर्य—श्रीवल्लभाचार्य परम प्राप्य गोपी-भावको ही मानते हैं, किन्तु निजीसाधनोंके लिए, सार्वभौम आराधनाके लिए वात्सल्यको ही मुख्य मानते हैं। यह इसलिये है कि किंचित् भी कामना शेष न रह जाये।

कामनाके सर्वथा त्यागको ही लक्ष्य कर चैतन्य महाप्रभुके सम्प्रदायमें माधुर्यको प्रधान मानकर परकीया भाव अपनाया, क्योंकि इस भावमें भी कुछ भी पानेकी आकांक्षा नहीं है।

गोपियोंमें आचार्योंने कई विभाग माने हैं, (क) नित्यसिद्धा, (ख) श्रुतिरूपा, (ग) ऋषिरूपा आदि।

(क) नित्यसिद्धा—श्रीराधा, ललिता आदि श्रीराधाकी सखियाँ जो श्रीकृष्णकी नित्य सहचरी हैं।

(ख) श्रुतिरूपा—श्रुतियाँ श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिए ब्रजमें गोपी-भावसे प्रकट हुई हैं।

(ग) ऋषिरूपा—रामावतारमें बहुतसे ऋषि-मुनियोंके मनमें श्रीरामके प्रति माधुर्यका जागरण हुआ। उस अवतारमें यह सम्भव नहीं था, इसलिए द्वापरमें गोपी रूपसे ब्रजमें आयीं।

(घ) साधनसिद्धा—अनेक जन्मोंकी साधनासे जिन्हें भक्ति प्राप्त हुई और भक्ति प्राप्तिके पश्चात् जिन्होंने श्रीकृष्णके प्रति प्रियतमकी भावना जगायी, वे जीव भी ब्रजमें गोपी-रूपसे अवतरित हुए। ये साधनसिद्धा गोपी वर्गमें हैं।

इनके अतिरिक्त एक वर्ग और भी है—कामात्मिका। श्रीरामको या किसी भी भगवद्रूपको उनके अवतार कालमें देखकर उसपर आसक्त होनेपर वे नारियाँ भी अपने स्वरूपके अनुसार द्वापरान्तमें अवतीर्ण हुईं। इनमें मिथिलाकी नारियाँ हैं, वनकी कोलकिरातोंकी कन्याएँ हैं, इसी वर्गमें कुब्जा है। कुब्जाके सम्बन्धमें स्मरणीय है कि उसे न श्रीकृष्ण-तत्वका ज्ञान है, न वह श्रीकृष्णोन्मुख ही है, अपितु वह तो श्रीकृष्ण विमुख है, कंसकी सेवाकी जा रही है। स्वयं श्रीकृष्णको अपनी ओर आकर्षित नहीं करतीं। श्रीकृष्णने स्वयं उसे आकर्षित किया। यह कामात्मिका वर्ग, जिनमें पुलिन्दियाँ, कुब्जा[1] आदि हैं, श्रीकृष्णकी परमकृपाके प्रभावसे ही कृतार्थ हुई हैं।

श्रीमद्भागवतमें इन सबका कोई विभाजन स्पष्ट नहीं है, किन्तु भागवतका वर्णन ही ऐसा है कि उसके द्वारा इन सबका संकेत प्राप्त हो जाता है।

भागवतमें मातृवर्गीया यशोदा, रोहिणी, देवकी आदिका नामोल्लेख मात्र है। माधुर्य शृङ्गारकी जो अधिकारिणी हैं, उनमें केवल कुब्जाका नामोल्लेख है, शेष किसीका नाम नहीं है। यद्यपि वर्णन ऐसे हैं कि उनका पार्थक्य स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

गोपी-प्रेम

प्रेमके दो आदर्श प्रकार माने गये हैं। एकांगी प्रेम—जिसके आदर्श-रूपमें चातक और मीनका नाम लिया जाता है और समरस प्रेम—जिसकी आदर्श गोपियाँ हैं। चकोरको केवल वियोग प्राप्त है। संयोगका कोई सुख उसे प्राप्त नहीं है; क्योंकि चन्द्रमा उसे प्राप्त नहीं है। अतः उसका प्रेम अपूर्ण है। सारसको कभी वियोग प्राप्त नहीं हुआ। इसलिए उसे संयोग सुखका पूरा रसास्वादन हुआ, यह कहा नहीं जा सकता; क्योंकि वियोगके बिना संयोगकी पूर्णानुभूति नहीं होती।

गोपी-प्रेम समरस प्रेमका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। गोपी ही प्रेमका एकमात्र आदर्श हैं। भक्त प्रवर कविवर परमानन्ददासने 'गोपी प्रेमकी धुजा'[2] कहकर अत्यन्त संक्षेपमें गोपी-प्रेमके सर्वातिशासी उदात्त पदको

---

१. कुछ विद्वानोंने रामावतारकी सूर्पणखाको ही कृष्णावतारमें कुब्जा माना है।

२. परमानन्दसागर : पद संग्रह (सम्पादक डा. गोवर्धननाथ शुक्ल) पृष्ठ २८९.

ध्वनित किया है। नारद-भक्ति-सूत्र[1] एवं शाण्डिल्य-भक्ति-सूत्र[2] में भी भक्तिके चरम आदर्श रूपमें ब्रज-गोपिकाओंको ही स्वीकार किया है। भक्ति और गोपी भाव पर्याय ही हैं। श्रीवल्लभाचार्यजीने 'गोप्यः अस्माकं गुरुः' कहकर प्रेम मार्गमें गोपियोंके सर्वश्रेष्ठत्वको कहा है। गोपियोंके मन श्रीकृष्ण हैं, प्राण श्रीकृष्ण हैं, उनका सब दैहिक कृत्य श्रीकृष्णके लिए है। वह उनकी आत्मा हैं। लोक और धर्म उन्होंने श्रीकृष्णके लिए छोड़ रखा है। इस प्रकार वे सम्पूर्णरूपसे श्रीकृष्णार्पित हैं। वे कृष्णमयी हैं। गोपी प्रेमकी पराकाष्ठा हैं।

१. 'यथा ब्रजगोपिकानाम्'— नारद-भक्ति-सूत्र, सूत्र-२१

२. अतएव तदभावाद्वल्लवीताम्—शाण्डिल्य-भक्ति-सूत्र, सूत्र १४

(ख) वर्णनात्मक प्रसंगोंकी प्रकृति

मानसकी प्रमुख वस्तु या धारा—

जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥

(मानस, ७।६०.६)

मन करि बिषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौं एहिं सर परई॥

(मानस, १।३४.८)

त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन॥

(मानस, १।३४.१०)

श्रीमद्भागवतके समान श्रीरामचरितमानसकी प्रमुख धारा भी भक्ति ही है और इसका लक्ष्य भी भगवत-प्राप्ति ही है। मानसकी भक्ति भी अद्वैत भक्ति है क्योंकि मानसमें स्पष्ट कहा है—'जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई' (मानस, २।१२६.३)

श्रीरामका स्वरूप—

महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—

राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहिं को जाननिहारा॥

(मानस, २।१२६,१-२)

× × ×

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥

(मानस, २।१२६.५)

श्रीरामानुज सम्प्रदायमें आराध्य भगवान् नारायण हैं। उनके ६ स्वरूप माने जाते हैं (१) पर, (२) व्यूह, (३) विभव, (४) अन्तर्यामी, (५) अवतार, (६) अर्चा।

पर स्वरूप—

श्रीराम पर-स्वरूप ब्रह्म ही हैं—'कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी' (मानस, १।१०७.५) यह मानसमें स्थान-स्थानपर चरितार्थ किया है, जैसे भागवतमें भी 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' (भा., १।३.२८) कह दिया गया है।

व्यूह—

नारद पञ्चरात्रागममें जो चतुर्व्यूह वर्णित है, वह सम्पूर्ण वैष्णव सम्प्रदायमें स्वीकार है। भागवत एवं मानस दोनों ही वैष्णव-ग्रन्थ हैं, भक्ति-ग्रन्थ हैं। अतः दोनोंमें ही चतुर्व्यूह माने जाते हैं।

श्रीमद्भागवतमें ये चतुर्व्यूह माने जाते हैं— वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण (भा., ६।१६.१८)। मानसमे इस चतुर्व्यूहका वर्णन राम, भरत, शत्रुघ्न, एवं लक्ष्मण इन चार रूपोंमें है। श्रीराम तो परम-तत्व वासुदेव हैं ही। लक्ष्मणके सम्बन्धमें भी स्पष्ट है 'जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी' (मानस, २,१२५ छन्द) संकर्षण हैं। प्रद्युम्न भरत हैं 'बिस्व भरन पोषन कर जोई' (मानस, १।१९६.७) एवं 'जाके सुमिरन तें रिपु नासा' (मानस, १।१९६.८) शत्रुघ्न 'अनिरुद्ध' हुए।

विभव—

ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर, इन्द्र, वरुण, कुवेर, वायु, अग्नि आदि सृष्टि, स्थिति, संहारके कारण जो कारक पुरुष हैं—वे सब विभव कहे जाते हैं। यह सब पर-स्वरूपके अंश हैं—'संभु बिरंचि बिस्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥' (मानस, १।१४३.६)।

अन्तर्यामी—

यह प्रत्येक जीवके हृदयमें ही अवस्थित है। इन्हींको हृषीकेश कहा गया है—

बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

(मानस, १।११६.५—६)

अवतार—

इनकी दो श्रेणी है—दशावतार, और चौबीस अवतार (इनका विवेचन 'लक्ष्य-खण्डके' अध्याय १ में आयेगा)

अर्चा—

समस्त भगवत् मन्दिरोंकी आराध्य मूर्तियाँ भगवत-स्वरूप ही मानी जाती हैं। अतः अर्चा भी पर-तत्वका रूप है।

भक्तिके साध्य और साधन—

'भक्ति' के साध्य तो भगवान् श्रीराम ही हैं और भक्तिको मानस-कारने भी भागवतके समान नवधा ही माना है, किन्तु भागवतकी नवधा-भक्तिके समान नामोल्लेख न करके केवल 'श्रवनादिक नव भगक्ति दृढ़ाहीं' (मानस, ३।१५.८) कह दिया है।

मानसमें नवधा-भक्तिका एक और भी स्वरूप है—

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥
मंत्र-जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥

(मानस, ३।३४.७. से ३५.५)

मानसमें प्रथम भक्ति सत्संग मानी गयी है। ऐसा नहीं है कि गोस्वामीजीने भागवतसे भिन्न प्रक्रिया अपनायी हो। भागवतमें सत्संगको प्रमुख अंग स्वीकार किया है 'सतां प्रसंगान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः'.(भा., ३।२५.२५)। प्रथम भक्ति जब श्रवण कही गयी है, तब श्रवण किसीके द्वारा होगा और यह श्रवण सन्तके द्वारा होनेपर ही प्रभावशाली होता है, इसलिये सत्संग और उस सत्संगमें श्रवण की गयी कथामें प्रीति, यह दोनों ही श्रवणके अन्तर्गत हैं।

मानसमें 'गुरुपद पंकज सेवा' को तीसरी भक्ति कहा। भागवतमें स्पष्ट कहा गया 'एतत् सर्वं गुरौभक्त्या' (भा., ७।१५.२५)। स्वयं श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'गुरु सेवा' से मैं जैसा सन्तुष्ट होता हूँ, वैसा यज्ञ आदिसे नहीं (भा., १०।८०.३४)।

मानसमें चौथी भक्ति कीर्तन है। मानसकारने 'कपट तजि गान' (मानस, ३।३५) कहकर अवश्य ही यह विशेषता उत्पन्न कर दी है कि कीर्तनमें बाह्य प्रदर्शन सम्भव है, जो आजकल बहुत प्रचलित है। अतः वह इससे सावधान कर रहे हैं। गोस्वामीजी दास्यके उपासक हैं—'तरहिं न बिनु सेएँ मम स्वामी' (मानस, ७।१२३.७) इसलिए पञ्चमसे लेकर नवम तक जिस भक्तिका वर्णन मानसमें करते हैं, वह सब साधनात्मक भक्ति ही है। उस सबकी परिणति दास्य में ही है। दासको किस प्रकार रहना चाहिये, उसके आचरणमें क्या होना चाहिये, उसका अन्तःकरण कैसा होना चाहिये, यह पञ्चमसे नवम तककी भक्तिमें स्पष्ट किया गया है। यह नवधा-भक्ति दास्यके परिपाकके लिए है। इसमें भागवतके श्रवण, कीर्तन, अर्चन, वन्दन, पाद सेवन तककी सभी भक्तियोंका अन्तर्भाव है। मानसमें भागवतकी साध्या-भक्तिके भेदोंका भी संकेत है, किन्तु मानसकारका दास्य भाव होनेके कारण नामोल्लेख पूर्वक उनका वर्णन नहीं है। साध्या-भक्तिके भेद भागवतके प्रसंगमें स्पष्ट किये जा चुके है। (१) दास्य, (२) सख्य, (३) वात्सल्य, (४) माधुर्य—ये चारों भावात्मिका भक्तिके रूप हैं। इनमें दास्य तो सार्वभौम है। सबमें व्यापक रहेगा। मानसके वर्णन मर्यादा-पुरुषोत्तमके स्वरूपके अनुरूप हैं।

(अ) दास्य—

स्वयं गोस्वामीजीका यही भाव था। इस भावके मुख्य स्वरूप श्रीहनुमानजी हैं। बनके कोल-किरात, अयोध्याके सेवक वर्ग भी इसी भावसे भावित हैं। मर्यादा पुरुषोत्तमकी मर्यादाको देखते हुए मानसमें सख्यके जो स्वरूप हैं, वे अपनेको दास ही कहते हैं। सत्य यह है कि जीव परमात्माका दास है। यह दृष्टि जीवकी है और जीव परमात्माका सखा है, यह दृष्टि परमात्माकी है 'द्वा सुपर्णा सखायौ' यह श्रुति कहती है और श्रुति भगवद्वाणी है।

अपनी ओरसे सब बन्दर, भालू अपनेको रामका सेवक मानते हैं, किन्तु श्रीराम 'ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे' (मानस, ७।७.७) कहकर

सखा (मानस ७।१५. २,२।२३७. १) ही कहते हैं। इसी प्रकार निषादराज गुह अपनेको श्रीरामका सेवक मानते हैं किन्तु श्रीराम निषादको सखा (मानस, ७।१९. ३) ही मानते हैं।

सख्य—

'भायप भगति भरत आचरनू' (मानस, २।२२२. १) भरत आदि सब भाई श्रीरामके सख्यके स्वरूप हैं। निषादराजको तो सखा घोषित ही कर देते हैं, तभी तो भरत 'राम सखा सुनि संदनु त्यागा' (मानस, २।१९२. ७) तथा श्रीरामका सखा समझकर वशिष्ठ भी बरवस निषादको हृदय (मानस, २।२४२. १) से लगाते हैं। श्रीरामके सखा तो बहुत हैं। इनका नामोल्लेख तो नहीं हुआ, किन्तु इनका वर्णन है।[1] श्रीराम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं, उनके सखाओंमें उनसे बड़ा कोई नहीं है। जबकि भागवतमें श्रीकृष्णसे बड़े, बराबर और छोटे सखा भी हैं। यद्यपि भागवतमें यह वर्गीकरण नहीं है, अन्य ग्रन्थकारोंने यह वर्गीकरण किया है। श्रीकृष्णसे बड़े तो स्वयं उनके अग्रज बलरामजी ही हैं। बड़े सखा भी हैं—ऋषभ, अर्जुन, विशाल, वरूथप। बराबरके हैं—श्रीदाम, सुबल, मधुमंगल और भद्रसेन। छोटे सखा हैं—तेजस्वी, अंशु, देवप्रस्थ, तोक कृष्ण। श्रीबलरामको छोड़कर यह बारह मुख्य सखा हैं, जिनमें मधुमंगलको छोड़कर शेष एकादशका नाम श्रीमद्भागवत (१०।१५. २०; १८. २३-२४; २२. ३१) में आया है।

अयोध्यामें श्रीरामसे बड़ा कोई नहीं। सब छोटे हैं। श्रीरामका अनुराग सबपर है। यद्यपि श्रीभरत अपनेको सेवक[2] एवं लक्ष्मण भी अपनेको सेवक[3] ही मानते हैं। शत्रुघ्न तो मूक कर्मयोगी एवं भरतके ही अनुयायी हैं। निषादराज सखा[4] होकर भी सेवकत्व[5] स्वीकार करते हैं।

---

१. बाल सखा सुनि हियँ हरषाहीं। मिलि दस पांच राम पहिं जाहीं॥
(मानस, २।२३.१)

२. सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा॥
(मानस, २।२०२.७)

३. आजु राम सेवक जसु लेऊँ। (मानस, २।२२९.३)

४. कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना। (मानस, २।८७.८)

५. कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। (मानस, २।८७.७)

इस प्रकार श्रीरामचरितमानसमें सख्यका वह परिपाक नहीं हुआ है जो श्रीकृष्णचरितमें हुआ है। सख्य सम-रसतामें ही पुष्ट होता है। मर्यादा पुरुषोत्तमके साथ यह सम-रसता चल नहीं सकती थी। ग्रन्थकार स्वयं दास्याश्रित हैं, इसलिए उसके प्रभुसे कोई बड़ा या बराबरका है, यह उसके मनमें नहीं आता। केवल एक स्थानपर श्रीरामकी सम-रसता प्रकट की गयी है। वह है भगवान् शंकरके साथ। यही एक ऐसा स्थान है जहाँ दोनों परस्पर सखा[1], सेवक एवं स्वामी भी हैं।

वात्सल्य—

श्रीरामचरितमानसमें वात्सल्यके स्वरूप हैं—महाराज दशरथ, महाराजकी तीनों रानियाँ, राजा जनक एवं जनक-राजमहिषी। तीनों महारानियोंकी बात जान-बूझकर कही जा रही है, क्योंकि महारानी कैकेयीका असीम वात्सल्य[2] श्रीरामपर कम नहीं, अपितु बहुत अधिक था। यह तो देव-षडयन्त्रका परिणाम था कि उनके द्वारा श्रीरामको वनवास दिया गया।

माधुर्य या आत्म-समर्पण—

श्रीरामके मर्यादा पुरुषोत्तम होनेसे जिस प्रकार सख्य-रसका पूर्ण परिपाक उनमें नहीं है, उसी प्रकार माधुर्यका भी परिपाक नहीं होता। एक पत्नीव्रती श्रीरामकी आराधना यदि मधुर भावसे करनी हो तो अधिकसे-अधिक श्रीजानकीकी सखी भावसे या मिथिलाके सम्बन्धमें की जायेगी। श्रीराममें दाम्पत्य भावना सम्भव नहीं है। यद्यपि अयोध्याके उपासकोंने इसे बहुत अपनाया है, किन्तु मानसकारको मर्यादाकी दृष्टिसे यह अभीष्ट नहीं। मिथिलाकी भावनासे उपासना भी श्रेष्ठतम रूपमें अबतक रामोपासकोंमें चलती है। माधुर्यकी एकमात्र आश्रय श्रीजानकीजी हैं। वे श्रीरामसे नित्य अभिन्न हैं[3] दास्यभाव होनेसे तुलसी द्वारा श्रीरामकी दाम्पत्य माधुर्य कहना सम्भव नहीं है फिर भी किंचित् झलक जनक-वाटिका प्रसंगमें है। इसका समतुल्य विधान

---

१. सेवक स्वामि सखा सिय पी के। (मानस, १।१४.४)

२ जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिय पूत पुतोहू॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। (मानस, २।१४. ७-८)

३ 'गिर अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न' (मानस,१।१८.०)

शैली[1] द्रष्टव्य है। वस्तुतः मानसमें श्रीजानकीजीका जो स्वरूप स्थापित किया है, उसमें उनके प्रेमकी परिमित नहीं पायी जा सकती। लौकिक मर्यादाके आवरणमें उनके महाभाव रूपको भी अन्तर्हित ही रखा गया है। मानसमें उस प्रकारकी श्रीरामकी अनेक प्रेमिकाओंके होनेको स्थान नहीं है, जिस प्रकार श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णके सम्बन्धमें सम्भव हुआ है। सहज सम्बन्धको लेकर मिथिलाकी नारियाँ ही श्रीरामललासे अनुराग रखती हैं। इनके अतिरिक्त यदि श्रीरामके रूपपर कोई अनुरक्ति हुई है, तो वह सूर्पणखा है, जिसका राग बहुत विकृत है तथा जिसमें प्रेम नहीं, काम है। इसीलिए यह मर्यादा पुरुषोत्तमके समीप पहुँचकर भी दण्डित ही हुई हैं।

मानसका भरत प्रेम—

श्रीमद्भागवतमें गोपिकाओंका स्वरूप दिया गया है कि वे निर्मल प्रेमकी ध्वजा हैं। मानसमें प्रेमका परिपाक भरतमें हुआ है। गोपियोंका प्रेम सम-रस प्रेम है। भरतका प्रेम एकांगी प्रेम है। विश्वके साहित्यमें भरतके एकांगी प्रेमकी तुलना मानसके सदृश कहीं भी प्राप्त नहीं है—

जानहुँ रामु कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही॥
सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥

---

१. (१) सिय मुख ससि भए नयन चकोरा। (मानस, १।२२९.३)
(२) सरद ससिहि जनु चितव चकोरी। (मानस, १।२३१.६)
(३) भए बिलोचन चारु अचंचल। (मानस, १।२२९.४)
(४) थके नयन रघुपति छबि देखें। (मानस, १।२३१.५)
(५) सहज पुनीत मोर मनु छोभा। (मानस, १।२३०.३)
(६) सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा। (मानस, १।२३३.४)
(७) फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता। (मानस, १।२३०.४)
(८) मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे। (मानस, १।२३६)
(९) चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्हीं। (मानस, १।२३४.३)
(१०) चली राखि उर स्यामल मूरति। (मानस, १।२३४.१)
(११) सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे। (मानस, १।२३६.४)
(१२) पूजिहि मन कामना तुम्हारी। (मानस, १।२३५.७)
(१३) कोटि काम उपमा लघु सोऊ। (मानस १।२४२.१)
(१४) उपमा मोहि लघु लागीं। (मानस, १।२४६.२)

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ । जाचत जलु पबि पाहन डारउ ॥
चातकु रटनि घटें घटि जाई । बढ़ें प्रेमु सब भाँति भलाई ॥
कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें । तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें ॥

(मानस, २।२०४. १-४)

अद्‌भुत बात है कि मानसकारकी दृष्टिमें श्रीरामका वनवास कैकेयीके वरदानके द्वारा नहीं हुआ है, राक्षसोंके विनाशके लिए नहीं हुआ है, दशरथकी इच्छासे नहीं हुआ है, ऋषि-मुनियोंके परित्राणके लिए नहीं हुआ है, भरतके कारण ही हुआ है, क्योंकि—

पेम अमिअ मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर ।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर ॥

(मानस, २।२३८)

भरत तो गम्भीर क्षीर-सागर हैं। प्रेमका अमृत उनके भीतर छिपा है। विरहके मंदराचलसे मथे बिना वह प्रकट नहीं हो सकता। इसलिए संत-रूपी देवताओंके लाभार्थ श्रीरघुनाथजीने स्वयं विरहका मंदर डाला और श्रीभरतके हृदयरूपी क्षीरसागरका मंथन कर प्रेमामृतको प्रकट किया है। इसीलिए मानसकार कहता है कि भरत-चरितके श्रवण-स्मरणसे मानवको श्रीरामकी भक्ति[1] अवश्य ही प्राप्त होती है।

तुलसीका दास्य

लोक-मर्यादाके संरक्षक तुलसीकी भक्ति दास्य भावकी है। 'दास्य' के जो भी लक्षण बतलाये गये हैं, वे भक्तिमात्रके सामान्य लक्षण हैं। दासकी भाँति सकल कर्मोंका अर्पण, जिसका फल परमेश्वर-प्रीति है, 'दास्य' है[2]। दासमें भगवत्कैंकर्य, अनन्य भाव, दैन्य,[3] निस्वार्थता आदिका होना अपेक्षित है। उसे शुचि सुशील और मनसा, बाचा, कर्मणा श्रीरामका सेवक होना चाहिए। ये विशेषताएँ मानसकार एवं उनके काव्यमें वर्णित सभी भक्तोंकी

---

१. **भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं ।**
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति ॥ (मानस, २।३२६)

२. 'दास्यम् दासस्येव परमेश्वर प्रीति फलकं सकल कर्मार्पणम्'(थ-भ.च. पृष्ठ १४८)

३. श्रीरामचरितमानस २।२०८. १; ४।३; ७ मं. ५; २।३००. ३ ।

है। दास्यभाव उनके भक्ति-सिद्धान्तका मूलाधार है। अयोध्यावासी[1], रामके सखा[2], लक्ष्मण[3], भरत[4], हनुमान[5], सुतीक्ष्ण[6] तथा स्वयं तुलसीदास[7] भक्त हैं। पिता गुरु आदिके रूपमें भगवान्‌की भावना भी दास्य ही है। जिस प्रकार पिता, गुरु आदि पुत्र, शिष्य आदिके शुभचिन्तक, रक्षक और आदेशक होते हैं, उसी प्रकार भगवान् भी होते हैं।

मानसकारके 'दास्य' के सम्बन्धसे भजन महत्तर हो जाता है। दास्याभिमानमात्रसे सिद्धि मिल जाती है, भजन प्रयासकी कोई आवश्यकता नहीं[8]। ऐसा कौन मूढ़ है जो दास्य भाव प्राप्त कर लेनेपर प्रभुत्वकी कामना करे[9]। लोककी रीति ही है कि सभी स्वामियोंको सेवक प्रिय होता है, श्रीरामको भी दास परम प्रिय है[10],किन्तु यह उनका भक्तपक्षपात है—उनका सहज करुणामय स्वभाव है कि वे उनके दोषोंपर ध्यान ही नहीं देते[11]। उसकी रुचि[12] और अभिलाषाका ही ध्यान रखते हैं। उसके शत्रुको शत्रु

---

१. 'सेवक हम स्वामी सियनाहू'। (मानस, २।२३.६)
२. स्वामि काज करिहउँ रन रारी। (मानस, २।१८६.५)
३. आजु राम सेवक जसु लेऊँ। (मानस, २।२२६.३)
४. राम सुस्वामि दोसु सब जनही। (मानस, २।२३३.२)
५. सेवक प्रभुहि परै जनि भरें। (मानस, ४।२.१)
६. मैं सेवक रघुपति पति मोरे। (मानस, ३।१०.२१)
७. श्रीरामचरितमानस, ४।३।
८. 'अस्तु तावद् भजन प्रयासः केवलतादृशत्वाभिमानेनापि सिद्धिर्भवति। तदेतद्दास्यसम्बन्धेनैव सर्वमपि भजनं महत्तरं भवति'। (षट्-सन्दर्भ, पृष्ठ ६४४.)
९. 'को मूढो दास्यतां प्राप्य प्राभवं पदमिच्छति' (षट्-सन्दर्भ, पृष्ठ ४२१)
१०. (अ) मोरें अधिक दास पर प्रीती। (मानस, ७।१५.८)
(आ) सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग। (मानस, ७।८६)
(इ) सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय। (मानस, ७।८७ ख)
११. रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥ (मानस, १।२८.५)
१२. राखीं नाथ सकल रुचि मोरी। (मानस, २।३१२.६)

समझकर प्रतिकार करते हैं[१] वे सेवकके वशवर्ती तक हो जाते हैं[२]। भगवान्‌का दास हो जानेपर भक्त निश्चिन्त हो जाता है। उसका पोषण-रक्षण स्वयं भगवान् करते हैं[३]।

श्रीरामचरितमानसके चार वक्ता और चार श्रोता हैं। इनमें भगवान् शंकरका तो वात्सल्य-भाव ही है (मानस, १।१११.३)। यह स्पष्ट है। काकभुशुण्डि भी श्रीरामके शिशु रूपके(मानस, ७।११३.१४) उपासक हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य महाराज जनकके गुरु हैं। यद्यपि मानसमें इनका श्रीराममें क्या भाव है ? यह स्पष्ट नहीं है, किन्तु जब महाराज जनकका श्रीरामके प्रति वात्सल्य (मानस, १।२४१. ३) भाव है तो जनकसे पृथक् इनका भाव हो नहीं सकता। इस प्रकार चारों वक्ताओंमें तीनका 'वात्सल्य' भाव है, किन्तु स्वयं तुलसीका दास्य भाव (मानस १।२७. ४) ही है। जहाँ तक श्रोताओंकी बात है, भगवती पार्वती शंकरसे अभिन्ना हैं, अत: उनके भावको पृथक् गिना नहीं जा सकता। 'गरुड़' का दास्य-भाव तो है, पर वह भगवान् विष्णुके प्रति है। वे नैष्ठिक हैं, अत: आराध्य रूपको बदलेंगे नहीं। महर्षि भारद्वाजका वर्णन मानसमें है, किन्तु उस वर्णनसे यह तो लगता ही नहीं कि उनका दास्य भाव है। श्रीराम उन्हें प्रणाम करते हैं (मानस, २।१०५. ७) और मुनि आशीर्वाद (मानस, २।१०६) देते हैं। गोस्वामी तुलसीदासके श्रोता सब हैं। इन्हें सन्त-समाज कहें, अथवा वर्तमान सम्पूर्ण मानवमात्रका समाज। अत: जब सम्पूर्ण समाजकी बात कही जाती है तो 'दास्य' ही सार्वभौम भाव होता है, क्योंकि जीवमात्र-भगवान्‌का दास ही है। अत: 'राम सुस्वामि कुसेवकु मोसो' (मानस, १।२७. ४) को वरण करनेवाले लोक मर्यादाके पोषक तुलसी पुकार उठते हैं—

'मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत' (मानस, ४।३)

---

१. मानत सुखु सेवक सेवकाईं। सेवक बैर बैरु अधिकाईं॥
(मानस, २।२१८.२)

२. ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई॥
(मानस, १।१४३.६)

३. सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥
(मानस, ४।२.४)

निष्कर्ष—

इस प्रकार श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसका प्रतिपाद्य तत्व भक्ति है। यही साध्य और साधन दोनों हैं। दोनों ही ग्रन्थोंमें भक्तिके विविध-रूप दास्य, सख्य वात्सल्य और माधुर्यका प्रतिपादन है। श्रीमद्भागवतमें सभी रसोंका पूर्ण परिपाक है। किसी एक रसकी प्रधानता कही नहीं जा सकती, वैसे दशम स्कन्धके श्रीकृष्णचरितमें वात्सल्य (यशोदा, नन्द आदि) सख्य (गोपकुमारों) माधुर्य (गोपियों और द्वारिकाकी रानियोंका) परिपाकको प्राप्त हुआ है। श्रीरामचरितमानसमें दास्यकी प्रधानता है। दास्यभाव सार्वभौम है। सामान्य लोकदृष्टिसे आस्तिक जनोंके मनमें ईश्वर स्वामी हैं, संचालक हैं, पालक हैं जगतका। जीव उसका सेवक है, आज्ञानुवर्ती है। सर्वसामान्यका परमात्माके साथ दास्य भाव ही सम्भव है।

लक्ष्य खण्ड

अध्याय–१

अवतार तत्त्व

पुराणोंके प्रतिपाद्य विषयोंमें 'अवतार तत्त्व' के सम्बन्धमें भागवतकार एवं मानसकारका एक ही मत है। मूलतः अवतार शब्दका व्युत्पत्यर्थ है—'उतरना'। भक्तका भगवान् सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ होते हुए भी 'साकेत,' 'गोलोक' जैसे विशिष्ट धाममें निवास करते हुए भक्तोंको कल्याणार्थ भूतलपर अवतरित होते हैं। जगत्में उनका आगमन ही अवतार[१] है। तुलसीने प्रायः 'अवतार' अथवा उसके समशील शब्दों[२]का प्रयोग करते हुए 'श्रीराम-जन्म'[३]की भी बात कही है। इन प्रसंगोंमें जन्मका अर्थ है अवतार[४]। भगवान् द्वारा देह रूपका अङ्गीकार जन्म है[५]। तात्विक दृष्टिसे जीवका जन्म भोगायतन है, किन्तु स्ववश भगवान् तो लीलाके हेतु ही प्रकट हुआ करता है[६]। इसीलिए मानसकार एवं भागवतकार दोनोंने भगवान्को लीलातनु[७], मायामनुष्य[८] कहा है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें तो स्पष्ट कहा है कि मायाश्रित ब्रह्म ही सगुण एवं मायातीत ब्रह्म निर्गुण कहलाता है[९]। 'अवतार' का अर्थ है अव्यक्त, निर्गुण, निराकार-रूपसे सगुण-साकार-रूपमें

---

१. अवतरणं वैकुण्ठादजागमनम्—सुबोधिनी, १।१.२ पर टिप्पणी।

२. मानस, १।५०.छं., १।१३९, १।१९१. छं.।

३. मानस, १।१२१, १।१२२.१, १।१२५.२, २।२५५.२।

४. 'जन्म भगवतोऽवतार भावः।' शाण्डिल भक्ति सूत्र, २।१२१ पर भक्ति चन्द्रिका।

५. 'अंगीकृत देह रूपं जन्म' शाण्डिल भक्ति सूत्र, २।१.२२ भक्ति चन्द्रिका।

६. लीलामनुजाकृतिः—अध्यात्म रामायण, ७।१.६२; एवं भागवत, १।१.१७-१८, १।२.३४, १०।७०.३९।

७. मानस, १।१४३.४, भागवत, १०।९०.४९, अध्यात्म रामायण, ६।३.७६।

८. मानस, ५. २ श्लोकी, भागवत, ११।५.४९, अध्यात्म रामायण, १।१.१।

९. मायाश्रितो यः सगुणो मायातीतञ्च निर्गुणः।—ब्रह्मवैवर्तपुराण ४।४३.५७।

'आविर्भाव'[१]। श्रीमद्भागवत[२] एवं अध्यात्म-रामायण[३] की भाँति तुलसी[४] का भी मत है कि अजन्मादि भगवान्‌के जन्मादि उनके लीलामात्र हैं। उनके नाम रूप एवं लीला आदि नटचर्या[५] की भाँति उनके वास्तविक रूपसे भिन्न[६] केवल औपाधिक हैं। वे केवल लीला एवं विहारके लिए ही रूप धारण करते हैं[७]। जीवका शरीर प्राकृत पञ्चभौतिक[८] एवं मायिक होता है, पर भगवान्‌का शरीर अप्राकृत[९] विकार रहित दिव्य और चिदानन्दमय होता है[१०] यही कारण है कि अवतार-लीलाके उपसंहारमें श्रीराम एवं श्रीकृष्ण सशरीर अपने नित्य विभूति धाममें प्रवेश करते हैं[११] दूसरे शब्दोंमें भगवान् श्रीकृष्णके मर्त्य अथवा शरीरी प्रतीत होनेपर भी उनके सच्चिदानन्दघन श्रीविग्रहमें न पञ्च-महाभूतोंका लेश है, न स्थूल सूक्ष्म कारण देहका भेद। इस लोकमें लौकिक देह एवं देह-व्यवहारकी प्रतीति उन लीलामयने अपने ही अनुग्रहके कारण करायी और अनुग्रहवश ही लोकमें आविर्भूत हुए और अन्तमें लीला-संवरण कर ली उन्होंने[१२]।

---

१. मानस, १।१२५.२

२. भागवत, १।१.१७-१८, १।२.३४, १।३.३५, १।८.३०, १।९.३२, १०.३७.२४, १०।४६.३९,१० ७०।३९

३. अध्यात्म रामायण—४।१.१५, ४।६.७२

४. मानस, १।१२.४

५. मानस, ७।७२. भागवत, १।३.३७, ८,३.६, अध्यात्म रामायण ४.६.६४

६. भागवत, १।३.३७, १।११,३५

७. भागवत, १।९.३२, ३ ९।१९.

८. मानस, ४।१०.४

९. भगवतो व्यूहविभवार्चावतार शरीराण्यपि अप्राकृत भयानि।, यतीन्द्र० (पृष्ठ ८१)

भगवतो प्राकृत दिव्यमंगलविग्रहः। (यतीन्द्रमतदीपिका, पृष्ठ ८३)

१०. चिदानंदमय देह तुम्हारी। विगत बिकार जान अधिकारी।
नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥
—मानस २.१२६.५-६

११. भागवत-११।३१.६, मानस-१।११०. बाल्मीकि रामायण ७.११०·१२

१२. भगवान वासुदेव—पृष्ठ १६

अवतार-प्रयोजन

भगवान्‌के अवतारके हेतुका 'इदंमित्थं' निरूपण तो किया नहीं जा सकता[1]। प्रयोजन भी एक-से-एक विचित्र[2] ही है। प्रत्येक कल्प-कल्पमें भगवान् अवतार लेकर लीला करते हैं[3] कल्पभेदसे अवतार संख्या भी अनन्त[4] ही है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता[5] एवं भागवत[6] में स्पष्ट है ही कि दुष्टोंके शमन एवं धर्मकी संस्थापनाके लिए भगवान्‌का अवतार होता है। वस्तुतः सृष्टिकी मर्यादाकी अतिशय अतिक्रमण होने लगा तो व्यवस्थाकी स्थापनाके लिए, किसी धर्मात्मा, तपस्वीपर संकट आया तो उसके निवारणका अन्य मार्ग न हो तो उसके लिए और भक्तजनोंकी भावनाको सार्थक करनेके लिए अवतार होता है[7]। भागवतकार एवं मानसकारने कृष्णावतार एवं रामावतारके जिन प्रयोजनोंका स्थान-स्थानपर निदर्शन किया है[8] उनके दो रूप

---

१. हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई॥
—मानस, १।१२०.२

२. राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक तें एका॥
—मानस, १।१२१.२

३. कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना बिधि करहीं॥
—मानस, १।१३९.२

४. मानस, १।३२.

५. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ —गीता ४.७-८

६. भागवत, १।७.२५, १।१०.२५, ३।९.११-१९, ३।३३.५, ६।४.३३, १०। १०.३५, १०।१४.२०, १०।१६.३३, १०।२७.५, १०।३३.२७

७. भगवान वासुदेव, द्वितीय संस्करण-पृष्ठ ३१.

८. जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी॥
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा॥
असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु॥ —मानस, १।१२०.६-१२१

हैं—(१) सामान्य और (२) विशिष्ट। विभिन्न दृष्टियोंसे अवलोकन करनेपर सामान्य प्रयोजनके चार रूप प्रतीत होते हैं।

साधुजन, ऋषि-मुनि, भक्तगण, गो-ब्राह्मण, भूमि-देवता, नाग-नर आदिका परित्राण अवतारका प्रधान प्रयोजन है। रामके लोक-रंजनकारी कार्योंके अवसरपर देवताओं द्वारा समय-समयपर पुष्पवर्षा, गान आदि इसी प्रयोजन सिद्धिका सहर्ष ज्ञापन है[१]। अवतारके सभी प्रयोजनोंमें सन्तों आदिके प्रति भगवान्‌का कारुण्य ही मुख्य है। व्यास,[२] शाण्डिल्य[३] आदिकी भाँति तुलसीने भी इस पक्षपर पर्याप्त बल दिया है। उपर्युक्त सभी करुणा-पात्रोंमें सन्तोंका वैशिष्ट्य अन्यतम है। श्रीराम[४] इसी प्रयोजनकी पुष्टि विभीषणसे करते हैं। भक्त-हित-कारणता[५] के अन्य प्रसंग भी मानस[६] एवं भागवतमें पग-पगपर हैं।

भागवत एवं मानसमें प्रतिपादित है कि असुरों,[७] खलों[८] एवं अधर्मियों[९] का विनाश उनके अवतारका प्रयोजन है, जो उपर्युक्त कारणका भी कारण

---

१. भागवत. १०।२.४० मानस, २.२०५, ३।२०,४-५.

२. भागवत, ६।४.३३, १०।८८.७

३. नन्वाप्तकामस्य भगवतः प्रयोजनाभावे कथं शरीर परिग्रहादिस्तदाह-मुख्यं हि तस्य कारुण्यम्।—शाण्डिल भक्ति-सूत्र २.१.२३ भक्ति-चन्द्रिका पृष्ठ १२६

४. **तुम्ह सारिखे संत प्रिय मोरें। धरउँ देह नहिं आन निहोरें॥**
—मानस, ५।४७.८

५. **चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।**
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥
—भक्ति-चन्द्रिका पृष्ठ १३२

६. **ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेंहि धरि देह चरित कृत नाना।**
सो केवल भगतन्ह हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी॥
—मानस, १।१२.४-५

७. भागवत, ११।५.५०; मानस, १।१२१.०; अध्यात्म रामायण ४।६.७४

८. भागवत, १०।५०.६; १०.७०.२७; मानस, ३।२२.४, अ.रा. ४.६.७४

९. भागवत, ३।३३.५, १०।५०.१० मानस, १।२०६.१०

है, क्योंकि असज्जनोंके ही परिपीड़नसे त्रस्त सज्जनोंका उद्धार करनेके लिए भगवान्‌को अवतार लेना पड़ता है। इस उद्देश्यकी पूर्ति दो रूपोंमें हो सकती है—दुष्टोंके व्यामोहन मात्रसे अथवा उनका विनाश करके। भक्तिमान्-जनोंके लिए सुखदायिनी भगवदवतार लीला जड़ो और दनुजोंके लिए मोह कारिणी होती है[1]। धर्म रक्षा एवं पाप नाशके लिए दुष्टोंका वध अनिवार्य नहीं है 'वाराह-पुराण' एवं 'पद्मपुराण' आदिमें बतलाया गया है कि धर्मकी स्थिति बनाये रखनेके लिए मोहन शास्त्रके प्रवर्तन द्वारा दैत्योंका व्यामोहन भगवान्‌के बुद्धावतारका प्रयोजन था[2]। दूसरे रूपके उदाहरण रावण, कंस आदि हैं। रावण, कंस आदिके नृशंस अत्याचारोंसे चौदह भुवन त्रस्त हो चुके थे। धेनु-द्विज-देवतादि सब दीन और दुखी हो गये थे। धर्मका लोप हो गया था, मानस[3] एवं भागवत[4] दोनोंमें समान त्रस्तताका वर्णन है। ऐसी शोचनीय अवस्थामें श्रीराम[5], श्रीकृष्ण[6], सुर-नर-मुनि सबको आश्वासन देते हैं और अवतीर्ण होकर राक्षसोंका बध करके धर्मके चारों चरणोंकी स्थापना करते हैं।

---

१. (क) गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुरहित दनुज बिमोहन सीला॥

(ख) राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥

—मानस, १।११२.८; २।१२६.७

२. ब्रह्मसूत्र-२.२.२६ और ३.४.१८ पर अणुभा० तथा बालबोधिनी।

३. श्रीरामचरितमानस. १।१८२ (ख). ४ से १.१८३.० तक

४. श्रीमद्भागवत, १०।४.४५.

५. जनि हरषहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लगि धरिहउँ नर बेसा॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लैहउँ दिनकर बंश उदारा॥

—मानस, १।१८६.१-२

६. श्रीमद्भागवत, १०।१.२२

(स) श्रुति-सम्मत धर्मका संस्थापन—

श्रीराम वेद और लोककी मर्यादाके पालक हैं[१] इसीलिये उन्हें धर्म-मूल, धर्मसेतु एवं धर्म-सेतुपालक कहा गया है। वे वर्णाश्रम धर्मकी स्थापनाके लिए अवतार लेते हैं। बलिका प्रश्न श्रीरामके धर्मपरक हेतु पर बल देता है[२]। अवतारके मूल कारणका उपस्थापन करते हुए 'गीता' के कृष्ण एवं तुलसीके शंकरने धर्मकी हानिको सर्वप्रथम स्थान दिया है[३]। यह उनकी धर्म विषयक आस्थाका परिचायक है। पञ्चरात्र आगममें भी धर्मकी हानि होनेपर, रजोगुण और तमोगुणके प्रबल होनेपर, सत्वगुणके प्रभावोत्पादन और संतुलनको अवतारका हेतु बतलाया गया है[४]। लोक-सामान्य भाषामें हम कह सकते हैं कि ईश्वरके विभिन्न प्रतिनिधियों (ब्रह्मा, विष्णु आदि) के द्वारा जगतका सर्वांगीण प्रबन्ध चलता रहता है। 'जब उच्छृंखल शक्तियोंकी अतिशय वृद्धिके कारण दुर्दम्य गड़बड़ी मच जाती है, विश्वके शासन-प्रबन्धका समुचित संचालन राज्यपालरूप प्रतिनिधियोंके सामर्थ्यके बाहर हो जाता है, तब लोकके विकासक्रमकी समीचीन व्यवस्था और मर्यादाकी स्थापनाके लिए परमेश्वरको विशिष्ट रूपमें आना पड़ता है। यही उसका अवतार है[५]। धर्म-संस्थापनके लिए अवतीर्ण भगवान् जगतमें कर्म-सौन्दर्यकी प्रतिष्ठा करता है। 'हमारे यहाँ उपदेशक ईश्वरके अवतार नहीं माने गये हैं। कर्म-सौन्दर्यके योगसे उनके स्वरूपमें इतना माधुर्य आ गया है कि हमारा हृदय आपसे आप उनकी ओर खिंचा पड़ता है।..... जनताके सम्पूर्ण जीवनको स्पर्श करनेवाला क्षात्र-धर्म है। क्षात्र-धर्मके इसी व्यापकत्वके कारण हमारे मुख्य अवतार राम और कृष्ण क्षत्रिय हैं[६]।"

---

१. श्रीरामचरितमानस, १।१२१,

२. धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं—मानस, ४।८.५

३. गीता ४.७, मानस, १।१२०.६-८ यहाँपर 'धर्म' का अर्थ वेद प्रतिपादित वर्णाश्रमादि लक्षण धर्मपर गीता ४.७ पर (शांकरभाष्य)

४. भागवत, १०।४८.२३ एवं अहिबुर्दय सहिता ११.४-१०

५. तुलसी दर्शन मीमांसा-पृष्ठ ७०

६. चिन्तामणि, पहला भाग पृष्ठ ४२-४३

(द) लीला-प्रयोजन—

परम प्रभुकी सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता, सर्वान्तर्यामी एवं सर्वसमर्थता तो उनका सहज स्वाभाविक वैशिष्ट्य है[1] अतः वह सर्वज्ञ तो अजन्मा बना हुआ ही अपनी अमोघ शक्ति द्वारा अधर्मका विनाश, असुरोंका संहार, धर्म एवं भक्तोंकी रक्षा आदि करनेमें सामर्थ्यवान हैं ही, अन्यथा उसकी सर्व-शक्तिमत्ता ही संदिग्ध हो जायगी। जगतकी उत्पत्ति, स्थिति एवं लयमें भगवान्‌की लीला विलास है? उनकी अवतार-लीलाका एक ही निश्चित प्रयोजन है—भक्तोंको प्रेम-रसका दान। परमप्रेम परवश परमप्रभु अपने अनन्य भाव-प्रणत जनोंके साथ क्रीड़ाका आनन्द लेने, उनकी भावनाको सफल करनेको लीलामय, लीलावतारी कौतुकी-सरकार नित्यधामसे धरापर अवतीर्ण होता है। बार-बार युग-युगमें अवतीर्ण होता है। भगवद्‌भक्तोंकी भावना उसे यहाँ आनेको विवश करती है[2]।

श्रीमद्‌भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें अवतारका द्वितीय प्रयोजन विशिष्ट कारणोंका है, जिसका सम्बन्ध समस्त अवतारोंसे न होकर अवतार विशेषसे ही होता है। दोनों ग्रन्थोंके मुख्य प्रतिपाद्य भगवान् श्रीराम एवं श्रीकृष्ण हैं। अतः उनके विशिष्ट हेतुओंकी ही अभिनिवेशपूर्वक निबंधना है। रामावतारके विशिष्ट कारणोंके दो रूप हैं, वर-रूप एवं शाप-रूप। मानसमें भगवान्‌के अवतारहेतुक दो वरदानोंका आख्यान है। एक वरदान भगवान्‌ने मनु-शतरूपा[3] को दिया था, दूसरा कश्यप अदितिको[4]। शाप-रूप कारण भी दो प्रकारका है, एकमें भगवान् स्वयं शप्त हैं। उन्हें शाप देनेवाले हैं—जलंधरकी पत्नी वृन्दा[5] तथा देवर्षि नारद[6]। दूसरेमें शप्त-

---

१. ब्रह्मसूत्र-२.१.३३, तत्वत्रय, पृष्ठ ८९

२. भगवान वासुदेव, पृष्ठ द्वितीय संस्करण पृष्ठ २८

३. मानस, १।१५१.१-५, १।१५२.३, पद्मपुराण, ६।२४२.१-८

४. मानस, १।१२२.३, १।१८६.२ अध्यात्म रामायण, १.२.२५

५. मानस, १।१२३.१-२, पद्मपुराण, ६.१६.५४

६. मानस, १।१३६.६ शिवपुराण, २।११४.१७

व्यक्ति हैं जय-विजय,[१] हर-गण[२] और प्रतापभानु[३], जिन्हें क्रमशः सनकादि, नारद एवं ब्राह्मणोंने श्राप दिया है। अवतारके इन शाप-रूप कारणोंके विषयमें यह बात लक्ष्यमें रखनेकी है कि उपर्युक्त सभी शप्त-जन निरपराध हैं, अतएव उनके उद्धारके लिए दीनबन्धु भगवान्‌को अवतार लेना पड़ा।

अवतार-निरूपक ग्रन्थोंमें इन हेतुओंका निरूपण पूर्णतया समान नहीं है। कहीं एककी कारणता प्रतिपादित की गयी है तो कहीं दूसरी। इस भाँति विभिन्न आप्त ग्रन्थोंमें परस्पर विरोध-सा प्रतीत होता है। इस विरोध परिहारके लिए तुलसीने इस कल्प-सिद्धान्तकी मान्यता स्वीकार की है और यह कल्प-भेदका कारण ही मुख्य है।

अवतार संख्या निरूपण—

श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌के बहुसंख्यक अवतारोंकी गणनाका निरूपण किया गया है[४]। बोपदेवने भी 'भागवत' के ही आधारपर विष्णुके चालीस अवतार माने हैं[५]। भागवतमें एवं गरुड़पुराणमें बाईस अवतारोंका विशेष रूपसे उल्लेख है।[६] डा. गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझका मत है कि बौद्धोंके चौबीस बुद्धों तथा जैनोंके चौबीस तीर्थङ्करोंकी भावनाके आधारपर ही हिन्दू समाजमें अवतारोंकी चौबीस संख्याकी कल्पना हुई[७]। हिन्दी-साहित्यमें अवतारवादी सगुण-भक्तों तथा अवतार विरोधी निर्गुण सन्तोंने भी चौबीसकी संख्याको महत्व दिया[८]। सर्वाधिक लोकप्रिय संख्या

---

१. भागवत, ७।१.३७, मानस, १।१२१.४, १।१२३.१, पद्मपुराण, ६।२३७.३

२. मानस, १।१३५.०

३. मानस, १।१७३.२-३

४. **अवतारा ह्यसंख्येयाः हरेः सत्वनिधेर्द्विजाः**। (भागवत, १.३.२६)

५. मुक्ताफल, अध्याय ३, पृष्ठ ४२-६७

६. भागवत, १।३.६-२५, गरुण पुराण, १.१.१४-३३

७. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ठ, १३

८. सूरसागर-स्कन्ध २ पद ३६, रामानन्दकी हिन्दी रचनाएँ परिशिष्ट २, रज्जबजीकी बानी, पृष्ठ १८८।

भगवानके दस अवतारोंकी है, जिसका प्रमाण परवर्ती पुराण[१] एवं संस्कृत काव्य-ग्रन्थ[२] हैं। यद्यपि 'मानस' में दस अवतारोंका उल्लेख तो नहीं किया है पर 'विनयपत्रिका'[३] में दशावतारका वर्णन है। मानसमें श्रीरामके पूर्ववर्त्ती छः अवतारों[४] का स्पष्ट उल्लेख है। इन सभी अवतारोंमें श्रीरामको परमश्रेष्ठ माना है[५]। श्रीमद्भागवतमें तो सभी प्रमुख दस अवतार—मत्स्य[६], कूर्म[७], वराह[८], नृसिंह[९], वामन[१०], परशुराम[११], राम[१२], कृष्ण[१३], बुद्ध[१४] और कल्कि[१५] का विवेचन है।

अवतारोंका तात्विक विवेचन—

सम्पूर्ण दृश्य सच्चिदानन्दघन भगवत् स्वरूप ही है। यह सत्य होनेपर भी व्यवहारमें जैसे जड़-चेतनका, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, मनुष्यका तथा मनुष्योंमें भी सत्-असत्का, ज्ञानी-अज्ञानीका भेद होता है, ऐसे ही सामान्य जीवका और अवतारका भेद होता है और अवतारोंमें भी अन्तर होता है।

जब सत्ता घनीभूत होकर तमोगुण बनी और सृष्टि कालमें प्रकृतिमें गुणोंके वैषम्यसे जड़-चेतनका भेद हुआ तो कहाँ कितनी चेतना अभिव्यक्त

---

१. अग्निपुराण, १६।१२, वाराह पुराण, ४।२, ११३।४२, २११।६८-६९

२. गीतगोविन्द, प्रथम सर्ग, कबीर वचनावली पृष्ठ १६४, दशावतारचरित

३. विनयपत्रिका ५२

४. **मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपु धरी॥**
—मानस, ६।१०९.७

५. **अवतारा: सुबहवो विष्णोर्लीलानुकारिणः।**
तेषां सहस्रसदृशो रामो ज्ञानमयः शिवः॥ अध्यात्म रामायण, ६.७.६८

६. भा., २।७.१२ ७. भा., २।७.१३

८. भा., २।७.१ ९. भा., २।७.१४

१०. भा., २।७.१७ ११. भा., २।७.२२

१२. भा., २।७.२४-२५ १३. भा., २।७. २६ से ३५

१४. भा., २।७.३७ १५. भा., २।७.३८

हो रही है, इस तारतम्यको देखना ही पड़ेगा। जहाँ चेतनाके व्यक्त होनेका कोई चिह्न नहीं है, उसे जड़-द्रव्य कहते हैं। सम्पूर्ण विशुद्ध चेतनको षोडश कलापूर्ण कहा जाता है। यह कलाकी कल्पना उसके व्यक्त होनेके तारतम्यको सूचित करनेके लिए की गयी है। वस्तुतः चेतना तो निष्कल है। उस अद्वय परम-तत्वमें कलाकी कल्पना जगतको लेकर ही की जाती है।

मानवमें बुद्धिका, भावनाका, प्रतिभाका तारतम्य देखते हुए कह सकते हैं कि मानवमें पाँचसे आठ कला तक चेतनकी अभिव्यक्ति हो सकती है। छः कलाएँ सामान्यतः सुसंस्कृत मानव-समाजमें होती है। सात कलाका विकास होनेपर मानवमें विशेष प्रतिभादि दीखती है[1]। ये समाजमें सर्वसामान्यकी अपेक्षा विशिष्ट पुरुष होते हैं और आठ कलाका विकास प्राप्त करनेवाले लोकोत्तर महापुरुष कहे जाते हैं। ये धरापर यदा-कदा दीखते हैं[2]।

पार्थिव शरीर आठ कलासे अधिकका प्राकट्य सह नहीं सकता। वैसे आठ कलाके प्राकट्यसे ही पार्थिव देहमें दिव्यता आ जाती है और नौ कलाका विकास कारक-पुरुषमें होता है। सप्तर्षिगण, मनु, मनुपुत्र, अधिदेवता वर्ग, प्रजापतिगण, लोकपाल प्रभृति या कल्पस्थायी दिव्य-देह सामान्य पार्थिव देहसे पार्थक्य रखते हैं।

आकस्मिक अवसरोंपर प्रायः दस या ग्यारह कलाका आविर्भाव होता है। ऐसे अवतार सहसा प्रकट हो जाते हैं और जिस कार्यके लिए प्रकट हुए उसको सम्पन्न करके तिरोहित हो जाते हैं। मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंहादि तथा भक्तोंको दर्शन देनेके लिए प्रकट रूप ऐसे ही होते हैं। नौ कलाका विकास दिव्य शरीरमें हो पाता है। दस या ग्यारह कला जहाँ प्रकट हो वहाँ तो पञ्चभूतका लेश भी नहीं रह जाता। वह चिन्मय वपु है। उसका आकार भी बदल सकता है, जैसे वामन विराट हो गये। इन दिव्य शरीरोंमें वस्त्राभरण, आयुधादि भी दिव्य ही होते हैं।

---

१. यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवागच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥ गीता १०।४१

२. ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः।
कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा॥ भा., १।३.२७

ग्यारह कलासे ऊपर प्रकट होनेवाले ही पूर्ण प्रभु सम्पूर्ण मानव-चरित प्रकट करते हैं, वे शिशु-लीलासे प्रारम्भ करते हैं और दीर्घकाल तक धरा उनके चरणस्पर्शसे धन्य होती है। श्रीराम और श्रीकृष्णके पूर्णावतार ऐसे ही हुए।

अंशांश अवतार—मरीचि आदि ऋषि-प्रजापति; अंशावतार—ब्रह्मा, नारदादि; आवेशावतार—परशुराम, पृथु आदि; कलावतार—कपिल, वामन, वाराह, प्रमृति और पूर्णावतार-श्रीराम-कृष्ण हैं। इनमें कुछ नित्यावतार हैं, प्रत्येक कल्पमें वे रहते ही हैं जैसे ब्रह्मा। सृष्टि जब होती है, प्रारम्भमें प्रकट होंगे और सृष्टि पर्यन्त रहेंगे। कुछ युगावतार हैं जो निश्चित युगोंमें होते ही हैं, क्योंकि सृष्टिका विधान ही ऐसा है कि वह कल्प-कल्पमें प्रायः समान चलती है, अतः युग-युगमें प्रायः समान समस्याएँ उपस्थित होती रहती हैं और यह सुनिश्चित है कि उसका समाधान श्रीहरि कब किस रूपमें अवतरित होकर करेंगे[1]।

अवतारोंका वर्गीकरण—

प्राचीन मनीषियोंने विविध अवतारोंका वर्गीकरण अनेक प्रकारसे किया है, किन्तु मानसकारको कोई वर्गीकरण अभिप्रेत नहीं है, कारण कि वह अवतार और अवतारीको व्यक्त एवं अव्यक्त रूप मानकर अभेदत्व स्वीकार करते हैं। दाशरथी रामको परमार्थ ब्रह्म कहते हुए उन्होंने कृष्ण-को सम्पूर्णावतार माननेवाले भक्तोंकी भाँति[2] यह नहीं कहा कि केवल राम ही पूर्ण ब्रह्म हैं और अन्य अवतार अंश-कला मात्र हैं। उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु और शिवको श्रीरामका अंश तो कहा (मानस, १।१४३.६) किन्तु उनको अवतार रूपमें चित्रित नहीं किया[3], अतएव उनके (ब्रह्मादिके) लीला-

---

१. भगवान वासुदेव, द्वितीय संस्करणका पृष्ठ ३२

२. **अन्येचांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।**

भक्ति-चन्द्रिका, पृष्ठ १३८,

भागवत १.३.२८, ब्रह्मवैवर्त पुराण, ४.११७.१२

३. भागवत, ३.५.४२

वतारत्व[1], गुणावतारत्व[2], आवेशावतारत्व[3] या स्वल्पावतारत्व[4] का प्रश्न ही नहीं उठता। मानसकारको पूर्णावतार, अंशावतार, कलावतार, शक्त्यावतार आदि रूप मान्य नहीं हैं। उनके अनुसार तो सब लीलामयके होनेके कारण लीलावतार हैं। सभी श्रीरामके स्वरूप हैं, अतः स्वरूपावतार हैं। प्रत्येक कल्पमें होते हैं अतः कल्पावतार हैं। यही स्थिति श्रीमद्भागवतकी नहीं है, किन्तु उसमें भी अंशावतार, कलावतारादिका भेद-वर्णन नहीं है। उसमें कह दिया गया—'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्' (भा., १।३.२८)।

चतुर्व्यूह सिद्धान्त—

पाञ्चरात्र आगमने भगवान्में चार प्रकारके अवतार-धारणकी विवेचना किया है।

श्रीमद्भागवतमें विष्णुतत्वकी चतुर्व्यूह रूपसे दार्शनिक व्याख्या भी की गयी है वासुदेव तो विशुद्ध ज्ञानस्वरूप, अद्वितीय, व्यापक प्रशान्त परमार्थ सत्य हैं। भक्ति-शास्त्रमें उन्हीं वासुदेवको भगवान् कहते हैं[5]। एक अन्य स्थलपर कहा गया कि सत्वगुणमय स्वच्छ चित्र महत्तत्वात्मक 'वासुदेव' कहलाता है। अध्यात्ममें जिसे चित्त कहते हैं, अधिभूतमें उसीको महत्तत्व कहा जाता है, चित्तमें 'उपास्यदेव वासुदेव' और अधिष्ठाता क्षेत्रज होता है, जब महतत्वमें विकास होता है तो उससे क्रिया-शक्तिमय वैकारिक, तैजस और तामस तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न होता है। इस त्रिविध अहंकारसे ही क्रमशः मन, इन्द्रिय और पञ्च महाभूतोंकी उत्पत्ति होती है। इस भूतेन्द्रिय मनोमय अहंकारको 'संकर्षण' कहते हैं (भा., ३।२६.२१,३३-२५)।

---

१. भक्ति चन्द्रिका, पृष्ठ १३५

२. भक्ति चन्द्रिका, पृष्ठ १३५, सात्वत तन्त्र, ३.३३

३. यतीन्द्रमतदीपिकाप्रकाश, पृष्ठ १३८

४. मुक्ताफल ६६-६७

५. ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकमनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं यद् वासुदेवं कवयो वदन्ति॥
(भा., ५।१२.११)

अहंकारमें उपास्य देवता 'संकर्षण' हैं और अधिष्ठाता रुद्र हैं। जैसा कि अभी कहा जा चुका है कि वैकारिक अहंकारसे मनकी उत्पत्ति होती है, जो संकल्प-विकल्पात्मक है और कामनाओं-काम (प्रद्युम्न) का जनक है। यह मनस्तत्व इन्द्रियोंका अधिष्ठाता 'अनिरुद्ध' नामसे प्रसिद्ध है (भा ,३।२६.२७-२८)। बुद्धिमें उपास्य देव 'प्रद्युम्न' तथा अधिष्ठाता ब्रह्मा हैं और मनमें उपास्यदेव 'अनिरुद्ध' और अधिष्ठाता चन्द्रमा हैं।

वस्तुतः यह चतुर्व्यूह रूप परमपुरुष एक ही है। वही विश्व, तेजस, प्राज्ञ एवं तुरीय इन चार वृत्तियों द्वारा क्रमशः अर्थ (बाह्य विषय), इन्द्रिय (मन), आशय (विषय एवं मन—दोनोंके संस्कारसे युक्त अज्ञान) और ज्ञान (साक्षी) रूपसे भावित होता है (भा., १२।११.२१-२२)। जब ब्रह्म चतुर्भुज रूपमें साकार होता है, तब वह चरणादि अंग, गुह्यादि उपांग, सुदर्शनादि आयुध एवं कौस्तुभादि आभूषण धारण करता है। (भा, १२।११.२३) पञ्चरात्र-तंत्र (वैष्णव-सिद्धान्त) के माननेवाले विष्णुकी वैधी उपासनामें अंगों-उपांगों, आयुध और आभूषणोंकी पूजा करते हैं। (भा., १२।११.२) रामानुज और निम्बार्क सम्प्रदायोंमें इस प्रकारकी पूजाका विधान विशेष रूपसे हैं।

भौतिक दृष्टि और श्रीमद्भागवतमें वर्णित प्रसंगके अनुसार 'वासुदेव' श्रीकृष्ण हैं, 'संकर्षण' श्रीकृष्णके अग्रज बलराम हैं, 'प्रद्युम्न' श्रीकृष्णका पुत्र है जो कामदेवका अवतार माना जाता है और 'अनिरुद्ध' प्रद्युम्नका पुत्र है।

तुलनात्मक दृष्टिसे उल्लेखनीय है कि सूरदासने उपरोक्त वासुदेव विषयक चतुर्व्यूह सिद्धान्तके आधारपर श्रीरामके चतुर्व्यूहका भी निरूपण किया है[1]। सम्प्रदायोंमें विभवावतारके भी दो प्रकार बताये हैं—मुख्य (साक्षादवतार) गौण (आवेशावतार)[2]। यह सब सिद्धान्त तुलसीको मान्य

---

१. प्रगट भए दसरथ गृह पूरन चतुर्व्यूह अवतार।
तीनों व्यूह संग लै प्रगटे पुरुषोत्तम श्रीराम॥
संकर्षन प्रद्युम्न लच्छमन भरत महासुखधाम।
शत्रुघ्नहि अनिरुध कहियतु हैं चतुर्व्यूह निज रूप॥
—सूर-रामचरितावली २०१।१-३

२. भागवत-सम्प्रदाय, पृष्ठ १२५, तत्वत्रय, पृष्ठ १०८

नहीं है। उन्होंने लक्ष्मणके शेषावतारत्वका तो उल्लेख किया है[१]। किन्तु भरत एवं शत्रुघ्नके अवतारत्वकी चर्चा नहीं की है। अध्यात्म-रामायणमें भरतको नारायणका शंख एवं शत्रुघ्नको नारायणका 'चक्र' कहा गया है[२]। जिस प्रकार लोक व्यवहारमें भाग्य-भाजन पुरुष एकाकी नहीं चला करते, उसी प्रकार महामहिम भगवान् श्रीरामका अवतार भी एकाकी नहीं होता। वे अपनी आत्मभूता परमशक्ति तथा अंशोंके सहित देह धारण करते हैं[३]। उनकी सेवा एवं प्रयोजन सहायकके रूपमें देवताओंका भी धरतीपर आगमन होता है[४]।

---

१. **जौ सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।**

मानस, २।१२५ छन्द

२. श्रीरामचरितमानस-तुलनात्मक अध्ययन, पृष्ठ ७६

३. **इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें॥**
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥

मानस, १।१५१.१-२

आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥

मानस १।१५१.४.

अंसन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहउँ दिनकर बंस उदारा॥
.... रघुकुलतिलक सो चारिउ भाई॥
..... परम सक्ति समेत अवतरिहउँ॥

मानस, १।१८६.२,५,६

अध्यात्म रामायण, १.२.२७-२८; विष्णु पुराण, १.९.१४२

४. श्रीरामचरितमानस, १.१८७.१, १. १८८.२ अध्यात्म-रामायण, १।२.२९-३२ वाल्मीकि रामायण १.१७.१-२

अवतार चित्र

१ (क) **यतीन्द्रमत-दीपिका प्रकाश (पृष्ठ ८६)—**

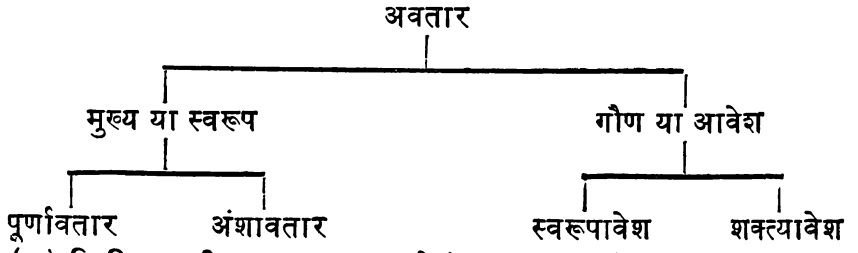

(ख) दि फिलासफी आफ वल्लभाचार्य (पृष्ठ १७३-१७८)—

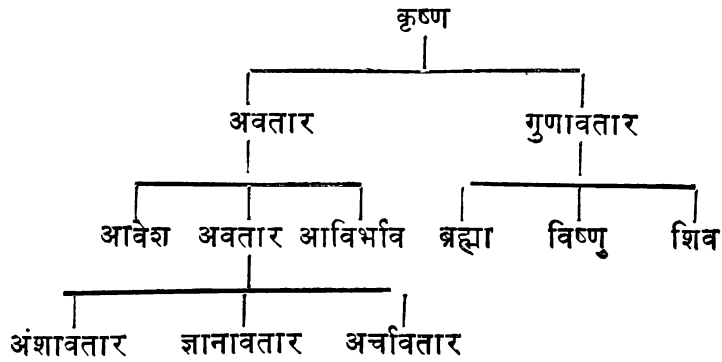

(ग) मुक्ताफल (पृष्ठ ४२-६७)—

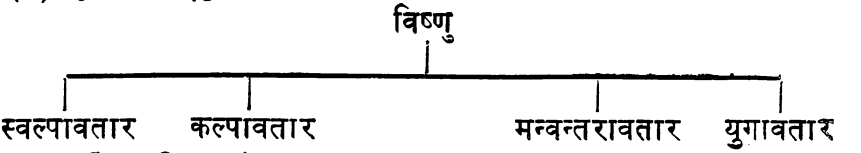

(घ) भक्ति-चन्द्रिका (पृष्ठ १३८-३९)—

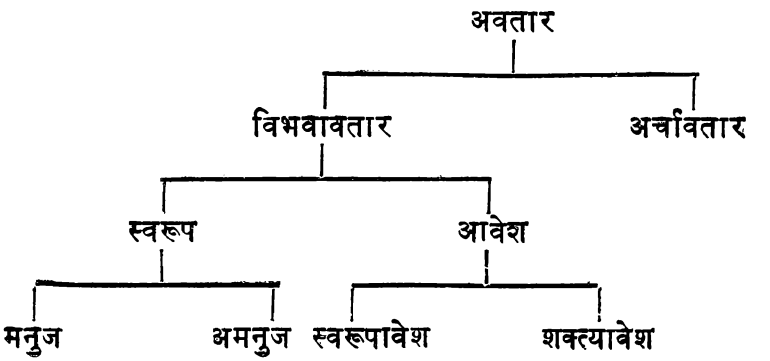

अवतार-अवतारीमें भेद

सगुण साकार भगवान्‌के नित्य धाम अनन्त हैं। उनमें परस्पर अभेद है। ये धाम नित्य बैकुण्ठ, नित्य शिवलोक, नित्य साकेत, नित्य गोलोक आदि गणेश, शक्ति रूपोंके भी हैं। इनमें जो सगुण साकार नित्य-तत्त्व अपनी चिन्मय क्रीड़ा कर रहा है, उसे अवतारी कहते हैं।

पूर्णावतार—

यह अवतारी तत्व जब स्वयं पृथ्वीपर पधारता है तब उसे पूर्णावतार कहते हैं। श्रीमद्‌भागवतके दशम स्कन्धमें वर्णित श्रीकृष्णचरित पूर्णावतारका चरित है। श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामका सम्पूर्ण चरित पूर्णावतार है। दोनोंको ही पूर्ण परमब्रह्म कहते हैं।

अंशावतार—

इस पूर्ण तत्वसे जब किसी कार्य विशेषके लिए उनका अंश प्रकट होता है, तब उसे अंशावतार कहते हैं। यह अंशावतार सम्पूर्ण मानव-लीला नहीं करता। स्मरण रखने योग्य है कि इन अंशावतारोंमें शक्ति कम नहीं होती—जैसे अग्नि जहाँ प्रकट होती है पूरी शक्तिसे प्रकट होती है, किन्तु जितनी शक्तिका प्रयोजन होता है, उतनी ही प्रकट होती है, यह अंश मत्स्य, कच्छप, ब्रह्मा, विष्णु आदि रूपमें प्रकट होता है। यह बात श्रीमद्‌भागवत, (४।७. ४३) में तथा श्रीरामचरितमानसमें—'संभु बिरंचि बिस्नु भगवाना।' 'उपजहिं जासु अस तें नाना॥' (१।१४३.६) में कही गयी है।

विभवावतार—

जहाँ-जहाँ मनुष्यमें सामान्यसे अधिक तेज, लक्ष्मी, कीर्ति ऐश्वर्य, त्याग. बल, तितीक्षा, विज्ञान प्राप्त होता है (भा. ११।१६.४० ; ६।१६. ३५)। वह सब भगवान्‌का ही वैभव है। इस वैभवको ही विभवावतार तब कहते हैं, जब वह विशेष असामान्य हो जाता है।

कलावतार—

सम्पूर्ण प्राणियोंमें भगवत्-कलाका ही विकास हुआ है।

आवेशावतार—

कभी किसी व्यक्ति विशेषमें कुछ कालके लिए भगवदीय आवेश हो जाता है—जैसे परशुरामजीमें यह आवेश था और श्रीरामसे मिलने तक यह

भगवदीय आवेश रहा। आदि शंकराचार्यके चरितमें शंकर दिग्विजयमें ऐसे आवेशका वर्णन है। जब किसी कापालिकके लिए वे अपनी बलि देने उसके साथ श्मशानमें पहुँचे तब उनके शिष्य पद्मपादाचार्यमें नृसिंहका आवेश हुआ और उस आवेशसे उन्होंने उस कापालिकको मार दिया।

इस प्रकारका आवेश परशुरामके समान दीर्घकालीन भी हो सकता है और पद्मपादाचार्यके समान अल्पकालीन भी। श्रीमद्भागवत और मानस दोनोंमें परशुराम-चरित है[1]।

अवतार एवं अवतारीकी अद्वैतता

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनोंके श्रीकृष्ण एवं श्रीराम नारदपुराण[2]में प्रतिपादित तत्वके आधारपर स्वयं अवतारी और अवतार हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण (४।११७.१२) में भी 'कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्' कहकर इसी भावकी अभिव्यक्ति करते हैं। भागवतमें तो स्पष्ट है—

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।
इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे॥

(भा., १३।२८)

मानसमें श्रीराम तत्त्व—

पुरुष प्रसिद्ध प्रकास निधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ॥

(मानस, १।११६)

\+ \+ \+ \+

सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू॥

(मानस, १।११६.६-७)

---

१. कल्याणका ईश्वर अङ्क—गोरखपुर।
संकीर्तनका अवतार अङ्क—मेरठ।
परमार्थका अवतार अङ्क—शाहजहाँपुर।

२. **देवि सर्वेऽवतारास्तु ब्रह्मणः कृष्णरूपिणः।**
अवतारी स्वयं कृष्णः सगुणो निर्गुणः स्वयम्॥ (नारद पुराण, २।५८.४५)

उपनिषदोंमें जो परम-ब्रह्म है, वैष्णवोंका जो परम-विष्णु है, शैवोंका जो परम-शिव है, शाक्तोंकी जो परम-शक्ति है, वही अवतारी राम हैं। अवतारी एवं अवतार दोनों एक ही हैं, उनमें कोई स्वरूप-भेद नहीं है। जिस प्रकार अवतारी राम सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं—

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा॥
ब्यापक बिस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना॥

(मानस, १।१२.३-४)

\+ + + +

ग्यान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानन्द घन कर नर चरित उदार॥

(मानस, ७।२५)

उसी प्रकार अवतार राम भी सच्चिदानन्दमय हैं—

राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥
सहज प्रकासरूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना॥

(मानस, १।११५.५-६)

\+ + + +

सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु॥

(मानस, २।८७)

इनकी निर्गुण-निराकारता और सगुण-साकारताके कारण ही भेद प्रतीत होता है, अन्यथा भेद तो है ही नहीं। साकार रामके विचित्र चरित तर्कसे परे हैं—

चरित राम के सगुन भवानी। तर्कि न जाहिं बुद्धि बल बानी॥

(मानस ६।७३.१)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराण[1] प्रतिपादित करता है कि अंश एवं अंशीमें अग्नि एवं चिनगारीके समान अभेद है। अवतारी और अवतार रामकी अद्वैतता,

---

१. 'अशांशिनोर्नं ब्रह्मन्वाह्नस्फुलिंगवत्' (ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, १।१७.३७)

अवतारीकी भाँति अवतारकी भी प्रकाशस्वरूपता, मायान्ववच्छिन्नता, निर्विकारता, एकरसता, एकरूपता आदिकी उपपत्ति तुलसीके अनेक दृष्टान्तों द्वारा द्रष्टव्य है।[१] इस प्रकार मानसकारने अवतारी एवं अवतार राममें अभेद स्वीकार किया है, अशांशी भाव नहीं। तभी तो शिवाने ब्रह्म-निरूपण प्रश्नके उत्तरमें इसी अभिन्नतापर बल दिया है—

जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित कोसलपति भगवान॥

(मानस, १।११८)

श्रीराम-कृष्णका परम-ब्रह्मत्व

परम-तत्वके सम्बन्धमें आचार्योंके दो मत हैं—एक निर्गुणवादी आचार्योंका, दूसरा उपासकोंका। निर्गुणवादी आचार्य परम-तत्वको 'ब्रह्म' मानते हैं जो सत्य ज्ञान-स्वरूप अनन्त है[२]। आचार्य शंकरके मतानुसार निर्गुण ब्रह्म ही उपनिषदोंका प्रतिपाद्य है। श्रुतियाँ निर्गुण ब्रह्मकी व्याख्यामें ही पर्यवसित हुई है; क्योंकि, निर्गुण ब्रह्म ही पारमार्थिक है[३]। उन्होंने ब्रह्मके वास्तविक स्वरूपका निर्णय करनेके लिए स्वरूप-लक्षण तथा तटस्थ-लक्षण माना है। स्वरूप-लक्षण पदार्थके सत्य तात्त्विक रूपका चरित देता है[४]। ये अद्वैत-परक श्रुतियाँ इसी कारणावस्था ब्रह्मकी ओर संकेत करती हैं। ब्रह्म समस्त हेय गुणोंसे शून्य है, अतः वह निर्गुण[५] कहलाता है।

---

१. **निज भ्रम नहिं समुझहिं अग्यानी। प्रभु पर मोह धरहिं जड़ प्रानी।**
जथा गगन घन पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी॥
चितव जो लोचन अंगुलि लाएँ। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ॥
उमा राम बिषइक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा॥

(मानस, १।११६. १-४)

२. 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'—तैत्तिरीयोपनिषद् २।१.१।

३. भारतीय दर्शन—बलदेव उपाध्याय, पृष्ठ ४२०।

४. **जगज्जन्मस्थितिध्वंसा मतः सिध्यन्ति कारणात्।**
तत्स्वरूपतटस्थाभ्यां लक्षणाभ्यां प्रदर्श्यते॥

(सर्वदर्शन-संग्रह, पृष्ठ ४६७)

५. **'निर्गुणवादश्च परस्य ब्रह्मणो हेयगुणसम्बन्धादुपपद्यते'**

(ब्रह्मसूत्र १।१.१ पर रामानुज)

'एकमेवाद्वितीयम्' आदि वाक्यों द्वारा उसी अव्ययाकृत ब्रह्मकी व्यंजना हुई है। यह ब्रह्म निर्गुण, निराकार, निर्विकार, निरंजन, अद्वितीय, मन-वाणीसे परे है[1]। मायातीत, गुणातीत, मानातीत, अतीन्द्रिय, प्रकृतिसे परे, अप्रमेय है।

दूसरे सगुणवादी आचार्य ब्रह्म-तत्वको अस्वीकार तो नहीं करते, पर उनका परमब्रह्म निर्गुण, निर्विकार होते हुए भी सगुण साकार[2] है। परमब्रह्म, नारायण, भगवान् कृष्ण, राम, पुरुषोत्तम आदि उस ब्रह्मके ही नाम हैं। प्रपत्तिके द्वारा जीवोंपर भगवान्का अनुग्रह होता है। उस अनुग्रहसे भगवान्के प्रति नैसर्गिक अनुरागरूपिणी भक्तिका उदय होता है[3]।

'सगुण' का अर्थ ही है 'कल्याण गुणगुणोंका आकर[4]। भागवत[5] एवं ब्रह्मवैवर्त्त पुराण[6] में ब्रह्मके सगुण साकार रूपका विस्तृत उपस्थापन हुआ है। पुराणकारोंकी मान्यता है कि ब्रह्म केवल निर्गुण नहीं, सगुण भी है[7]। उनके गुण अपार एवं अपरिमित हैं[8]। इसलिए उनके लिए 'गुणार्णव[9]' आदि विशेषणोंका प्रयोग है।

श्रीभागवतकार[10] एवं श्रीरामचरितमानसकार[11] ने ब्रह्मके निर्गुण एवं सगुण दोनों रूपोंका निरूपण किया है। वे इन दोनों ही रूपोंको पारमार्थिक सत्य मानते हैं। उनका मत है कि इन दोनों रूपोंमें कोई भी तात्विक भेद[12] नहीं है। जिस प्रकार दारुगत अव्यक्त अग्नि तथा दृश्यमात्र अग्नि[13] और जल एवं 'हिम-उपल[14] में

---

१. भा., ८।१२.७, मानस, १।११५.२, २।१२५.१३-१४।
२. मानस, १।११५.२। ३. ब्रह्मसूत्र, १।१.१ पर निम्बार्क।
४. तुलसी दर्शन, पृष्ठ १२६। ५. भा., २।२.८-१२।
६. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, ३।७.११३। ७. तुलसी दर्शन, पृष्ठ १२६।
८. नारदपुराण, १।११.२०। ९. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण, ३।२९ ३४।
१०. भा., ७।९.४८। ११. मानस, ७।१२.१ छन्द।
१२. मानस, १।११५.३।
१३. **एकु दारुगत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥**
(मानस, १।२२.४)
१४. **जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिमि उपल बिलग नहिं जैसें॥**
(मानस, १।११५.३)

केवल बाह्यरूपका अन्तर है, उसी प्रकार ब्रह्म रामके इन दोनों रूपोंमें भी। श्रीमद्भागवतमें (१।२.३२) भी इसी भावकी स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। ब्रह्म सभी प्राणियोंमें उसी प्रकार व्याप्त है जिस प्रकार लकड़ीमें अग्नि।

ब्रह्म, श्रीराम एवं श्रीकृष्णमें अभेदत्व प्रतिपादित है[1]। भागवतके (१।३.२९) एवं मानसके श्रीराम, ब्रह्म अथवा परमब्रह्म हैं[2]। ये आनन्दमय[3] परमानन्दमय[4], चिदानन्दमय[5] जीव और जगतके परम प्रकाशक[6] हैं।

श्रीराम, कृष्ण ही ब्रह्म-तत्व, एक अद्भुत, प्रभु एवं सर्वव्यापी हैं। इसीलिए उन्हें सर्वात्मा अखिलात्मा, सर्वभूतात्मा एवं विश्वात्मा कहा जाता है। परमात्मा, ईश, ईश्वर, परमेश्वर, नारायण, पुरुषोत्तम आदि संज्ञायें इन्हींकी वाचक हैं।

परम-तत्वके छः स्वरूप रामानुज सम्प्रदायमें स्वीकार किये हैं—

परम-स्वरूप—

इसी स्वरूपको ब्रह्म कहते हैं। इसीके सगुण-रूपसे ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके अधिदेवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश उत्पन्न होते हैं।

व्यूह-रूप—

यह दूसरा स्वरूप है। इसीसे सम्पूर्ण सृष्टिका संचालन होता है। इस रूपमें वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध माने जाते हैं।

विभव-स्वरूप—

ब्रह्मादि देवता, यम-वरुणादि, यहाँ तक कि मनु और मनुपुत्र भी भगवान्‌के विभव स्वरूप हैं।

---

१. **यो वै विष्णुः स वै रामो यो रामः कृष्ण एव सः।**
(स्कन्ध-पुराण, २।२.२७-५०)

'रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्'।
(अध्यात्म-रामायण, १।१.३२)

२. मानस, १।२२.५-६।

३. भा., २।१.३९, मानस, १।१९६.५। ४. भा., १०।१४.२२, मानस, ७।३४।

५. भा., १०।२७.११. मानस, २।१२६.५। ६. भा., ८।७.३१, मानस, १।११६.६।

अवतार—

अवतारोंकी कोई संख्या नहीं है। मुख्य रूपसे पुराणोंमें दश अवतार माने जाते हैं और गौण रूपसे चौदह। इस प्रकार इनकी संख्या चौबीस हो जाती है। दश अवतार हैं—मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध और कल्कि[1]। हिन्दू संस्कृति अंक[2] के अनुसार इनकी संख्या सोलह गिननेपर मुख्य अवतारोंके साथ संख्या छब्बीस हो जाती है। इनमें कहीं ध्रुवको दर्शन देनेवाले रूपकी गणना नहीं होती और कहीं गजेन्द्रको उद्धार करनेवाले 'हरि' की गणना नहीं होती। इस प्रकार दोनोंको छोड़कर संख्या चौबीस ही बनी रहती हैं[3]।

अन्तर्यामी-स्वरूप—

यह प्राणिमात्रके हृदयमें अन्तर्यामी रूपसे विराजमान है। जीव और ईश्वर दोनों हृदयमें स्थित हैं, इसीको श्रुतिने एक वृक्षपर स्थित दो पक्षी कहा है[4]। और गीतामें हृदयस्थ ईश्वर कहा है[5]।

अर्चा-स्वरूप

मन्दिरोंमें स्थापित श्रीभगवद्-विग्रह साक्षात् भगवत्-स्वरूप ही है, यह माना जाता है।

भागवत एवं मानसमें श्रीराम-कृष्णका परमब्रह्मत्व

श्रीबोपदेव भागवतको विष्णुपरक मानते हैं। इसीलिए उन्होंने 'मुक्ताफल' विष्णुके अनेक रूप प्रतिपादित किये हैं।

---

१. भा.,-स्कन्ध १ अध्याय ३ के अन्तर्गत।

२. हिन्दू-संस्कृति अंकके अनुसार—(१) सनत्कुमारादि (सनक, सनातन, सनन्दन, सनत्कुमार), (२) नारद, (३) नर-नारायण ऋषि, (४) कपिल, (५) दत्तात्रेय, (६) यज्ञ, (७) हंस, (८) ऋषभ, (९) पृथु. (१०) मोहिनी, (११) धन्वन्तरि, (१२) व्यास, (१३) अजित (समुद्र मंथन करानेवाले), (१४) हरि (गजेन्द्रका उद्धार करनेवाले), (१५) ध्रुवको दर्शन देनेवाले, (१६) हयशीर्ष।

३. हमारे अवतार और देवी-देवता—ले० सुदर्शनसिंह 'चक्र'

४. **द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।**
(मुण्डक उप० ३।१.१)

५. गीता १८।६१।

श्रीमद्भागवतमें विष्णु[1] का परत्व तो बहुत अधिक प्रतिपादित है, पर जब विष्णुका परत्व कहीं भी कहा जाता है, तो उसका अर्थ होता है—'पर-तत्व' श्रीनारायणका वर्णन किया जा रहा है। उन्हींके अंशसे देवता ऋषि ब्रह्मादि सब हैं[2]। तत्ववेत्ता लोग ज्ञाता और ज्ञेय भेदसे रहित अखण्ड अद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप ज्ञानको तत्व कहते हैं—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

(भा., १।२.११)

ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् ये पर्यायवाची हैं। अतः श्रीमद्भागवतके मतमें श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, (भा ,१।३.२८) वही बार-बार अवतार धारण करते हैं। रुद्र कहते हैं आप ही परम ब्रह्म हैं (भा., १०।६३.३४) श्रीकृष्णके परत्वको बहुत अधिक स्पष्ट किया है।

श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामका 'परत्व' सर्वत्र व्यापक है—

सोइ रामु ब्यापक ब्रह्म। (मानस, १।५० छं. २)
'राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। (मानस, १।११५.८)
राम ब्रह्म चिन्मय अबिनासी। (मानस, १।११६.६)
राम ब्रह्म परमारथ रूपा। (मानस, २।६२.७)
जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म ब्यापक बिरज अज कहि गावहीं।

(मानस, ३।३१.छं. ३)

श्रीरामसे ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलयके देवता प्रकट होते हैं—

यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।

---

१. (क) विष्णु— हिरण्मयं' अर्थात् पीत वर्ण। (भा., ५।३.३)
(ख) लोकालोक पर्वतपर बिष्णु—चतुर्भुज। (भा., ५।२१.४०)
(ग) रमावैकुण्ठनाथ विष्णु—केतुमाल। (भा., ५।१८.१६)
(घ) भूमा पुरुष—गर्भोदशायी अष्टभुज। (भा., १०।८६.५५-५६)
(ङ) श्वेत द्वीपाधिपति विष्णुकी चर्चा मात्र है। (भा., १०।८७.१०)

२. भा., ४।७.४५।

यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् ॥
(मानस, १, मंगलाचरण श्लोक ६)

श्रीरामकी आह्लादमयी शक्ति जानकीका स्वरूप जो उनसे अभिन्न हैं—

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम् ।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥
(मानस, १. मङ्गलाचरण श्लोक ५)

'गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न'
(मानस, १।१८.०)

अतः श्रीकृष्ण एवं श्रीराम सत्य स्वरूप[१], सत् चित्[२], आनन्दमय[३], स्वयंज्योति[४], आनन्दघन[५] हैं।

व्यूह—

श्रीमद्भागवत[६] में श्रीकृष्णके व्यूहके सम्बन्धमें कुछ कहना आवश्यक नहीं है, कारण कि वासुदेव[७] वे स्वयं हैं, संकर्षण[८] उनके अग्रज हैं। पुत्र प्रद्युम्न[९] और अनिरुद्ध[१०] पौत्र है।

श्रीरामचरितमानस श्रीरामके परतत्वकी चर्चा की जा चुकी है। श्रीलक्ष्मण संकर्षण[११], प्रद्युम्न भरत[१२] और शत्रुघ्न[१३] अनिरुद्ध[१४] हुए।

---

१. भा., २।१.३९, मानस, १।११६.५। २. भा., १।१.१, मानस, २।८७।
३. भा., १०।२९, मानस, १।१९६.५। ४. भा., ७।१.९, मानस१।११६.६।
५. भा., २।७.४८, मानस, १।२१६.२।
६. नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥ (भा, १०।४०.२१)
७. भा., ३।२६.२१। ८. भा., ३।२६.२५।
९. भा., ३।२६.३०। १०. भा., ३।२६.२८।
११. 'जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी'
(मानस, २।१२५. छं. १)
१२. 'बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत आस होई ॥'
(मानस, १।१९६.७)
१३. 'जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा ॥'
(मानस १।१९६.८)
१४. भा., १०।६३.४४।

विभव—

ब्रह्मादि सब देवता ऋषि-मुनि सर्वात्मभावसे उनकी शरण हैं। जगत्‌की उत्पत्ति, प्रलय एवं स्थितिके कारण हैं, सबके सुहृद आत्मा तथा एक अद्वितीय और जगत्‌के आधार एवं अधिष्ठान हैं। श्रीमद्‌भागवतमें श्रीकृष्णका यही विभव-स्वरूप पग-पगपर परिलक्षित है।

श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामका विभव स्वरूप—

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥

(मानस, १।१४३.६)

इनकी अभिन्ना श्रीजानकीजीका विभव-स्वरूप—

जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥

(मानस, १।१४७.३)

अवतार—

श्रीमद्‌भागवतमें श्रीकृष्णका एवं श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामका अवतार पूर्णावतार है। जो भी विद्वान 'अवतारवाद' को स्वीकार करते हैं, उनका इस सम्बन्धमें कोई भी मतभेद नहीं है। यह अवतार भी कैसा है? भागवत, (१०।१४.२)में स्वयं ब्रह्मा कहते हैं–'स्वयं प्रकाश-स्वरूप परमात्मन्। आपका यह श्रीविग्रह भक्तजनोंकी लालसा-अभिलाषा पूर्ण करनेवाला है। यह आपकी चिन्मयी इच्छाका मूर्तिमान स्वरूप मुझपर आपका साक्षात् कृपा प्रसाद है। मुझे अनुग्रहीत करनेके लिए ही आपने इसे प्रकट किया है। कौन कहता है कि यह पंचभूतोंकी रचना है? प्रभो, यह तो अप्राकृत शुद्ध सत्वमय है। कोई समाधि द्वारा भी आपके इस सच्चिदानन्द-विग्रहकी महिमा नहीं जान सकता।

श्रीरामचरितमानसमें—

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेहु संत सुर काजा। .....॥

(मानस, २।१२६.५-६)

तथा 'निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार' (मानस, १।१९२) अवतार-तत्वका सम्पूर्ण मानस ही प्रमाण है।

अन्तर्यामी—

श्रीकृष्ण सबकी अन्तरात्मा हैं। सबके अतःकरणमें विराजमान हैं—

त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च।
आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताज्ञता॥

(भा., १०।१४.२७)

श्रीरामचरितमानसमें 'अंतरजामी रामु सिय', (२।२५६) का प्रतिपादन भी सर्वत्र है—

सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥
जगत प्रकास्य प्रकासक रामू।.....॥

(मानस, १।११६.६-७)

ईश्वर सबका साक्षी स्वरूप है।

'गूढो गृहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः' (भा., १०।३७.१२)

'ईस्वर सर्ब भूतमय अहई' (मानस, ७।१०८.१५)

अर्चा—

मन्दिरोंमें विराजमान भगवद्विग्रह भगवत्-स्वरूप ही है। श्रीराम एवं श्रीकृष्णके अर्चा-विग्रह एवं उनके इस स्वरूपके उपासक अनुयायियोंकी संख्या देशमें बहुत बड़ी है। श्रीराम-कृष्ण-भक्ति सम्प्रदाय उन श्रीविग्रहोंमें दृढ़ आस्थापूर्वक भगवद्भाव ही रखता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनों ही ग्रन्थ श्रीराम-कृष्णके परम ब्रह्मत्व, अवतार और अवतारीका एकत्व स्वीकार करके वर्णन करते हैं। दोनों ही अवतारोंको प्रमुख स्वीकार कर पृथ्वीपर उनके द्वारा किये गये चारु-चरितोंका इन ग्रन्थोंमें प्रतिपादन है।

अध्याय–२

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसके मंगलात्मक रूपका प्रतिपादन

समय एवं समाजकी परिस्थितिके अनुसार 'मंगलात्मकता' की परिभाषा बदलती रहती है। जब देशकी जनसंख्या बहुत कम थी, सन्तों गुरुजनों द्वारा सौभाग्यवती स्त्रियोंको, कुलबधुओंको 'अष्टपुत्राभव' का आशीर्वाद दिया जाता था। आज 'मंगलात्मकता' की परिभाषा इसके विपरीत हो गयी है। अब तो दोसे अधिक सन्तान न हो, इसीका प्रचार किया जा रहा है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें भी 'मंगलात्मकता' की परिभाषा' बदली हुई हैं।

सनातन-धर्मी समाज स्वीकार करता है कि श्रीमद्भागवत पाँच सहस्र वर्ष पूर्व लिखा गया है। इतना प्राचीन कोई न भी माने, (काल निर्णय हमारा प्रकृत विषय नहीं है) तो इतना तो स्पष्ट है कि रामानुजाचार्य एव श्रीधर स्वामीके कालसे यह ग्रन्थ प्राचीन है। (श्रीधर स्वामीकी तो इस महापुराणपर टीका ही है) उस समयका लोक मंगल एवं मानसकारका लोकमंगल भिन्न नहीं है, क्योंकि मानसकारको श्रुति-स्मृति प्रतिपादित समाज व्यवस्था अभीष्ट थी।

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनोंमें लोकमंगलकी प्रतिष्ठा तीन प्रकारसे की गयी है—

१. लोकनायकके उदात्त प्रशान्त चरितका वर्णन कर उनके जीवनमें श्रुति-स्मृति प्रतिपादित धर्मकी प्रतिष्ठा दिखाकर इसके अपनाने-वालोंकी संरक्षता।

२. लोकादर्शके श्रुति-स्मृति सम्मत नियमोंमें बाधा देनेवाले वर्गका प्रतिकार एवं उच्छेद दिखाना।

३. धर्म एवं समाजके नियमोंका वर्णन कर उन्हें गौरव देकर आदर्श पात्रों द्वारा उनकी प्रतिष्ठा व प्रतिपादन करवाना।

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें लोकमंगलके इन रूपोंका तो वर्णन सर्वत्र है ही, 'भागवत' की रचनाका उद्देश्य भी यही है। यही बात 'मानस' के सम्बन्धमें भी है। इसीलिए लोकमंगलके इस स्वरूपपर पृथक्से कुछ कहना अनावश्यक है।

लोकमंगलके दो स्वरूप होते हैं—

(१) व्यष्टिगत मंगलात्मक रूप।

(२) समष्टिगत मंगलात्मक रूप।

व्यष्टिगत मंगलात्मक रूपके दो भेद होते हैं—

(१) व्यष्टिगत लौकिक मंगलात्मक रूप।

(२) व्यष्टिगत पारलौकिक मंगलात्मक रूप।

समष्टिगत केवल लौकिक मंगलात्मक रूप ही होता है। समष्टिगत पारलौकिक रूप सम्भव नहीं।

पारलौकिक मंगलको श्रीमद्भागवत आत्यन्तिक प्रलय कहता है (भा. १२।४.३४)। यह आत्यन्तिक प्रलय ही मोक्ष है, यह ऐसी स्थिति है, जिससे जीव पुनः सृष्टिमें नहीं आता। यह अवस्था व्यष्टिगत ही सम्भव है। सम्पूर्ण सृष्टिकी आत्यन्तिक प्रलय कभी होती नहीं।

भगवान्का जब अवतार होता है तब भी समष्टिगत लौकिक मंगल ही होता है, क्योंकि भगवान्के अवतारका प्रयोजन धर्म स्थापन, दुष्ट विनाश और सत्पुरुषोंका संरक्षण है।

भगवान्के अवतार कालमें यद्यपि उनके सम्पर्कमें आये हुए जीवोंका मोक्ष होता है, किन्तु सम्पूर्ण सृष्टि मोक्ष प्राप्त नहीं करती। इसलिए समष्टिगत पारलौकिक मंगल सम्भव नहीं है।

आगे के सभी पाठ पूरा फल तभी देते हैं जब मन लगाकर पाठ किया या श्रवण किया जाय।

दूरगामी अप्रत्यक्ष परिणाम

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनों ही ग्रन्थ व्यष्टिगत और समष्टिगत लोकमंगलके लिए हैं। दोनों ही ग्रन्थ भारतीय वाङ्मयके उच्चतम आध्यात्मिक ग्रन्थ हैं। इस राष्ट्रका अधिकांश समाज इन ग्रन्थोंपर एक दैवीय आस्था रखता है। यह आवश्यक ही नहीं है कि श्रीमद्भागवत

एवं श्रीरामचरितमानसपर आस्था रखनेवाले व्यक्ति हिन्दू ही हों, बहुतसे मुसलमान, ईसाई भी इनपर आस्थावान् देखे गये हैं। दोनों ही महाकाव्य कठोर वैष्णव-भावनाके प्रतिपादक होनेके कारण तान्त्रिक ग्रन्थोंकी साधनामें जो पर-पीड़ा (उत्पीड़न, ईर्ष्या, दम्भ) के विधान हैं, वे इन ग्रन्थोंमें नहीं हैं।

जिस विशाल जन-समूहकी इन ग्रन्थोंपर अगाध आस्था है, वह जन समुदाय स्वभावसे ही संकेतित अनुष्ठानोंके विधिवत् विधानोंका विश्वासपूर्वक पालन एवं उनमें श्रद्धा करता है। इन अनुष्ठानोंका जहाँ प्रत्यक्ष लाभ है, वहाँ वे लौकिक-अलौकिक कामनाओंकी पूर्ति करते हैं। अप्रत्यक्ष लाभ यह भी है कि वह स्वाभाविक रूपसे साधकको आत्म-संयमका पाठ पढ़ाता है। इन अनुष्ठानोंसे अधिक स्व-श्रेष्ठ आचरण पालनमें आत्म-स्वीकृत-अंकुश लगाने जैसा अन्य मार्ग या साधन नहीं है।

लौकिक या पारलौकिक कामनाओंकी सम्पूर्तिके लिए किये गये अनुष्ठान व्यष्टिगत-समष्टिगत लोकमंगलका विधान तो करते ही हैं. यह ऐसा लोकमंगलका स्वरूप है, जिसके लिए चेष्टा या व्यापार न करके स्वयं ही ही लोकमंगलका निर्वाह हो जाता है।

इन आध्यात्मिक ग्रन्थोंमें ऐहिक-आयुष्मिक कामनाओंकी सम्पूर्तिके लिए इसलिए भी विधान किया जाता है कि मानव सहज भावसे नैतिक आचरण और सदाचारकी ओर उन्मुख हो जाता है। वर्ण और आश्रम-धर्ममें निष्ठा होनेसे श्रीमद्भागवतका स्वधर्माचरण भी सहज भावसे सध जाता है।

'स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः' (भा., ११।२०.१६) की साधना कठिन नहीं होती। इस प्रकार व्यष्टिगत, समष्टिगत, लौकिक एवं पारलौकिक अनुष्ठानोंका विधान इन ग्रन्थोंमें यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है। अठासी हजार ऋषियोंका सत्र सामूहिक अनुष्ठानोंका ही रूप है।

समष्टिगत लौकिक मंगलात्मक रूप

समष्टिगत बाधाओंको दूर करनेके लिए 'भागवत' एवं 'मानस' में अनेक प्रकारके अनुष्ठान परम्परासे प्रचलित रहे हैं। 'श्रीमद्भागवत' अत्यन्त प्राचीन होनेके कारण उसके अनुष्ठान अनेक शास्त्रीय ग्रन्थोंमें वर्णित हैं, किन्तु श्रीरामचरितमानसके अनुष्ठान सन्त-परम्परासे ही प्राप्त हैं। इन अनुष्ठानोंका संक्षिप्त विवरण इस अध्यायके अन्तमें दिया जा रहा है।

व्यष्टिगत लौकिक मंगलात्मक रूप

व्यक्तिके जीवनमें अभीष्ट प्राप्तिमें बहुत बाधाएँ आती हैं। इन बाधाओंकी निवृत्ति एवं अभीष्टकी प्राप्तिके लिए श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें अनेक उपाय वर्णित हैं। इनका संक्षिप्त विवरण भी दिया जा रहा है।

व्यष्टिगत पारमार्थिक मंगलात्मक रूप

व्यक्ति आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति अर्थात् मोक्ष चाहता है, इसलिए परमार्थ व्यक्तिका उद्देश्य है, क्योंकि यह अन्तर्मुख होनेका सोपान है। श्रीमद्भागवतका प्रयोजन बताते हुए कहा गया है—'कैवल्यैक प्रयोजनम्' (भा., १२।१३.१२)।

सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका तात्पर्य व्यष्टिके पारमार्थिक मंगलके लिए है। राजा परीक्षितका मुख्य प्रश्न ही है—हे मुने! श्रोतव्य अथवा जप्य, अथवा कर्तव्य क्या है, वह कृपया बताइये। अथवा स्मर्तव्य अथवा भजनीय है, उसका प्रकाश डालिये। (भा., १।१९.३७-३९)

इन प्रश्नोंके उत्तरमें श्रीशुकदेवजी सूत्रात्मक भाषामें बहुत स्पष्ट कहते हैं (भा.,२।१.६)—"जीवका परम पुरुषार्थ इसीमें है कि प्राणान्तके समय उसे भगवद्-स्मृति बनी रहे।"

इसी प्रकार मानसके सम्बन्धमें कहा गया—

मन करि बिषय अनल बन जरई। होइ सुखी जौं एहिं सर परई॥

(मानस, १।३४.८)

व्यष्टिके आत्म-मङ्गलके लिए श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसके अनुष्ठान भी होते हैं। मोक्षके उद्देश्यके लिए होनेवाले अनुष्ठान पारमार्थिक कहे जाते हैं, इसलिए इन अनुष्ठानोंका संक्षिप्त विवरण भी देखा जा सकता है।

श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरितमानसमें भी अनेक स्थानोंपर उन-उन प्रसंगोंके पाठ, श्रवण-चिन्तन एवं उनके हृदयमें धारणके माहात्म्य आये हैं, दूसरे ग्रन्थोंमें वर्णित अनुष्ठानोंको देनेसे पूर्व इन दोनों ग्रन्थोंमें जो स्वतः के माहात्म्य वर्णित हैं उनको दिया जा रहा है।

श्रीमद्भागवत, श्रीरामचरितमानसमें जो अनुष्ठान हैं; वे व्यष्टिके लिए ही हैं, समष्टिके लिए नहीं। समष्टिके लिए अनुष्ठान परम्परा-प्राप्त ग्रन्थोंमें नहीं हैं।

श्रीमद्भागवत-महापुराण जैसा कि कहा जा चुका है– व्यष्टिगत एवं समष्टिगत मङ्गलात्मक साधनाका विधेयक ग्रन्थ है। अत आत्म-कल्याणके साधकको निम्नांकित उद्देश्योंकी पूर्तिमें श्रीमद्भागवतके वे स्थान अनुष्ठानीय हैं। एतदर्थ श्रीमद्भागवतके वे स्थल ही अन्तस्साक्ष्य उपस्थित करते हैं।

(अ) व्यष्टिगत पारलौकिक मंगलके लिए

श्रीमद्भागवतके अनुशीलन अनुष्ठान

१ भगवत्प्राप्ति और भक्ति प्राप्तिके लिए—

(१) २।२. ३७ के अनुसार द्वितीय स्कन्धके द्वितीय अध्यायका नित्य पाठ।

(२) ३।१३. ४८-४९ के अनुसार तीसरे स्कन्धके तेरहवें अध्यायका नित्य भक्तिपूर्वक श्रवण करनेसे।

(३) ३।१९. ३८ के अनुसार अध्याय चौदहसे अध्याय उन्नीस तक नित्य श्रवण या पाठ करनेसे।

(४) ३।३२. ४३ के अनुसार तीसरे स्कन्धके अध्याय पच्चीसवेंसे अध्याय बत्तीस तकके 'कपिलोपदेश' का नित्य पाठ या श्रवण करनेसे।

(५) १०।७९. ३४ के अनुसार अध्याय ७८ के श्लोक १७ से अध्याय ७९ पर्यन्त सायं-प्रातः पाठ करनेसे।

२. भक्तिके लिए—

(१) १. १५. ५१ के अनुसार प्रथम स्कन्धके पन्द्रहवें अध्यायका नित्य पाठ करने से।

(२) ४।२३. ३९ के अनुसार चतुर्थ स्कन्धके अध्याय पन्द्रहसे तेईस पर्यन्त 'पृथु-चरितका' नित्य पाठ या श्रवण करनेसे।

(३) ९।५. २७ के अनुसार नवम स्कन्धके अध्याय चार-पाँचके 'अम्बरीष-चरित' का नित्य गान या स्मरण करनेसे।

(४) १०।६. ४४ के अनुसार दशम स्कन्धके छठे अध्यायका नित्य श्रवण करनेसे।

(५) ११।३१.२८ के अनुसार दशम स्कन्ध एवं एकादश स्कन्धका बार-बार पाठ और श्रवण करनेसे।

(६) श्रीरामचरितमानस अरण्यकाण्डके दोहा ४६ के अनुसार अरण्य-काण्डका नित्य पाठ करनेसे।

३. परमगति या भगवद्धाम प्राप्तिके लिए—

(१) ६।१७.४१ के अनुसार स्कन्ध ६ के अध्याय १४ से अध्याय १७ पर्यन्त 'चित्रकेतु-चरित' का श्रद्धापूर्वक नित्य पाठ करनेसे।

(२) ८।२३.३० के अनुसार अष्टम स्कन्धके अध्याय १७ से अध्याय २३ पर्यन्त 'वामन-चरित'का नित्य श्रवण करनेसे।

(३) ८.२४.६० के अनुसार अष्टम स्कन्धके अध्याय २४ के 'मत्स्य-चरित' का नित्य पाठ करनेसे।

(४) १०।८५.५९ के अनुसार स्कन्ध १० के अध्याय ५० का नित्य पाठ या श्रवण करनेसे।

(५) १०।९०.५० के अनुसार दशम स्कन्धके नियमित पाठ करनेसे।

(६) श्रीरामचरितमानस अयोध्याकाण्डके दोहा १२३ के अर्धाली १-२ के अनुसार पथमें चलते श्रीसीताराम-लक्ष्मणका ध्यान करनेसे।

४. मुक्ति प्राप्तिके लिए—

(१) ४।२९.८४ के अनुसार चतुर्थ स्कन्धके अध्याय २५ से २९ तकका नित्य पाठ करनेसे !

(२) ९।११.२२ के अनुसार नवम स्कन्धके अध्याय १० से अध्याय ११ के २३वें श्लोक तकका 'श्रीराम-चरित'का नित्य श्रवण करनेसे।

(३) १०।८१.४१ के अनुसार स्कन्ध दशमके अध्याय ८० और ८१ का नित्य श्रवण करनेसे।

(४) १०।८८.४० के अनुसार स्कन्ध दशमके अध्याय ८८का नित्य पाठ करनेसे।

(५) ११।२३.६२ के अनुसार एकादश स्कन्धके २३वें अध्यायके श्लोक ४३से ५८ पर्यन्त 'भिक्षु-गीता' का श्रवण और धारण करनेसे।

(६) ११।२९.४८ के अनुसार एकादश स्कन्धके अध्याय ६ से २९ पर्यन्त 'उद्धव-उपदेश' का श्रद्धापूर्वक सेवन करनेसे।

(७) १२।१०.४२ के अनुसार द्वादश स्कन्धके अध्याय ८ से अध्याय १० पर्यन्त 'मार्कण्डेय'-चरित' का पाठ और श्रवण करनेसे।

(८) श्रीरामचरितमानस सुन्दरकाण्ड दोहा ६० के अनुसार इस काण्डका नित्य श्रवण करनेसे।

५. निर्भय लोककी प्राप्तिके लिए—

श्रीमद्भागवत ७।१०.४७ के अनुसार सप्तम स्कन्धके प्रारम्भसे दशम अध्याय तकके नित्य पाठसे।

६. ब्रह्मत्व प्राप्तिके लिए—

श्रीमद्भागवत ११।५.५२ के अनुसार एकादश स्कन्धके द्वितीय अध्यायसे पंचम अध्याय तकको धारण करनेसे।

७. काम नाशके लिए—

१०।३३.४० के अनुसार दशम स्कन्धके अध्याय २९ से ३३ पर्यन्त 'रासपञ्चाध्यायी' का संयमित होकर पाठ करनेसे।

८. नरक किंवा दुर्गतियोंसे त्राणके हेतु—

श्रीमद्भागवत ६।२.४८ के अनुसार छठवें स्कन्धके प्रथम और द्वितीय अध्यायके 'अजामिल-चरित' का नित्य पाठ करनेसे।

९. मरते समय निर्मल-बुद्धिके लिए—

श्रीमद्भागवत ८।५.२५ के अनुसार अष्टम स्कन्धके तृतीय अध्यायके 'गजेन्द्र-मोक्ष' का नित्यपाठ करनेसे।

१०. ज्ञान प्राप्तिके लिए—

१२।११.२६ के अनुसार १२वें अध्यायके श्लोक ४ से २६ पर्यन्त नित्य प्रातः पाठ करनेसे।

श्रीरामचरितमानसके अनुशीलन अनुष्ठान

११. प्रेम या वैराग्यके लिए--

श्रीरामचरितमानस अध्योध्याकाण्ड दोहा ३२६ के अनुसार अयोध्या-काण्डके दोहा १५६ के सोरठा ३२६ तकके 'भरत-चरित-का' नियम पूर्वक नित्य श्रवण करनेसे।

१२. विवेक-प्राप्तिके लिए—

श्रीरामचरितमानस लंकाकाण्ड १२१ (क) के अनुसार लंकाकाण्डका नित्य पाठ करनेसे।

१३. भगवान् शिवकी प्रसन्नता प्राप्तिके लिए—

श्रीरामचरितमानस उत्तरकाण्डके दोहा १०७ के रुद्राष्टकका नित्य पाठ करनेसे।

(आ) व्यष्टिगत लौकिक मङ्गलके लिए अनुष्ठान

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसके अनुष्ठान

१. अभीष्ट प्राप्तिके लिए—

(१) श्रीमद्भागवत ४।२४.७९ के अनुसार एकाग्रचित्तसे जप करते हुए श्री 'रुद्रगीत' ४।२४.३३ से ४।२४.७८ तक पाठ करते हुए तप करना।

(२) श्रीमद्भागवत ५।१४.४६ के स्कन्ध ५ के अध्याय ७ से अध्याय १४वें पर्यन्त नित्य श्रवण करनेसे या पाठ करनेसे।

(३) श्रीमद्भागवत ६।१९.२५ के अनुसार स्कन्ध ६ के अध्याय १९वेंमें वर्णित पुंसवन-व्रत' करनेसे।

(४) श्रीमद्भागवत ८।२४.६० के अनुसार स्कन्ध ८ के अध्याय २४वें-में वर्णित 'मत्स्यावतार-चरित' का नित्य सस्वर पाठ करनेसे।

(५) श्रीमद्भागवत १०।१४.६० के अनुसार दशम स्कन्धके अध्याय १२वेंसे अध्याय १४वें तकका नित्य पाठ या श्रवण करनेसे।

(६) श्रीरामचरितमानसमें अभीष्ट प्राप्तिके लिए किष्किन्धाकाण्डके दोहा ३० के अनुसार इस काण्डका प्रतिदिन श्रवण करने तथा मन लगा कर पाठ करना।

२. पाप मुक्तिके लिए—

(१) श्रीमद्भागवत ३।१९.३७ के अनुसार अध्याय १४ से अध्याय १९ तकके 'हिरण्याक्ष-वध' चरितका नित्य श्रवण या कीर्तन करनेसे।

(२) श्रीमद्भागवत ४।७.६१ के अनुसार अध्याय २ से अध्याय ७ तकके 'शिव-चरित' का प्रतिदिन पाठ या श्रवण मन लगाकर करनेसे।

(३) श्रीमद्भागवत ५।२३.९ के अनुसार 'शिशुमार-चक्र' का स्मरण करने या त्रिकाल उसे नमस्कार करनेसे तात्कालिक पाप नाश हो जाते हैं। इस 'चक्र' का वर्णन स्कन्ध ५ के अध्याय २३वेंमें है।

(४) श्रीमद्भागवत १०।६६.४३ के अनुसार दशम स्कन्धके ६६वें अध्यायका मन लगाकर पाठ करने या सुननेसे।

(५) श्रीमद्भागवत १०।७४.५४ के अनुसार १०वें स्कन्धके ७२वें अध्यायसे ७४वें अध्याय पर्यन्त सस्वर पाठ करनेसे।

(६) श्रीमद्भागवत १२।११.४५ के अनुसार श्लोक २९ से ४४वें श्लोक पर्यन्त 'सूर्य-व्यूह' का दोनों समय मन लगाकर नित्यपाठ करनेसे।

३. यश और ऐश्वर्य तथा पापमुक्ति के लिए—

(१) श्रीमद्भागवत ४।७.६१ के अनुसार अध्याय २ से ७वें अध्याय तक 'शिव-चरित' का प्रतिदिन श्रवण या पाठ करनेसे।

(२) श्रीमद्भागवत ४।३१.३१ के अनुसार स्कन्ध ४ अध्याय ३० और ३१ का नित्य मन लगाकर पाठ करना।

(३) श्रीमद्भागवत ६।१३.२३ के अनुसार स्कन्ध ६ के अध्याय ९ से १३वें अध्याय पर्यन्त 'वृत्र-चरित' का पर्व-पर्वपर पाठ या श्रवण करनेसे।

४. सम्मान प्राप्तिके लिए

श्रीमद्भागवत ६।८.४१ के अनुसार स्कन्ध ६ के अध्याय ८ में वर्णित 'नारायण-कवच' को (न्यासादि सहित) विधिवत धारण करनेसे।

५. उद्योगकी सफलताके लिए—

श्रीमद्भागवत ८-१२,४६ के अनुसार अष्टम स्कन्धके बारहवें अध्यायका नित्य सस्वर पाठ या श्रवण करनेसे।

६. सर्प-भयसे मुक्तिके लिए—

श्रीमद्भागवत १०।१६.६१ के अनुसार स्कन्ध १० के १६वें अध्यायके श्लोक ६० का प्रातः-सायं सस्वर पाठ करनेसे।

७. दुष्कीर्ति नाशके लिए—

श्रीमद्भागवत १०।५७.४२ के अनुसार ५६वें अध्यायसे ५७वें अध्याय तक 'स्यमन्तकोपाख्यान' का पाठ या श्रवण करनेसे।

८. विजय प्राप्तिके लिए—

श्रीमद्भागवत् १०।६३.५३ के अनुसार दशम स्कन्धके ६३वें अध्यायका प्रातः पाठ करनेसे।

९. शत्रुसे त्राणके लिए—

श्रीमद्भागवत् १०।८८.४० के अनुसार दशम स्कन्धके ८८वें अध्यायका पाठ या श्रवण करनेसे।

१०. मङ्गल कार्योंमें सफलताके लिए—

श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड दोहा ४७ से १०३ दोहा पर्यन्त 'शिव-चरित' का पाठ या गान करनेसे।

११. सदा उत्सवके लिए—

श्रीरामचरितमानस बालकाण्डके दोहा २८५ से दोहा ३६१ पर्यन्त प्रेमपूर्वक गान या श्रवण करनेसे।

१२. सुमङ्गलके लिए—

श्रीरामचरितमानस सुन्दरकाण्ड दोहा ६० के अनुसार सुन्दरकाण्डका नित्य पाठ करनेसे।

१३. विजय-वैभवके लिए—

श्रीरामचरितमानस लंकाकाण्डके दोहा १२१ (क) के अनुसार लंका-काण्डका नित्य श्रवण करनेसे।

१४. भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिए—

श्रीरामचरितमानस उत्तरकाण्ड दोहा १०७ के ६ के अनुसार 'रुद्राष्टक' का भक्तिपूर्वक पाठ करनेसे।

व्यष्टिगत मङ्गलात्मक रूप जब सामाजिक कल्याणका रूप धारण कर लेता है, तभी वह कर्म-सौन्दर्यका रूप ग्रहण कर लेता है।

अनुष्ठानोंके सम्बन्धमें यह बात जान लेनी चाहिये कि उनके लिए बहुत-सी विधियाँ होती हैं, उनकी ठीक-ठीक सम्पन्नतापर ही उनका फल निर्भर करता है।

अनुष्ठानोंके सम्बन्धमें आचार्योंके कुछ विभिन्न निर्देश हैं कालके सम्बन्धमें और प्रक्रियाके सम्बन्धमें। जो लोग स्वयं अनुष्ठान नहीं कर सकते हैं, वे कब कितने दिनोंमें कितने ब्राह्मणोंसे अनुष्ठान करायेंगे यह भी। अनुष्ठान-विधि ग्रन्थों या विशेषज्ञोंका विषय है, यहाँ तो संक्षिप्त रूपमें अनुष्ठानोंका केवल निर्देश किया जा रहा है।

श्रीमद्भागवत् और श्रीरामचरितमानसके अनुष्ठानोंमें भेद, लक्ष्य-भेदसे, अवधि-भेदसे और पाठके विश्राम स्थलसे भेद होता है।

श्रीमद्भागवतके व्यष्टिगत लौकिक मङ्गलार्थ—

मानव मनमें अनेक कामनाएँ होती हैं। कामनाओंके भेदसे उसे अनेक प्रकारके प्रयत्न करने पड़ते हैं। जब लौकिक प्रयत्न असफल हो जाते हैं, तब वह अलौकिक शक्तिका आश्रय लेना चाहता है। इसमें भी कामना भेदसे अनुष्ठानोंका अन्वेषण सबके लिए कठिन पड़ता है। अतः सबके लिए, सब कामनाओंके लिए कोई एक अनुष्ठान किया जा सके तो वह बहुत उत्तम होगा, श्रीमद्भागवतमें ऐसे अनुष्ठान हैं।

१. 'भागवतांक' 'कल्याण' गीताप्रेस, गोरखपुर और भागवतांक 'श्रेय भजनाश्रम, वृन्दावनके आधारपर। श्रीमद्भागवत अनुष्ठान-पाठ निम्न प्रकार निर्धारित है—

श्रावण कृष्ण पक्षमें एक दिनमें पाठ सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका पाठ—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१२	१३	३३५

(२) भाद्र शुक्ल-पक्षके चार दिनोंमें निम्न क्रमसे सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका पाठ—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	२३	८५
२	६	१७	१०६
३	१०	५२	५६
४	१२	१३	८२

(३) पाठ पाँच दिनमें ६ पाठकर्त्ता ब्राह्मणों द्वारा २४२ पाठ कराये जायें—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	७	६८
२	६	१८	६८
३	८	२४	६३
४	१०	६८	६८
५	१२	१३	६५

(४) चार दिनोंमें निम्न क्रमसे स्वयं किया गया सम्पूर्ण ग्रन्थका पाठ—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	१८	८०
२	८	७	८०
३	१०	५२	६३
४	१२	१३	८२

(५) पाँच दिनोंमें निम्न क्रमसे स्वयं किया गया सम्पूर्ण ग्रन्थका पाठ—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	४	६६
२	६	१५	६८
३	८	२१	६४
४	१०	६४	६७
५	१२	१३	७०

(६) ग्यारह दिनोंमें किया गया पाठ—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१८	१८
२	३	२२	३३
३	४	१	३२

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
४	५	२१	३१
५	७	८	३२
६	९	३	३४
७	१०	११	३२
८	१०	४८	३७
९	१०	८१	३३
१०	११	२३	३२
११	१२	१३	२१

(७) पन्द्रह दिनोंमें किया गया पाठ—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	२	२	२१
२	३	१५	२३
३	४	४	२२
४	४	२७	२३
५	५	१८	२२
६	६	१५	२३
७	८	५	२४
८	९	६	२५
९	१०	४	२२
१०	१०	२६	२२
११	१०	४९	२३
१२	१०	७०	२१
१३	११	२	२२
१४	११	२५	२३
१५	१२	१३	१९

(७) बीस दिनोंमें किया गया पाठ—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१३	१३
२	३	३	१९
३	३	१४	११
४	३	३२	१८
५	४	११	१२
६	५	१	२१
७	५	१८	१७
८	६	१२	२०

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
९	७	८	१५
१०	८	१५	२२
११	९	७	१६
१२	९	१६	९
१३	१०	१६	२४
१४	१०	३०	१४
१५	१०	५०	१०
१६	१०	६३	२३
१७	१०	८८	२५
१८	११	६	८
१९	१२	२	२७
२०	१२	१३	११

(८) पच्चीस दिनोंमें किया गया अनुष्ठान—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	८	८
२	१	१९	११
३	३	४	१४
४	३	११	७
५	३	२४	१३
६	४	१०	१९
७	४	२५	१५
८	५	१७	२३
९	५	२०	३
१०	६	२	८
११	६	१३	११
१२	७	१३	१९
१३	८	९	११
१४	८	१८	९
१५	९	९	१५
१६	९	१६	७
१७	१०	४	१२
१८	१०	२२	१८
१९	१०	१७	१५
२०	१०	५४	१७
२१	१०	६२	८
२२	१०	७५	१३
२३	११	३	१८
२४	११	२०	१७
२५	१२	१३	२४

(६) एक महीनेका अनुष्ठान—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	११	११
२	२	२	१०
३	३	२	१०
४	३	१२	१०
५	३	२३	११
६	४	६	१६
७	४	२०	११
८	४	२२	२
९	५	१	१०
१०	५	१०	९
११	५	२०	१०
१२	६	९	१५
१३	६	१६	७
१४	७	७	१०
१५	८	१	९
१६	८	१५	१४
१७	९	४	१३
१८	९	१०	६
१९	१०	६	२०
२०	१०	१७	११
२१	१०	३०	१३
२२	१०	४२	१२
२३	१०	५४	१२
२४	१०	६५	११
२५	१०	७८	१३
२६	१०	८७	९
२७	११	९	१२
२८	११	२१	१२
२९	१२	२	१२
३०	१२	१३	११

समष्टिगत लौकिक मङ्गलार्थ—

समष्टिमें अनेक बार कई प्रकारके उपद्रव होते हैं। ये आधिभौतिक भी हो सकते हैं और आधिदैविक भी हो सकते हैं। चोरी, डकैती आदि आधिभौतिक उपद्रव हैं, इसी प्रकार सर्प दंश, वन्य-पशुओंका, मानव, पक्षी

हो जाना, युद्ध, बीमारी आदि भी आधिभौतिक उपद्रव हैं। बाढ़, अकाल, भूकम्प आदि आधिदैविक उपद्रव हैं। इनकी निवृत्तिके लिए श्रीमद्भागवत-का आश्रय अनुष्ठानके रूपमें लिया जाता है।[1]

त्रैलोकीके मङ्गलके लिए व्यक्ति स्वयं भी श्रीमद्भागवतका सम्पूर्ण पारायण छब्बीस दिनोंके क्रममें कर सकता है।[2]

---

१. पाठकर्त्ता दस ब्राह्मणोंके द्वारा निम्न क्रममें १९८ सप्ताह पाठ कराये जाने चाहिये—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	९	७१
२	६	१३	६१
३	९	७	५२
४	१०	३४	५१
५	१०	७३	३९
६	१०	९०	१७
७	१२	१३	४४

२. दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१५	१५
२	२	७	११
३	३	१३	१६
४	३	२५	१२
५	३	३२	७
६	४	१२	१३
७	५	१	२०
८	५	१२	११
९	५	२५	१३
१०	६	९	१०
११	७	४	१४
१२	७	१३	९
१३	८	११	१३
१४	८	२२	११
१५	९	१६	१८
१६	१०	७	२५
१७	१०	१९	१२
१८	१०	३५	३६

मानवको लौकिक जीवनके व्यवहारके लिए धनकी आवश्यकता प्रधान आवश्यकताओंमें-से हैं, इसलिए जब यह सामान्य प्रयत्नोंसे पूर्ण न हो सके, आधिदैविक सहारा लेना ही पड़ता है। इसके भी अनुष्ठान[1] श्रीमद्-भागवतमें है।

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१९	१०	४८	१३
२०	१०	५९	११
२१	१०	७२	१३
२२	१०	८४	१२
२३	११	१०	१६
२४	११	२१	११
२५	१२	२	१२
२६	१२	१३	११

१. (क) भाद्र शुक्ल पक्षमें निम्न क्रमसे पाँच दिन पाठ किया जायेगा—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	७	६९
२	६	१९	६९
३	९	२४	६३
४	१०	६९	६९
५	१२	१३	६५

(ख) भाद्रपद कृष्ण पक्षमें—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	३२	६१
२	५	१४	६६
३	८	२४	७०
४	१०	३९	६३
५	११	२९	६०
६	१२	१३	१५

(ग) स्वयं न किया जा सके तो चार पाठकर्त्ता ब्राह्मणों द्वारा ६ दिनमें निम्न क्रमसे १४४ पाठ कराने चाहिये—

मनुष्यके लिए स्वस्थ शरीर सबसे अधिक अपेक्षित है, किन्तु शरीर सदा तो स्वस्थ रहता नहीं है। अनेक बार तो चिकित्सा भी सफल नहीं होती। तब रोगकी निवृत्तिके लिए[1] दैवी आश्रय लेना पड़ता है। श्रीमद्-भागवतका आश्रय इस सम्बन्धमें भी लिया जा सकता है।

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	३२	६१
२	५	१४	४६
३	८	२४	७०
४	१०	४९	७३
५	११	२९	७०
६	१२	१३	१५

(घ) ६ दिनोंमें स्वयं करना है—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	९	७१
२	६	१३	६१
३	९	७	५२
४	१०	३४	५१
५	१०	९०	५६
६	१२	१३	४४

(ङ) ८ दिनोंमें स्वयं करना है—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१५	४४
२	४	२१	३९
३	५	७	४३
४	८	२१	४८
५	१०	२३	५०
६	१०	५१	२८
७	११	३	४२
८	१२	१३	४१

१. (क) सप्ताह विधिसे—

अपनी ही रोग मुक्ति पर्याप्त नहीं होती, बन्धु-बान्धवोंके रोगोंके शमन[1] के लिए भी श्रीमद्भागवतका आश्रय लिया जा सकता है।

सन्तानकी अभिलाषा मानवको होती है। बहुत परिवारोंमें ऐसा होता है कि कन्यायें ही होती हैं, वंश वृद्धिके लिए पुत्र आवश्यक है। बहुत

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	२०	४९
२	५	६	५०
३	६	१९	३९
४	९	२०	५९
५	१०	३५	३९
६	१०	८५	५०
७	१२	१३	४९

(ख) आठ दिवसका पाठ—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	२०	४९
२	५	६	५०
३	६	१९	३९
४	९	२०	५९
५	१०	३५	३९
६	१०	८५	५०
७	११	६	११
८	१२	१३	३८

१. ऐसा भागवदाश्रय ब्राह्मणों द्वारा पाठ करानेसे अधिक सफल होता है ५ पाठ-कर्त्ताओं द्वारा निम्न क्रमसे १९६ सप्ताह पाठ होने चाहिये—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	२	१०	२९
२	४	३१	६४
३	६	१९	४५
४	८	२४	३९
५	१०	४९	७३
६	११	३१	७२
७	१२	१३	१३

कम चिकित्सा इसमें सफल होती है। इस सम्बन्धमें भी भागवतका आश्रय लिया जा सकता है।[1]

अनेक बार ऐसा होता है कि प्रारम्भके काममें अनेक विघ्न आने लगते हैं, इन विघ्नोंके नाश[2] के लिए भी भागवतका आश्रय लिया जा सकता है।

---

१. (क) दो दिन दिनमें सम्पूर्ण भागवतका पाठ करना चाहिये इसका क्रम निम्न है—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	६	१३	१६०
२	१२	१३	१४५

(ख) स्वयं न किया जा सके तो ५ ब्राह्मणोंके द्वारा १४५ सप्ताह पारायण निम्न क्रमसे करना चाहिये। यह अनुष्ठान स्त्री प्राप्तिके लिए भी किया जाना चाहिये।

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	२४	५३
२	५	३	४३
३	७	८	५०
४	१०	४	५६
५	१०	५५	५१
६	११	३	४१
७	१२	१३	३८

२. ६ पाठकर्त्ता ब्राह्मणोंके द्वारा निम्न क्रमसे १४० सप्ताह पारायण कराये जाने चाहिये—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१६	४८
२	५	६	५१
३	७	१०	४६
४	६	२४	५३
५	१०	३६	४६
६	१०	६०	४१
७	१२	१३	४४

अनेक बार मनुष्य किसी असत्पुरुषकी शत्रुतासे बहुत पीड़ित होता है, शत्रुकी पराजयके[1] लिए भागवतका आश्रय विधि संगत है।

मनुष्य अपने ही अपराधसे बन्दी होता है, किन्तु अपराध तो मनुष्यकी दुर्बलता है, इसलिए भागवतका आश्रय कैदसे छुटकारा[2] दिला सकता है।

स्वयं पाठ करना हो तो निम्न क्रमसे सप्ताह पाठ करना चाहिये—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१९	४९
२	५	१६	६१
३	७	१०	३९
४	९	२४	५३
५	१०	४९	४९
६	१०	९०	४१
७	१२	१३	४४

१. पाठकर्त्ता ब्राह्मण ६ होने चाहिये। १८४ सप्ताह पाठ निम्न क्रमसे किये जाने चाहिये—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१९	४८
२	५	१५	६०
३	७	१५	४५
४	१०	१२	६०
५	१०	८४	७२
६	११	३१	३७
७	१२	१३	१३

२. सात ब्राह्मणोंके द्वारा निम्न क्रमसे १४३ भागवत-सप्ताह पाठ किया जाना चाहिये—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	३३	६२
२	५	२६	५७
३	७	१५	३४
४	९	२४	४८
५	१०	९०	९०
६	११	३१	३१
७	१२	१३	१३

मनुष्यको जीवनमें यश-सम्मानकी कामना, सुख-प्राप्तिकी कामनासे कम नहीं होती। महान पुरुष तो यश-प्राप्ति जीवनसे श्रेष्ठ मानते हैं। श्रीमद्भागवतका आश्रय यश-प्राप्ति[1] के लिए बहुत उपयोगी है।

जीवनमें दूसरी बातोंके सामान विद्याकी महत्ता कम नहीं कही जानी चाहिये। अपने प्रयत्नके साथ यदि श्रीमद्भागवतका आश्रय लें तो विद्या-प्राप्ति[2] में सफलता सुगमता पूर्वक मिलती है।

---

१. ६ दिनोंमें निम्न क्रमसे श्रीमद्भागवतका पाठ—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१०	३९
२	४	२	२५
३	५	२०	४९
४	७	१२	३७
५	९	८	३५
६	१०	२०	३६
७	१०	६०	४०
८	११	८	३८
९	१२	१३	३६

२. उन्नीस दिनमें—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१	५
२	१	१६	११
३	२	१०	१३
४	३	१२	१२
५	३	२३	११
६	३	३०	७
७	४	८	११
८	४	२२	१४
९	५	१	१०
१०	५	१२	११
११	५	१८	६
१२	६	६	१४
१३	६	१८	१२
१४	७	१०	११

व्यष्टिगत पारमार्थिक मङ्गलार्थ—

पारमार्थिक मङ्गलमें सबसे प्रथम बात है—मनुष्यकी धर्ममें प्रवृत्ति हो। इसके बिना मनुष्य पामर होता है। वह पारमार्थिक कल्याणका अधिकारी नहीं। धर्ममें निष्ठा होनेपर वह ठीक मानव होता है, द्विपाद पशु नहीं रह जाता। उसमें मनुष्यता आ जाती है। मनुष्यता आ जानेपर वह पारमार्थिक पथपर अग्रसर होता है।

पारमार्थिक साधनामें प्रथम है अन्तःकरणकी शुद्धि। इसके लिए प्रायः निष्काम कर्म किये जाते हैं। अधिकारीके अनुसार अन्तःकरण शुद्ध होनेपर योग, ज्ञान अथवा उपासनामें रुचि होती है। इस प्रत्येक स्तरपर श्रीमद्-भागवतका आश्रयण किया जा सकता है।

मनुष्य धर्मको समझता तो है किन्तु उसमें उसकी स्वाभाविक रुचि नहीं होती। इस रुचिमें प्रवृत्ति होनेको श्रीमद्भागवत[1] का आश्रय लिया जाता है।

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१५	८	८	१३
१६	८	१७	८
१७	८	५	१२
१८	८	१६	११
१९	१०	४	१२
२०	१०	१५	११
२१	१०	२८	१३
२२	१०	४४	१६
२३	१०	५६	१२
२४	१०	६६	१०
२५	१०	७७	११
२६	११	१	१४
२७	११	१४	१३
२८	११	३०	१६
२९	१२	१३	१४

१. निम्न क्रमसे भागवतका पाठ ४ दिनमें किया जाना चाहिये—

कोई आध्यात्मिक साधन हो, उसकी नीव है—अन्तःकरणकी शुद्धि। अन्तःकरणकी शुद्धि बिना कोई साधन सफल नहीं होता। कामना ही अन्तः करणकी अशुद्धि है। इसलिए अन्तःकरणकी शुद्धि[1] के लिए श्रीमद्भागवतका निष्काम पाठ किया जाता है।

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	१८	८१
२	८	१४	८६
३	१०	५१	८५
४	१२	१३	८३

अथवा पाँच दिनमें निम्न क्रमसे सम्पूर्ण ग्रन्थका पाठ करना चाहिये—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	४	६६
२	६	१५	६८
३	८	२१	६४
४	१०	६४	६७
५	१२	१३	७०

१. निम्न क्रमसे १ या ५ ब्राह्मणोंके द्वारा १०८ सप्ताह पारायण कराये जाने चाहिये—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	२०	४८
२	५	२३	६७
३	७	१५	३७
४	८	२४	४८
५	१०	१२	१२
६	१०	८२	७०
७	१२	१३	५२

स्वयं पाठ करना हो तो निम्न क्रमसे सप्ताह पारायण करना चाहिये—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	२०	४८
२	५	२३	६७
३	७	१५	३७

यदि शुद्धान्तःकरण साधक योगके मार्गसे चलता है तो योगकी सिद्धि या चित्तवृत्ति निरोधके लिए वह श्रीमद्भागवत[1] का आश्रय ले सकता है।

आवागमनसे मुक्ति, मोक्ष या ज्ञान एक ही स्थितिको कहते हैं। मोक्षका अर्थ ही है—जन्म-मरणसे छुटकारा। अविद्या नाशसे यह मोक्षकी स्थिति प्राप्त हो जाती है। ज्ञानके द्वारा अविद्याका नाश होता है। उस ज्ञानकी प्राप्तिके[2] लिए श्रीमद्भागवतका आश्रय अनेक साधक लेते हैं।

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
४	८	२४	४८
५	१०	४२	४२
६	१०	८०	४८
७	१२	१३	४४

१. नीचेके क्रमसे सम्पूर्ण भागवतका पाठ दो दिनमें किया जाना चाहिये—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	८	१६	१६८
२	१२	१३	१६६

२. तीन दिनमें सम्पूर्ण ग्रन्थका पाठ निम्न क्रममें करना चाहिये—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	५	८	१०१
२	१०	१२	११२
३	१२	१३	१२२

अथवा, निम्न क्रमसे सप्ताह पाठ करना चाहिये—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१८	४७
२	५	८	५४
३	८	७	५८
४	१०	३	४४
५	१०	५३	५०
६	११	८	४६
७	१२	१३	३५

अथवा निम्न क्रमसे १० दिनमें ग्रन्थका पारायण करना चाहिये—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	६	३५
२	४	७	३४
३	५	८	३३
४	६	१८	३६
५	८	२४	३८
६	१०	११	३५
७	१०	४५	३४
८	१०	७८	३४
९	११	२३	३४
१०	१२	१३	२१

अथवा, निम्न क्रमसे २२ दिनमें पारायण करना चाहिये—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	११	११
२	२	९	१७
३	३	८	१०
४	३	२५	१६
५	४	१०	१८
६	४	१८	८
७	५	३	१६
८	५	१६	१३
९	६	९	१८
१०	७	४	१४
११	८	१०	२१
१२	८	२२	१२
१३	९	१८	२०
१४	१०	१	७
१५	१०	२४	२३
१६	१०	३३	९
१७	१०	५४	२१
१८	१०	७८	२४
१९	११	८	२०
२०	१२	१७	९
२१	१२	२	१६
२२	१२	१३	११

भगवत्प्रेमकी प्राप्ति, भक्तिकी प्राप्ति, भगवत्प्राप्ति, भगवत्प्रीति-प्राप्ति लगभग यह पर्यायवाची ही शब्द हैं, क्योंकि भगवान् बिना भक्ति प्राप्त नहीं होते । श्रीमद्भागवत तो भक्तिको भगवद्-प्राप्तिसे भी महान् मानता है। यह भक्तिकी प्राप्ति श्रीमद्भागवतके माध्यमसे होती है । श्रीमद्भागवतकी प्रवृत्ति ही इसी लिए है।

ज्ञान या भक्तिकी प्राप्तिके लिए साधनको दीर्घकाल तक चलाना पड़ता है और दीर्घकालीन साधन तभी चल सकता है, जब वह साधककी शक्ति एवं परिस्थितिके अनुरूप हो। अतः भक्तिकी प्राप्तिके लिए भागवतका आश्रय साधककी स्थितिके अनुसार होता है।[1]

---

१. (क) एक दिन (सूर्योदयसे सूर्योदय तक) सम्पूर्ण ग्रन्थका पाठ ।

(ख) वैसाख मासमें निम्न क्रमसे सप्ताह पाठ—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	२४	५३
२	५	३	४३
३	७	९	५०
४	१०	४	५९
५	१०	५५	५१
६	११	६	४१
७	१२	१३	३८

(ग) दशाह पारायण—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	६	३५
२	४	७	३४
३	५	९	३३
४	६	१९	३६
५	८	२४	३९
६	१०	११	३५
७	१०	४५	३४
८	१०	७९	३४
९	११	२३	३४
१०	१२	१३	२१

(घ) पक्ष-पारायण—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	२	४	२३
२	३	१९	२५
३	४	२२	३६
४	५	१६	२५
५	६	१३	२३
६	८	२	२३
७	८	२४	२२
८	९	२३	२३
९	१०	२४	२५
१०	१०	४८	२४
११	१०	६८	२०
१२	१०	८९	२१
१३	११	६	७
१४	१२	५	३०
१५	१२	१३	८

(ङ) अष्टादशाह पारायण—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१६	१६
२	३	८	२१
३	३	२१	१३
४	४	८	२०
५	४	२३	१५
६	५	१३	२१
७	६	१	१४
८	७	२	३०
९	८	६	१९
१०	९	४	३२
११	९	२४	२०
१२	१०	१८	१८
१३	१०	४०	२२
१४	१०	५९	१९
१५	१०	७३	१४
१६	११	७	२४
१७	११	२५	१८
१८	१२	१३	१९

(च) मास-पारायण—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	११	११
२	१	१८	८
३	२	१०	१०
४	३	१२	१२
५	३	२४	१२
६	३	३३	९
७	४	१२	१२
८	४	२३	११
९	४	३१	८
१०	५	१४	१४
११	५	२६	१२
१२	६	१२	१२
१३	७	५	१२
१४	७	१५	१०
१५	८	२४	१२
१६	८	२४	१२
१७	९	१३	१३
१८	९	२४	११
१९	१०	११	११
२०	१०	२१	१०
२१	१०	३३	१२
२२	१०	४५	१२
२३	१०	५७	१२
२४	१०	६९	१२
२५	१०	७९	१०
२६	१०	९०	११
२७	११	१३	१३
२८	११	२५	१३
२९	१२	५	१०
३०	१२	१३	८

(छ) ऋतु (दो मासका) पारायण—

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	३	३
२	१	११	८

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
३	१	१५	४
४	१	१६	४
५	२	६	६
६	२	१०	४
७	३	६	६
८	३	११	५
९	३	१६	५
१०	३	२०	४
११	३	२४	४
१२	३	२८	४
१३	३	३३	५
१४	४	७	७
१५	४	१२	५
१६	४	१८	६
१७	४	२४	६
१८	४	३१	७
१९	५	६	६
२०	५	११	५
२१	५	१५	४
२२	५	२०	५
२३	५	२६	६
२४	६	७	७
२५	६	१३	६
२६	६	१९	६
२७	७	५	५
२८	७	१०	५
२९	७	१५	५
३०	८	४	४
३१	८	९	५
३२	८	१४	५
३३	८	१८	४
३४	८	२३	५
३५	९	५	६
३६	९	१२	७
३७	९	१७	५
३८	९	२४	७
३९	१०	६	६
४०	१०	११	५

श्रीरामचरितमानसके अनुशीलन अनुष्ठान

(व्यष्टिगत लौकिक मङ्गलके लिए अथवा पारलौकिक मङ्गलके लिए या समष्टिगत लौकिक मङ्गलके लिए)

श्रीरामचरितमानसका पाठ २ या ३ दिनमें श्रीहनुमानजी या भगवान् शङ्करके मन्दिरमें करना चाहिये।

श्रीरामचरितमानसमें एक दिन, दो दिन, तीन दिनके पाठके अतिरिक्त नवाह्न पाठकी विधि और मासिक पाठकी विधि है।

श्रीरामचरितमानसकी मासिक पाठ विधि प्रायः व्यक्तिगत पारलौकिक मङ्गलके लिए ही है। लौकिक मङ्गलके लिए मानसका नवाह्न पाठ होता है।

सकाम नवाह्न पाठ सम्पुट सहित ही किया जाता है। सम्पुट वल्ली सहित करनेपर अधिक लाभ होता है। गीता प्रेसमें छपी 'मानस' की

दिन	स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
४१	१०	१७	६
४२	१०	२३	६
४३	१०	२८	५
४४	१०	३३	५
४५	१०	३८	५
४६	१०	४४	६
४७	१०	४९	५
४८	१०	५५	६
४९	१०	६१	६
५०	१०	६८	७
५१	१०	७५	७
५२	१०	८१	६
५३	१०	८८	७
५४	११	५	७
५५	११	११	६
५६	११	१८	७
५७	११	२३	५
५८	११	२९	६
५९	१२	५	७
६०	१२	१३	८

पुस्तकमें नवाह्न पाठ और मासिक पाठके विश्राम स्थल दिये गये हैं, किन्तु इस विश्राम स्थलके अनुसार पाठ व्यक्तिगत पारलौकिक-मङ्गलके लिए ही किया जाता है।

विभिन्न कामनाओंके लिए मानसका नवाह्न पाठ भिन्न-भिन्न स्थानोंसे प्रारम्भ होता है। पाठ पूरे ग्रन्थका ही किया जाता है, किन्तु जहाँसे निर्देश है, वहाँसे ग्रन्थकी समाप्ति-पर्यन्त पाठ और फिर ग्रन्थके आदिसे वहाँ तक पाठ जहाँसे प्रारम्भ किया गया था। इस प्रकार सम्पूर्ण मानसका पाठ नवाह्न क्रमसे होता है। नवाह्नके विश्राम स्थान ग्रन्थमें अंकित क्रमसे चलते हैं।

व्यष्टिगत लौकिक मङ्गलके लिए अनुष्ठान

१. मङ्गल तथा सुख-प्राप्तिके लिए—

बालकाण्ड दोहा १०३ 'शिव-चरित' की समाप्तिसे पाठ कीजिये।

२. कन्याओंको वर-प्राप्तिके लिए—

बालकाण्ड सोरठा २३६—'जानि गौरि अनुकूल' से प्रारम्भ कीजिये।

३. दाम्पत्य-सुख और विवाहके लिए—

बालकाण्डके अन्तिम सोरठेसे प्रारम्भ करें।

४. शत्रु-विजयके लिए—

अरण्यकाण्ड दोहा २० (ख) 'हरषित बरषहिं सुमन सुर' से पाठ प्रारम्भ करें।

५. रोग-निवृत्तिके लिए—

किष्किन्धाकाण्ड अन्तिम दोहा—'भव भेषज रघुनाथ जसु' से प्रारम्भ करें।

६. कार्य सिद्धिके लिए—

सुन्दरकाण्ड–दोहा ३३–'ता कहुँ प्रभु कछु अगम नहिं' से।

७. सम्पत्ति और पद-प्राप्तिके लिए—

सुन्दरकाण्ड दोहा ४९ (ख)–'जो संपति सिव रावनहि' से।

८. विजय-प्राप्तिके लिए—

लंकाकाण्ड दोहा १२१ अन्तिम दोनों दोहों 'समर बिजय रघुबीरके'से

९. वियुक्त-स्वजनसे भेंटके लिए—

उत्तरकाण्ड दोहा ५, 'पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन' से।

व्यष्टिगत पारलौकिक-मङ्गलके लिए—

१. भक्तिकी प्राप्ति—

भगवत्प्राप्ति अथवा मोक्ष प्राप्तिके लिए पाठको प्रारम्भसे करना चाहिये। प्रायः लोग इसी प्रकार पाठ प्रारम्भ करते हैं।

२. प्रेम-प्राप्तिके लिए—

दोहा १९० बालकाण्ड–'जोग लगन ग्रह बार तिथि' यहाँसे प्रारम्भ करें।

३. वैराग्य-प्राप्तिके लिए—

अयोध्याकाण्ड दोहा ३१८ 'लखनहि भेंटि प्रनामु करि' से पाठ प्रारम्भ करें।

श्रीरामचरितमानसके लघु अनुष्ठान

(अ) व्यष्टिगत लौकिक-मङ्गलके लिए—

१. पुत्र-प्राप्तिके लिए—

'मातु दुलारइ कहि प्रिय ललना' से प्रारम्भ करके उल्टा पाठ करते हुए 'दानि सिरोमनि कृपानिधि नाथ कहउँ सतिभाउ। चाहउँ तुम्हि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ॥' तकका नित्य पाठ करना चाहिये।

२. ऋण-मोचनके लिए—

नीचे अंशका १०८ बार आदिमें और १०८ बार अन्तमें पाठ करते हुए नित्य सुन्दरकाण्डका पाठ करना चाहिये।

महाबीर बिनवउँ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥

प्रनवउं पवन कुमार खल बन पावक ग्यानघन ।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर ।।

३. रोग-नाशके लिए—

किसी प्रकारका रोग क्यों न हो, आप सायंकालमें यथाशक्ति शौच-स्नान करके पवित्र हो जाइये । सामने घीका दीप जलाकर रख लीजिए । शुद्ध पात्रमें जल भरकर रख लीजिए । तुलसी-मालापर निम्नलिखित मंत्रका जाप करना चाहिये—

दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ।।

(मानस, ७।२०.१)

पश्चात् दीपकसे कज्जल (काजल) बना लीजिये । पात्रका जल रोगीको बार-बार पिलाते रहिये और काजल ललाटमें लगाइये ।

४. सर्व प्रकारके मङ्गलके लिए—

सुन्दरकाण्डका पाठ प्रतिदिन करना चाहिये और प्रत्येक पदके साथ 'श्रीराम जय राम जय जय राम' का सम्पुट करना चाहिये ।

मानसके अनुष्ठानोंमें यह स्मरण रखनेकी बात है कि सब सकाम अनुष्ठान मानसके नवाह्न पारायणके ही हैं । नवाह्न पारायणके समय जिस पदको सम्पुट या सम्पुट वल्लीके लिए उपयोगमें लिया जायेगा, केवल उनको ही यहाँ दिया जा रहा है । अवश्य ही उस अनुष्ठानके समय उस सम्पुटके पाठके अतिरिक्त भी बराबर जप करना शीघ्र सफलता देता है ।

'मानसके अनुष्ठान' लेखक—श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र' (मानस संघ, राम-वन सतना)के आधारपर—

आजके समाजमें सबसे आवश्यक स्थिति है जीविकाकी प्राप्ति । इसके लिए सम्पुट—

बिस्व भरन पोषन कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ।।

दरिद्रता दूर करनेके लिए[1], धनकी प्राप्तिके लिए[2], मनोरथकी पूर्तिके लिए[3] मानसका आश्रय लिया जा सकता है ।

---

१. **अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के । कामद घन दारिद दवारि के ।।**

२. **जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं । सुख सम्पति नाना बिधि पावहिं ।।**

३. **सो तुम्ह जानहु अन्तरजामी । पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी ।।**

मानवमात्रकी आकांक्षा रहती है कि जीवनमें बाह्य अशान्ति न आये[१]। कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो[२], जो कार्य वे प्रारम्भ करें उनमें सफलता प्राप्त करें[३], उनका अभीष्ट पूर्ण हो[४], उनका मङ्गल हो[५]। इन सभी अनुष्ठानोंका विधान भी श्रीरामचरितमानसमें है।

कौन सुख सम्पत्ति नहीं चाहता[३] ? यह तो जीवनमें चाहिये ही। सुख भी एक प्रकारका नहीं, सब प्रकारका चाहिये[७] दुर्भाग्यको दूर[८] करके जो कार्य करें उस कार्यमें सिद्धि[९] और सफलता चाहिये।

क्लेशोंका नाश[१०] और चिन्तासे मुक्ति[११] की सभी कामना करते हैं।

अथवा

भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि।
तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥

१. जब तें रामु ब्याहि घर आए। नित नव मङ्गल मोद बधाए॥

२. सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपाँ बिलोकहिं जेही॥

३. प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥

४. स्वयंसिद्ध सब काज नाथ मोहि आदरु दियउ।
अस बिचारि जुबराज तन पुलकित हरषित हियउ॥

५. मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥

६. (अ) जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥

(आ) तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥

७. सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई। लहहिं भगति गति सम्पति नई॥

८. मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥

९. महाबीर बिनवउ हनुमाना। राम जासु जस आप बखाना॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥

१०. आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी॥

११. मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन॥

सभीके जीवनमें कोई न कोई शत्रु होता ही है। शत्रुपर विजय[१] चाहिये अच्छा होता है कि शत्रुसे संधि[२] हो जाये। शत्रुसे रक्षा भी चाहिये[३]। सबसे श्रेष्ठ है कि शत्रुताका ही नाश[४] हो जाये।

मनुष्यको विद्या चाहिये[५], विद्या और निर्मल बुद्धि[६] भी चाहिये, परीक्षामें उत्तीर्ण होना[७] और कभी-कभी कवित्वकी शक्ति[८] भी चाहिये।

कभी किसीके जीवनमें आधिदैविक बाधा भी आती है अर्थात् भूतादि-की बाधा[९] होती है। किसी जन्तुके काटनेसे या विषैली वस्तु खा लेनेसे विष पीड़ा भी होती है[१०], दूसरे प्रकारके भी कठिन क्लेश आ जाते हैं[११], अनेक बार तो छोटे बच्चोंको नजर भी लग जाती है[१२], लड़के-लड़कियोंके विवाहके

---

१. जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा॥

२. गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥

३. हनूमान अंगद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे॥

४. बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥

५. गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब आई॥

६. जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुनानिधान की।
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ॥

७. मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती॥

८. जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥

९. जय रघुबंस बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू॥

१०. नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमी को॥

११. (अ) हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू॥

(आ) जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम सङ्कट भारी॥

१२. स्याम गौर सुन्दर दोउ जोरी। निरखहिं छबि जननी तृन तोरी॥

लिए[१], पुत्र प्राप्ति[२] के लिए। परिवारके विमुक्त जनोंसे मिलनेके लिए[३] तथा यात्राकी सफलता[४] के लिए भी उपाय चाहिये।

जीवनमें आनेवाले भयका शमन[५], अपवादसे परित्राण[६], ज्वर आदि-का विनाश[७] होना ही चाहिये। इस प्रकार प्रत्येक कष्ट तथा संकटसे निवारण[८] के लिए श्रीरामचरितमानस सहायक हो सकता है।

समष्टिगत लौकिक मङ्गलार्थ

समष्टिमें रोग-महामारी आदिको मिटानेकी आवश्यकता होती है। अनावृष्टि, अतिवृष्टिको नियंत्रित करनेकी आवश्यकता होती है, इन दोनों ही प्रयोजनों[९] में श्रीरामचरितमानस प्रेरक है, सहायता देता है।

---

१. (अ) भुवन चारि दस भरा उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिअबाहू॥

(आ) तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्यह साज सँवारि कै।
मांडवी श्रुतिकीरति उरमिला कुअँरि लईं हँकारि कै॥

२. प्रेम मगन कौसल्या निसि दिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता बालचरित कर गान॥

३. जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥

४. चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयँ अवधहि सिरु नाई॥

५. पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं। यह खल खाइ काल की नाईं॥

६. रामकृपाँ अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी॥

७. त्रिबिध दोष दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन॥

८. जननि जनक सिय राम प्रेम के। बीज सकल ब्रत धरम नेम के।
मंत्र महामनि बिषय ब्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के॥

ॐ आपदामयहर्तारं दातारं सर्व सम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥

राम रक्षा स्तोत्र श्लोक संख्या ३५

९. (अ) दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥

व्यष्टिगत पारलौकिक मङ्गलार्थ

श्रीरामचरितमानसकी दृष्टिसे पारलौकिक मङ्गल है—प्रारम्भिक स्थितिमें हनुमानजीकी प्रसन्नताकी प्राप्ति[१], उस प्रसन्नताके फलस्वरूप श्रीसीतारामके दर्शन[२], भगवत्प्रेम[३], एवं भगवद्भक्ति[४] की प्राप्ति, आवागमन रूपी भव-भयका नाश[५] और अन्तमें भगवत चिन्तनपूर्वक देह त्याग[६]।

श्रीरामचरितमानसके आश्रयसे इन सबकी पूर्ति की जा सकती है।

अनुष्ठानोंके सम्बन्धमें कुछ विशेष

क्योंकि श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरितमानसके पर्याप्त अनुष्ठान संकलित किये गये हैं, इसलिए संकलित किये गये हैं क्योंकि दोनों ग्रन्थोंका लोक मङ्गलात्मक रूप इनके बिना स्पष्ट नहीं होता।

इन अनुष्ठानोंके सम्बन्धमें जो नियम बतलाये गये हैं, उनको जाने बिना इनका उपयोग नहीं किया जा सकता। करनेपर सफलता संदिग्ध हो जाती है। अतः शोधका विषय न होनेपर भी इन नियमोंको 'मानसके अनुष्ठान' के अनुसार यहाँ दिया जा रहा है।

(आ) सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन दाता॥

१. सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥

२. नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सत काम॥

३. कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

४. भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपा सिंधु सुखधाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम॥

५. मो सम दीन न दीन हित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंसमनि हरहु बिषम भव भीर॥

६. राम चरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते गिरत न जानइ नाग॥

१. अधिकारी—

(१) श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनोंके पाठके सभी अधिकारी हैं। पाठ स्त्री और पुरुष सभी कर सकते हैं।

(२) पाठ अपने लिए या अपने अत्यन्त घनिष्ठ स्वजनके लिए किया जाता है, किन्तु जब पाठ किसी दूसरेके लिए जो अत्यन्त घनिष्ठ या स्वजन नहीं है कराना हो, तब केवल ब्राह्मणके द्वारा ही कराया जा सकता है। ब्राह्मणके अतिरिक्त कोई और प्रतिनिधि नहीं बन सकता।

(३) श्रीमद्भागवत संस्कृत ग्रन्थ है। अतः जो संस्कृत नहीं जानते हैं, उन्हें उसका अनुष्ठान ब्राह्मणसे ही कराना चाहिये। जो शुद्ध पाठ कर सकते हैं, वे स्वयं भी अपना कर सकते हैं।

(४) जब मृत, सूतक या जात सूतक हो अथवा पाठ करनेवाली स्त्री रजस्वला हो, तब पाठ नहीं किया जा सकता है। यदि पाठके बीचमें ये अवस्थाएँ प्राप्त हों, तो पाठको खण्डित मानकर शुद्ध होनेपर पुनः पाठ करना चाहिये। यह नियम सकाम पाठके लिए है।

(५) जो निष्काम पाठ कर रहा है, उसका नित्य पाठ किसी कारणसे भी बन्द नहीं किया जाना चाहिये। उपरोक्त स्थितिमें भी पाठ चलता है।

समयका नियम—

(१) श्रीमद्भागवतका पाठ दिनमें ही किया जाता है, किन्तु श्रीरामचरितमानस का पाठ रात्रिमें भी किया जा सकता है।

(२) यह आवश्यक नहीं है कि एक ही बार उस दिनका सम्पूर्ण पाठ कर लिया जाये। पाठको दो बारमें भी पूरा किया जा सकता है। लेकिन ठीक मध्य दिन या अर्ध-रात्रिमें पाठ नहीं करना चाहिये। मध्याह्न या अर्ध-रात्रिका एक घण्टा पाठमें वर्जित है।

(३) पाठ जहाँ तक सम्भव हो शुक्ल पक्षमें ही करना चाहिये। केवल किसी विपत्तिके अकस्मात आ जानेपर उसके निवारणके लिए पाठ किसी भी तिथिसे किया जा सकता है।

(४) पाठ ऐसे समय नहीं प्रारम्भ किया जाना चाहिये कि मध्यमें पक्ष संधि, सूर्यग्रहण या चन्द्रग्रहण पड़े।

(५) दोनों खर मास अर्थात् जब सूर्य 'धनु' राशिके अथवा 'मीन' राशिके हों, पाठ नहीं किया जाता। पुरुषोत्तम मास अथवा क्षयमासमें केवल भक्तिके लिए, मुक्तिके लिए अथवा अन्तःकरण शुद्धिके लिए ही पाठ हो सकता है। इस समय सकाम पाठ नहीं किया जाता।

(६) पाठका प्रारम्भ किसी ब्राह्मणसे पूछकर शुभ तिथि, शुभ नक्षत्रमें किया जाना चाहिये। कोई 'भद्रा' आदि अशुभ योग नहीं होना चाहिये। पाठ प्रारम्भ होनेके पश्चात् ये योग मध्यमें पड़ें तो उनका दोष नहीं है। 'गुरु' या 'शुक्र' के अस्त-कालमें भी पाठ नहीं प्रारम्भ करना चाहिये।

पाठके दोष—

पाठके छः दोष माने जाते हैं। इनको त्यागकर ही पाठ पूर्ण सा होता है।

(१) मौन होकर मन ही मन पाठ करना। पाठ इतने स्पष्ट शब्दसे करना चाहिये कि समीप बैठा व्यक्ति सुन सके।

(२) गाकर पाठ नहीं करना चाहिये। स्थिर स्वरमें पाठ करना चाहिये।

(३) सिर या शरीर हिलाते हुए पाठ नहीं करना चाहिये। स्थिर बैठकर पाठ करना चाहिये।

(४) कण्ठस्थ पाठ नहीं करना चाहिये। ग्रन्थ सामने रखकर पाठ करना चाहिये।

(५) जहाँ तक सम्भव हो अर्थ समझते हुए पाठ करना चाहिये।

(६) इतनी शीघ्रतासे पाठ नहीं करना चाहिये कि शब्द स्पष्ट उच्चारित न हों।

पाठमें सावधानी—

(१) स्नान करके अथवा वस्त्र बदलकर, हाथ-पैर धोकर शुद्ध आसनपर बैठकर आचमन करके पाठ करना चाहिये।

(२) पाठ करते समय पुरुषको एक वस्त्रमें नहीं बैठना चाहिये। शरीरपर चद्दर भी रखना चाहिये। लेकिन **सिला,** जला, **फटा** वस्त्र पहिनकर पाठ नहीं करना चाहिये। बहुत गरीबके लिए यह नियम नहीं है। अभावग्रस्त अपनी स्थितिके अनुसार वस्त्र रखें। स्त्रियोंके लिए यह अनिवार्य नियम नहीं है।

(३) रोगी असमर्थ लेटे-लेटे या पैर फैलाकर भी पाठ कर सकता है। स्नानका नियम उनके लिए अनिवार्य नहीं है। स्वस्थ व्यक्तिको लेटे-लेटे या पैर फैलाकर या चलते हुए या खड़े-खड़े पाठ नहीं करना चाहिये। छींक, जम्हाई, खाँसी आदि पाठके बीचमें आनेपर आचमन करके तब पाठ करना चाहिये। यही बात **अपानवायुके** त्यागके सम्बन्धमें है।

(४) मलमूत्रका वेग होनेपर पाठ मध्यमें रोककर, वेगकी निवृत्तिके पश्चात् हाथ-पैर धोकर, आचमन करके, तब अगला पाठ करना चाहिये।

(५) पाठ शिवजी, हनुमानजी अथवा वैष्णव मन्दिरमें, पीपलके नीचे, बेलके नीचे, आँवलेके नीचे, तुलसीके समीप उत्तम माना जाता है। घरमें भी किया जा सकता है, किन्तु स्थान पवित्र-स्वच्छ किया होना चाहिये। गौशाला नित्य पवित्र होती है। अतः वहाँ कोई भी पुण्य-कार्य किया जा सकता है। यदि पाठके बीचमें किसीसे बोलना पड़े तो आचमन करके पाठ किया जाना चाहिये।

(६) पाठके बीचमें अपने गुरुदेव, या सम्मानित व्यक्ति आ जायें तो उन्हें उठकर प्रणाम करना चाहिये। उनकी अनुमति लेकर आचमन करके पुनः पाठ प्रारम्भ कर देना चाहिये, लेकिन साधारण आदरणीयके आनेपर पाठसे नहीं उठना चाहिये। केवल मस्तक झुककर प्रणाम कर लेना चाहिये।

(७) अनुष्ठानके मध्यमें कोई बीमारी आ जाये या सूतक पड़ जाये तो ब्राह्मणके द्वारा शेष अनुष्ठान पूरा कराया जा सकता है।

(८) अनुष्ठानके कालमें ब्रह्मचर्यका पालन सबके लिए आवश्यक है। मांस, मदिरा आदि तामसिक पदार्थोंका त्याग आवश्यक ही है।

अनुष्ठानके अङ्ग—

श्रीमद्भागवतके अनुष्ठानमें पाठ यदि चार दिन तकका है तो कोई अङ्ग आवश्यक नहीं होता, किन्तु इससे अधिक अनुष्ठानमें कलश-स्थापन, गणेश, नवग्रह, मात्रिका-पूजन प्रारम्भमें आवश्यक होता है।

श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरितमानस दोनों छपे ग्रन्थोंमें प्रारम्भमें पाठ विधि दी होती है। उसमें ऋष्यादिन्यास, अङ्गन्यास, करन्यास, ध्यानकी विधि दी गयी होती है। अनुष्ठानके प्रथम दिन प्रारम्भमें इनको कर लेना अच्छा है। अनुष्ठानके अन्तमें हवन, तर्पण, मार्जन, ब्राह्मण-भोजन कराना भी आवश्यक होता है। यह बात श्रीरामचरितमानसके अनुष्ठानमें आवश्यक नहीं है, किन्तु किये जायें तो अनुष्ठानका फल अधिक सुनिश्चित हो जाता है। कोई अनुष्ठान बिना संकल्पके सिद्ध नहीं होता, अतः विधिपूर्वक संकल्प किया ही जाना चाहिये। जितना पाठ किया जाता है, उसकी दशांश आहुति दी जाती है। भागवतकी श्लोक संख्या १८००० है इसलिए उसके हवनमें १८०० आहुतियाँ पड़ती हैं।

श्रीमद्भागवत गायत्री-मय है इसलिए श्रीमद्भागवतका हवन, तर्पण आदि द्वादशाक्षर मंत्र (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) अथवा गायत्री मंत्रसे किया जाना चाहिये। यदि अनुष्ठान करनेवाला यज्ञोपवीत न पहिनता हो या स्त्री हो, तो हवन-तर्पण आदि गायत्रीसे न करके द्वादशाक्षर मंत्रसे ही करना चाहिये।

हवनमें एक आहुति लगभग पौन तौलेकी पड़ती है। सामग्री इसी हिसाबसे तैयार करनी चाहिए। सबसे अधिक तिल, तिलका आधा चावल, चावलका आधा जौ, अनुमानसे देशी खांड, शुद्ध घी मिलाना चाहिये। पञ्च-मेवा, चन्दन-बुरादा, सुगन्धित औषधियाँ मिलायी जा सकती है।

तर्पणमें हर बार तनिक-सा तिल, चावल, जौ लेना पड़ता है। इसे जलमें भी मिला दिया जा सकता है।

मार्जन कुशसे या आम्र पल्लवसे किया जाता है। मार्जनका जल अपने ऊपर ही छिड़का जाता है।

श्रीरामचरितमानसकी यह संख्या महापुरुषोंने ६००० मानी है। यदि कोई सम्पुट पदपर रखा है तो यह संख्या १२००० हो जाती है और सम्पुट-

वल्लीमें १८००० हो जाती है। दोहेपर सम्पुट किया हो तो उसकी संख्या अगल नहीं गिनी जाती।

आहुतिका दशांश तर्पण किया जाता है और तर्पणका दशांश मार्जन किया जाता है, किन्तु तर्पणमें यदि संख्या सौसे विभाजित न होती हो तो सौ पूरा करके ही तर्पण होता है। मार्जनकी संख्या दससे विभाजित हो ऐसा कर लिया जाता है। जितना मार्जन किया गया है, उसकी दशांश संख्या ब्राह्मणोंको भोजन कराया जाता है।

सम्पुटकी परिभाषा—

(१) किसी एक पदको वह श्लोक हो, मंत्र हो, दोहा या अर्धालीको हर दो पदके मध्यमें पढ़नेको सम्पुट कहते हैं।

(२) सम्पुटका जो पद मंत्र आदि है, उसे हर दो पदके मध्यमें दो बार बोलने को सम्पुटवल्ली कहते हैं।

श्रीमद्भागवतके अनुष्ठानके विशेष नियम—

(१) श्रीमद्भागवतका पाठ सूर्योदयके समयसे प्रारम्भ किया जाना चाहिये। पूजन आदि इससे पहिले कर लिया जाना चाहिये। दैनिक पाठकी समाप्ति रात्रिके प्रथम प्रहर तक भी हो तो कोई बाधा नहीं होती है।

(२) अनुष्ठान प्रारम्भ होनेसे पहिले दिन वक्ता और श्रोता दोनोंको क्षौर करा लेना चाहिये। अनुष्ठान कालमें क्षौर-कराना, तेल लगाना, धोबीसे कपड़े धुलवाना वर्जित है।

(३) पाठके समय श्रोता-वक्ता दोनोंको ही पूर्व या उत्तर मुख बैठना चाहिये। दक्षिण एवं पश्चिम मुख करके नहीं बैठना चाहिये।

(४) श्रीमद्भागवतके अनुष्ठान कालमें किसी ब्राह्मणके द्वारा द्वादशाक्षर और गायत्री मंत्रका जप होते रहना चाहिये।

(५) मध्याह्नमें दो घड़ी (लगभग पौन घण्टा) पाठका विश्राम रहना चाहिये। उस समय कीर्तन किया जाना चाहिये।

(६) सम्भव हो तो अनुष्ठान कालमें पत्तलमें ही भोजन करना चाहिये। धातु पात्रका उपयोग नहीं करना चाहिये। सब दालें, शहद, तेल,

वरिष्ठान्न अनुष्ठानकालमें वर्जित है। (जिसे जो भोजन कठिनाईसे पचता है, वह उसके लिए गरिष्ठ है। जैसे पंजाबके लोगोंके लिए उड़दकी दाल गरिष्ठ नहीं है; किन्तु बहुतोंके लिए गरिष्ठ है।)

(७) अनुष्ठानकालमें जहाँ तक हो सके मौन रखा जाना चाहिये, क्योंकि पतित, ब्रात्य, पापी, नास्तिक आदिसे बात करना वर्जित है और इनका पता लगाया नहीं जा सकता।

(८) श्रीरामचरितमानसके पाठमें इन नियमोंका पालन किया जाये तो अनुष्ठानकी सफलता सुनिश्चित हो जाती है।

श्रीरामचरितमानसके मंत्रोंके सिद्ध करनेके नियम—

श्रीरामचरितमानसके सम्पुट मंत्रोंको सिद्ध भी किया जाता है। (इन सम्पुटोंका प्रयोग एवं उपयोग करनेका विवरण पहले दिया जा चुका है) इनको यदि सिद्ध कर लिया जाये तो इनके अकेले जपसे भी कामनाकी पूर्ति होती है। एकबार सिद्ध किये जानेपर उसे दुबारा सिद्ध नहीं करना पड़ता। एक व्यक्ति कई मंत्रको भी सिद्ध कर सकता है, पर प्रत्येकके लिए उसे पृथक्-पृथक् हवन करना पड़ता है।

इन अनुष्ठानोंको सिद्ध करनेके लिए हवन करना पड़ता है। हवन-सामग्री इस प्रकार है—

१. चन्दन बुरादा	१० ग्राम	७. कपूर	१० ग्राम
२. तिल	५०० ग्राम	८. शुद्ध केशर	३ ग्राम
३. चीनी	२५० ग्राम	९. नागरमोथा	१० ग्राम
४. शुद्ध घी	२५० ग्राम	१०. पञ्च-मेवा	५० ग्राम
५. अगर	१० ग्राम	११. चावल	१०० ग्राम
६. तगर	१० ग्राम	१२. जौ	२५० ग्राम

पञ्चमेवामें निम्नलिखित वस्तुएँ होनी चाहिये—

(पिश्ता, बादाम, किशमिश, अखरोट, काजू (प्रत्येक १० ग्राम)

इनके अभावमें निम्नलिखित वस्तुओंसे भी काम ले सकते हैं—

मिश्री, छोहारा, चिरौंजी, नारियलकी गरी, और किशमिश (प्रत्येक १० ग्राम)

सर्वप्रथम सब वस्तुओंको मिला लेना चाहिये। प्रत्येक आहूति पौन तोलेकी होनी चाहिये।

हवन वाराणसीकी और मुख करके विश्वनाथको साक्षी मानकर करना चाहिये। जहाँ तक हो इसे गुप्त रखना चाहिये।

एक मंत्रको सिद्ध करनेके लिए १०८ आहुतियाँ देनी पड़ती हैं, किन्तु रक्षा मंत्र को अलगसे सिद्ध करना पड़ता है, और इसे पहिले सिद्ध कर लेना चाहिये। किसी दूसरे अनुष्ठानके समय इस सिद्ध रक्षा मन्त्रको पढ़कर अपने चारों ओर एक रेखा खींच लेनेसे कोई भय नहीं होता। वैसे भी किसी भय-प्रद स्थानपर जाना पड़े तो इसका जप करनेसे भय दूर हो जाता है। रक्षा मन्त्र है—

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक॥

इसकी १०८ आहुतियाँ हवनमें अलगसे दी जानी चाहिये। प्रत्येक ही मन्त्र या पदका हवन करते समय उसके अन्तमें स्वाहा लगाकर बोला जाता है। रक्षा मन्त्रके अतिरिक्त दूसरे मन्त्रोंको एक साथ भी हवन करके सिद्ध कर सकते हैं, किन्तु प्रत्येककी १०८ आहुति देनी चाहिये।

श्रीरामचरितमानसमें इन मन्त्रोंको सिद्ध करनेके लिए हवन रात्रिमें १० बजेके बाद किया जाता है। लंकाकाण्डके मन्त्रोंको शनिवारको हवन करके सिद्ध करना चाहिये।

सिद्ध किये गये मन्त्रका प्रतिदिन १०८ बार जप किसी भी समय कर लेना चाहिये। एक बार हवन करके सिद्ध कर लेनेके बाद फिर उनको सिद्ध नहीं करना पड़ता। उस व्यक्तिके जीवन-भरके लिए वह सिद्ध हो जाता है। उसे तभी दुबारा सिद्ध करना पड़ेगा जब उसका प्रतिदिन करने वाला १०८ बारका जप बन्द हो जायेगा।

श्रीरामचरितमानसके अनुष्ठान पाठके समय श्रीहनुमानजीको आसन देकर उनकी संक्षिप्त पूजा कर देनी चाहिये।

निष्कर्ष—

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसका एक मङ्गलात्मक रूप लोकादर्श रूप है। माता-पिता, बड़े-छोटे भाई, पति-पत्नी, पुत्र-सेवक, गुरु-

शिष्य, शत्रु-मित्र आदि समाजके विविध सम्बन्धोंमें तथा लोक-व्यवहारकी विविध परिस्थितियोंमें भारतीय संस्कृति जो आदर्श देती है वह इन दोनों ग्रन्थोंमें भली प्रकार प्रतिपादित किया गया है, किन्तु इन प्रतिपादित दोनों ग्रन्थोंके ही इस लोक मङ्गलात्मक स्वरूपपर साहित्यमें बहुत चर्चा हो चुकी है, पर्याप्त लिखा जा चुका है, अतः उसकी पुनरावृत्ति यहाँ नहीं की गयी है।

मानवमात्रके व्यक्तिगत जीवन, लोक और परलोकके सम्बन्धमें जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, उन समस्याओंका समाधान ही उसके लिए परम मङ्गल है। श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस ऐसे ही लौकिक एवं पारलौकिक, व्यष्टिगत एवं समष्टिगत मङ्गल तथा समस्त समस्याओंके समाधानके रूपमें समाजको दीर्घकालसे प्रेरणा एवं आश्रय देते रहे हैं और देते रहेंगे।

अध्याय—३

(क) अवान्तर कथाओं एवं उपकथाओं द्वारा मुख्य कथा-का पोषण (श्रीमद्भागवत)

श्रीमद्भागवत दशलक्षण महापुरुष है। इसलिए प्रत्येक स्कन्धके सम्बन्धमें उस स्कन्धका प्रतिपाद्य विषय देखते हुए ही अन्तर्गत कथा, उप-कथा तथा अवान्तर कथाका निश्चय किया जाना चाहिये। एक ही नायकको तो पुराणके सम्पूर्ण ग्रन्थमें स्वीकार नहीं किया जा सकता, इसलिए नायक प्रतिनायककी भिन्न कथाको पुराणमें न तो अन्वेषण ही किया जा सकता है और न उपयुक्त ही है।

(क) अन्तर्गत कथा—

जिसमें केवल कथाका संकेत दिया जाता है, मुख्य कथाकी भाँति ये कथाएँ सुनायी नहीं जाती। अन्तर्गतका अर्थ ही है—जो बाहरसे परिलक्षित न हो।

(ख) उपकथा—

जो मुख्य कथामें चलती हुई उस कथा-कालकी नहीं होती, अपितु किसी अन्य कालकी है और जिनका सम्बन्ध मूल कथामें दृष्टिगोचर नहीं है, पर वह चलते हुए मुख्य विषय या उसके किसी भागको पुष्ट करती है।

(ग) अवान्तर कथा—

ये कथाएँ देखनेमें तो उपकथाके सदृश ही प्रतीत होती हैं, किन्तु इन्हें अवान्तर कथाएँ इसलिए कहा जाता है कि मूल कथासे इनका सीधा सम्बन्ध न होकर मूल कथाके किसी अंशको पुष्ट करनेके लिए ये उपस्थित होती हैं।

अन्तर्गत कथा

सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतमें केवल एक कथा ऐसी है जिसका संकेत है—'नलक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति' (भा., ५।१९.६) किम्पुरुषवर्षमें श्रीहनुमानजी वहाँके लोगोंके साथ मर्यादापुरुष श्रीरामकी अराधना करते हैं एवं उनकी

स्तुति करते हैं। उसमें इस 'लक्ष्मण-त्याग' की कथाका संकेत है किन्तु यह कथा कही नहीं गयी है। अन्तर्गत कथाएँ विवेच्य विषय नहीं है। मानसकी अन्तर्गत कथाओंकी भी केवल सूची दी जायेगी। परमधाम-गमनसे पूर्व मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामसे कालपुरुष एकान्तमें मिलने आये। उन्होंने पुरुषोत्तमसे प्रतिज्ञा भी करा ली कि जो इस वार्तालापके मध्यमें आयेगा, उसका बध कर दिया जाय। श्रीरघुनाथजीने लक्ष्मणको द्वार-रक्षक नियुक्त कर दिया। इसी समय तपोनिष्ठ दुर्वासाजी पधारे। उन्होंने तुरन्त श्रीरामसे मिलनेकी मांग की, इन्हें तो विलम्ब सह्य नहीं था, अतः दुर्वासाजी शाप न दे दें इसलिए सूचना देने स्वयं लक्ष्मणको ही जाना पड़ा। अत्यन्त प्रियका परित्याग ही बध है, यही स्मरण कर श्रीरामने लक्ष्मणका परित्याग कर दिया। और यहींसे स्वधाम-गमनका क्रम प्रारम्भ हो जाता है।

उपकथाएँ

भागवतमें ये कथाएँ भी केवल तीन हैं।

१. त्रिपुर-नाशकी कथा—(७.१०.५३ से ७१)

त्रिपुर-नाश की कथा उस कल्पकी कथा नहीं है जिसका विवेचन सप्तम स्कन्धके 'ऊति' प्रसंगमें बताया गया है। यह कथा भी 'ऊति' की अर्थात् कर्म-वासनाकी प्रबलता स्पष्ट करनेके लिए है। युधिष्ठिरके पूछनेपर देवर्षि नारदने यह कालान्तरकी कथा सुना दी है, इसलिए यह उपकथा है। इस कथाके द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि कर्म-वासना कितनी प्रबल होती है? कर्मकी शक्ति कितनी महान है कि भगवान् शङ्कर भी त्रिपुरके नाश करनेको एक बार असमर्थ हो जाते हैं और भयके कर्मसे उत्पन्न अमृत कूपको भगवान् विष्णुको छलसे पीना पड़ता है।

दूसरी ओर इस कथामें यह भी बताया है कि कर्म-वासना कितनी अशुभ हो सकती है कि दैत्योंके स्वामी सम्पूर्ण लोकोंके लिए उत्पीड़क एवं भयकारक हो गये थे।

२. भस्मासुरकी कथा—(१०.८८.१-४०)

यह कथा इस 'निरोध स्कन्ध' में श्रीकृष्ण-चरितके चलते हुए प्रसङ्गके मध्यमें कालान्तरकी कथा है। इस कथामें भी निरोधका प्रतिपादन तो है, क्योंकि भगवान् शिवका आशुतोषत्व और भगवान् नारायणका विघ्न-विनाशत्व प्रतिपादन किया है।

इस कथामें प्रतिपादित किया गया है कि तपके द्वारा सदा कल्याण ही नहीं होता, अपितु तामस तप अपने विनाशका कारण भी हो सकता है। शकुनि दैत्यके पुत्र वृकासुरने नारदजीसे पूछा कि 'त्रिदेवोंमें कौन शीघ्र सन्तुष्ट होता है ?' उसने अपने शरीरके मांसको ही हवन कर शिवसे वरदान मांगा—'जिस-जिसके सिरपर हाथ रक्खूँ वह भस्म हो जाये।' यहाँ 'गौरी-हरणलालसः (भा., १०।८८.२३) की बात स्पष्ट आयी है। भगवान् शंकर तो सर्वज्ञ हैं। अपने समक्ष असुरके मनमें क्या है ? यह न जानते हों—यह सम्भव नहीं है। इतनेपर भी वृकासुरको 'एवमस्तु' कह देते हैं, इसका तात्पर्य क्या है ? अभिप्राय स्पष्ट है कि भगवान् शिव इतने अन्तर्मुख रहते हैं कि किसी वरदानकी बात सुनते ही नहीं, बिना सुने ही दे देते हैं, जैसे बला टाली जा रही हो। वह चौंके तो तब, जब असुर उनके सिरपर ही हाथ रखने दौड़ा। वे तब भी उसे मार सकते थे। यह वरदान तो था नहीं कि तुम्हें कोई नहीं मारेगा। त्रिशूल भी न उठाते तो तृतीय नेत्र खोलते ही वह भस्म हो जाता, किन्तु 'विष वृक्षोऽपि सम्बर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्' कविकी उस उक्तिके अनुसार भगवान्‌ने मारना स्वीकार नहीं किया, भागते ही फिरे। तब भगवान् विष्णुने ही युक्तिपूर्वक उसे स्वयं अपने सिरपर हाथ रखनेको विवश कर दिया।

३. महर्षि भृगु द्वारा त्रिदेवोंकी परीक्षा—(दशम स्कन्ध ८९.१ से १२ तक)

महर्षि भृगुके द्वारा त्रिदेवोंकी सत्व-परीक्षाके प्रकरणमें निरोधका प्रतिपादन तो करते ही हैं, क्योंकि सत्वैकधाम विष्णु ही मुमुक्षुके लिए आश्रयणीय हैं, किन्तु यह कथा भी कालान्तरकी कथा है, क्रमोपस्थित कालकी नहीं है।

अवान्तर कथाएँ

प्रथम स्कन्ध—

(१) 'अश्वत्थामाके द्वारा द्रौपदीके पुत्रोंका वध, अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाका पराजय एवं द्रौपदीके द्वारा अश्वत्थामाको छुड़ाया जाना' (१।७.१३-५८)

यह अवान्तर कथा इसलिए है, क्योंकि इस प्रथम स्कन्धमें 'अधिकारी' का निरूपण है। भागवत-श्रवणके उत्तम अधिकारी परीक्षितसे इस कथाका सीधा कोई सम्बन्ध नहीं है, किन्तु परीक्षितके पितामह अर्जुन कैसे

भगवद्भक्त एवं शूर-वीर थे, यह बतलाकर परीक्षितकी पवित्र वंशकथाका निरूपण किया गया है।

(२) **कुन्तीकी स्तुति** (अध्याय ८ श्लोक १८ से ४३ तक)

उत्तराकी स्तुति तो मूल कथा है, कारण कि श्रवणके मुख्य अधिकारी परीक्षितकी रक्षाके लिए यह स्तुति की गयी है। केवल अर्जुन ही नहीं, अपितु सब पाण्डवोंका वंश ही परम पवित्र है, यह निरूपण करनेके लिए ही कुन्तीकी भगवद्भक्तिका वर्णन है।

(३) **युधिष्ठिरका अनुताप** (अध्याय ८ के श्लोक ४८ से ५२ तक)

यह युधिष्ठिरकी परम धार्मिकता सूचित करनेके लिए है और अध्याय ९ के श्लोक १ से १८ तक पितामह भीष्मसे युधिष्ठिरका संवाद बताता है कि जिस वंशमें परीक्षित हुए हैं उसपर श्रीकृष्णका असीम अनुग्रह है।

(४) **भीष्म-स्तुति** (अध्याय ९ के श्लोक ३२ से ४२ तक)

यह प्रसंग यह निरूपण करनेके लिए है कि श्रीकृष्णके साक्षात् सामीप्यसे जो गति भीष्म पितामहको प्राप्त हुई है, वही भागवत-श्रवणसे परीक्षितको प्राप्त होनी है।

(५) **भीष्म-निर्वाण** (अध्याय ९ के श्लोक ४३ से ४५ तक)

श्रीकृष्ण-स्मृतिसे कैसी योगि-दुर्लभ गति प्राप्त होती है, यह बतलाया गया है।

(६) **श्रीकृष्णका हस्तिनापुरसे द्वारिका लौटना—**

इसे मूलकथा और अवान्तर-कथा दोनों स्वीकार कर सकते हैं। श्रीमद्भागवतमें मुख्य रूपसे श्रीकृष्ण-कथा है, इसलिए इसे मूल कथा कहा जा सकता है और प्रथम स्कन्धमें परीक्षित जिस वंशमें उत्पन्न हुए हैं उसपर कृपा करनेमें श्रीकृष्ण कितने व्यस्त हैं, इस दृष्टिसे यह अवान्तर कथा भी है।

(७) **विदुरका आगमन** (१३.१ से ७ तक) **एवं विदुर द्वारा धृतराष्ट्रका प्रतिबोधन एवं धृतराष्ट्र-गान्धारीकी परमगति** (१३.१४ से ५९ तक)

यह सब वर्णन यह सूचित करनेके लिए हैं कि यह कुल ही श्रीकृष्ण कृपाका पात्र है। यद्यपि धृतराष्ट्र पुत्रोंके मोहसे पथभ्रष्ट हुए थे, किन्तु

पाण्डवोंके आश्रयमें आनेके पश्चात् उनकी बुद्धि भी शुद्ध हो गयी और विदुरके संसर्गसे उनका उद्धार हो गया।

वस्तुतः श्रीमद्भागवत सम्पूर्ण रूपसे सर्वत्र सन्त-माहात्म्यका प्रतिपादक है, इसलिए यहाँ भी धृतराष्ट्रके उद्धारसे विदुरका माहत्म्य सूचित किया गया है।

(८) युधिष्ठिरकी आशंका, अर्जुनका द्वारिकासे लौटना और पाण्डवोंके महाप्रस्थान तककी सम्पूर्ण कथा (१४.६ से १५.४४ तक)

यह कथा पाण्डवोंके पवित्र हृदयमें श्रीकृष्णकी भक्ति व उनकी गतिको बतलाकर परीक्षितके कुलका परम पावनत्वका प्रतिपादन करती है।

(९) कलि-निग्रह (अध्याय १६ एवं १७)

पृथ्वी-धर्म संवाद, परीक्षितके द्वारा कलि-निग्रहका यह प्रसङ्ग परीक्षितके शौर्य, देव शक्तियोंके साक्षात्कारकी योग्यता और उनके भी निग्रहकी शक्ति सूचित करनेको है। यह बतलाता है कि इतने समर्थ परीक्षित सर्वस्व त्यागकर श्रीकृष्ण-परायण होते हैं। यह उनके उत्तम अधिकारीत्वको पुष्ट करनेवाली कथा है।

द्वितीय स्कन्ध—

इस स्कन्धमें कोई अवान्तर कथा, उपकथा या अन्तर्गत कथा नहीं है।

तृतीय स्कन्ध—

(१) विदुरका निर्गमन (१.६ से १९ तक)

तृतीय स्कन्ध 'सर्ग' है। इस स्कन्धमें मूल सृष्टिका वर्णन ही मुख्य विषय है। इस दृष्टिसे विदुरके निर्गमनकी कथा अवान्तर कथा है, किन्तु यह कथा विदुर-मैत्रेय-संवादकी वह पूर्व भूमिका है जिस संवादमें सर्गकी कथा चलेगी।

(२) विदुर-उद्धव मिलन संवाद (२०.४ से २७ तक)

यह भी अवान्तर कथा इसलिए है कि इसमें सर्गका तो कोई वर्णन

नहीं है, किन्तु विदुर-मैत्रेय संवादकी मुख्य भूमिका है। उद्धवके निदेशसे ही विदुर मैत्रेयके पास जायेंगे।

चतुर्थ स्कन्ध--

(१) पुरंजनोपाख्यान (२५.१९ से अध्याय २८ के अन्त तक)

चतुर्थ स्कन्ध 'विसर्ग' है, जिसमें विविध प्रकारकी सृष्टिका विवेचन होना चाहिये। पुरंजनोपाख्यान यह वर्णन तो नहीं करता, किन्तु प्राचेतस दक्षसे ही विविध सृष्टि हुई है, इसीलिए प्राचीन बर्हि और नारदका यह संवाद दक्षकी उत्पत्तिके कारणभूत दक्षके पितामह राजा प्राचीन बर्हिका उपाख्यान दक्षके द्वारा होनेवाली विविध सृष्टिकी भूमिका है।

पञ्चम स्कन्ध—

यह स्कन्ध 'स्थान' अर्थात् सृष्टि जिस देशमें स्थित है उस देशके विभाजनकर्त्ताओं एवं प्रमुख व्यवस्थापकोंका वर्णन करनेके लिए है।

स्थानमें मुख्य स्थान भारतवर्ष है, क्योंकि यही कर्मभूमि है। यहीं श्रीकृष्णका, श्रीमद्भागवतका आविर्भाव हुआ है, इस 'स्थान' के वर्णनसे किंचित हटकर जो कथाएँ हैं वह अवान्तर कथाएँ हैं।

(१) भरतका मृगस्नेह और मृगत्वकी प्राप्ति (अध्याय ८ सम्पूर्ण)

भरतके कारण ही इस देशका नाम 'भारतवर्ष' पड़ा। इसलिए राजा भरतके उत्तर-चरितका वर्णन स्थानकर्त्ताके चरितका उपसंहार है।

(२) जड़भरतका समत्व (९.९ से २० तक)

शिरच्छेदनका अवसर उपस्थित होनेपर भी भरतकी आत्म-स्थिति सूचित करती है कि भारतवर्षका नाम कितने बड़े महापुरुषसे सम्बद्ध है।

(३) भरत-रहूगण संवाद (अध्याय १० से अध्याय १४ तक)

यह प्रसङ्ग भी स्थानका वर्णन न होनेपर भी भरतके तत्वज्ञानका सूचक है।

(४) भरत-वंशका वर्णन (अध्याय १५ सम्पूर्ण)

जिनके नामपर भारतका नाम पड़ा, उनकी संक्षिप्त वंशावली स्थानमें देकर मानो परिशिष्ट दिया गया है।

षष्ठ स्कन्ध—

इस स्कन्धमें भी कोई अन्तर्गत कथा, उपकथा या अवान्तर कथा नहीं है।

सप्तम स्कन्ध—

यह स्कन्ध 'ऊति' अर्थात् 'कर्मवासना' का है। अध्याय २ के श्लोक २० से ६० तक हिरण्यकशिपुके उस उपदेशमें जो वह अपनी माता-भातृ-वधुओं और भातृ-पुत्रोंको देता है।

(१) **सुयज्ञोपाख्यान** (श्लोक २९ से ४९ तक) और **कुलिंगोपाख्यान** (श्लोक ५० से ५६ तक) है।

यह दोनों ही मुख्य कथाएँ नहीं हैं किन्तु दोनों ही कर्मवासनाके ही परिणाम वर्णित हैं। राजा सुयज्ञमें स्वजनोंकी मोहवासना और कुलिंग पक्षीमें मोह-वासना है।

अष्टम स्कन्ध—

स्कन्ध ८ में मन्वन्तरोंका वर्णन है।

(१) **मोहिनीका अमृत वितरण** (अध्याय ८ श्लोक ४१ से अध्याय ९ श्लोक २८ तक)

यद्यपि मोहिनी अवतार सृष्टि प्रक्रियाका भाग नहीं है, किन्तु भगवत् अवतार है, इसलिए मन्वन्तरोंके वर्णनमें यह अवतार मुख्य कथा भी कही जा सकती है।

(२) **शिव का मोह** (अध्याय १२ सम्पूर्ण)

वस्तुतः यह मोहिनी-चरित ही है। जब मोहिनी कथाको अवान्तर कथा कहेंगे तो इस कथाको भी उसी श्रेणीमें लेना होगा।

नवम स्कन्ध—

ईशानुकथाके इस स्कन्धमें यह विचारणीय है कि कौन-सी वंशावलियाँ किस ईशानुकथाके लिए आयी हैं। वंशावलियाँ तो सभी अवान्तर कथाएँ हैं, किन्तु वे सब किसी न किसी ईशानुकथा तक पहुँचनेके लिए हैं।

(१) अध्याय १ से अध्याय ४ के श्लोक १३ तककी वंशावली **अम्बरीष-चरितके** लिए आयी है। अम्बरीष-चरित ईशानुग्रहकी उत्कृष्टतम कथा है।

(२) अध्याय ८ से अध्याय ९ तकमें वर्णित **गंगावतरणकी** कथा है। गंगावतरण स्पष्ट ही ईशानुकथा है। भगवती गंगा विष्णुपदी हैं, यह कैसे विस्मृत किया जा सकता है।

दशम स्कन्ध—

यह 'निरोध' स्कन्ध है, इसलिए मूल कथाएँ चाहे श्रीकृष्णचरितकी हैं या वेदस्तुति, वह निरोधके लिए ही आयी हैं, निरोधसे किंचित हटकर जो कथाएँ हैं उन्हें अवान्तर कथा कहना चाहिये।

(१) **कालियनाग और गरुड़का विवाद** (अध्याय १७ के श्लोक २ से ८ तक) **सौभरी ऋषिका गरुड़को शाप** (श्लोक ९ से ११ तक)

यह वर्णन निरोधसे दूर तो लगता है, किन्तु भगवान् भक्तवत्सल हैं, यह सन्देश इस कथाका प्राण है।

सौभरीने गरुड़का कोई अनिष्ट नहीं किया, किन्तु गरुड़ भगवान्‌के अपने थे, अतः सौभरीने गरुड़को शाप दिया, यह भगवान्‌को सह्य नहीं। जिस ह्रदकी मछलीको सौभरी गरुड़से बचाना चाहते थे, वहाँ आकर कालियनाग बसा।

जल जीव तो दूर, उस ह्रदके ऊपरसे उड़नेवाले पक्षी तक कालियके विषसे विषैली वायु लगनेसे गिर जाते थे। सौभरी जिस तपके बलपर शाप देते हैं, वह तप तो मछलियोंके कारण ही नष्ट हो जाता है। अतः यह कथा भक्तोंके मनको निरोध करनेवाली बन जाती है।

(२) **वर्षा-शरद् वर्णन** (२०.३ से अन्त तक)

इस वर्णनमें कोई निरोध सम्भव नहीं, परन्तु यह व्रजका वर्णन है जिसमें श्रीकृष्ण विहार करेंगे, अतः यह निरोधका ही अंग है।

(३) **दुर्योधन-अपमान** (अध्याय ७५ के श्लोक ३१ से ३९ तक)

दुर्योधनका यह अपमान ही महाभारत युद्धका कारण बना, इसलिए महाभारत द्वारा जो सम्पूर्ण निरोध सम्पन्न हुआ है, उसकी यह भूमिका है।

एकादश स्कन्ध—

इस 'मुक्ति' स्कन्धमें साधन, वैराग्य आदिका वर्णन तो मूल कथा ही है। एक ही इसमें अवान्तर कथा है—

सिद्धि-वर्णन (अध्याय १५ सम्पूर्ण)

इसमें सिद्धियोंका विवेचन सिद्धियोंकी प्राप्तिके लिए नहीं है, अपितु सिद्धियाँ मुक्तिके मार्गमें बाधक हैं, 'कालक्षपण हेतवः' अतः यह वर्णन भी मुख्य वर्णनको पुष्ट करता है।

द्वादश स्कन्ध—

इस आश्रय स्कन्धमें केवल पञ्चविधि आश्रयका वर्णन है। अतः इसमें कोई अन्तर्गत कथा, उपकथा, अथवा अवान्तर कथा नहीं है।

(ख) अवान्तर कथाओं तथा उपकथाओं द्वारा मुख्य कथाका पोषण (श्रीरामचरितमानस)

श्रीरामचरितमानस महाकाव्य है, इसलिए सम्पूर्ण ग्रन्थमें एक ही मुख्य नायककी कथा है और एक ही मुख्य प्रतिनायक है। दोनों ही मुख्य कथाएँ हैं। मानसमें अन्तर्गत कथाएँ हैं, जिनका संकेतमात्र है—यथा 'सिबि दधीचि हरिचन्द नरेसा' (मानस, २।९४.३)। उपकथाएँ हैं—जो मूल कथाको पुष्ट करनेको आयी हैं और भिन्न कालकी है यथा 'भुशुण्डिका पूर्वजन्म (मानस, ७।९६ से ११२ तक)। अवान्तर कथाएँ हैं जो भिन्न कल्पकी हैं यथा—'नारद मोह' (मानस, १।१२४.१ से १४० तक)। इन सबका मुख्य कथासे घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा मुख्य कथाकी पोषिकाएँ हैं।

अन्तर्गत कथाएँ

इन कथाओंका मुख्य कथासे कुछ सम्बन्ध नहीं है। विशेष प्रसङ्गोंमें इनका उल्लेख मात्र है। इन कथाओंकी सूची काण्डके अनुसार इस प्रकार दी जा रही हैं—

बालकाण्ड—

१. दक्ष-शिव विवादकी कथा	६१.२-३
२. स्वामी कार्तिक जन्मकी कथा	८१.५-७
३. चित्रकेतुकी कथा	८७-१
४. हिरण्यकशिपु-बधकी कथा	७८-२
५. काम-जन्म (प्रद्युम्न) की कथा	८७-१
६. सती-जन्मकी कथा	९७-६
७. तारक-बधकी कथा	१०२.७-८
८. ध्रुव-चरितकी कथा	१४१-३
९. प्रियव्रत-चरितकी कथा	१४१-४
१०. देवहुति-कर्दम चरितकी कथा	१४१-५
११. गंगावतरणकी कथा	२११-२
१२. समुद्र-मन्थनकी कथा	२३७-२

१३. हलाहलकी उत्पत्तिकी कथा २४६-६
१४. वारुणीकी उत्पत्तिकी कथा २४६-६
१५. अगस्त्यके समुद्र-पानकी कथा २५५-७
१६. सहस्रार्जुन-बधकी कथा २७१-८
१७. अहल्यकी कथा २१०-०
१८. इन्द्रको गौतमके शापकी कथा ३१६-६

अयोध्याकाण्ड—

१. कद्रू-वनिताकी कथा १८-०
२. शिविकी जीव-दयाकी कथा २८-७, ४७-५, ८४-३
३. दधीचिके अस्थिदानकी कथा २८-७, ४७-५, ८४-३
४. बलिके त्यागकी कथा २८-७
५. हरिश्चन्द्रकी सत्यनिष्ठाकी कथा ४७-५, ८४-३
६. रन्तिदेवके त्यागकी कथा ८४-४
७. बाल्मीकि द्वारा उलटा नामजप १८३-८
८. शशिकी लम्पटताकी कथा २२८-०
९. नहुषकी लम्पटताकी कथा २२८-०
१०. बेनकी अधमताकी कथा २२८-०
११. अम्बरीषकी कथा २६८-४
१२. नृसिंहावतारकी कथा २६४-५,

अरण्यकाण्ड—

१. विराध-वध ६-६
२. कबंध-वध ३२-६
३. शबरी-चरित ३३-६ से ३५-१३ तक

किष्किन्धाकाण्ड—

१. स्वयंप्रभा-चरित २४ से २५ तक
२. वामन-कथा २८

सुन्दरकाण्ड—

१. सुरसा-चरित[1] १-२

---

१. गोस्वामीजीने 'सुरसा नाम अहिन्ह की माता' लिखा है। श्रीमद्भागवतमें आया है—'यातुधानाश्च सौरसाः' (६।६.२८) सुरसा सर्पोंकी बहिन और यातुधानकी माता कही गयी है, इसलिए हनुमानकी लंका-यात्रामें उसका बाधक बनकर आना बहुत संगत है।

२. निसिचरि सिंहिका (छायाग्राहिनी)	२.१-४
३. लंकिनी	३.२ से दोहा ४.१ तक
४. मुनि पुलस्त्य	२२.२, ३९ (ख)
५. सागरोत्पत्ति	५०-०
६. शुक-सारण-चरित	५६।१०-१२
७. नल-नीलकी कथा	५९।१-२

लंकाकाण्ड—

१. मधु-कैटभकी कथा	५.७
२. दिति सुतकी कथा	५.७
३. हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपुकी कथा	५.७
४. बलिकी कथा	५.७
५. रावणका सहस्त्रार्जुनसे पराभवकी कथा	५.७
६. रावणकी बलिसे पराजय	२३।१३-१४
७. रावणकी सहस्त्रार्जुनसे पराजय	२३।१५-१६
८. रावणकी बालिसे पराजय	२४-०
९. मकरी-उद्धारकी कथा	५७-०
१०. मत्स्यावतारकी कथा	१०९-७
११. कच्छपावतारकी कथा	१०९-७
१२. वाराहावतारकी कथा	१०९-७
१३. परशुरामकी कथा	१०९-७

उत्तरकाण्ड—

इस काण्डमें कोई अन्तर्गत कथा नहीं है।

मानसकी उपकथाएँ

श्रीरामचरितमानसका लक्ष्य मानसकारने 'स्वान्तस्तमःशान्तये' (उत्तरकाण्डके अन्तका श्लोक १) प्रतिपादित किया है। इस सन्दर्भमें ही उपकथाओंकी विवेचना करना श्रेयस्कर होगा।

बालकाण्ड—

(१) जय-विजयको शाप (१२१.४ से १२२.२ तक)

इस कथामें जय-विजयके द्वारा सनकादिकी अवज्ञा वर्णित है।

इसलिए बैकुण्ठ के द्वारपाल होकर भी उन्हें असुर शरीरमें आना पड़ा (भागवत ३।१४.१९)।

रामावतारमें इन्हींके उद्धारके लिए इसी कल्पमें ही कश्यप और अदिति कौशल्या-दशरथ हुए हैं। 'कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता॥ (मानस, १।१२२.३) यह कालान्तरकी कथा होनेसे उपकथा है।

(२) **जलन्धरकी कथा** (१२२.५ से १२३.३ तक)

यह कथा कल्पान्तरकी है। असुर जलंधरकी पत्नी वृन्दा परम सती थी। उसके सतीत्वके कारण देवता ही नहीं, अपितु भगवान् शिव भी जलंधरको मार नहीं पा रहे थे, तब जलंधरका रूप धारण करके विष्णु ही वृन्दाके सतीत्वको खण्डित करते हैं और जलन्धर मारा जाता है। वृन्दाके शापसे विष्णुको राम होना पड़ा और जलन्धर रावण हुआ।

यह कथा सतीत्वकी शक्तिको सूचित करती है। साथ ही यह भी कि श्रीहरिके द्वारा यदि कहीं धर्ममें व्याघात भी पड़ता है तो वह व्याघात भगवत्-प्राप्तिका कारण हो जाता है। सतीत्वधर्म है और धर्म कितना ही बड़ा हो, उसका फल ब्रह्मलोक तक ही हो सकता है, मोक्ष नहीं। धर्म जब किसी भी प्रकार भगवद्-अर्पित हो जाता है, तब उसका फल मोक्ष हो जाता है। वृन्दाके सम्बन्धमें यही हुआ है।

(३) **नारद-मोह** (दोहा १२४ से दोहा १३९ पर्यन्त)

यह कथा भी भिन्न कल्पकी होनेसे उपकथा है। सम्पूर्ण कथा ही मानसमें दी गयी है, अतः कथा देनेका कोई औचित्य नहीं है।

इस कथामें यह प्रेरणा है कि अहंकार सभीके लिए पतनका कारण है। देवर्षि नारदके सम्बन्धमें भी यही है। इस कथाकी कई विशेषताएँ हैं—

(क) मायामोहित जीव किस प्रकार अनावश्यक वस्तुके पीछे उन्मत्त है। देवर्षि नारदने शीलनिधिकी जिस कन्याको देखा उसके लक्षण स्वयं ही बताये—

जो एहि बरइ अमर सोइ होई। समरभूमि तेहि जीत न कोई।
सेवहिं सकल चराचर ताही। बरइ सीलनिधि कन्या जाही॥

(मानस, १।१३०.३-४)

नारदको अमर तो होना नहीं, अमरत्व तो उन्हें प्राप्त है ही। उन्हें किसीसे युद्धकी आकांक्षा भी नहीं है, विश्वसम्राट् होनेकी अभिलाषा है ही नहीं। सुरासुर उनकी वन्दना करता है। अतः कन्यामें कोई ऐसी विशेषता नहीं थी जिसपर नारद मुग्ध होते। यह तो मायाका ही प्रभाव था।

(ख) विष्णु प्रकट होकर स्वयं कह रहे हैं—

'कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी॥
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ।.....॥

(मानस, १।१३२.१-२)

इतनी स्पष्ट वाणी भी नारदजीकी समझमें नहीं आ रही है। वासनाके आवेगमें ऐसा ही होता है कि प्रत्यक्ष सत्य भी नहीं दीख पाता।

(ग) भगवान् कितने भक्त-वत्सल हैं, यह इस कथासे स्पष्ट है।

(घ) नारदजी इस घटनासे इतने प्रभावित हैं कि इसे भिन्न कल्पकी न समझकर यही मानते हैं कि मेरे ही शापमें रामावतार हुआ है (मानस, ३।४०.५-७)। नारदका यह भ्रम ही है, क्योंकि मानसमें जिस कल्पकी कथाका निरूपण है, उस कल्पमें विष्णुका अवतार राम रूपमें नहीं हुआ है। नारदने विष्णुको शाप दिया था। मानसमें जिन श्रीरामका अवतार हुआ है, उन्हें भगवान् शिव स्पष्ट करते हैं—

'जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा॥'

(मानस, १।१४०.२)

इस कल्पकी मुख्य कथामें स्वयंभू मनु-शतरूपाके तपकी कथा है। यह मुख्य कथा है। प्रतापभानु-चरित भी मुख्य कथा है, क्योंकि जब 'ब्रह्म कोशलपुर भूपा' हुए, उसी कल्पमें प्रतापभानु रावण हुआ। अतः इन्हें उपकथा या अवान्तर-कथामें नहीं लिया जा सकता।

'अयोध्याकाण्ड' एवं 'अरण्यकाण्ड' में कोई उपकथा नहीं है।

किष्किन्धाकाण्ड—

(१) सम्पाति चरित (२६.१ से २८.५ तक)

सम्पातिकी सम्पूर्ण कथा प्रायः मानसमें है। यह कथा भी कालान्तरकी

कथा है। महाराज दशरथजीकी शनि-विजयसे पूर्वकी यह कथा होनी चाहिये।

जटायू एवं सम्पाति दोनों सूर्यके सारथी अरुणके अंशसे उत्पन्न हैं। इस कथाके दो अंश हैं। (१) सम्पातिके पंख जलनेकी कथा, (२) सम्पातिका वानरोंसे मिलना। इसमें प्रथम भाग उपकथा है और द्वितीय भाग मुख्य कथाका ही अंश है। सम्पातिके पंख जलनेकी कथा यह प्रतिपादित करती है कि बलके गर्वसे अतिसाहस प्राणघातक हो सकता है।

सम्पातिकी मूल कथा यह प्रेरणा देती है कि महानतम विपत्तिसे भी सन्त एवं भगवद्भक्त परित्राण देनेमें समर्थ होते हैं।

उत्तरकाण्ड—

काकभुशुण्डिके पूर्व-जन्मकी कथा (९६ ३ से ११२ ख तक)

सम्पूर्ण कथा मानसमें है, अतः कथा देना आवश्यक नहीं है। भुशुण्डि स्वयं कहते हैं—

'इहाँ बसत मोहि सुनु खग ईसा। बीते कलप सात अरु बीसा॥'

(मानस, ७।११३.१०)

इसलिए यह इससे पूर्वकी कथा अर्थात् सत्ताईस कल्पसे भी पूर्वकी है। यह उपकथा कई तथ्योंको स्पष्ट करती है—

१. भक्तिमें सबका अधिकार है। पूर्व जन्ममें भुशुण्डि शूद्र होकर परम शिव-भक्त थे।

२. कोई किसीका भी भक्त हो, भगवान्‌के किसी अन्य रूपसे द्वेष उसके लिए हानिकर ही होता है, क्योंकि यह द्वेष प्रकारान्तरसे वह अपने ही इष्टसे कर रहा है।

३. यद्यपि शास्त्रकी आज्ञा है कि भगवद्-विग्रहके समक्ष अन्यको प्रणाम नहीं करना चाहिये, परन्तु गुरु तो सक्षात् भगवद्स्वरूप होता है और भगवद्मूर्तिके समक्ष गुरुको प्रणाम करना भगवद्‌पराध नहीं है, अपितु ऐसा न करनेसे भगवान् अपना ही अपराध मानते हैं।

४. सन्त परम दयालु होते हैं। अपने अपमान एवं दुःखकी बात उन्हें स्पर्श भी नहीं करती। वे दूसरेके दुःखसे ही दुःखी होते हैं।

५. भक्ति पक्षमें हठ भी सदा कल्याणकारी है। लोमश ऋषि जैसे सन्त भी भक्तिनिष्ठको असन्तुष्ट होकर शाप दे देते हैं तो भी काकभुशुण्डिके लिए वरदान बन जाता है।

मानसकी अवान्तर कथाएँ

बालकाण्ड—

१. रावणका कैलास उठाना

'कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ' (१७६.०)

इस कथाका विवेचन लंकाकाण्डके अंगद-रावण-संवादमें भी आयेगा। रामचरितके वर्णनके प्रसङ्गमें इस कथाका प्रयोजन प्रतिनायकके शौर्य-निरूपणके लिए है।

रावणने ७१ चतुर्युगी राज्य किया है, अतः यह कथा रामावतारसे पूर्वकी है। रावण दिग्विजयी एवं लंकापति होनेके पश्चात् प्रथम चतुर्युगीमें एक बार वह कुबेरपर विजय प्राप्त करके लौट रहा था। कैलासके ऊपर पहुँचकर पुष्पक विमानकी गति अवरुद्ध हो गयी। नन्दीश्वरके निर्देश देनेपर कि 'इस कैलासपर उमा-महेश्वर विराजमान हैं, अतः पर्वतका उल्लंघन नहीं किया जा सकता।' रावणने अहंकारवश नन्दीश्वरका ही उपहास किया और कैलासको ऊपर उठाने लगा। वह पर्वतको फेंकना ही चाहता था, किन्तु पर्वतके कम्पित होनेसे भगवती उमाको भयभीत देखकर भगवान् शिवने वाम पादाङ्गुष्ठसे पर्वतको किंचित दबा दिया, परिणामतः रावणकी भुजाएँ दब गयीं। दीर्घकाल तक वह पीड़ासे चिल्लाता रहा। इस घटनाके पूर्व रावणका नाम दशग्रीव था, परन्तु दीर्घकाल तक रोनेके कारण भगवान् शिवने उसका 'रावण' नाम रख दिया। भगवती उमाकी प्रार्थनासे ही भगवान् शंकरने अँगूठा शिथिल किया, जिससे रावण अपनी भुजाएँ निकाल सका। तभी उसने ताण्डव करके स्तुति द्वारा शिवको सन्तुष्ट कर लिया।

यह कथा प्रतिनायकके पौरुष एवं पराक्रमको प्रकट करती है।

२. इन्द्रजीत

'इन्द्रजीत सन जो कछु..... ।' (१८२।१)

इन्द्रजीत नामकी मानसमें अनेक बार पुनरावृत्ति है। यह भी रावणके दिग्विजय एवं रामावतारसे पूर्व चतुर्युगीकी कथा है।

दिग्विजयमें रावणने स्वर्गपर आक्रमण किया था। युद्धमें इन्द्रके पुत्र ज़यन्तने रावणको बन्दी बना लिया। उस समय आक्रोशपूर्व मेघनादने अद्भुत पराक्रम प्रकट कर इन्द्रको बन्दी बना लिया। इस प्रतिदानमें जयन्तने रावणको मुक्त कर दिया तत्पश्चात् मेघनादने इन्द्रको छोड़ दिया।

यह कथा भी प्रतिनायककी शक्ति एवं शौर्यको प्रकट करती है।

३. महाराज दशरथको विनाशकी आशंका

तब बसिष्ठ बहुबिधि समुझावा। नृप सन्देह नास कहँ पावा॥

(२०७।८)

यह कथा विश्वामित्र-वशिष्ठ संघर्षकी है। विश्वामित्र वशिष्ठकी नन्दिनी नामक गौका प्रभाव देखकर उसे बलपूर्वक ले जाना चाहते थे, परन्तु वशिष्ठके तपके समक्ष विफल हो गये। तब उन्होंने स्वयं ब्रह्मर्षि होनेका संकल्प किया। इसपर ब्रह्माजीने शर्त लगा दी कि वशिष्ठ ही चाहें तो ब्रह्मर्षि बना सकते हैं। फलतः दोनोंका दीर्घकाल तक संघर्ष चला। इसमें विश्वामित्रने वशिष्ठके १०० पुत्रोंको राक्षस द्वारा मरवा डाला। वशिष्ठ उनकी रक्षा नहीं कर सके। उन्होंने महाराज दशरथको अपनी यह घटना सुनायी और समझा दिया कि विश्वामित्रके क्रुद्ध होनेपर मैं भी रक्षामें सक्षम नहीं हूँ तथा विश्वामित्रकी बात स्वीकार करके कल्याण ही होगा।

प्रस्तुत कथामें स्पष्ट है कि श्रीरामको कितने समर्थ गुरुकी सहायता प्राप्त है।

४. अहल्याको पतिका शाप

'गौतम नारि श्रापबस उपल देह धरि धीर' (२१०.०)

अहल्यापर मुग्ध इन्द्र छलसे महर्षि गौतमका रूप बनाकर गौतम-आश्रम रात्रिमें पहुँचता है। इन्द्रके छलसे गौतमको भ्रम हुआ और वे अर्धरात्रिको ब्रह्म-मुहूर्त समझकर स्नान करने निकले, इस अवसरका लाभ उठाकर इन्द्र अहल्याके पास पहुँचे, किंतु महर्षिको शीघ्र अनुमान हो गया कि रात्रि अवशिष्ट है और वे लौट आये। इसी समय उन्होंने इन्द्र एवं अहल्याको शाप दे दिया।

प्रस्तुत कथा श्रीरामकी असीम शक्ति एवं प्रभावको व्यक्त करनेको है।

५. सुमिरि सीय नारद बचन (२२९।०)

देवर्षि नारद महाराज जनकके यहाँ उस समय पधारे थे जब जानकी बालिका थीं. वहीं जानकीजी को उन्होंने बताया कि अपनी वाटिकामें जिसे देखकर उनका मन मुग्ध हो जाये, उसीसे उनका विवाह होगा।

यह कथा तो मूल-कथाको पुष्ट करती है, जो जानकीजीके 'पूर्वराग' का कारण बतला रही है।

६. रावनु बानु महाभट भारे (२४९.२) तथा
रावन बान छुआ नहिं चापा (२५५.३)

महाराज जनकके यहाँ रावण एवं वाणासुरके आगमनकी कथा बाल्मीकीय रामायणमें विस्तारसे आयी है।

वाणासुरने तो कह दिया कि 'यह मेरे आराध्यका धनुष है, पूज्य है। धनुषके तोड़नेका तो संकल्प ही मैं नहीं कर सकता।' रावण धनुषको उठाना चाहता था, किन्तु उसी समय आकाशवाणी हुई कि 'लंकामें उसकी बहिनका अपहरण हो गया है।' अतः उसे शीघ्र लंका लौटना पड़ा।

यह कथा भी प्रतिनायककी विफलता एवं नायकके पौरुषको प्रकट करनेको आयी है।

अयोध्याकाण्ड—

१. 'दुइ बरदान भूप सन थाती' (२।२१.५)

देवताओंकी सहायता हेतु चक्रवर्ती सम्राट महाराज दशरथ स्वर्ग जाकर असुरोंसे युद्ध कर रहे थे। इस युद्धमें महाराज दशरथके रथका धुरा टूट गया। उस समय कैकेयीने धुरेके स्थानपर अपना हाथ लगा दिया। युद्धमें विजयी होनेपर महाराज दशरथको इस स्थितिका पता लगा तो उन्होंने कैकेयीसे दो वरदान मांगनेको कहा। यही वरदान कैकेयीके थाती हुए।

यह मुख्य कथाका ही अंश है। राजा दशरथकी विवशताको सूचित करनेको आयी है।

२. 'तापस अंध साप सुधि आई' (२।१५४.४)

महाराज दशरथको श्रवणके माता-पिताका शाप था। यह रामावतारसे पूर्वकी कथा है। श्रवणकुमारकी तो लोक प्रसिद्ध कथा है कि

अपने माता-पिताको काँवरमें बैठाकर तीर्थयात्रा करा रहे थे। रात्रिमें राजा दशरथने भ्रमवश शब्दबेधी बाण मार दिया। श्रवणके मरनेपर उनके माता-पिताने महाराजको पुत्र वियोगमें मरनेका शाप दे दिया।

यह कथा महाराज दशरथके देह त्यागके कारणको स्पष्ट करती है। इसमें समझाया है कि मनुष्यके किंचित प्रमादसे कितना बड़ा अनर्थ हो सकता है।

अरण्यकाण्ड—

१. सुतीक्ष्णका चातुर्य—'देखि कृपानिधि मुनि चतुराई' (३।११.४)

सुतीक्ष्ण महर्षि अगस्त्यके शिष्य थे। विद्याध्ययनके अनन्तर इन्होंने गुरुसे गुरु-दक्षिणा मांगनेका आग्रह किया। अनेक बार मना करनेपर भी यह नहीं माने तब गुरुने कहा 'ऐसा आग्रह कर रहे हो जैसे गुरु-दक्षिणामें मुझे परमपुरुषको ही दे दोगे ?' सुतीक्ष्ण उसीको स्वीकार करके गुरु आश्रमसे पहले ही उत्तरमें आश्रम बनाकर रहने लगे। श्रीरघुनाथजीको गुरुके समीप दक्षिणा रूपमें ले जाना तो उनका अभीष्ट था, रघुनाथजीसे तो साथ चलनेका अनुरोध ही उनकी चतुराई थी।

यह कथा सुतीक्ष्णकी भक्ति, उनके असीम दृढ़-निश्चयका प्रतिपादन करती है। दृढ़-निश्चय ऐसे अशक्यप्राय कार्य भी सम्भव कर सकता है।

२. गीधराजसे श्रीरामकी प्रीति

'गीधराज सैं भेंट भई बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ' (३।१३.०)

महाराज दशरथने शनिपर आक्रमण किया था। शनिकी दृष्टिसे उनका रथ भस्म हो गया। वे मूर्छितप्राय आकाशमें गिर रहे थे। आकाशमें उड़ते जटायुने उन्हें पीठपर ले लिया और वनमें धीरेसे उतार दिया। चेतना प्राप्त करके दशरथने उससे मित्रता की। यह परिचय श्रीरामको मिला था। इसीसे गीधके प्रति उनकी असीम स्वाभाविक प्रीति हो गयी।

यह कथा दशरथके पराक्रमको प्रकट करती है एवं यह भी कि उत्तम गुण किसीमें भी हो वह सम्मान्य होता है।

३. 'सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी॥ (३।१६.३)

सूर्पणखा रावणकी बहिन तो थी ही, विद्युज्जिह्वकी पत्नी थी। दिग्विजयमें रावणने इसके पतिको मार डाला। बहिनको सान्त्वना देनेके

लिए इसे दण्डकारण्यकी राज्यपालिका बना दिया और खर-दूषण-त्रिशराको इसकी सहायताके लिए नियुक्त कर दिया। विधवा होकर भी वह अपनेको कुमारी प्रकट करती है, यह उसकी दुष्ट हृदयता है। ऋषि मुनियोंके लिए उत्पीड़क एवं सर्पिणीकी भाँति दारुण भी है।

यह कथा मूल कथाकी सहायक है। सूर्पणखाके परिचयके बिना उसका कृत्य एवं परिणाम प्रकट नहीं हो सकता था, यही इस कथाका प्रयोजन है।

किष्किन्धाकाण्ड—

१. सुग्रीवका बालिसे आतंक—'पठए बालि होहिं मन मैला' (४. मं. ५)

ऋष्यमूकपर सुरक्षा'—इहाँ साप बस आवत नाहीं' (४।५.१३)

जब बालिने दुन्दुभी दैत्यको मार डाला, उसे दूर फेंका तो उसके शरीरके रक्तके छींटे मतंग आश्रममें गिरे, इसलिए ऋषिने शाप दे दिया कि 'बालि इस पर्वतपर आयेगा तो मर जायेगा।' सुग्रीव बालिसे कैसा आतकित है—यह तो मूल कथामें ही आ गया है। अब उन्हें भ्रम हो रहा है कि बालिने स्वयं न आकर किसीको मुझे मारनेके प्रयोजनसे भेजा हो।

इस कथामें भयभीत व्यक्ति कितना सशंकित होता है तथा असावधानीसे अनर्थकी प्राप्ति होती है—स्पष्ट है।

२. दुन्दुभि-अस्थि ताल—'दुन्दुभि अस्थि ताल देखराए' (४।६.१२)

दुन्दुभीको बालि द्वारा मारनेकी कथा उपर्युक्त कथामें निरूपण की जा चुकी है। बालिको उसने चुनौती दी थी और बालिने द्वन्द युद्धमें इस दैत्यको मार डाला था।

बालिने एकबार सात तालके फल खानेको एकत्रित किये। वह उन्हें रखकर स्नान करने गया, तब एक सर्प उनपर आकर बैठ गया। बालिने सर्पको शाप दिया कि 'ये ताल तेरे शरीरको फोड़कर उगेंगे।' सर्पने भी उसे शाप दे दिया कि 'तूने मुझ निरपराधको शाप दिया है, अतः जो एक बाणसे इन तालोंको गिरा देगा, उससे ही तेरा वध होगा।'

इसमें दोनोंकी असावधानीके दुष्परिणामका संकेत है।

सुन्दरकाण्डमें कोई अवान्तर कथा नहीं है।

लंकाकाण्ड—

१. कुंभरकरणको नारदका उपदेश—'नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा' (६.६२.६)

इस समय देवर्षि नारदने कुंभकरणको भगवत् तत्वका उपदेश किया था।

इस कथामें प्रतिपादन किया गया है कि महापुरुष किसीपर भी कृपाकर सकते हैं। कुंभकरणमें जो सात्विकता है, वह कहाँसे आयी है, इसी-का निर्देश है। यह मूल कथाकी पूरक ही है।

२. मेघनादकी वर प्राप्ति—'इष्टदेव सैं बल रथ पायउ' (६.७१.८)

मेघनादने तपस्या करके यह वरदान मांगा था कि 'उसे वही मार सके जो द्वादश वर्ष पर्यन्त अनाहार और अनिद्र रहा हो।' इसी बरदानकी ओर उसका संकेत है। यह प्रतिनायककी शक्ति सूचित करनेकी अवान्तर कथा है।

बर प्रसाद सो मरइ न मारा (६.७३.६)

यह अर्धाली भी उपरोक्त वरदानकी और ही संकेत करती है। इसी वरदानके द्वारा मेघनाद जामवन्तके द्वारा नहीं मारा जा रहा है।

उत्तरकाण्ड—

इस काण्डमें कोई अवान्तर कथा नहीं है।

निष्कर्ष

इस प्रकार दोनों ही महाग्रन्थोंमें अपने चरम लक्ष्य—मुख्य कथाकी पुष्टिके लिए हम देखते हैं कि अन्तरकथाएँ, अवान्तर कथाएँ एवं उपकथाएँ यथास्थान आयी हैं, जो प्रसङ्गानुकूल, कथा प्रवाहानुकूल, मुख्य अधिकारिक कथाको सम्पुष्ट करती चली गयी है। भागवतकार एवं मानसकार अपने-अपने महाग्रन्थोंमें इन्हें यथास्थान समाविष्ट अथवा अन्तर्निहित करनेमें अत्यन्त सफल रहे हैं। साथ ही अपनी सूत्रात्मकता शैलीकी संक्षिप्तताका परिचय तो मिलता ही है—'ना मूलं लिख्यते किंचित् नानुयेकामुपेक्षते' का सिद्धान्त चरितार्थ करते हुए संग्रह-त्यागके विवेकका विलक्षण परिचय दिया है। यही दोनों महाकवियोंका अप्रतिम कौशल है।

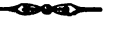

अध्याय–४

(क) श्रीमद्भागवतके उपदेशात्मक प्रसंग

नैतिक लक्ष्य

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनों ही ग्रन्थ शताब्दियोंसे लोकजीवनके प्रकाश स्तम्भ रहे हैं। समाजका बहुत बड़ा वर्ग अपने जीवनकी जटिल समस्याओंके सम्बन्धमें इन ग्रन्थोंसे दिशा प्राप्त करता रहा है। श्रीमद्भागवत मानससे आकारमें लगभग तीन गुना बड़ा है, अतः जीवनकी विविध भी, उसका आयाम भी मानससे तिगुना है और विस्तृत है। इसीलिए भागवत व मानसके उपदेशात्मक प्रसंगोंको पृथक्-पृथक् विवेचित करना आवश्यक है, क्योंकि ऐसा करनेसे दोनों ग्रन्थोंकी उपदेश-परम्पराकी धारा अविच्छिन्न रूपसे पाठकके सम्मुख आ जाती है।

श्रीमद्भागवत मानवका परमधर्म अहैतुकी एवं अप्रतिहता भगवद्भक्ति-को मानता है (१।२.६-८), क्योंकि इसीसे चित्त निर्मल होता है एवं षट्-विकारोंकी आत्यन्तिक समाप्ति इसीसे होती है। षट्-विकारोंके शमनकी चर्चा प्रथम स्कन्धसे ही प्रारम्भ हो जाती है।

शुकदेवजीने भी अपने उपदेशका प्रारम्भ करते हुए कह दिया कि सांख्य अर्थात् वेदान्त योग और स्वधर्म निष्ठा तथा मनुष्य जीवनका भी परम लोभ यही है कि अन्तमें मृत्युके समय भगवान् नारायणकी स्मृति हो (भा., २।१.६)।

मनुष्यके चार ही पुरुषार्थ हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन चारों पुरुषार्थोंमें प्रत्येकका प्रयोजन है, सूतजीने स्पष्ट किया है (भा., १।२.९-१३)।

षड्-विकार और उनका त्याग

१—षड्-विकार—

काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मत्सर इन छः मानसिक दोषोंको षड्-विकार कहते हैं।

(क) काम—

मानव मनमें नारीके प्रति और नारीके मनमें नरके प्रति जो शारीरिक सम्पर्क करनेकी इच्छा जागृत होती है उसको काम कहते हैं।

यद्यपि 'काम' शास्त्रीय दृष्टिसे बहुत व्यापक है, किसी भी लौकिक वस्तुकी कामनाको काम कहा जाता है, किन्तु जब इतने व्यापक अर्थमें काम शब्दका प्रयोग होता है तब लोभ आदि उसके अन्तर्गत ही आ जाते हैं। इसलिए गीतामें तीन ही विकारोंको अपनी गणनामें स्थान दिया है, वे काम, क्रोध और लोभ इन तीनको ही नरकका द्वार बतलाते हैं—(गीता १६।२१)

गीतामें ही इन तीनको भी केवल कामके अन्तर्गत कर दिया है। यह 'काम एष', 'क्रोध एष' कहकर कामको ही क्रोध कहा गया है। 'काम' की प्रतिक्रिया ही क्रोध है यह बात भी गीता ही कहती है—

'काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।' (गीता, ३.३७)

'कामात्क्रोधोऽभिजायते' (गीता, २.६२)

(ख) क्रोध—

क्रोध चित्तकी वह क्षोभ वृत्ति है जो अपनी इच्छाके कुछ प्रतिकूल होनेपर उत्तेजित होती है, क्योंकि इच्छाकी अनुकूलता चाहना काम है इसलिए कामनाकी प्रतिक्रिया क्रोध है यह गीताकी बात मनोवैज्ञानिक सत्य है।

(ग) लोभ—

वस्तु या व्यक्तिको प्राप्त करने या अपने स्वत्वमें बनाये रखनेकी कामनाका नाम 'लोभ' है। लोकमें शरीर और व्यक्तियोंके प्रति जो लोभ है उसीको मोह कहते हैं; किन्तु मोहकी यह शास्त्रीय परिभाषा नहीं है। इसीलिए गीतामें श्रीकृष्णने इस मोहको लोभसे पृथक् नहीं गिना है।

(घ) मोह—

'मुह् अज्ञाने' से मोह शब्द बनता है। इसी धातुसे मूर्च्छा शब्द भी बनता है। धातुकी प्रकृति ध्यानमें रहे तो शब्दार्थ समझनेमें कठिनाई नहीं होती। मोहका अर्थ है—अज्ञान। अविवेककी स्थिति। इसलिए श्रीराम-

चरितमानसमें मोहको ही सब विकारोंका मूल कारण माना गया है—'मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला' (७.१२०.२९)।

अज्ञान ही अविद्या है, इसलिए मोह तो षड्-विकारोंका मूल है। अज्ञानसे ही दूसरे विकारोंका उत्थान होता है।

(ङ) मद—

अपनी किसी विशेषता (बल, बुद्धि, गुण, रूप, विद्या, पद आदि) को लेकर घमण्ड उत्पन्न होना 'मद' है।

(च) मत्सर—

दूसरेकी विशिष्ठता, प्रभुता, सम्पन्नता, व्यक्तित्वता, सम्मानताके प्रति असहिष्णुताकी वृत्ति मत्सर है।

श्रीमद्भागवत इन षड्-विकारोंपर विजय प्राप्तिके लिए पृथक्-पृथक् साधन भी बतलाता है (भा., ७।१५.२२)।

लेकिन अलग-अलग विकारोंपर विजय प्राप्त करनेको पृथक्-पृथक् साधन किये जायें इसपर श्रीमद्भागवतकी आस्था नहीं है। भागवतकी आस्था है कि भगवद्भक्ति ही समस्त विकारोंका उन्मूलन करनेमें परम समर्थ है, (भा., ११.२.५५)।

षड्-विकारोंके नाशके लिए मनुष्यको एकाग्रचित्तसे भगवानकी कथा, उनके गुणोंका श्रवण-कीर्तन करना चाहिये, क्योंकि इसीके द्वारा षट्-विकारोंका शमन होता है। चित्त निर्मल होता है, सत्वगुणमें स्थिति और हृदय ग्रन्थिका भेदन होता (भा.,१।२.१४-२१) है।

२—वाणीका सार्थक्य

द्वितीय उपदेश देवर्षि नारदका व्यासके लिए है, कि भगवत्-कथाका वर्णन ही वाणीका पुरुषार्थ है। यह बात इतने महत्वकी है कि श्रीमद्भागवत में निम्न तीन श्लोक किञ्चित पाठ भेदसे ज्योंके-त्यों दो बार (१।५.१०-१२ एवं १२।१२.५०-५२) आये हैं।

३—कर्मका सार्थक्य

देवर्षि कहते हैं कि बुद्धिमानको उसीके लिए प्रयत्न करना चाहिये जो संसारमें भ्रमण करते हुए अन्यत्र प्राप्त नहीं होता (भा., १।५.१८)।

४—साधनका सार्थक्य

इसीमें मानवकी तपस्या, विद्या, बुद्धि, सबकी सफलता है कि वह अपने चित्तको भगवद्गुणोंके वर्णनमें लगाये।

अन्य जितने भी साधन हैं, वे षट् विकारोंके सम्पूर्ण विनाशमें समर्थ नहीं हैं। इसीलिए नारदजीका अन्तिम निर्णय है (भा., १।५.३३ से ३६)।

५—परम सार्थक्य

श्रीशुकदेवजीने अपने मतका जो सार बताया है, वह पहिले दिया ही जा चुका है। वे कहते हैं कि प्रमत्त होकर बहुत दिन जीवित रहनेसे क्या लाभ ? थोड़ी ही आयुमें यदि कल्याणका प्रयत्न किया जाय तो वही आयु धन्य है। इस थोड़ी आयुमें भी भगवन्नाम-कीर्तन निर्भय पद देनेवाला होता है (भा., २।१.११-१२)।

६—वैराग्यका उपदेश

श्रीशुकदेवजी परम विरक्त हैं, इसीसे उनको सांसारिक अर्थकी प्राप्तिमें व्यस्त होना व्यर्थ प्रतीत होता है (भा., २।२.३-५)।

मानवको क्या करना चाहिये, वे उसका श्रेय बताते हैं (भा., २।२.६-७)।

शुकदेवजीके मतके अनुसार एकमात्र कल्याणकारी मार्ग यही है।

वे षट् विकारोंके विजयका उपाय बताते हैं—

न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह।
वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत्॥

भा., २।२.३३

श्रीमद्भागवतके प्रमुख श्रोता शौनक कहते हैं कि मनुष्यका जीवन तब पशुवत् हो जाता है, उसके अंग व्यर्थ हैं, यदि जीवन और अंग भगवत् सेवामें नहीं लगते (भा., २।३.१७-२४)।

(तृतीय स्कन्धके २५वें अध्यायके श्लोक १३ से ३२वें अध्यायके अन्त तक) भगवान् कपिल अपनी माता देवहूतिको जो उपदेश देते हैं—उसे 'भागवतीय

कपिल गीता' कहते हैं। इसमें योग, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, तत्व प्रसंस्थान, सृष्टि प्रक्रिया सभी कुछ है। यह पूरा उपदेश ही गीताके समान महत्वपूर्ण है। लोकमङ्गलके लिए, षट्-विकारोंपर विजयके लिए, आत्मकल्याणके लिए यह स्मरणीय, आदरणीय है।

७—व्यवहारके नियम

भगवान् शङ्करने सतीको उपदेश करते हुए व्यवहारके जो सामान्य नियम बतलाये हैं, वे सम्मान चाहनेवाले आत्म-गौरवयुक्त किसी भी व्यक्तिको ध्यानमें रखने योग्य हैं—

विद्यातपोवित्तवपुर्वयःकुलैः सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः।
स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम्॥
नैतादृशानां स्वजनव्यपेक्षया गृहान् प्रतीयादनवस्थितात्मनाम्।
येऽभ्यागतान् वक्रधियाभिचक्षते आरोपितभ्रूभिरमर्षणाक्षिभिः॥
तथारिभिर्न व्यथते शिलीमुखैः शेतेऽर्दिताङ्गो हृदयेन दूयता।
स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तिभिर्दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः॥

भा, ४।३.१७-१९

भारतीय समाजमें सत्कारकी जो पद्धति है, उसका मुख्य तात्पर्य क्या है? इसे उपदेशमें स्पष्ट किया गया है—

प्रत्युद्गमप्रश्रयणाभिवादनं विधीयते साधु मिथः सुमध्यमे।
प्राज्ञः परस्मै पुरुषाय चेतसा गुहाशयायैव न देहमानिने॥

भा., ४।३.२२

८—सन्तोषका उपदेश

देवर्षि नारदने ध्रुवको उपदेश देते समय जो कुछ कहा है, वह पुरुषके लिए परम शान्तिप्रद और सन्तोषप्रद है—

विकल्पे विद्यमानेऽपि न ह्यसंतोषहेतवः।
पुंसो मोहभृते भिन्ना यल्लोके निजकर्मभिः॥
परितुष्येत्ततस्तात तावन्मात्रेण पूरुषः।
दैवोपसादितं यावद्वीक्ष्येश्वरगतिं बुधः॥

भा., ४।८.२८-२९

इसलिए मनुष्यको अपना जीवन सुखमय बनाने लिए एवं लोक-कल्याणकी दृष्टिसे भी देवर्षिके इस उपदेशके अनुसार जीवन बनाना चाहिये—

यस्य यद् दैवविहितं स तेन सुखदुःखयोः।
आत्मानं तोषयन्देही तमसः पारमृच्छति॥
गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात्।
मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते॥

भा., ४।८.३३-३४

६—क्षमाका उपदेश

मनुने ध्रुवको उपदेश करते हुए समझाया है—

नायं मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनाम्।
यदात्मानं पराग्गृह्य पशुवद्भूतवैशसम्॥ भा., ४।११.१०

इसीलिए मनुष्यको जीवनमें तितीक्षा, करुणा, मैत्रीको अपनाना चाहिये। इसीसे भगवान् सन्तुष्ट होते हैं—

तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु।
समत्वेन च सर्वात्मा भगवान् सम्प्रसीदति॥
सम्प्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः।
विमुक्तो जीवनिर्मुक्तो ब्रह्म निर्वाणमृच्छति॥

भा., ४।११.१३-१४

मनुने सम्पूर्ण कारण बतलाते हुए षट्-विकारोंके त्यागपूर्वक जीवनको भगवन्मुख बनानेके लिए समझाया है—

भूतैः पञ्चभिरारब्धैर्योषित्पुरुष एव हि।
तयोर्व्यवायात्सम्भूतिर्योषित्पुरुषयोरिह॥

एवं प्रवर्तते सर्गः स्थितिः संयम एव च।
गुणव्यतिकराद्राजन् मायया परमात्मनः॥

निमित्तमात्रं तत्रासौन्निर्गुणः पुरुषर्षभः।
व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं यत्र भ्रमति लोहवत्॥

स खल्विदं भगवान् कालशक्त्या गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः।
करोत्यकर्तैव निहन्त्यहन्ता चेष्टा विभूम्नः खलु दुर्विभाव्या॥

सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ।
जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम् ॥
न वै स्वपक्षोऽस्य विपक्ष एव वा परस्य मृत्योर्विशतः समं प्रजाः ।
तं धावमानमनुधावन्त्यनीशा यथा रजांस्यनिलं भूतसंघाः ॥

भा., ४।११.१५-२०

कोई किसीका अपकार नहीं करता । पुरुष स्वयं अपने कर्मोंका फल भोगता है । इसमें दैवकी प्रेरणा ही मुख्य है ।

१०—भगवदाश्रयका उपदेश

आदिराज पृथुने प्रजाको (भा., ४।२१.२५-४४ में) उपदेश देते हुए जो कुछ कहा है । वह आत्मकल्याणके लिए प्रत्येकको अपनाने योग्य है, विशेष स्मरणीय है—

प्रधानकालाशयधर्मसंग्रहे शरीर एष प्रतिपद्य चेतनाम् ।
क्रियाफलत्वेन विभुर्विभाव्यते यथानलो दारुषु तद्गुणात्मकः ॥

भा., ४।२१.३५

इसीलिए मनुष्यको विनम्र होकरके भगवान्‌की एवं विद्वानोंकी कृपाका आकांक्षी होना चाहिये ।

गुणायनं शीलधनं कृतज्ञं वृद्धाश्रयं संवृणतेऽनु सम्पदः ।
प्रसीदतां ब्रह्मकुलं गवां च जनार्दनः सानुचरश्च मह्यम् ॥

भा., ४।२१.४४

११—तत्वज्ञानका उपदेश

महाराज पृथुको सनत्कुमारोंका उपदेश है (जो स्कन्ध ४ अध्याय २२ के श्लोक २० से श्लोक ४० तक वर्णित है) इस उपदेशमें तत्वज्ञानका निरूपण करते हुए मोक्षरूप परम पुरुषार्थको समझाया गया है (भा., ४।२२.२८-३६) ।

१२—रुद्रगीता

(यद्यपि स्कन्ध ४ अध्याय २४ श्लोक ३२ से श्लोक ७९ पर्यन्त) प्रचेताओंको रुद्रका उपदेश है, यह उपदेश 'रुद्रगीत' के नामसे प्रसिद्ध है,

किन्तु यह उपदेशकी अपेक्षा एक सम्पूर्ण साधना है, जो स्तवनात्मक है, जो उपयोगिताकी दृष्टिसे श्रेष्ठ है। इसमें उपदेश कम स्तुति अधिक है।

१३—पुरंजनोपाख्यान

(चतुर्थ स्कन्धके २५ वें अध्यायके ७वें श्लोकसे २९ वें अध्यायके ८५ वें श्लोक तक) इसी प्रकार राजा प्राचीन बर्हिको देवर्षि नारदका उपदेश है। इसे 'पुरंजनोपाख्यान' भी कहा जाता है। इस आख्यानमें मनुष्य शरीरको 'पुर' जीवको 'पुरंजन' और बुद्धिको 'पुरंजनी' का रूपक देकर जीवके संसार-चक्रमें भ्रमणकी सम्पूर्ण गति समझाते हुए, इसमें षट्-विकारको जीतकर जन्म-मृत्युकी धारणभूता भवाटवीसे परित्राणके उपायोंका निरूपण किया गया है।

१४—भगवदाश्रय

प्रचेताओंको देवर्षि नारदके उपदेश (भा., ४।३१.९ से २२ तक) में नारदने भगवद् भक्तिके महत्वको समझाया है।

ऋषभदेवने (पंचम स्कन्धके ५वें अध्यायके श्लोक १ से श्लोक २७ का) उपदेश किया है। सभी दृष्टियोंसे अपनाने योग्य है। षट्-विकारोंपर विजय पानेके लिए पुत्रोंको समझाया है। जन-जीवनको लोकमंगल बनानेके लिए यह उपदेश बहुत उपयोगी है। इस उपदेशमें मुख्य सन्देश ही है कि मनुष्य-जीवन कामनाओंकी षट्-वर्गोंकी तृप्तिके लिए नहीं है—

नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्वं शुद्धयेद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥

(भा., ५।५.१)

१५—सन्त-माहात्म्य

इसीलिए मनुष्योंको सत्पुरुषोंकी शरण लेना चाहिये। सन्तकी परिभाषा इतनी उत्तम कहीं नहीं की गयी है—

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम्।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥
ये वा मयीशे कृतसौहृदार्था जनेषु देहम्भरवार्तिकेषु।
गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु न प्रीतियुक्ता यावदर्थांश्च लोके ॥

(भा., ५।५.२ से ३ तक)

अतः ऋषभदेवजी कहते हैं (भा., ५।५.४ से ६ तक)—

मनुष्य इन षट्-विकारोंसे पीड़ित रहकर इस संसार-चक्रमें भ्रमता रहता है—

यदा मनोहृदयग्रन्थिरस्य कर्मानुबद्धो दृढ़ आश्लेथेत।
तदा जनः सम्परिवर्ततेद् स्माऽमुक्तः परं यात्यतिहाय हेतुम् ॥

(भा., ५।५.६)

इस सम्पूर्ण उपदेशमें इसी बन्धनसे छूटनेकी प्रेरणा है।

१६—तत्वज्ञान

(पंचम स्कन्धके अध्याय १० के ६ वें श्लोकसे २४ वें अध्यायके गद्य ४१ तक) राजा रहूगणके प्रश्न और जड़भरतके उपदेशका प्रसंग पूराका पूरा तत्वज्ञानसे भरा है। इसमें विस्तारपूर्वक आत्मतत्वका प्रतिपादन हुआ है।

१७—भक्ति-माहात्म्य

यमराजने अपने दूतोंको 'भागवत-धर्म' का उपदेश (स्कन्ध ६ के अध्याय ३ के १२वें श्लोकसे ३०वें श्लोक पर्यन्त) किया है।

इसमें भगवद्भक्तिकी महिमा, भगवन्नामकी महिमा, भागवत धर्मके आचार्योंका निर्देश करते हुए बताया गया है कि पुरुषके लिए सम्पूर्ण पापोंका प्रायश्चित भगवन्नाम है। भगवदाश्रित किस प्रकार यमसे निर्भय हो जाता है—

प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं
देव्या विमोहितमतिर्बत मायया लम्।
त्रय्यां जडीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां
वैतानिके महति कर्मणि युज्यमानः ॥
एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते
सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम्।
ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां
स्यात् पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः ॥

ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा
ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः ।
तान् नोपसीदत हरेर्गदयाभिगुप्तान्
नैषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे ॥
तानानयध्वमसतो विमुखान् मुकुन्द-
पादारविन्दमकरन्दरसादजस्त्रम् ।
निष्किञ्चनैः परमहंसकुलै रसज्ञै-
र्जुष्टाद् गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान् ॥
जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चैतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि
तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥
(भा., ६।३.२५ से २९ तक)

१८—जीवनकी नश्वरताका उपदेश

महर्षि अंगिराने चित्रकेतुको उपदेश करते हुए समझाया (भा., ६। १५.२४ से २६ तक)

शब्दादयश्च विषयाश्चला राज्यविभूतयः ।
मही राज्यं बलं कोशो भृत्यामात्याः सुहृज्जनाः ॥
(भा., ६।१५.२२)

भगवान् शेषने चित्रकेतुको उपदेश करते हुए कहा है (भा., ६।१६. ५३ से ५७ तक) ।

अतः मनुष्यको अपना परम श्रेय समझना चाहिये—

एतावानेव ननुजेयोगनैपुणबुद्धिभिः ।
स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयो यत्परात्मैकदर्शनम् ॥

१९—चरमहानिपर कुपुरुषोंमें तत्वज्ञानका उदय

उपदेश तो हिरण्यकशिपुने भी अपनी माँ, भतीजों और भाईकी पत्नीको किया है। यह उपदेश इसका उदाहरण है कि कुपुरुष भी किस

प्रकार अवसर विशेषपर तत्वज्ञ हो जाते हैं। इस उपदेशमें भी तथ्य बहुत सच एवं उचित कहा गया है कि शोक व्यर्थ ही होता है। संयोग-वियोग किसीके हाथमें नहीं होते।

२०—आपत्तिमें धैर्य

यमका उशीनर नरेशके सम्बन्धियोंको प्रबोधन इसी उपदेशके अन्तर्गत (स्कन्ध ७ अध्याय २ के श्लोक २१ से श्लोक २४ पर्यन्त) है। मनुष्यके धैर्यको प्रबुद्ध करनेके लिए यह अमृतके समान है।

२१—भगवद्-भक्तिका उपदेश

सातवे स्कन्धके छठे एवं सातवें अध्यायमें प्रह्लादका दैत्य पुत्रोंको उपदेश है। इस उपदेशमें ध्यान देने योग्य है—

कौमार आचरेत्प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।
दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥ (भा., ७।६.१)

प्रह्लाद कहते हैं कि कुमारावस्थामें ही भागवत धर्मका आचरण करना चाहिये। ऐन्द्रियसुखके लिए प्रयास योग्य नहीं है (भा., ७।६. से ५ तक)।

प्रह्लादके इस उपदेशमें पाठकको भगवद्-भक्तिकी प्रबल प्रेरणा प्राप्त होती है।

ज्ञानं तदेतदमलं दुरवापमाह नारायणो नरसखः किल नारदाय।
एकान्तिनां भगवतस्तदकिञ्चनानां पादारविन्दरजसा ऽऽप्लुतदेहिनां स्यात्॥
(भा., ७।६.२७)

इस उपदेशमें प्रह्लादने तत्वज्ञानका भी प्रतिपादन किया है जो संक्षिप्त एवं मार्मिक है (भा., ७।७.३२)।

मनुष्यकी स्थिति क्या है ? (भा., ७।७.४३ से ४६ तक) इसे बताते हुए वे कहते हैं—

यदध्यर्थ्येह कर्माणि विद्वन्मान्यसकृन्नरः।
करोत्यतो विपर्यासममोघं विन्दते फलम्॥ (भा., ७।७.४१)

इसलिए प्रह्लादके उपदेश (भा., ७।७ ५०-५२) का निष्कर्ष है—

सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्मेश्वरः प्रियः।
भूतैर्महद्भिः स्वकृतैः कृतानां जीवसंज्ञितः॥ (भा., ७।७.४९)

२२—वर्णाश्रम धर्म

सप्तम स्कन्धमें अध्याय ११ से अध्याय १५ पर्यन्त देवर्षि नारदने राजा युधिष्ठिरको वर्णाश्रम धर्मका उपदेश किया है। इसमें सब वर्णों तथा सब आश्रमोंके पालनीय आचरण वर्णित हैं। सम्पूर्ण मनुष्योंके लिए तीस लक्षणोंवाला जो धर्म वर्णित किया गया है, वह सभीके ध्यान देने योग्य है। जन-कल्याणका इसे मूलोपदेश कहा जाय तो उचित होगा।

धर्मके सम्बन्धमें देवर्षिका कथन है—

प्रायः स्वभावविहितो नृणां धर्मो युगे युगे।
वेददृग्भिः स्मृतो राजन्प्रेत्य चेह च शर्मकृत्॥ (भा., ७।११.३१)

इसीलिए वे कहते हैं—

उप्यमानं मुहुः क्षेत्रं स्वयं निर्वीर्यतामियात्।
न कल्पते पुनः सूत्यै उप्तं बीजं न नश्यति॥

एवं कामाशयं चित्तं कामानामतिसेवया।
विरज्येत यथा राजन्नाग्निवत् कामबिन्दुभिः॥

(भा., ७।११.३३-३४)

गृहस्थ धर्मका उपदेश करते हुए देवर्षि नारदने जो बात कही है, वर्तमान साम्यवाद उससे कोसों पीछे छूट जाता है—

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(भा., ७।१४.८)

देवर्षि चन्दा करके धर्म करनेके पक्षमें नहीं हैं—

धर्मार्थमपि नेहेत यात्रार्थं वाधनो धनम्।
अनीहानीहमानस्य महाहेरिव वृत्तिदा॥ (भा., ७।१५.१५)

षट्-रिपुओंको जीतनेके सम्बन्धमें उनकी प्रेरणा बहुत प्रबल है (भा., ७।१५.४५-४६)।

२३—व्यवहार-नीति

नीतिके परमाचार्य शुक्राचार्य मनुष्यके उपार्जनका उपयोग कैसे किया जाना चाहिये, इस सम्बन्धमें नीति निर्धारित करते हुए कहते हैं—

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते॥ (भा., ८।१९.३७)

२४—सन्तोषोपदेश

नवम स्कन्धमें ययातिने अपनी पत्नी देवयानीको उपदेश करते हुए जो कुछ कहा है, उसमें कामनाकी प्रबलता कितनी है और संयमके लिए सावधान कितना रहना चाहिये (भा., ९।१९.१३-१७) यह ध्यान देने योग्य बात है।

इसीलिए ययाति कहते हैं—

तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय मानसम्।
निर्द्वन्द्वो निरहंकारश्चरिष्यामि मृगैः सह॥

दृष्टं श्रुतमसद् बुद्ध्वा नानुध्यायेन्न संविशेत्।
संसृते चात्मनाशं च तत्र विद्वान् स आत्मदृक्॥

(भा., ९।१९.१९-२०)

२५---उपदेशके अनधिकारी

भारतीय सभ्यता इस पक्षमें नहीं है कि अनिच्छुक या अनधिकारीको वैराग्य अथवा तत्वज्ञानका उपदेश किया जाये। उपदेष्टाकी परिस्थिति कैसी भी हो, उसमें कितनी भी सहानुभूति हो, किन्तु जब वह अनिच्छुक या अनधिकारीको उपदेश देता है तब वह उपदेश व्यर्थ होता है। वहाँ उपदेशके स्थानपर किसी अन्य उपायका अवलम्बन करना उचित होता है।

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पूर्वार्द्धमें उपदेशके केवल दो प्रसंग हैं। दोनोंमें ही अनिच्छुक और अनधिकारीको उपदेश किया गया और

उन्होंने उपदेशको स्वीकार नहीं किया। यद्यपि दोनों ही उपदेश तथ्यपूर्ण हैं, सत्य सन्देश देते हैं। मनुष्यको प्रादसे बचानेवमाले हैं।

प्रथम उपदेश वसुदेवजीका कंसको दिया गया है (भा., १०।१.३८-४४)।

यद्यपि यह सभी जानते हैं कि शरीर अमर नहीं है, जिसको अपना कल्याण अभीष्ट हो, उसे किसीसे द्रोह नहीं करना चाहिये, क्योंकि द्रोह करनेवालेको दूसरेसे भय होगा ही।

उपदेशमें कोई त्रुटि नहीं है, किन्तु कंसने इसे स्वीकार नहीं किया।

दूसरा उपदेश अक्रूरने धृतराष्ट्रको किया है। यह उपदेश भी महत्व-पूर्ण है। इसमें कुछ ऐसा नहीं है, जो सत्पुरुषके लिए ग्राह्य न हो, किन्तु धृतराष्ट्रने भी इसे स्वीकार नहीं किया (भा., १०।४९.२०-२४)।

अधर्मसे उपार्जित धन और उससे पोषित स्वजन दोनों ही अपने पतनके हेतु होते हैं। इस तथ्यको अस्वीकार नहीं किया जा सकता, किन्तु यहाँ उपदेश अनधिकारीको किया गया है।

लोकमंगलकी दृष्टिसे उपदेशके सम्बन्धमें यह संकेत स्मरण रखने योग्य है।

श्रीबलरामने रुक्मिणीको तत्वज्ञानका उपदेश किया है (भा., १।५४.४४-४८)।

यह उपदेश अपनी गम्भीरता स्वयं प्रकट कर रहा है। इसे अपनाने-वाला शोक मोहसे पार हो जायेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

२६—आत्मज्ञान

इसी प्रकार तत्वज्ञानका उपदेश कुरुक्षेत्रमें श्रीकृष्णने गोपियोंको किया है। इस उपदेशमें गोपियोंका भेद-भ्रम तो नष्ट हुआ ही, जो भी इसे अपनायेगा, उसका भी भेद-भ्रम और जन्म-मरण समाप्त हो जायेगा (भा., १०।८२.४४-४७)।

मनुष्यका सम्बन्धियोंसे संयोग-वियोग कितना अनिश्चित एवं दैवाधीन है, यह इसमें समझाया है। अतः जीवनमें इसको महत्व नहीं देना चाहिये।

२७—भागवत धर्म

एकादश स्कन्ध लगभग सम्पूर्ण ही 'उपदेश प्रसंग' है। वसुदेव-नारद संवादके अन्तर्गत राजा निमिसे नौ योगेश्वरोंका संवाद है—

(क) योगेश्वर कविने भागवत-धर्मका उपदेश किया है।

(ख) योगेश्वर हरिने भगवत-भक्तिका स्वरूप समझाया है।

(ग) योगेश्वर अन्तरिक्षने माया-स्वरूपका निरूपण किया है।

(घ) योगेश्वर प्रबुद्धने मायासे पार होनेके साधनोंको, जिनमें भगवद्-भक्तिके भी साधन हैं–संक्षिप्त रूपसे निरूपित किया है।

(ङ) योगेश्वर पिप्पलायनने भगवान्‌के स्वरूपको समझाया है।

(च) योगेश्वर आविर्होत्रने कर्मयोगका स्पष्टीकरण किया है।

(छ) योगेश्वर द्रुमिलने संक्षिप्त रूपसे अवतारोंका निरूपण किया है।

(ज) योगेश्वर चमसने अर्थ, धर्म आदिका प्रयोजन समझाते हुए सर्वभूत दयाका प्रतिपादन किया है।

(झ) योगेश्वर करभाजनने प्रत्येक युगकी उपासनाका वर्णन करके कलिकी विशेषता बतलायी है।

इस प्रकार एकादश स्कन्धमें (अध्याय २ के श्लोक ३३ से अध्याय ५ के श्लोक ४२ तक) का यह प्रसंग सम्पूर्ण ही मानव-समाजके लिए मंगलायतन है।

२८---अवधूत-गीता

श्रीकृष्ण-उद्धव संवादके अन्तर्गत राजा यदु और अवधूतका संवाद है, इसमें अवधूतने अपने चौबीस गुरुओंका वर्णन किया है। यह बतलाया है कि किस गुरुसे क्या सीखा है। एकादश स्कन्धके अध्याय ७ के श्लोक २६ से अध्याय ९ के श्लोक ३४ तकका यह प्रसंग विशेषतः साधनोन्मुख विरक्त लोगोंके लिए बहुत अधिक प्रेरणाप्रद है।

२९—श्रीकृष्ण-गीता

अध्याय १० से अध्याय २९ पर्यन्त श्रीकृष्णका उद्धवको उपदेश है। यह उपदेश भगवद्गीताके समान ही गम्भीर और महत्वपूर्ण है। इसमें चारों वर्णाश्रमोंके धर्मोंका वर्णन है।

'भिक्षुगीता' में वैराग्यका प्रतिपादन है। ज्ञान, भक्ति, तत्व-प्रसंख्यान सभी कुछ इस उपदेशके अन्तर्गत है। इस अर्थमें यह गीतासे भी विशिष्ट है कि इसमें सब वर्णाश्रमोंके कर्त्तव्योंका निरूपण है। श्रीमद्भागवतको गीताकी व्याख्या कहा गया है। वह व्याख्या विशेष रूपसे यही उपदेश है। इसलिए इस उपदेशके अंश विशेष उद्धृत करके शेषको त्यागना किसी प्रकार उचित नहीं है। सम्पूर्ण उपदेश ही लोक जीवनके लौकिक-पारलौकिक अभ्युदय—निःश्रेयसमें लगानेवाला परम प्रकाश रूप है।

३०—ब्रह्मोपदेश

द्वादश स्कन्धका चतुर्थ और पञ्चम अध्याय श्रीशुकदेवजीका परीक्षितको अन्तिम उपदेश है। इसमें पञ्चम अध्यायको ब्रह्मोपदेश कहते हैं—

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं परम्।
एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले॥
दशन्तं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः।
न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः॥

(भा., १२।५.११-१२)

यह इस 'ब्रह्मोपदेश' का उपसंहार है। वैसे शुकदेवजी कहते हैं—

घनो यदार्कप्रभवो विदीर्यते चक्षुः स्वरूपं रविमीक्षते तदा।
यदा ह्यहंकार उपाधिरात्मनो जिज्ञासया नश्यति तर्ह्यनुस्मरेत्।

(भा., १२।४.३३)

इस स्थितिको प्राप्त करनेके लिए—

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षोर्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य॥

(भा., १२।४.४०)

भगवत कथा ही सामान्य मनुष्यके लिए परमाश्रय है। श्रीमद्-भागवतके उपदेशोंका यही अन्तिम तात्पर्य है।

श्रीरामचरितमानसके उपदेशात्मक प्रसंग

श्रीरामचरितमानस इस परम लक्ष्यको लेकर ही चलता है कि व्यष्टि एवं समष्टि दोनोंका परम कल्याण श्रीरामके चरणोंमें प्रीतिका होना है और इसीको वह परम पुरुषार्थ स्वीकार करता है—

'सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥'

(मानस, २।२२.६)

समाजकी समस्त प्रवृत्ति शिक्षा और नियन्त्रणसे ही चलती है। सत्पुरुषोंकी उपस्थिति और उनका सत्कार किये बिना व्यष्टि-समष्टि किसीका भी मंगल नहीं हो सकता। वही समाज मंगलात्मक है जिसमें सत्पुरुष अधिक हों, उनका सम्मान हो। मानसमें गुरु-महिमा[1] तो प्रारम्भसे ही है। बालकाण्ड दोहा १ के बाद तृतीय पंक्तिसे दोहा ३ तक सन्त-वन्दना यही प्रेरणा देनेके लिए है।

गुरुकी स्थितिकी सर्वश्रेष्ठता तो ब्रह्मासे भी बड़ी बता दी है—

'राखइ गुर जौं कोप बिधाता। गुर बिरोध नहिं कोउ जग त्राता॥'

(मानस, १।१६५.६)

श्रीरामका कथन—

'जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी॥'

(मानस, २।२५८.५)

सन्तके संग-महिमाकी तुलना नहीं की जा सकती—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

(मानस, ५।४)

सन्तोंका लक्षण और लक्षणको स्पष्ट करनेके लिए सन्त एवं असन्तोंके लक्षण भी मानसमें स्पष्ट किये गये हैं, क्योंकि जहाँ सन्त-सत्कार करने योग्य

---

१. मानस, १। मं. १ से १. १. २ तक

हैं, वहीं खलोंसे बचना उनकी पहिचानके बिना सम्भव नहीं है। जिन विकारोंके कारण 'खल[1]' या 'असन्त' कहा जाता है उनसे ही बचना है इसलिए खल एवं असन्तोंका वर्णन षट्-विकारोंके विजयमें प्रेरणा देता है। यह खल-वर्णन १।३१ से १।५.६ तक वर्णित है। बालकाण्ड दोहा १८३ के बादकी प्रथम तीन पंक्तियां द्रष्टव्य है—

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा॥
जिन्ह के यह आचरन भवानी। ते जानेहु निसिचर सब प्रानी॥

(मानस, १।१८३.१-३)

सन्त-असन्तोंके लक्षणोंकी विवेचना भरतके प्रश्नोंके उत्तरमें श्रीरामने (मानस, ७।६.६-७।४०) निरूपित किए हैं। इस निरूपणका अभिप्राय असन्तोंसे बचकर सन्तत्वको अपनानेसे ही है।

सम्पूर्ण सृष्टि ही गुण-दोषमय है। इस तथ्यको समझे बिना न तो मानवके उद्वेगका शमन होता है और न उसे शान्तिकी प्राप्ति ही होती है। यह विवेचन भी मानसमें बालकाण्ड दोहा ५ की पंक्ति ६ तक स्पष्ट है—

तेहि तें कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥
भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन दोष बेद बिलगाए॥

(मानस, १।५ २-४)

कोई ऐसा नियम नहीं है कि जो दूषित है, वह सदा दूषित ही रहेगा और जो अच्छा है, वह कभी दूषित नहीं होगा। समय एवं उपयोगसे इनमें परिवर्तन हुआ करता है—

काल सुभाउ करम बरिआईं। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाईं॥
सो सुधारि हरिजन जिमि लेहीं। दलि दुख दोष बिमल जसु देहीं॥
खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू। मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू॥
लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। बेष प्रताप पूजिअहिं तेऊ॥
उघरहिं अंत न होई निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥
किएहुँ कुबेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहुँ बेद बिदित सब काहू॥

---

१. 'जड़ चेतन गुन दोषमय बिस्व कीन्ह करतार' (मानस, १।६)

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलहि नीच जल संगा॥
साधु असाधु सदन सुक सारीं। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारीं॥
धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन दाता॥

ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग॥
सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह॥

(मानस, १।६.२-७ (ख)

मानसकी मूल प्रेरणा भक्ति है और भक्तिका भी सार-मानसकार 'रामनाम' को मानते हैं। इसलिए 'नाम' वन्दना बालकाण्ड दोहा १८ पंक्ति १ से दोहा २७ पंक्ति २ तक विस्तारसे आयी है।

श्रीरामचरितमानसमें लोककल्याणके लिए शील एवं सदाचारका वर्णन बहुत है। मानसके पात्रोंसे भी शील और सदाचार सीखा जा सकता है—

'मातु पिता गुर प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी॥

(मानस, १।७६.३)

किन्तु धर्म हो या ज्ञान, योग हो या भक्ति, साधनमात्रके लिए निष्ठाकी आवश्यकता है। बिना निष्ठाके कोई साधन सफल नहीं हो सकता। लोकका मंगल ही तब होता है, जब लोकमें नैष्ठिक लोग होंगे। यह अनन्य निष्ठा कैसी होनी चाहिये? यह पार्वतीकी वाणीके द्वारा प्रतिपादित किया गया है—

सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा। हठ न छूट छूटै बरु देहा॥
कनकउ पुनि पषान तें होई। जारेहुँ सहजु न परिहर सोई॥
नारद बचन न मैं परिहरऊँ। बसउ भवनु उजरउ नहिं डरऊँ॥
गुर कें बचन प्रतीति न जेही। सपनेहुँ सुगम न सुख सिधि तेही॥

महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेहि सन काम॥
जौं तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा। सुनतिउँ सिख तुम्हारि धरि सीसा॥
अब मैं जन्मु संभु हित हारा। को गुन दूषन करै बिचारा॥

(मानस, १।७६,५-८०.२)

लोक-कल्याण एवं परोपकारके सम्बन्धमें 'मानस' की पंक्तियाँ स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य हैं। श्रीरामके वचन—

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

(मानस, ३।३०.९)

\+ \+ \+ \+

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

(मानस, ७।४०.१)

उत्तरकाण्डमें भी कहा गया है—

नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहिं ते सहहिं महा भव भीरा॥

(मानस, ७।४०.३)

यह निर्णय 'सकल पुरान वेद' का कहा गया है (मानस, ७।४०.२)।

मानवको अपने पुरुषार्थके अहंकारमें ही मत्त नहीं होना चाहिये। पुरुषार्थ प्रधान तो है, किन्तु मानसकार प्रारब्धकी उपेक्षा भी नहीं करता—

'सो न टरइ जो रचइ बिधाता।' (मानस, १।९६.६)

निज कृत करम भोग सबु भ्राता। (मानस, २।९१.४)

करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करिइ सो तस फलु चाखा॥

(मानस, २।२१८.४)

.....। करम बिबस दुख सुख छति लाहू॥
कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता॥

(मानस, २।२८१.३-४)

श्रीरामचरितमानसमें इस प्रकार भगवद्कथाकी महिमा. सत्य, धर्म, धर्मपालन, पापकी निन्दा आदि बहुत कुछ है। कौन-कौन शोचनीय है ? क्या-क्या व्यर्थ है ? आदि सभी कुछ मानसमें विद्यमान हैं।

मानव कल्याणके उपदेशोंसे मानस भरा पड़ा है। जहाँ तक उपदेश-प्रसंगकी बात है—ये प्रसंग श्रीरामके वन-गमनसे प्रारम्भ होते हैं। वैसे इससे पूर्व भी स्फुट उपदेश स्थान-स्थानपर हैं।

१. लक्ष्मण-गीता—

प्रथम उपदेश प्रसंग है—लक्ष्मणका निषादराजको उपदेश। इस प्रसंगको 'लक्ष्मण-गीता' कहा जाता है। सम्पूर्ण प्रसंगमें षट्-विकारोंके त्यागकी बात तो लोकमंगलकी है ही। लक्ष्मण कहते हैं—

धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू॥
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं॥
सपनें होइ भिखारि नृपु रंकु नाकपति होइ।
जागें लाभु न हानि कछु तिमि प्रपंच जियँ जोइ॥
अस बिचारि नहिं कीजिअ रोसू। काहुहि बादि न देइअ दोसू॥
मोह निसाँ सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥
एहिं जग जामिनि जगहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥
होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥

(मानस, २।९१.७-९२.५)

२. भगवन्निवास—

द्वितीय उपदेश प्रसंग प्रारम्भ होता है—महर्षि वाल्मीकि द्वारा निर्दिष्ट चौदह निवास स्थल। यह निवास तो चौदह प्रकारकी भक्ति ही है। कैसा-कैसा करनेसे, एवं कैसा जीवन बनानेसे श्रीराम हृदयमें निवास करते हैं—इसका विस्तारसे वर्णन अयोध्याकाण्डके दोहा १२७ की पंक्ति ४ से दोहा १३१ तक वर्णित है। यह सम्पूर्ण प्रसंग ही भक्ति रससे अनुस्यूत है।

३. शोचनीय कौन ?—

उपदेशका एक प्रसंग है—महर्षि वशिष्ठ शोकातुर भरतको उपदेश

दे रहे हैं। इसी प्रसंगमें कौन-कौन शोचनीय है ? यह बतलाया गया है। किस वर्गका व्यक्ति किस गुणसे रहित होनेपर शोचनीय हो जाता है—

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥

(मानस, २।१७१.३-४)

सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुर बंधु बिरोधी॥
सब बिधि सोचिअ पर अपकारी। निज तनु पोषक निरदय भारी॥

(मानस, २।१७२.२-३)

इस प्रकारके वर्णनसे युक्त यह प्रसंग समाजके सभी वर्गके लिए चिन्तनीय है जो अयोध्याकाण्डके दोहा १७।१.३ से दोहा १७२.४ तक वर्णित है।

४. राज-धर्म—

श्रीरामने चित्रकूटसे विदा करते समय भरतको भी जो उपदेश किया है—वह उपदेश यद्यपि उस समयके राजतन्त्रके अनुरूप है, किन्तु आजके प्रजातन्त्रमें भी वह उतना ही उपयोगी है—

मुखिया मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥
राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माहँ मनोरथ गोई॥

(मानस, २.३१५-३१५.१)

५. नारी-गीता—

अरण्यकाण्डमें महासती अनुसूयाने श्रीजानकीको नारी धर्मका उपदेश किया है, जिसे 'नारी-गीता' भी कहा जाता है। यह अरण्यकाण्डके दोहा ४ की पंक्ति ५ से दोहा ५ (ख) तक विस्तारसे कहा गया है। नारीके लिए यह पतिव्रतका उपदेश सब समय, सब समाजके लिए सदा उपयोगी रहेगा। लोक-कल्याणका यह शाश्वत उपदेश है।

६. राम-गीता—

लक्ष्मणके ज्ञान वैराग्य विषयक प्रश्नोंपर श्रीरामने उन्हें जो उपदेश किया है, इसे 'राम-गीता' भी कहते हैं। सक्षिप्त रूपसे इसमें समस्त तत्वज्ञान

और साधन आ गया है। यह 'राम-गीता' अरण्यकाण्ड दोहा १४ की पंक्ति २ से दोहा १६ पर्यन्त गम्भीर तत्वज्ञानसे युक्त है, जो सम्पूर्ण मानव समाजके लिए प्रकाश स्तम्भकी भाँति है।

मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥
गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥

(मानस, ३।१४.२-३)

तत्वज्ञानका सार इसमें आ गया।

७. नीति—

वैसे तो सूर्पणखा भी रावणको उपदेश करती है और उसका उपदेश भी उपेक्षणीय नहीं है। अरण्यकाण्ड दोहा २० की पंक्ति ८ से दोहा २१ (क) तकका उपदेश सभीके लिए उपयोगी है। वह कहती है—

बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किएँ अरु पाएँ।
संत तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥

(मानस, ३।२०.९-११)

८. नवधा-भक्ति—

उपदेशका उत्तम प्रसंग ही नहीं, अपितु भक्तिके उपदेशका मानसका प्रमुख प्रसंग है, वह जो श्रीरामने शवरीको 'नवधा-भक्ति'[1] का उपदेश किया

---

१. **नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥**
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहु नहिं देखइ परदोषा॥

(टिप्पणीका शेष अगले पृष्ठ पर)

है (यह अरण्यकाण्डके दोहा ३४ की पंक्ति ५ से दोहा ३५ की पंक्ति ८ तक वर्णित है।) यह नवधा-भक्ति अध्यात्म रामायणके अनुसार है।

९. मित्र-धर्म—

श्रीरामने अत्यन्त संक्षिप्त 'मित्र-धर्म' का उपदेश सुग्रीवको किया है। मित्रताका इतना सुन्दर उपदेश कम ही प्राप्त होता है—

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥
देत लेत मन संक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥

(मानस, ४।६.४-६)

ये मित्रके लक्षण हैं। वह कुमित्र है, जो—

आगें कह मृदु बचन बनाई। पाछें अनहित मन कुटिलाई॥
जा कर चित्त अहि गति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥

(मानस, ४।६.७-८)

१०. तत्वोपदेश—

श्रीरामका ताराको दिया गया अति संक्षिप्त उपदेश तत्वज्ञानसे परिपूर्ण है। यह उपदेश मानव स्मरण रखे तो जीवनमें कभी प्रमाद नहीं होगा—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगें सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥

(मानस, ४।१०.४-५)

११. कल्याण-साधन—

विभीषणका रावणको उपदेश है। यह लोकमंगलकी दृष्टिसे बहुत महत्वपूर्ण है—

(पिछले पृष्ठकी टिप्पणीका शेष)

नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥

(मानस, ३।३४.७-३५.७)

जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं। तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥
चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्टइ नहिं सोई॥
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥

(मानस, ५।३७.५-८)

१२. धर्म-रथ—

लंकाकाण्डमें धर्ममय रथका विवेचन है। संसारमें किसी भी संघर्षमें विजयके लिए यह धर्म-रथ परिपूर्ण समर्थ है—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ ध्वजा पताका॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥

(मानस, ६।७९.४-११)

उत्तरकाण्डमें श्रीभरतके प्रश्नोत्तर श्रीरामने सन्त-असन्तोंका जो विवेचन[1] किया है, इसकी चर्चा पहले आ चुकी है।

१३. पुरजन-गीता—

श्रीरामका अयोध्याकी प्रजाको उपदेश (उत्तरकाण्ड दोहा ४२ की पंक्ति ४ से दोहा ४६ तक) किया है, इसे पुरजन-गीता कहते हैं। कुछ लोग इसे 'राम-गीता' भी कहते हैं। इसमें मानव शरीरकी दुर्लभता और मानव जीवनको सफल बनानेका उपाय तो है ही, तथा—'बैर न बिग्रह आस न त्रासा॥' (मानस, ७।४५.५)

इस प्रकार जीवन कैसे सुखमय हो सकता है? इसका शाश्वत सन्देश है।

---

१. मानस, ७।३६.६ दोहा ४१ तक।

१४. भुशुण्डि-गीता—

काकभुशुण्डि-गरुड़ संवाद अन्तिम उपदेश अंश है (जो उत्तरकाण्डके दोहा ६९ की प्रथम पंक्तिसे प्रारम्भ हो जाता है) इसमें ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि सबका कोषागार है। षड्-विकारोंके परिवारमें तृष्णा, चिन्ता, मत्सर आदि हैं, जो किस प्रकार सबकी बुद्धिको प्रभावित करके कुपन्थमें लगाते हैं, इन्हींका निरूपण है—

मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही॥
तृस्नाँ केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा॥
ग्यानी तापस सूर कबि कोबिद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडंबना कीन्हि न एहिं संसार॥
श्री मद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नैन सर को अस लाग न जाहि॥
गुन कृत सन्यपात नहिं केही। कोउ न मान मद तजेउ निबेही॥
जोबन ज्वर केहि नहिं बलकावा। ममता केहि कर जस न नसावा॥
मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा॥
चिंता साँपिनि को नहिं खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया॥
कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा॥
सुत बित लोक ईषना तीनी। केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी॥

(मानस, ७।६९ ७-७०.६)

इन सबपर विजय पानेके लिए भगवद्भक्तिका उपाय ही सबके लिए समान रूपसे सरल है। इस भक्तिकी महत्ता (उत्तरकाण्ड दोहा ८५ की प्रथम पंक्तिसे दोहा ८७ की द्वितीय पंक्ति तक) काकभुशुण्डिने 'निज सिद्धान्त'[1] के रूपमें वर्णित किया है।

१५. युग-साधना—

युग-साधनाओंका वर्णन (उत्तरकाण्ड दोहा १०२ से दोहा १०३ तक) बहुत स्पष्ट है, इसमें कलियुगकी महत्ता भी है (दोहा १०३ से १०४ तक) इन युगोंमें धर्मका कैसा तारतम्य रहा है ? इसे स्पष्ट किया गया है।

१६. मंगलोपदेश—

काकभुशुण्डि उपदेश तो नहीं करते, किन्तु उनके विगत जन्मका जो

---

१. मानस, ७।८५.२।

आत्म-चिन्तन है, यह चिन्तन भी किसी उपदेशसे कम नहीं है। आत्म-कल्याण और लोकमंगलके लिए तो यह नित्य स्मरणीय है—

कबहुँ कि दुख सब कर हित ताकें। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाकें॥
परद्रोही की होहिं निसंका। कामी पुनि कि रहहिं अकलंका॥
बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हें। कर्म कि होहिं स्वरूपहि चीन्हें॥
काहू सुमति कि खल सँग जामी। सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी॥
भव कि परहिं परमात्मा बिंदक। सुखी कि होहिं कबहुँ हरि निंदक॥
राजु कि रहइ नीति बिनु जानें। अघ कि रहहिं हरि चरित बखाने॥
पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावइ कोई॥
लाभु कि किछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुत संत पुराना॥
हानि कि जग एहि सम किछु भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई॥
अघ कि पिसुनता सम कछु आना। धर्म कि दया सरिस हरिजाना॥

(मानस, ७।१११.१-११)

१७. ज्ञान-दीप--

(उत्तरकाण्ड दोहा ११४ पंक्ति ११ से दोहा ११८ तकका प्रसिद्ध 'ज्ञान-दीपक' प्रसंग है।) मानसकारको ज्ञानका वही स्वरूप मान्य है जो अद्वैत-मत मानता है—

'सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा' (मानस, ७।११७.१)

और इस वृत्तिका जो परम प्राप्य है—वही प्राप्य श्रीरामचरित-मानसको मान्य है—

.....। सो कैवल्य परम पद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥

(मानस, ७।११८ २-३)

यह मान्य होनेपर भी ज्ञान कैसे पाया जाता है, इस 'ज्ञान-दीपक' में इसका साधन भी बताया गया है।

१८. भक्ति-चिन्तामणि--

इसके पश्चात् 'भक्ति-मणि' की महत्ता और उसकी प्राप्तिके उपाय भी (दोहा ११८ को पंक्ति ४ से दोहा १२० तक) वर्णित है। इस भक्तिका प्रयोजन भक्तिके द्वारा षट्-विकारोंके नाशमें है—

खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥
गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई।

(मानस, ७।११९ ६-७)

और भी—

ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी॥

(मानस, ७।१ ९.८)

भक्ति-मणिकी प्राप्तिका उपाय भी यहीं वर्णित है—

१९. मानस-रोग--

श्रीमद्भागवतमें जैसे उद्धवने श्रीकृष्णसे अनेक परिभाषाएँ पूछी हैं, वैसे ही गरुड़ने काकभुशुण्डिसे सप्त प्रश्न किये हैं। ये प्रश्न एवं उनके उत्तर (दोहा १२० की द्वितीय पंक्तिसे दोहा १२२ तक) दिये गये हैं। इन उत्तरोंमें 'मानस-रोगों' का वर्णन है, क्योंकि सप्त प्रश्नोंमें ही मानस-रोग है।

'मानस रोग कहहु समुझाई।' (मानस ७।१२०.७)

यह अन्तिम प्रश्न है। इस प्रसंगमें सन्त और असन्तोंका वर्णन भी है। किस पापसे कैसा जन्म मिलता है, इसका थोड़ा-सा निरूपण स्पष्ट है—

'होहिं उलूक संत निंदा रत। ..... **॥**
सब कै निंदा जे जड़ करहीं। ते चमगादुर होइ अवतरहीं॥

(मानस, ७।१२० २६-२७)

अभी तक तो ऐसी कोई शोध नहीं हुई कि मानस रोगोंका जो वर्णन है, उनका शारीरिक रोगोंसे कोई सम्बन्ध है या नहीं ? यह भी निर्णय नहीं हुआ है कि इन मनोविकारोंका कोई उन रोगोंसे सम्बन्ध है ही, किन्तु यह बात सर्वथा सत्य है कि जिन मानसरोगोंको जिस रोगसे उपमित किया है, वे प्रायः वैसी ही पीड़ा देते हैं—

विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना॥
ममता दादु कंडु इरषाई। ..... **॥**

(मानस, ७।१२०.३२-३३)

मनोरथ शूलके समान पीड़ा तो देता ही है। 'ममता दादु' दाद पीड़ा भी देती है, खुजलानेमें सुख भी देती है। ममताके साथ इसकी उपमा बहुत उपयुक्त है। इसी प्रकार—

'तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी' (मानस, ७।१२०.३६)

तृष्णाका उदर तो कभी भरता ही नहीं है, अतः उसे भी भारी उदर वृद्धि कहना उपयुक्त ही है। ठीक ही कहा है—

.....। हरिहि सब कें लखि बिरलेन्ह पाए ॥
जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी ॥

(मानस, ७।१२१.२-३)

यह रोग भी तो बहुत असाध्य है—

बिषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदयँ का नर बापुरे ॥

(मानस, ७।१२१.४)

इस प्रसंगमें इनकी जो चिकित्सा बतायी गयी है, वह भी अचूक है। इसीलिए—

अंधकार बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै ॥
हिम ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई ॥

(७.१२१.१८-१९)

यह बात स्मरण रखने योग्य है, इसीलिए रामकथाकी महिमा है, जिसकी विवेचना दोहा १२५ की पंक्ति ३ से दोहा १२६ की पंक्ति ४ तक है।

२०—धन्य कौन—

लोकमंगलकी दृष्टिसे यहाँ जिस धन्यताका वर्णन है, वह धन्यता प्राप्त करने ही योग्य है—

धन्य देस सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी ॥
धन्य सो भूपु नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई ॥
सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी ॥
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा। धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा ॥

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत ॥

(७.१२६.५-१२७)

इस प्रकार श्रीरामचरितमानसके उपदेश-प्रसंगोंमें षट्-विकारोंके त्याग, नैतिक-लक्ष्य एवं लोक-जीवनको लोक-कल्याणमें—आत्म-कल्याणमें लगानेका मार्ग प्रशस्त किया गया है।

निष्कर्ष

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनोंमें उपदेश प्रसंगके अतिरिक्त स्तुतियाँ हैं, जिनमें बहुत उपदेश-प्रसंग हैं, जिन्हें स्तुतियोंसे पृथक नहीं किया जा सकता। इनकी अपनी अलग विशेषता है, इन्हें निम्नरूपमें विभाजित किया जा सकता है—

(अ) भगवान्‌के पर-स्वरूपके वर्णन।

(आ) भगवान्‌के सगुण स्वरूपकी महिमा।

भगवानन्‌का—

(१) भक्त-वात्सल्य-रूप
(२) लोक-मङ्गल-रूप
(३) लोक-रंजक-रूप
(४) खल-शासक-रूप
(५) करुणा-वरुणालय-रूप

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसकी सभी स्तुतियोंमें उपरोक्त सभी बाते हैं। यह सब विशेषताएँ भगवान्‌की है, जो उनके सहज स्वभावमें निवास करती हैं। इनको जानकर लोक-जीवन मंगलमें प्रवृत्त होता है। मंगल-रूप भगवान्‌में अपनेको लगाता है। स्तुतियोंका विवेचन बहुत बड़ा है। 'भागवत-स्तुति संग्रह' नामसे एक ग्रन्थ भी गीताप्रेससे प्रकाशित हुआ था। 'मानस' में भी स्तुतियाँ अधिक हैं। स्तुतियोंकी विवेचना इस शोध ग्रन्थका विषय न होकर अलग ही शोधका विषय है। अतः उपदेश प्रसंगोंपर ही विचार किया गया है।

अध्याय—५

(क) श्रीमद्भागवतकी रस परिकल्पनाके सन्दर्भमें भक्ति-रसकी शास्त्रीय पीठिका

भक्ति शब्द 'भज्' धातुसे स्त्रीलिंगमें 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर बना है। 'भजनं भक्तिः'[1] भज् धातुका अर्थ है शरणागत होना अथवा सेवामें भाग लेना। वैसे कोषकारोंने भक्तिके अनेक अर्थ दिये हैं[2], सेवा, अनुराग, आराधना, विशेष आदि। आगम ग्रन्थोंमें जो कि भक्ति-शास्त्रके मूल ग्रन्थ हैं—भक्तिसे तात्पर्य प्रपत्ति, शरणागति एवं भगवान्के प्रति विशेष अनुरागसे ही है।

'भंजो आमर्दने' से भी भक्ति शब्द निष्पन्न होता है। इसका अर्थ होगा सांसारिक सम्बन्धोंका भंजन-त्याग।[3]

महर्षि शाण्डिल्यने सूत्र रूपसे भक्तिकी शास्त्रीय परिभाषा देते हुए कहा है—

'सा परानुरक्तिरीश्वरे'

वह 'भक्ति' ईश्वरके प्रति परम अनुराग-रूपा है। नारायणतीर्थका कथन है कि—

'प्रीतिभक्त्योरभेदमेवावगम्यते प्रीतिरेव च रतेः पराकाष्ठां गता प्रेमेत्युच्यते'[4]

पराकाष्ठापर पहुँची हुई प्रगवत्प्रीति ही 'भक्ति' है।

शाण्डिल्यने भक्तिको राग-स्वरूपा भी कहा है—

---

१. भक्ति रसायन, प्रथमोल्लास

२. देखिये-वाचस्पत्य वृहत् संस्कृताभिधान

३. नारद-भक्ति दर्शन (स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती-सत्साहित्य प्रकाशन, बम्बई)

४. शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र,१.१.२ पर म.च. पृष्ठ ६

'द्वेषप्रतिपक्षभावाद्रसशब्दाच्च रागः' (भक्तिसूत्र, १.१.६)

परन्तु यह राग पतञ्जलिके योगशास्त्र २.३ में वर्णित 'पञ्चक्लेशों' के अन्तर्गत आनेवाले 'राग' से नितान्त भिन्न है। विषय राग ही त्याज्य बतलाया गया है—ईश्वर विषयक राग सर्वथा स्तुत्य, वरणीय एवं ग्राह्य है (शाण्डिल्य भक्तिसूत्र, २१)।

शाण्डिल्यका यह भी कथन है कि भक्ति क्रियारूपा नहीं है—

'न क्रिया कृत्यनपेक्षणाज्ज्ञानवत्' (भक्तिसूत्र, ७.)

इस प्रकार शाण्डिल्य द्वारा प्रतिपादित 'भक्ति' बाह्य कर्मकाण्डका विरोध करती है।

शाण्डिल्य द्वारा प्रतिपादित भक्ति ज्ञानरूपा भी नहीं है—

'ज्ञानमिति चेन्न द्विषतोऽपि ज्ञानस्य तदसंस्थितेः' (भक्तिसूत्र, ४)

क्योंकि भक्तिके उदयसे ज्ञानका क्षय हो जाता है—

'तयोपक्षयाच्च ॥ (शा. भक्तिसूत्र, ५)

'भक्ति' 'ज्ञान' से श्रेष्ठ है—क्योंकि ज्ञानीको भी शरणागत होना पड़ता है—

'तद्वतः प्रपत्तिशब्दाच्च न ज्ञानमितरप्रपत्तिवत्'। (शा. भक्तिसूत्र, १०)

नारद-भक्ति सूत्रमें भक्ति क्रियामूलक न होकर भावमूलक ही है—

'सा त्वस्मिन् परम प्रेमरूपा'। (नारद भक्तिसूत्र, २)

इसमें कामनाके लिए तो कोई स्थान नहीं है, अतएव यह अहैतुकी है—

'सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात्'। (ना. भक्तिसूत्र, ७)

'कण्ठावरोध, रोमाञ्चाश्रुमिः परस्परं लयमानाः पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च' (ना. भक्तिसूत्र, ६८)

इस प्रेमासक्तिकी ग्यारह आसक्तियाँ हैं (ना. भक्तिसूत्र, ८२)।

'पाञ्च रात्रागमौ' में भी भक्तिकी अनन्यतापर ही विशेष बल दिया गया है।[1]

---

१. भक्ति-चन्द्रिका, पृष्ठ ६

रामानुजने भक्तिकी दार्शनिक व्याख्या करते हुए कहा कि उपासना ही जब भक्तिके रूपमें परिवर्तित हो जाती है, तब वही परमपुरुषकी उपलब्धिमें सहायक हो जाती है। उपासनाके स्वरूपके सम्बन्धमें कहते हैं—'उपासना परमपुरुषका वह चिन्तन प्रवाह है, जिसके द्वारा आत्मा, परमात्माके लिए वरणीय हो जाती है।' यही भक्ति है—

'स्नेहपूर्वभनुध्यानं भक्तिरित्युच्यते बुधैः।[१]

ब्रह्मसूत्रपर किये गये 'श्रीभाष्य' में भी उन्होंने 'भक्ति' के सम्बन्धमें इसी प्रकारकी धारणा व्यक्त की है। वहाँ वे कहते हैं कि—'परमपुरुषकी ध्रुवा स्मृति ही भक्ति है। भक्ति और उपासना पर्यायवाची हैं।' यथा—

ध्रुवानुस्मृतिरेव भक्ति शब्देनाभिधीयते।
उपासना पर्यायत्वाद् भक्ति शब्दस्य॥ (श्रीभाष्य, १.१.१)

रामानन्दजी 'भक्ति' की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि संयमित मनसे अनन्यभावसे उपाधि-निर्मुक्त परमात्म-सेवा ही भक्ति है। यह ईश्वरके प्रति अनन्य अनुराग है। स्मृति-संतान रूपा है, तैल धाराकी भाँति अविच्छिन्न है। यथा—

उपाधि निर्मुक्तमनेकमदकं भक्तिः समुक्ता परमात्मसेवनम्।
अनन्य भावेन नियम्य मानसं महर्षि मुख्यैर्भगवत्परत्वतः॥

सा तैलधारावदनष्ट संस्मृति प्रतनरूपेशपरानुरक्तिका।
भक्तिर्विवेकादिसप्त भूमिजा यमादिकाष्टावयवामतावुधैः॥

—वैराग्यमताब्ज भास्कर, ६६-६५

मध्वाचार्यके अनुसार परमेश्वरके अनुग्रहसे जीवको अपरोक्ष ज्ञान होता है। अपरोक्ष ज्ञान होनेपर भगवान्‌के प्रति अखण्ड प्रेम-प्रवाह उत्पन्न होता है। इस अखण्ड प्रेमप्रवाहसे जीव आत्म-विस्मृत हो जाता है। संसारका कोई भी अन्तराय इस प्रेम-प्रवाहमें बाधा नहीं डाल सकता। इस प्रेमका—जो कि भगवान्‌के माहात्म्य-ज्ञानसे उद्‌भूत हुआ है—पारिभाषिक नाम 'भक्ति' है।[२]

---

१. गीता—श्रीरामानुज भाष्य, ७.१

२. भारतीय संस्कृति और साधना, भाग २ (म. म. पं. गोपीनाथ कविराज) पृष्ठ २३२,

वल्लभाचार्यजीका मत है कि भगवान्‌के प्रति माहात्म्यज्ञान द्वारा उद्‌बुद्ध प्रगाढ़ स्नेह ही भक्ति है—

माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढ़ः सर्वतोऽधिकः।
स्नेहो भक्तिरति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा॥

(तत्वबोध; शा. प्र. १.४५)

आचार्य वल्लभने भगवद्‌विषयक स्नेहकी तीन अवस्थाएँ मानी हैं—प्रेम, आसक्ति, और व्यसन। प्रेमकी अवस्थामें लौकिक राग नष्ट हो जाता है, आसक्तिकी अवस्थामें परिवारसे विरक्ति हो जाती है और व्यसनकी स्थितिमें साधक भगवान्‌का सान्निध्य प्राप्त कर पूर्णकाम हो जाता है।

वैष्णव आचार्योंमें रूपगोस्वामी और जीवगोस्वामीको भक्तिको 'रसत्व' प्रदान करानेका बहुत बड़ा श्रेय प्राप्त है। इनके मतमें उत्तमा-भक्ति कृष्णका वह अनुशीलन है, जो अनुकूलतासे युक्त तथा अन्याभिलाष शून्य और ज्ञानकर्म आदिसे मुक्त हो—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान कर्माद्यनावृतम्॥
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

भ. र. सि., १.१.११

रूपगोस्वामीकी इस भक्ति परिभाषापर पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा प्रस्तुत लक्षणोंका पर्याप्त प्रभाव है। डा० उदयभानु सिंहका कथन है कि 'भक्तिरसामृतसिंधु' के इस लक्षणमें सन्निविष्ट 'अन्याभिलाषिता शून्यम्', 'भागवत', 'नारद पञ्चरात्र' वल्लभ आदिके द्वारा स्वीकृत अनन्यता ही है। 'ज्ञानकर्माद्यनावृत्तम्' 'भागवत' शाण्डिल्य आदिका अनुकरण किया गया है। 'आनुकूल्य' में सभी आचार्यों द्वारा उपस्थापित प्रेमका व्यंजन है। 'अनुशीलन' रामानुजके 'स्मृतिसंतान' या रामानन्दके 'संस्मृतिप्रतान' का पर्याय है। 'उत्तमा' शब्दका व्यवहार साधनरूपा गौणी-भक्तिकी व्यावृत्तिके लिए किया गया है, जो वास्तवमें भक्ति न होकर भक्ति साधन ही है।[1]

श्रीमधुसूदन सरस्वतीने 'भक्ति-रसायन' नामक ग्रन्थमें भक्तिकी शास्त्रीय व्याख्या प्रस्तुत की है—

---

१. तुलसी-दर्शन मीमांसा; डा० उदयभानु सिंह, पृष्ठ २६४

द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतांगता।
सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते ॥

भक्तिरसायन, १.३

भगवद्धर्मके कारण द्रुत चित्तकी सर्वेशके प्रति धारावाहिक वृत्तिको भक्ति कहते हैं।

चित्तके द्रुत हो जानेपर वह स्मर्यमाण-विषय अथवा परमात्माके तदनुरूप हो जाता है—यही चित्तका संस्कार होता है। अन्यत्र वे इस भावको स्पष्ट भी कर देते हैं—

द्रुते चित्ते प्रविष्टा या गोविन्दाकारता स्थिरा।
सा भक्तिरित्यभिहिता..... ॥

द्रुत चित्त जब आनन्दपूर्ण भगवान्‌को ग्रहण कर लेता है, तब वह तद्रूप हो जाता है। यही 'भक्ति' है। इसे 'भाव-भक्ति' भी कहा जाता है।

मधुसूदन सरस्वती भगवत्सम्बन्धी भावको चित्त-द्रावक मानते हैं। जीवगोस्वामीने अपने भावोंका प्रतिपादन षट्सन्दर्भमें किया है। विशेषतः भक्ति-सन्दर्भमें।

इसका सारांश है कि चित्तमें ऐसी प्रीतिका उदय, जिसका प्रवाह श्रीकृष्णकी ओर ही हो। गौड़ीय सम्प्रदाय भक्तिकी परिभाषा करते हैं—

'हृषीकेण हृषीकेश तर्पणं भक्तिः।'

अपनी इन्द्रियों द्वारा श्रीकृष्णकी इन्द्रियोंको सुख पहुँचाना ही उत्तम भक्ति है। विस्तारसे विवेचन गौड़ीय सम्प्रदाय परकीय भाव इसलिए सर्वश्रेष्ठ मानते हैं कि श्रीकृष्णको ही सुख पहुँचानेकी लालसा है, स्वसुखकी नहीं; स्वकीया अपने निर्वाहके लिए पतिसे अपेक्षा करती है, यह भी अभिप्रेत नहीं। जीवका सहज स्वरूप हो कि सब वृत्तियाँ कृष्णको सुख पहुँचानेको हों।

कान्तादिविषयेऽप्यस्ति कारणं सुखचिद्धनम्।
कार्याकारतयाऽभानेऽप्यावृतं मायया स्वतः ॥

भगवद्भक्ति रसायन, ११

कान्ता आदि लौकिक विषयोंमें भी रसकी प्रतीतिका कारण सुख स्वरूप चैतन्यधन ही है, किन्तु तदाकारतामें अभेद होनेपर भी स्वतःसिद्ध मायाके आवरणसे वह ढका हुआ है।

सदज्ञात च तद्ब्रह्म मेयङ्कान्तादिमानतः।
मायावृति तिरोभावे वृत्या सत्वस्थया क्षणम्॥

भगवदभक्ति रसायन, १२

सत् (अबाधित) और अज्ञान वह ब्रह्म ही कान्तादि विषयक प्रमाणसे भी प्रमेय होता है। आवरण रूप मायाके तिरोभाव होनेपर क्षणमात्रमें उदित होनेवाली सात्विक वृत्तिसे अखण्ड चैतन्यका ग्रहण होता है।

चित्तमें भगवदाकारता जब स्वाभाविक रूपसे रहती है तो उसे उत्पन्न करनेके लिए किसी दूसरे कारणकी अपेक्षा ही नहीं रहेगी, तब फिर इस भक्ति-शास्त्रकी उपयोगिता कहाँ होगी? तात्पर्य यह है कि भगवदाराधनसे चित्तद्रुति होती है और द्रुतचित्तमें भगवदाकारता प्रविष्ट होती है। जब स्वभावसे ही चित्तमें भगवदाकारता मान लेंगे तो भगवदाराधनादि भक्ति शास्त्रकी उपयोगिता क्या रह जायेगी? ऐसा नहीं है। जो चित्तकी स्वाभाविकी भगवदाकारता है, वह विषयाकारताके साथ रहती है और उसकी साधक है, इसलिए उसका विरोध नहीं करती, किन्तु भक्तिशास्त्रके अनुसार साधना करनेसे वह दूसरी ही जैसी प्रतीत होती है। क्रमसे अभ्यास करते-करते विषयाकारताका धीरे-धीरे लोप करती हुई साधनाके पुष्ट हो जानेपर फिर दूसरी-सी नहीं लगती और विषयाकारताको जड़से उखाड़ फेंकती है।[१]

द्रुतौ सत्या भवेद् भक्तिरद्रुतौ तौ तु न किंचन।
चित्तद्रुतेरभावेन वेनस्तु कतमोऽपि न॥

भगवद्भक्ति रसायन, ५.७.

भक्ति-सम्प्रदायकी रस-प्रक्रिया—

आनन्द-साधना ही रसत्वका चरम लक्ष्य तथा लक्षण है। भरतानुयायियोंका भी यही मत है और भक्तिसम्प्रदायके आचार्य भी इस मान्यताके विरोधी नहीं हैं। अनेक श्रुतियाँ आनन्दकी आत्मरूपताका प्रतिपादन करती हैं—'रसो वै सः,' 'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान,' 'आनन्दाङ्येविमानि

---

१. 'चित्तस्य भगवदाकारतायाः स्वाभाविकत्वेन हैत्व न पेक्षार्या शास्त्रस्य क्वोपयोग इति चेदन्याकारता विरोधभगवदाकारता सम्पादन इत्यवेहि'—

श्रीभगवद्भक्ति रसायन, पृष्ठ ७१

भूतानि जायन्ते ।' जीवनका परम पुरुषार्थ भी आनन्द ही है। दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्तिका भी समावेश आनन्दमें ही हो जाता है। पुरुषार्थके रूपमें जिन धर्मादिका परिगणन किया जाता है, उनका भी फल आनन्द ही है। मधुसूदन सरस्वतीके मतमें कारणोंपर फलका आरोप कर धर्मादिको पुरुषार्थता स्वीकार कर ली जाती है। यह एक औपचारिक प्रयोग है, जैसा कि 'घी जीवन है' में पाया जाता है।

आनन्दका अधिष्ठान आत्मा है। इसके दो रूप माने जाते हैं—परमात्मा तथा जीवात्मा। आनन्दका वास्तविक अधिष्ठान तो परमात्मा ही है, किन्तु जीवात्मामें भी सच्चिदानन्दस्वरूप परमब्रह्मका अंश विद्यमान है और आनन्दांशका प्रतिभास जीवमें भी पाया जाता है, इसीलिए अग्निके विस्फुलिंगोंके समान या सिन्धुके बिन्दुओंके समान जीवमें भी आनन्दानुभूतिकी उपलब्धि अस्वाभाविक नहीं है, किन्तु यह आनन्द एक तो विषयजन्य होता है, दूसरे यह कणमात्र होता है। भरत प्रभृति रसशास्त्राचार्योंका लक्ष्य उसी जीवगत आनन्दांशका उद्‌बोधन है। जीव अनादिकालसे नाना योनियोंमें भ्रमण करता हुआ अनेक वासनाओंसे परिव्याप्त हो जाता है। मानव शरीरमें भी वे समस्त वासनाएँ अविकल रूपसे सन्निहित रहती है। साथ ही काव्यार्थ-चिन्तनकी योग्यता भी मानवमें उद्‌भूत हो जाती है। अतः विभावादिके माध्यमसे रसास्वादनकी प्रक्रियापर विचार करना ही भरतादि रसाचार्योंका लक्ष्य है। वस्तुतः यह परमास्वादकी पूर्व भूमिका ही है और विषय-प्रवृत्त-जनोंके लिए अधिक सुगम है। परमतत्वगत पूर्ण आनन्दानुभूति अपेक्षाकृत दुष्कर है। इसीलिए भरतादि आचार्योंने न तो निःश्रेयस प्राप्तिमें समर्थ श्रवणादि साधनोंपर विचार किया और न निखिलानर्थ निदान अज्ञानके उन्मूलनपर ही विचार किया। उन्होंने चिर संचित कर्मकलापका अत्यन्ताभव करनेकी चेष्टा नहीं की। भरत मुनिने अगमसिन्धुको मथकर जिस नाट्य पीयूषका आविभाव किया, उसका लक्ष्य जीवगत आनन्दांशका आस्वादन कराना ही था, जो कि पूर्ण ब्रह्मानन्दकी पूर्व-भूमिका ही कही जा सकती है। इस प्रकार आनन्द साधनाका लक्ष्य होते हुए भी प्राक्तन आचार्यों और भक्तिरसके आचार्योंमें एक मौलिक अन्तर है। भक्तिशास्त्रके आचार्योंने जीवगत अंशमात्र आनन्दको ही साध्य नहीं बनाया, अपितु उनका लक्ष्य था—आनन्द-राशि भगवद्‌गत आनन्दका आस्वादन कराना। पुष्कल-रसतापत्ति तो तभी होती है, जब परमानन्दस्वरूप भगवान् स्वयं ही मनोगत हो जाते हैं, जैसा कि मधुसूदन सरस्वतीने कहा है—

भगवान् परमानन्दस्वरूपः स्वयमेव हि।
मनोगतस्तदाकारो रसतामेतिपुष्कलम् ॥

—भगवद्भक्ति रसायन, १०

चित्त जब द्रवित होकर विभु, नित्य, पूर्णबोध सुखात्मक भगवान्‌को ग्रहण कर लेता है तब और शेष ही क्या रह जाता है—

'भगवन्तं विभुं नित्यं पूर्ण बोधसुखात्मकम्।
यद् गृह्वातिद्रुतं चित्तं किमन्यदवशिष्यते ॥'

—भगवद्भक्ति रसायन, ३०

अतः चित्तमें विषयकी ओर काठिन्य और भगवच्चारणारविन्दके प्रति द्रवत्व स्थापित करना चाहिये—

काठिन्यं विषये कुर्याद् द्रवत्वं भगवत्पदे।
उपायैः शास्त्रनिर्दिष्टैरनुक्षणमतो बुधः ॥

—भगवद्भक्ति रसायन, २

किन्तु, भक्ति-सम्प्रदायका यह सिद्धान्त भरतका विरोधी नहीं है, अपितु उसका विकास मात्र है। विषयोंकी ओर मानवकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। अतः उनमें रसास्वादन अपेक्षाकृत सरल होता है। इसी सरल मार्गको अपनाकर भरतने परम रसास्वादके मार्गको प्रशस्त किया है। क्योंकि जब तक मानव मनोवृत्ति उस परम रसास्वादके एक अंशमात्र, लौकिक रसमें पूर्णतया निष्णात नहीं हो पाती, तब तक परम रसास्वादकी स्पृहा उसमें जागृत ही किस प्रकार हो सकती है ? इस प्रकार प्रथम भूमिका रूढ़ अधिकारियोंके लिए प्राकृत रस परिचयको ही अपना लक्ष्य बनाकर भरत मुनिने परम तत्वविषयक अप्राकृत रसकी भी स्वीकृति प्रदान ही कर दी है। इसीलिए उपक्रममें मुनिने चतुर्वर्ग फल प्राप्तिको ही प्रयोजनके रूपमें स्वीकार किया है और इसीलिए पृथक् रूपसे शान्तका भी निरूपण किया है।

लक्ष्यभेद होनेसे निष्पत्ति तथा आस्वादमें भी भेद होना स्वाभाविक ही है। इस निष्पत्तिके विषयमें जितनी भी पुरानी व्याख्याएँ पायी जाती हैं, वे भक्तिरस विषयक निष्पत्तिकी व्याख्यासे मेल नहीं खाती। यह भट्टलोल्लटके उत्पत्तिवादका आरोपवादसे भी भिन्न है, जिसमें विभावादि

कारणोंके साथ स्थायीभावके संयोगके द्वारा अनुकार्यमें रसकी उत्पत्ति मानी जाती है और नटपर उसका आरोप प्रतिपादित किया जाता है तथा शंकुकके अनुमितिवादसे भी भिन्न है जिसमें अनुकार्य मुख्य रामादिके रूपमें गृहीत नटरूप पक्षमें अकृतिम रूपमें गृहीत विभावादि हेतुसे अनुकार्य भिन्न नटमें रतिका अनुमान कर लिया जाता है। इन दोनों पक्षोंमें आचार्यों द्वारा प्रदर्शित विप्रतिपत्तियाँ तो विद्यमान हैं ही, साथ ही भक्तिरसकी दृष्टिसे यह भी कहा जा सकता है कि इसमें भक्तका अपना भाव ही आस्वादगोचर होकर रसरूपताको धारण कर लेता है। न तो इसकी उत्पत्ति अनुकार्यमें ही होती है और न नटमें ही पक्षधर्मता (हेतु) का ग्रहण सम्भव होता है। दूसरी बात यह भी है कि पक्षधर्मताका ग्रहण अथवा नटपर अनुकार्य गत भावका आरोप नाट्य में तो सम्भव है, भक्तिके क्षेत्रमें जहाँ रसानुभूतिमें कर्तृत्व श्रवणादिपर आधारित रहता है, यह प्रक्रिया कैसे सम्भव हो सकती है ? इसीलिए भट्टनायककी भावकत्व और भोजकत्व रूप दो व्यापारोंकी नवीन कल्पना भी अधिक कृतकार्य नहीं होती है, जिसमें एकके द्वारा विभावादिका साधारणीकरण किया जाता है और दूसरेके द्वारा सत्वोद्रेकसे होनेवाली प्रकाशात्मिका तथा आनन्दात्मिका संविद्विश्रान्ति सिद्ध की जाती है और इस प्रकार रसका भोग किया जाता है। न अभिनवगुप्तके प्रमातृगत सहजात मनोभावके आस्वादसे ही निर्वाह हो सकता है। कारण यह है कि अन्य पात्रोंके भावोंका प्रधान-पात्रके भावमें विलय और प्रधानपात्रगत भावकी सहृदयगत भावसे एकतानताका सिद्धान्त भक्तिरसके विषयमें लागू नहीं होता। भक्तिरसमें भावका आश्रय भक्त ही होता है, नाट्यगत पात्र नहीं, जैसा कि लौकिक रसमें हुआ करता है। लौकिक रसमें शृङ्गार-रसके आश्रय दुष्यन्त होंगे और आलम्बन शकुन्तला, जबकि भक्ति-रसके क्षेत्रमें कृष्ण और राधा दोनोंका विवेचन आलम्बनके प्रकरणमें किया जाता हैं,[1] आश्रय तो भक्त ही होता है। इन्हीं कारणोंसे भक्तिरसानुयायियोंको रसानुभूतिकी नवीन प्रक्रियाकी परिकल्पना करनी पड़ी है।

भक्ति-रसके क्षेत्रमें सर्वाधिक नवीनता स्थायी-भावकी परिकल्पनामें है। न तो भक्ति-रसके आचार्यका भक्तिके विषयमें यही दावा है कि 'जातएव

---

१. नित्यलीलालीन श्रीभाईजी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारने लिखा है श्रीराधाकृष्णके लिए—

आश्रय आलम्बन दोऊ। विषयालम्बन दोऊ॥

हि जन्तुरियतीभिः संविद्भिः परीतो भवति' और न यही कहा जा सकता है कि 'न ह्येतच्चेतनां शून्यः प्राणी भवति'। ये आचार्य केवल एक स्थायी भाव स्वीकार करते हैं और वह है भक्ति। यह भाव एक उपार्जित तथा संबंधित-भाव होता है। यह प्राक्तन संस्कारोंके प्रभावसे जन्मजात भी हो सकता है, किन्तु अधिकांशमें इसका उपार्जन ही करना पड़ता है। यद्यपि ये आचार्य भक्तिको भी नित्यसिद्ध भाव ही मानते हैं, किन्तु रति इत्यादि भावोंके समान भक्ति स्वतः प्रकट नहीं हो जाती, उसको प्रकट करनेके लिए साधना अपेक्षित होती है—

'नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता।'

(भ. र. सिं., १।२.२)

प्राक्तन संस्कारोंके प्रभावसे भक्ति जन्मजात भी हो सकती है, किन्तु उसका प्राचुर्य तो साधनाजन्य ही होता है। साधनाके जिस क्रमसे भक्तिका उदय होता है उसका निर्देश निम्न श्लोकमें किया गया है—

आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजन क्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत्क्रमः॥

(भ. र. सिं., १।४.१५-१६)

निष्ठापर्यन्त साधनावस्था है, रुचि और आसक्ति मध्यवर्तिनी अवस्थाएँ हैं, जिनके बाद क्रमशः भाव और प्रेम उद्भूत होता है। भावको ही रतिकी संज्ञा दी जाती है और यह प्रेमपूर्ण भक्तिका दूसरा नाम है। इस क्रमिक विकासका श्रीमधुसूदन सरस्वतीने इस प्रकार विवेचन किया है—

योग चार प्रकारका माना जाता है कर्मयोग, अष्टांगयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। कहीं-कहीं केवल तीन योगोंका ही वर्णन मिलता है—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग। ऐसे स्थानोंपर अष्टांगयोगको कर्मयोगमें ही सन्निविष्ट कर दिया जाता है। कर्मयोग शास्त्र-विहित वर्णाश्रम धर्मको कहते हैं, जिसमें भगवत्परिचर्या विषयक कर्म भी आ जाते हैं। भक्ति शास्त्रकी भाषामें वैधी-साधना भक्ति कहेंगे। इस कर्मयोगका फल होता है—अन्तःकरण-शुद्धि। इस कर्मयोगका अनुष्ठान तभी तक करना चाहिए,

जब तक अन्तःकरण की शुद्धि सम्पन्न न हो जाये। अन्तःकरणकी शुद्धि दो रूपोंमें हो सकती है-एक तो वे लोग होते हैं जिनका हृदय पाषाणवत् नीरस होता है, धर्मानुष्ठानसे उनके हृदय द्रवित नहीं होते, उनकी चित्त शुद्धि निर्वेदपूर्वक तत्वज्ञानके रूपमें होती है, किन्तु जिनके हृदय भगवद्वासनासे वासित होते हैं, भगवत्कथा श्रवणादिसे उनके हृदय द्रवित हो उठते हैं और उनके अन्दर भागवत्धर्मके साथ भक्तिका उदय हो जाता है। ज्ञानयोगका भी अन्तिम लक्ष्य भक्तियोगकी उत्पत्ति ही है। यदि भक्तियोगकी उत्पत्ति न हो तो ज्ञानयोग व्यर्थ हो जाता है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि सांख्यमें जिन पच्चीस तत्वोंका निरूपण किया गया है उनके अनुलोमक्रमसे जगत्की उत्पत्तिका चिन्तन और प्रतिलोमक्रमसे लयका चिन्तन तभी तक करना चाहिये, जब तक मन निर्मल होकर भक्तिके योग्य न हो जाय। तत्वचिन्तनसे जब मन निर्विण्ण हो जाता है और साधक तत्वज्ञानसे युक्त हो जाता है तब उसके मनका दौरात्म्य स्वतः तिरोहित हो जाता है—

'निर्विण्णस्य विरक्तस्य पुरुषस्योक्तवेदिनः।
मनस्त्यजति दौरात्म्यं चिन्तितस्यानुचिन्तया॥

(भा., ११।२०.२३)

मनःप्रसाद भक्तियोगके बिना सम्भव ही नहीं है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि जो व्यक्ति निरन्तर भक्तियोगसे भगवत्भजन करता रहता है, उसके हृदयमें भगवान् स्वतः आ जाते हैं, उसकी हृद्गत सभी काम-वासनाएँ समाप्त हो जाती हैं। इस सबका आशय यही है कि कर्मयोगकी भाँति ज्ञानयोगका भी अन्तिम लक्ष्य भक्तिको प्राप्त कर लेना ही है। कहीं-कहीं भक्तिको ज्ञानका साधन भी बतलाया गया है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि भक्तिके दो रूप हैं— साधन-भक्ति और भाव तथा प्रेमाभक्ति। साधन-भक्ति प्रेमयोगका कारण होती है और भाव तथा प्रेमाभक्ति ज्ञानयोगसे उद्भूत होती है। श्रीमद्भागवतमें स्पष्ट कहा गया है कि भक्तका श्रेय न तो ज्ञानसे होता है, न वैराग्यसे। कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, दान, धर्म इत्यादिसे जो भी स्वर्ग-मोक्ष इत्यादि फल प्राप्त होते हैं, मेरा भक्त भक्तिकी महिमासे ही सभी कुछ प्राप्त कर सकता है, किन्तु वह भक्तिके अतिरिक्त कुछ चाहता ही नहीं। मैं यदि उसे कुछ देना भी चाहूँ तब भी वह उसे स्वीकार नहीं करता (भा., ३।२९.१३)।

रूपगोस्वामीने रतिके विषयमें कहा है—

आविर्भूय मनोवृत्तौ व्रजन्ती तत्स्वरूपताम् ।
स्वयंप्रकाश रूपापिभासमाना प्रकाश्यवत् ॥

(भ. र. सि., १।३.४)

अर्थात्—भगवद्रति मनोवृत्तिमें आविर्भूत होकर भगवत्स्वरूपताको धारण कर लेती है। भक्ति प्रकाश रूप होती है किन्तु उसकी प्रतीति प्रकाश्यके समान ही होती है। प्रकाश्य भगवान् हैं। जिस प्रकार दीपकका प्रकाश जिस प्रकोष्ठमें पड़ता है उसी रूपमें प्रतीत होता है, उसी प्रकार रति जब भगवान्‌को प्रकाशित करती है तब भगवान्‌के स्वरूपमें ही उसकी प्रतीति होने लगती है। इस प्रकार आलम्बन और स्थायी भावकी ऐक्यापत्तिका समाधान हो जाता है। यही भक्ति इन आचार्योंका अभिमत स्थायीभाव है। इसमें तापकोंका भी योग रहता है। इस प्रकार मिश्रित भाव ही आस्वादगोचर हुआ करता है। इसलिए इन भक्त आचार्योंने सभी रसोंके मूलमें 'रति' मानी है। इसी आधारपर मुख्य और गौण रसोंकी परिकल्पना की गयी है। इस प्रकार मिश्रित भावके आस्वादनका भी समाधान हो जाता है।

भक्ति-रसकी परम्परामें श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसका रस-परिपाक निरूपण

रस-चिन्तन संस्कृत काव्य शास्त्रकी उपलब्धि है। रसस्वरूप हिन्दी काव्य शास्त्रका एक बहुचर्चित, बहु-अधीत और विवादास्पद विवेच्य विषय रहा है। भरत और अभिनव गुप्तके बीच रस-चिन्तनका विकास आश्चर्यजनक हुआ है। दोनोंकी दृष्टियाँ चिन्तनके क्षेत्रमें भिन्न थीं, किन्तु अभिनवने आश्चर्यजनक सफलताके साथ उनकी व्याख्या आत्मानुकूल प्रस्तुत करके एक युग-सर्जक कार्य किया। अभिनवकी परम्पराके आचार्य मम्मट, विश्वनाथ, पण्डितराज जगन्नाथ जैसे ही रस-शास्त्रके अनुकरणीय आचार्य बने।

भारतीय साहित्य शास्त्रमें सामान्यत: स्वीकृत रस-सिद्धान्त वेदान्त और सांख्यकी दार्शनिक भूमिपर आश्रित है। संस्कार रूपसे स्थित भाव स्थायी भाव है। यह स्थायी भाव ही विभावादिके द्वारा अभिव्यक्त होनेपर रस कहलाता है। वेदान्तकी मान्यता है कि भगवान् परमानन्द-स्वरूप हैं। जीवात्मा मायाके द्वारा आवृत्त है। काव्यगत विभावादिके द्वारा यह मायाका आवरण क्षणभरके लिए तिरोहित हो जाता है और भावकको परमानन्द-स्वरूपकी अनुभूति होने लगती है। यही अनुभूति रस है। इस अनुभूतिमें भावक विषयसे सर्वथा अनवच्छिन्न नहीं होता। अत. काव्य रस परम्परामें प्रतिष्ठित नवरस, विश्वनाथ आदि द्वारा स्वीकृत वात्सल्य और आचार्यों द्वारा प्रतिपादित भक्तिरस--ये ग्यारहों रस श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें अभिव्यक्त हुए हैं, किन्तु उनके प्रतिपाद्य विषयके अनुरूप भक्तिरस ही मुख्य है। भक्ति और ज्ञानकी दशामें अन्त:करणका साधारणीकरण पूर्ण और स्थायी होता है। काव्यके भावनकी दशामें यह साधारणीकरण अपूर्ण एवं अस्थायी होता है। इस कारणसे भी काव्यानन्द ब्रह्मानन्दसे हीन है, ब्रह्मानन्द सहोदर है। भक्तिरसके काव्यमें साधारणीकरणकी (अपेक्षाकृत) अधिक शक्ति है। उसके भावनसे भावकको दोनों प्रकारकी आनन्दानुभूति हो सकती है। अत: भक्तिरसके आचार्योंने भगवान् व्यास एवं तुलसीने उसे अन्य काव्योंकी तुलनामें श्रेष्ठ माना है।

काव्यशास्त्रके प्रतिष्ठित आचार्योंने भक्तिका रसत्व नहीं स्वीकार किया। कहीं भक्तिको प्रेयान्के अन्तर्गत स्थान दिया गया[1] और कहीं वह सामान्य रतिका प्रकार विशेष मानी गयी[2]। अभिनवगुप्तने भक्तिका अन्तर्भाव शान्त-रसमें स्वीकार किया[3] तो धनंजयने हर्षोत्साह आदिमें[4]। मम्मट[5] जयदेव[6] विश्वनाथ[7] जगन्नाथ[8]आदिने उसे भाव कोटिमें रक्खा तो वाग्भट द्वितीयने अनुभावसे आगे नहीं बढ़ने दिया[9]।

भक्तिके रसत्वकी स्थापनाका श्रेय वैष्णव आचार्योंको है। उन्होंने अपने मनोवैज्ञानिक और शास्त्रीय विवेचन द्वारा भक्तिरसको अन्य रसोंके समकक्ष ही नहीं, उनसे भी उच्चतर भूमिपर प्रतिष्ठित किया। साहित्यिक सहृदय धार्मिक भक्तके रूपमें आया।

रसकी कसौटी सहृदयोंका अनुभव है। जब अनुभवके आधारपर साक्षात् सुख विरोधी क्रोध, शोक, भय आदि स्थायी-भावोंका रसत्वको प्राप्त होना मान लिया गया तो सहस्रगुणित अनुभव सिद्ध भक्ति रसको रस न मानना प्रलाप है—जड़ता है[10]। वास्तविकता तो यह है कि भक्तिरस पूर्ण रस है अन्य रस क्षुद्र है। भक्ति-रस आदित्य है और अन्य रस खद्योत[11]। यह कहना युक्तियुक्त नहीं होता कि भक्ति रसका अनुभव सबको नहीं होता, अतएव सार्वजनिक न होनेके कारण उसकी गणना रसोंमें नहीं की जा सकती। इस शंकाका समाधान यह है कि भक्तिभावका अस्तित्व सबमें है, किन्तु सभीमें वह व्यक्त नहीं है। भक्तमें व्यक्त है। किसी भी रसकी अनुभूतिके लिए तदनुकूल बौद्धिक भूमिकाका होना आवश्यक है। भक्ति-दशा

---

१. काव्यादर्श, २।२७१-७९, सरस्वती कण्ठाभरण, ५।१६६।

२. स्नेहो भक्तिर्वात्सल्यमिति हिएतेरेव 'विशेषाः।.....अनुत्तमस्योत्तमे इतिः प्रसक्तिः। सैव भक्तिपद वाच्या। —हेमचन्द्र-'काव्यानुशासन' (टीका) पृष्ठ ८१

३ अभिनव भारती, जिल्द १ पृष्ठ ३४०। ४. दशरूपकं, ४।८३।

५. काव्यप्रकाश, ४।३५-३६। ६. चन्द्रालोक, ६।१४।

७. साहित्य-दर्पण, ३।२६०-६१। ८. रस-गंगाधर, पृष्ठ ५५।५६।

९. देवगुरुमुनिपुत्रादि विषया तु रतिरनुभाव एव।
—काव्यानुशासन (व्याख्या), अ. ५ पृ. ५३

१०. भक्तिरसायन, २।७७-७८। ११. भक्तिरसायन, २।७६।

भग्नावरणचित् होनेके कारण रस-दशा[1] ही है। यदि सर्वजनानुभूत रसको ही रस माना जायेगा तो रसराज कहा जानेवाला शृङ्गार भी रसत्वसे हीन हो जायेगा, कारण कि शृङ्गारिक रचनाएँ विषय-विरक्त तत्वज्ञानी भगवद्-भक्तोंके मनमें जुगुप्साका भाव जागृत करती है।

शृङ्गार आदि लौकिक रसोंमें विषयावच्छिन्न चित्तके आनन्दसे अंशमात्रका ही स्फुरण होता है, किन्तु भक्तिरसमें अनवच्छिन्न चिदानन्दघन भगवान्‌के स्फुरणके कारण आनन्दका अत्यन्ताधिक्य होता है[2]। इस दृष्टिसे भक्तिरस ही नहीं, अपितु सभी रसोंमें महत्तम है।

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसके काव्यरसमें भक्तिरसकी अलौकिक स्थिति

प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य रूपगोस्वामीने अपनी महनीय कृति 'भक्ति-रसामृतसिन्धु' में भक्तिरसके सिद्धान्तका अत्यन्त विस्तारपूर्वक विवेचन करते हुए रस-सिद्धान्तके इतिहासमें एक नया अध्याय जोड़ दिया है। देवता, गुरुजन एवं राजा इत्यादिके प्रति काव्योंमें अभिव्यक्त रतिको भरतकी परम्परामें भावकी संज्ञा दी गयी थी—

'रतिर्देवादिविषया व्याभिचारी तथांचितः भावः प्रोक्तः'[3]

रूप गोस्वामीने भगवद्विषयक मधुर-रति-भावको भक्तजनोंके हृदयमें सतत् वर्तमान होनेसे स्थायी भाव कहा है, जो विभावादिसे संवलित होकर भक्तिरसके रूपमें सकल सहृदयोंके आस्वादका विषय होता है। भक्ति-रसामृतसिन्धुमें भक्ति-रसके मुख्य और गौण दो मौलिक भेद करते हुए बारह भेदोंका विधान किया है—

एवं भक्तिरसो भेदाद्द्वयोर्द्वादशधोच्यते

(भ. र. सि. २।५.११७)

---

१. 'भग्नावरणा चिदेव रसः' —रस गंगाधर, पृष्ठ २७

२. 'भगवद्भक्तिरस एव लौकिकरसानुपेक्ष्य परमरसिकैः सेव्यः'

—शा० म० सू०, १।१.२ पर म० च० पृ० ८

३. काव्यप्रकाश, ४।३५।

भक्ति-रसामृत-सिन्धुमें भक्तिरसका सांगोपांग निरूपण करनेके अनन्तर भी इसी विषयपर 'उज्ज्वलनीलमणि' ग्रन्थकी रचनाका ग्रन्थकारका विशिष्ट प्रयोजन रहा है, वह यह है—पाँचों प्रकारके भक्तिरसके मुख्य भेदोंमें भी उज्ज्वल अर्थात् मधुरकी श्रेष्ठताके आधारपर उसे रसराज सिद्ध करना—

मुख्य रसेषु पुरा यः संक्षेपेणोदितो रहस्यत्वात्।
पृथगेव भक्तिरसराट् स विस्तरेणोच्यते मधुरः॥

(उ. नी. १.२)

मधुर नामक भक्तिरसकी परिभाषा श्रीरूपगोस्वामीने अपने दोनों ही ग्रन्थोंमें की है। भक्ति-रसामृत-सिन्धुके अनुसार निखिल भक्तजनोंके निर्मल अन्तःकरणमें स्थायी रूपसे विद्यमान भक्तरूपी सहृदयोंके हृदयमें निहित भगवद्-विषयक मधुर रति भाव ही स्वानुरूप विभाव, अनुभाव एवं व्यभिचारी भावोंसे परिपुष्ट होकर मधुर नामक भक्तिरस कहलाता है (भ. र. सि, ३।५.१)। 'उज्ज्वलनीलमणि' के अनुसार भगवद्-भक्तोंके हृदयमें निरन्तर विद्यमान भगवद्-विषयक रतिभाव ही जब विभावादिसे संवलित आस्वादनीयताको प्राप्त होता है तो उसे मधुर नामक भक्तिरस कहते हैं—

वक्ष्यमाणैर्विभावाद्यैः स्वाद्यतां मधुरो रतिः।
नीता भक्तिरसः प्रोक्तो मधुराख्यो मनीषिभिः॥

(उ. नी. १.३)

मधुर नामक भक्तिरसके रसराज होनेके आधारका निरूपण करते हुए श्रीरूपगोस्वामीने तीन हेतुओंका उपस्थान किया है—

निवृत्तानुपयोगित्वाद्दुरुहत्वादयं रसः।
रहस्यत्वाच्च संक्षिप्य विततांगोऽपि लिख्यते॥

(भ. र. सि. ३।५.२)

उज्ज्वलनीलमणिके टीकाकार जीवगोस्वामीने प्रथम दो हेतु निवृतानुपयुक्तत्व तथा दुरूहत्वका तृतीय 'रहस्यत्व' नामक हेतुमें अन्तर्भाव मानते हुए उसे ही अर्थात् रहस्यत्वको ही मधुरके भक्तिरस-राट् होनेका आधार बताया है। मधुर नामक यह रस उन लोगोंके लिए अनुपयुक्त है जो स्वाभाविक प्रवृति मार्गको छोड़कर मोक्षकी भावनासे निवृत्त मार्गका

आश्रयण करते हैं। इस प्रकारके स्थूल-बुद्धि लोगोंके लिए इस मधुर रसका दुरूह होना सर्वथा स्वाभाविक ही है। उक्त प्रकारसे स्थूल दृष्टिके कारण अरुचि न होनेसे तथा दुरूह होनेसे वे लोग इसके मूल्यको न समझते हुए इसका तिरस्कार न करें, अतः यह रहस्य अर्थात् गोप्य है। यहाँ रहस्यताका अभिप्राय दुराव या छिपाव नहीं है, अपितु उसका महत्व ठीक-ठीक न समझकर तिरस्कारकी आशंकासे रक्षा की गयी है।

आश्रय-आलम्बनका अलौकिकत्व

भक्तिमें आलम्बन है—निखिल रसामृतमूर्ति अनन्तकोटि-कन्दर्पदलन पटीयान् श्रीकृष्ण एवं असीम करुणावरुणालय आनन्दघन श्रीराम। सामान्य शृङ्गार-रसमें आलम्बनका सविशेष वर्णन किया जाता है, किन्तु इस भगवदीय-रस विवेचनमें ऐसा नहीं है, कारण कि उनका सौन्दर्य, माधुर्य, सौरस्य, सौगन्ध्यमय-स्वरूप अनिर्वचनीय मन वाणीसे जो परे है, वह सम्पूर्ण रूपसे पकड़में नहीं आता है—

'राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी'

(मानस, १।१२०.३)

महाभावभागा व्रजांगनाएँ भी कह देती हैं—

'न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्'

(भा., १०।३१.४)

इन्हें तो सम्बोधनमात्र ही दिये जाते हैं—पीताम्बरधारी (भा., १०।३२.२), गोविन्द (भा., १०।२१.१०), नटवर (भा., १०।२१.५), कमल-नयन (भा., १०।१५.४१), करुणानिधान (मानस, ५।१२.९), कृपालु (मानस, ५।१३.४), रघुवंश-विभूषण (मानस, ७।११२.१) आदि।

श्रीमद्भागवतमें सच्चिदानन्दघन श्रीकृष्ण कन्दर्पकोटि कमनीय दिव्य सौदर्य माधुर्य-सुधा जलनिधि हैं। इनका मधुरातिमधुर स्वरूप अपने स्नेह द्वारा भावुकके द्रवीभूत अन्तःकरणको अपने रंगमें रंग देता है। इनका व्रज-रस-विलास-लीला-भावसे परिव्याप्त है—

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः

(भा., १०।३३.१७)

इन परम अन्तरंगा गोपिकाओंके मध्य श्रीकृष्ण सर्वोपाधि विनिमुक्ति, असंग, अनन्त, स्वप्रकाश प्रत्यग्भिन्न हैं। श्रीकृष्ण तटस्थ हैं, उनमें निर्विकारता, विरक्तता, निर्ममता होते हुए माधुर्यरससिन्धुकी अवधारणा है। श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामका लोकोत्तर जीवन भी रसात्मकता भाव प्रवणता एवं वैशिष्ट्य पूर्ण है। वे करूणावरूणालय भक्तकी भक्तिसे द्रवित होकर अपने आश्रित-जनों—श्रीभरत, पवनतनय, जनकात्मजा, कपि आदिकी चिन्ताओंको आकुलता-व्याकुलताको स्वतः ओढ़ लेते हैं। यह उनकी कारूण्य-जन्य विवशता है कि आलम्बन होते हुए भी स्वतः आश्रय बन जाते हैं—चिन्तित हो उठते हैं भक्त-शिरोमणि भरतकी विरहावस्थापर। प्रेमास्पदकी वियोगाग्निमें झुलसकर भरतका शरीर दुर्बल हो गया है, मुख पीला पड़ गया है। अब आलम्बन श्रीरामकी सहज आकुलता आश्रय भरतके लिए—

तापस बेष गात कृस जपत निरंतर मोहि।
देखौं बेगि सो जतनु करू सखा निहोरउँ तोहि॥

—मानस ६.११६ (ख)

स्मरणमात्रसे क्षण कल्पके समान बीत रहा है। आशंका हो उठती है–

बीतें अवधि जाउँ जौं जिअत न पावउँ बीर।

—मानस, ६.११६ (ग)

आश्रयके प्रति अनुरक्ति पराकाष्ठापर ही पहुँच जाती है—

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥

(मानस, २।२१७.७)

भगवद्विप्रयोगमें विवर्ण पड़े भरत प्रेमास्पदत्वकी अनुभूति होनेपर 'रामहि केवल प्रेम पियारा' (मानस, २।१३६.१) में तद्रूप प्रेमस्वरूप हो जाते हैं। अनुरागजन्य विह्वलतामें आलम्बन बन जाते हैं और आलम्बन-आश्रयका मिलन परस्पर दिव्यता, अलौकिकताकी रसानुभूति करा देता है। दोनोंमें आह्लाद-दीप्तिता है—

जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही।

(मानस, ७।४. छं.१)

आलम्बन राम ऐसे हैं जिनका स्नेह स्नेहीको उन्मथित कर देता है, दूसरे शब्दोंमें जिनका स्नेह उनसे भी असीम बनकर उन्हीं को परिवेष्ठित कर देता है। स्वयं राम भरतके सामने ऐसे विवश हो जाते हैं कि उन्हें कहना पड़ता है—

सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुल पालक होहू॥
सो बिचारि सहि संकटु भारी। करहु प्रजा परिवारु सुखारी॥
बाँटी बिपति सबहिं मोहि भाई। तुम्हहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई॥
जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा। कुसमयँ तात न अनुचित मोरा॥

(मानस, २।३०५.३, ५-७)

उद्दीपनका अलौकिकत्व

रसमय भक्तिके अलौकिक आलम्बनके प्रति प्रेम किन निमित्तोंसे उद्दीप्त हो उठेगा, यह नहीं कहा जा सकता। सामान्य शृङ्गार-रसमें प्रेमास्पदका स्मरण करानेवाली वस्तुओंकी एक परिधि है, किन्तु जो सर्व-व्यापक तत्व है, वहाँ ऐसा कौन-सा स्थान है जिसे देखकर उसका स्मरण न आवे। गोपियोंको श्रीकृष्णका स्मरण आकाशकी नीलिमा, वृक्षादि, मयूर आदिके कारण आये यह तो बहुत स्वाभाविक है।

भक्तिका वैशिष्ट्य है कि उद्दीपन केवल उद्दीपनमात्र नहीं रह जाता। विरहके उत्कर्षमें वह उद्दीप्त नहीं कर पाता अपितु स्वयं आहत हो जाता है। द्वारिकाकी महिषियोंको सबके सब उद्दीपन तत्व श्रीकृष्ण वियोगमें संतप्त प्रतीत हो रहे हैं। इस सम्बन्धमें श्रीमद्भागवत १०।९०.१५ से २४ श्लोक पर्यन्तका सम्पूर्ण प्रसंग ही इस विषयका है। चकवी (भा., १०।९०.१६) को करुण स्वरमें विलाप करता देखती हैं। समुद्र[1] को हाहाकार करता देखती है। चन्द्रमा तो दारुण क्षय रोगसे ग्रस्त हो गया है। इसीसे किरणोंसे अन्धकारका नाश नहीं होता—

त्वं यक्ष्मणा बलवतासि गृहीत इन्दो,
क्षीणस्तमो न निजदीधितिभिः क्षिणोषि।

(भा., १०।९०.१८)

---

[1] श्रीमद्भागवत, १०।१९.१७

मलयमारुत (भा., १०।९.१९) स्वतः व्यग्र है। मेघमालाएँ कृष्ण वियोगसे संतप्त अश्रु धाराएँ बहा रही हैं—

अत्युत्कण्ठः शबल हृदयोऽस्मद्विधो बाष्पधाराः।
स्मृत्वा स्मृत्वा विसृजसि मुहुर्दुःखदस्तत्प्रसंगः॥

(भा., १०।९०.२०)

कमनीय कण्ठ कोयल (भा., १० ९०.२१) श्रीकृष्णकी ही अमृत संजीवनी वाणीको आकुल है तो पर्वत शिखर (भा., १०।९०.२२) ऐसे लग रहे हैं कि श्रीकृष्ण चरणस्पर्शको व्याकुल हों। समुद्र पत्नी नदियों (भा., १०। ९०.२३) की पंकजश्री नष्ट हो गयी है। तरु, गुल्म, लता, वृक्षादि सब संतप्त हैं। यह उद्दीपन तत्व स्वतः श्रीकृष्ण वियोगमें आहत हो जाते हैं।

मानसकारने शोक-संतप्त अश्वोंमें 'रघुबर बिरह पीर उर बाँकी' (मानस, २।१४२.४) भली-भाँति समझा है—

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन मृग मनहुँ आनि रथ जोरे॥

(मानस, २।१४२.५)

संतप्तता पराकाष्ठापर पहुँच जाती है—

अढुकि परहिं फिरि हेरहिं पीछें। राम बियोगि बिकल दुख तीछें॥
जो कह रामु लखनु बैदेही। हिंकरि हिंकरि हित हेरहिं तेही॥
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती॥

(मानस, २।१४२ ६-७)

निषाद भी विषादवश हो गया अश्वोंकी इस अकुलाहटपर। जिस अवधपुरीकी सौन्दर्यराशिपर अमरावतीका त्रिभुवनमोहिन वैभव भी संकुचित हो उठता था, वही श्रीरामविरहमें संतप्त हो उठी है—

लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधिआरी॥

(भा., २।८२.५)

अपने ही स्वजन, परिजन आनन्दको उद्दीप्त करनेके स्थानपर स्वतः संतप्त है—

घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता॥

(मानस, २।८२.७)

सम्पूर्ण शोभाकी खानि पुरी, सुहावनी समीर निर्मल जल सम्पन्न सरयू, बन, उपवन, वाटिका, तड़ागाकी रूचिरता केवल अवधवासियोंकी व्यथाको उद्दीप्त नहीं कर रही अपितु स्वतः मुरझा गयी है, श्रीराम वियोगमें–

ब गन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं॥
हय गय कोटिन्ह केलिमृग पुरपसु चातक मोर।
पिक रथांग सुक सारिका सारस हंस चकोर॥

(मानस, २।८२.८-८३)

भक्तिके उत्कर्षमें उद्दीपन केवल उद्दीपनमात्र नहीं रह जाता। वह उद्दीप्त नहीं कर पाता अपितु विरहकी चरमावस्थामें स्वतः आहत हो जाता है। गिरि वन आदि सम्पूर्ण प्रकृति उस अनिर्वचनीय आलम्बनके वियोगमें स्वतः संतप्त हो जाते हैं।

अनुभावोंमें अलौकिकत्व

'ये भावं ज्ञापयन्ति ते अनुभावाः, नृत्यगीतस्मितावयः'[1] जो भावको जनाते हैं, वे अनुभाव कहे जाते हैं। नृत्य, गीत, चीत्कार, हँसना, लोक-लज्जा त्यागकर विचरना आदि ऐसे लक्षण हैं जिनसे चित्तके भाव बाहर प्रकाशित होते हैं। कृष्ण दर्शन लालसामें गोपियाँ उन्मत्तोंके समान प्रलाप करती हुई तद्रूप होकर भगवान्‌की लीलाओंका अनुकरण ही करने लगीं—

इत्युन्मत्तवचोगोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः॥
कस्याश्चित्पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत्स्तनम्।

(भा., १०।३०.१४-१५)

श्रीकृष्ण विरह सन्तप्त ब्रजांगना ही लीलास्वदगुण्यार्थ गोपीभावपन्न होकर पूतना ही बन गयी। ये गोपांगनाएँ विरहिणी हैं, ये सोचती हैं—हमसे तो भाग्यशालिनी पूतना ही थी, उसके उरस्थलपर प्राणनाथ श्रीश्यामसुन्दरने विहार किया। कहीं पूतना बननेपर ही प्रभु उरस्थलपर विहार करने पधारेंगे तो हम धन्य-धन्य हो जायेंगी। इसलिए वह पूतनाका ही अनुकरण

---

१. भक्तिरसामृतसिन्धु बिन्दुः, पृष्ठ १३५

२. भा., १०।३०.१४-१५

करने लगीं। अन्यथा—पूतना लोकबालघ्नी, राक्षसी, रुधिराशना (भा., १०। ६.३५) है। सुतरां पूतनाभाव चाहकी चीज नहीं। चाहकी चीज तो उन ब्रजदेवियोंमें श्रीकृष्ण भावना है। जब विरह-विह्वला ब्रजांगना लीलानुकरण-में एक पूतना बन गयी तो दूसरी तुरन्त 'कृष्णायन्ती' बन गयी और पूतनायन्ती' के उरपर विहार करने लगी। 'पूतनायन्ती' के अन्तरमें वह मंजुल मुरलीधर श्याममूर्ति थी ही, बाहर ऊपर भी वह 'कृष्णायन्ती' के स्वरूपमें आ गयी[1]। जैसे ही यह अनुकरण समाप्त हुआ तो तुरन्त—

'तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाहन् शकटायतीम्'

(भा., १०।३०.१५)

अब दूसरी शकट-भंजन लीलाका अनुकरण प्रारम्भ हुआ। तोकवत् आचरन्ती तोकायन्ती—यह गोपी बाल चापल्यके अनुकरणको सफल बनाती है। पाँव पटकती है, मानो रूप सरोवरमें समुद्भूत कमल विरह-भवनसे विधूनित हो रहा है। मन-बुद्धि रोम-रोममें प्रविष्ट श्रीकृष्णकी शकटायती आदि अनुकृति लीला द्वारा गोपांगना परानन्दमें विलीन हो गयी—

दैत्यायित्वा जहारान्यामेका कृष्णार्भभावनाम्।
रिङ्गयामास काप्यङ्घ्री कर्षन्ती घोषनिःस्वनैः॥

(भा., १०।३०.१६)

इस लीलानुकरणमें यह गोपांगना श्यामसुन्दरकी भावनासे बाल-कृष्णवत् किलकारी मारते हुए अपनी ही पादस्थ नूपुर ध्वनिसे स्तब्ध हो पीछे देखने लगी। इतना ही नहीं अपितु—

कृष्णोऽहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः।

(भा., १०।३०.१९)

के अनुसार श्रीकृष्णभाव-भरिता होकर नन्दनन्दन स्वरूपा हो जाती हैं।

श्रीरामचरितमानसमें इन अनुभावोंकी अलौकिक समिष्ट सुतीक्ष्णमें द्रष्टव्य है—

दिस अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥

(मानस, ३।९.११,१२)

भक्तकी यह विलक्षणता अपूर्व ही है।

---

१. भक्तिसुधा; स्वामी करपात्रीजी, पृष्ठ ३६१

संचारी भावोंका अलौकिकत्व

भारतीय काव्य-शास्त्रकी परम्परामें तो संचारी-भाव तरंगकी तरह प्रकट तथा लुप्त होते रहते हैं। भगवदीय रसमें इनका अलौकिकत्व है कि ये श्रीकृष्ण रति रूप स्थायीभावको पुष्ट करते हैं। भक्त प्रयास करनेपर भी इन्हें नहीं रोक पाता। ये स्वतः ही प्रकाशित हो उठते हैं। श्रीमद्भागवतमें ब्रजांगनाके स्तम्भ, स्वेद, रोमांच-पुलक, स्वरभेद, कम्प, वैवर्ण्य, अश्रु, मूर्छा सभीका समवाय श्रीकृष्ण स्मृतिमें प्रकट हो उठता है। विरह-व्याकुल गोपांगनाएँ नवलबिहारीके अलौकिक रसका स्मरण करती हुई उन्मत्तवत् हो उठती हैं—

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्तधा।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्ण दर्शन लालसाः॥

(भा., १०।३२.१.)

सभी संचारियोंका समवाय ही हो गया है—

तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसम्भ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमाश्रुकलाकुलेक्षणः॥

(भा., १०।३८.२६)

श्रीरामचरितमानसमें श्रीभरतको परम प्रेमास्पद भगवतत्वका एक क्षणका वियोग भी असह्य हो जाता है। विरहानलसे संतप्त होकर मुख पीला हो जाता है—

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात॥

(मानस, ७।१ (ख)

.....पुलकि गात लोचन जल बरषेउ॥

(मानस, ७।१·१)

प्रियतमके विप्रयोगमें प्रेमास्पदत्वकी अनुभूति हो जाती है और यह अनुभूति होनेपर एक क्षण भी चैन नहीं पड़ता। वियोगाग्निमें झुलसकर शरीर दुर्बल हो जाता है तथा मुख विवर्ण। इसी प्रकार गोपांगनाओंके मुख भी भगवद्विप्रयोगमें पीले पड़ गये थे।

गोपिकाओंको अत्यन्त आसक्तिवशात् स्फुरितभावसे अलौकिक उन्माद प्रकट हुआ है—'गायन्त्य उच्चैरमुमेव ..... (भा., १०.३०.४) उन्मत्तवत् बोलती हैं। भगवान्‌ने 'गत्यानुरागस्मित विभ्रमेक्षितैः (भा., १०।३०.२) से संत्राण करनेके लिए यह प्रेमोन्माद प्रदान किया। आसक्ति विशेषसे ब्रजांगनाओंकी अन्तरात्मामें महाभावकी स्फूर्ति हुई। यही तादात्मिका मानसमें—

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥

(मानस, ५.३०)

यह महाभाव भक्ति-रसमें उच्चतम कोटिका है। यहाँ तो मिथ्या कल्पना भी उस रसमय भक्तिरसामृतसिन्धुकी लहरी है। यहाँ मूर्छा, मरण-अपस्मार रस है। संसारके लिए जो विपत्ति है, वही यहाँ संपत्ति है—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

(मानस, ५।३१.३)

परमानन्दकन्दके विप्रयोगजन्य तीव्र तापमें प्रेममयी ब्रजांगनाओंकी मूर्छा भी यहाँ रस रूप है। भक्त शिरोमणि भरत भी 'बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना' (भा., ७।०.८) पर अटके हैं। संसारकी तृष्णा और आशा-दुराशा पिशाची है। भगवान्‌के चरणारविन्दकी आशा कल्पलता है। यहाँ कल्पना रसमयी, आनन्दमयी अलौकिक भावोंसे अनुस्यूत है।

भागवत एवं मानसके कुछ उदाहरण

दोनों ग्रन्थोंमें भक्ति-रससे लिप्त एवं उदात्त ऊर्जासे ज्योतित असंख्य वर्णनोंमें अपने-अपने आराध्यके चरितोंका वर्णन किया है। उनकी सफलताका आकलन इस शोध प्रबन्धमें केवल अमृत-समुद्रमें-से अंजलि भर लेने का प्रयास मात्र होगा।

श्रीमद्‌भागवतमें परमानन्दनघन लीला-पुरुषोत्तमका अलौकिक आलम्बन है। इस आश्रय तत्वके चारु-चरितोंका चित्रण लोकोत्तर आनन्दातिरेकका संचार करनेवाला है। श्रीमद्‌भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें भक्तिके सभी स्वरूपोंके आश्रय हैं और उनमें प्रत्येक अपनी पराकाष्ठापर हैं। भागवतमें गोपसखा, नन्द-यशोदा, उद्धव आदि हैं तो मानसमें पवनतनय,

दशरथ-कौशल्या, निषाद, जटायु आदिको द्वितीय श्रेणीका आश्रय नहीं कहा जा सकता।

श्रीमद्भागवतमें ब्रजांगनाएँ प्रेम-समुद्रकी तरंगें हैं। सर्वोत्कृष्ट प्रेमकी ध्वजा हैं। उनके तन, मन, धन, प्राण, आत्मा सब कुछ श्रीकृष्ण हैं। कृष्ण ही उनमें अखिलात्मा, परम प्रेमास्पद हैं, जिनपर सर्वस्व न्योछावर है—

चित्तं सुखेन भवतापहृतं गृहेषु
यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये।
पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्
यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा॥

(भा,. १०।२९.३४)

इन ब्रजांगनाजनकी सराहना कैसे की जाय—

एषां तु भाग्यमहिमाच्युत तावदास्ता-
मेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः।

(भा., १०।१४.३३)

ये महाभावा श्यामसुन्दरके पादारविन्द-सौन्दर्यामृतके पानसे ब्रजांगनाजनको देह, गेह, लोक-लाज एक बार ही विस्मृत हो जाती है। इसपर नन्दनन्दनकी मोहक मुसकानसे वह और भी परिपुष्ट हो गयी। इसका रसास्वादन तो इन ब्रज-देवियोंको मिला—

अस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां
निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम्॥

(भा., १०।२१.१९)

इनके हृदय विदीर्ण हुए जा रहे हैं इस आशंकासे कि प्रेमास्पदके कमलके समान सुकुमार चरणोंमें कंटक-तृण चुभ जायेंगे—

नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः
कलिलतां मनः कान्त गच्छति॥

(भा., १०।३१.११)

और भी—

तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥

(भा., १०।३१.१९)

वे सौरस्य सुधा-सिन्धुको पाकर पूर्णकामा हो जाती है—

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः ।

(भा., १०।३२.१३)

गोपांगनाएँ प्रेम मार्गकी आचार्य हैं । 'कृष्णगृहीतमानसाः' (भा., १०। २९.४) गोपियाँ स्वकर्म सम्पादनसे ही उच्चसे उच्चतम स्थिति प्राप्त कर लेती हैं, योगियोंकी स्थितिसे भी श्रेष्ठ हो गयी हैं—ये ब्रजदेवियाँ—

तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृदिकृत्य निमील्य च ।
पुलकाङ्ग्युपगुह्यास्ते योगीवानन्दसम्प्लुता ॥

(भा., १०।३२.८)

बाहर बहुत विघ्न है अतः यह गोपी उन परमश्रेष्ठको हृदयमें पधराकर नेत्र द्वार बन्द करके जिससे वे भाग न जायें परिरम्भण सौख्यका अनुभव करती हैं । उस लोकोत्तर आनन्दसे रोमांच हुआ, वह रोमांच नहीं अपितु पहरेदार खड़े कर दिये गये हैं—श्यामसुन्दर कहीं हृदय मन्दिरसे नेत्रादि द्वारों, रोम-रन्ध्रोंसे भाग न निकलें । फिर भी उसे विश्वास नहीं हुआ, अतः खूब छिपाकर आनन्दसिन्धुमें गोता लगा गयी ।

मानसकारने भी जनकतनया जानकीकी इसी स्थितिको व्यक्त कर दिया है—

लोचन मग रामहि उर आनी । दीन्हें पलक कपाट सयानी ॥

(मानस, १।२३१.७)

ब्रजदेवियोंकी दृष्टियोंमें मुरली-मनोहरका दर्शन ही नेत्रवानोंमें नेत्रवान् होनेका फल है—

'अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः'

(भा., १०।२१.७)

ब्रजांगनाओंके तीव्र संवेग संचालित भावना परिपाकका फल ही है पूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ।

श्रीमद्भागवतमें गोपी प्रेमकी ध्वजा है तो श्रीरामचरितमानसमें भक्त-शिरोमणि भरत हैं---विशुद्ध श्रीराम प्रेम महासौधके कलश। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ही नहीं अपितु कैवल्य भी न्यौछावर है—श्रीराम-चरणारविन्दोंपर। सभी सम्बन्ध त्याज्य हैं जो प्रेममें सहायक न हों—

जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ॥

(मानस, २।१८५)

इसी विशिष्ट भाव-भूमिपर वह योग योग नहीं है, वह ज्ञान ज्ञान नहीं है, जो श्रीरामके चरणोंमें प्रीतिका संचार न करे। श्रीराम-प्रेम ही चरम लक्ष्य है। स्वार्थ और परमार्थ ही नहीं अपितु साधन-सिद्धि भी—

साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥

(मानस, २।२८८.८)

एक-एक परमाणुमें रामप्रेमके सिन्धु बने है—

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू॥

(मानस, २।३२५.१

सिन्धु तो खारा होता है। परम भागवत भरतका चिन्मय चरित तो श्रीराम-भक्तिकी सुधाको मानवके लिए सुलभ कर देता है—

कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहूँ॥ (मानस, २।२०८.६)

भरतकी यही सहज सलोनी मुद्रा है जिसके समक्ष 'हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा' (मानस, ७।९१.३) भी अपनी सुधि खो बैठते हैं—

उठे राम सुनि पेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥

(मानस, २।२३९.८)

श्रीमद्भागवतमें—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः, स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा, मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

(भा., ६।११.२६)

इस सम्पूर्ण श्लोकमें ही भागवतकारने तात्कालिक आकुलता एवं स्थायी व्याकुलताको सजीव किया है। अजातपक्ष शावक माता-पितासे भी ठीक परिचित नहीं होता, उसे केवल क्षुधाकी व्याकुलता होती है। यह प्रतिक्षाकी तीव्रताके साथ प्रथमावस्थाको अंकित करता है। यह प्रतीक्षा भी कुछ क्षणोंकी है। किंचित आहट होते ही शावक मुख खोलकर प्रतीक्षा करने लगता है।

क्षुधार्त 'वत्स' की आकुलता शावककी अपेक्षा दीर्घ है। वह क्षुधाका वेग होते ही प्रतीक्षामें पुकारने लगता है। वत्सको माँका परिचय हो या आहट हो, तभी पुकारे, ऐसा नहीं है। वह तो पुकारता ही रहेगा, जब तक माँ समीप न आ जाये।

यह प्रतीक्षा स्थायी हो जाती है—दीर्घकाल व्यापी हो जाती है, 'प्रियं प्रियेव व्युषितं' में। प्रिय-वियोगिनी नारी प्रियतमके आगमनकी प्रतीक्षा दिनों, सप्ताहों, महीनों, वर्षों-जीवन भर करती है। यहाँ आकर रस स्थायी परिपाकको प्राप्त हो जाता है।

श्रीमद्भागवतमें प्रतीक्षाकी यह तीनों ही अवस्थाएँ उत्कृष्ट रूपसे उपलब्ध हैं। श्रीकृष्ण गोचारणके लिए वन चले जाते हैं। गोपियाँ व्याकुल हैं, उनके लिए दिन काटना भी कठिन हो जाता है—

अटति यद् भवानन्हि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ॥

(भा., १०।३१.१५)

द्वितीय अवस्था है—रासमें श्रीकृष्णका अन्तर्हित हो जाना। प्रतीक्षा स्थायी हो जाती है। वत्सवत् प्रतीक्षा है—

तृतीय अवस्था है—प्रिय प्रवासपर गोपियोंकी विरह वेदना। इसकी झाँकी तब मिलती है जब उद्धव सन्देश लेकर ब्रज पहुँचते हैं—

वयमृतमिब जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः
कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः।
दद्दशुरसकृदेतन्नन्नखस्पर्शतीव्र-
स्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यतामन्यवार्ता ॥

(भा., १०।४७.१९)

वेदना यहाँ स्थायी हो गयी है। वियोग संतप्त ब्रजांगनाओंकी असीम विरह वेदनाका कोई ओर-छोर नहीं है।

मानसकारने भी इन्हीं स्थितियोंका चित्रण अद्‌भुत ढंगसे किया है। श्रीभरतको जैसे ही ननिहालमें अयोध्याके दूत गुरुका सन्देश देते हैं, उनकी स्थिति पक्षी शावककी-सी है। पंख हों, तो उड़कर अयोध्या पहुँच जायें। अभी कुछ पता नहीं है, केवल प्रतीक्षा है—

हृदयँ सोचु बड़ कछु न सोहाई। अस जानहिं जियँ जाउँ उड़ाई॥
एक निमेष बरष सम जाई। ..... ॥

(मानस, २।१५७.२-३)

अयोध्या पहुँचकर कैकेयीसे समाचार मिल जाता है और भरतकी स्थिति बछड़ेके समान हो जाती है। उनकी व्याकुलता जैसे स्थायी हो जाती है। उनकी दारुण दीनता व्यक्त हो उठी है—

देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ। (मानस, २।१८२)

यही स्थायित्व आकुलता बन जाती है जब चौदह वर्ष बीत जाते हैं और समाचार नहीं मिलता है कि श्रीरघुनाथ आ रहे हैं—

बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

(मानस, ७।०.८)

मानसकारने श्रीरामकी भक्तिको सर्वग्राह्य बनानेके लिए श्रीरामचरितमानस लिखा। यह अपने आपमें कम महत्वपूर्ण नहीं, पर इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि उन्होंने रामकी नरलीलाका वितान भक्तसे अधिक भक्तवत्सल रामकी सोद्‌देश्यता स्थापित करनेके लिए किया। रामचरितमानस पारिवारिक प्रेम और लोक मर्यादा मात्रका काव्य नहीं। यह एक बड़े प्रेम और बड़ी मर्यादाका काव्य है। इसके काव्यार्थको पकड़नेके लिए छोटे प्रेमके प्रति कठोर बनो। मानसमें बीच-बीचमें ऐसे ही गहरे संकेत किये हैं कि पाठक वहाँ पंक्तिकी गहराईमें झाँकने लगता है। शायद अर्थ वहाँ नीचे छिपा हो। ऐसी ही एक चौपाई अयोध्याकाण्डमें आती है, जनक भरत-बचनकी सराहना करते हुए कहते हैं—

सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे॥
ज्यों मुखु मुकुरु मुकुर निज पानी। गहि न जाइ अस अदभुत बानी॥

(मानस, २।२९३.२-३)

भरतकी बात मृदु-मंजु भी है और कठोर भी। सुगम भी, अगम भी। यहाँ तक तो ठीक है। यह कैसी असंगत बात है—भरत और कठोरता दोनोंमें सम्बन्ध नहीं जुड़ता। पर क्या यह भरतकी उक्तिकी सराहना है? ऐसा नहीं लगता कि चौपाई पूरे मानसके काव्यार्थकी परिभाषा है क्योंकि भरतकी बात ही मानसकी बात है। भरतके शरीरमें ही रामके स्नेहकी पूरी अभिव्यक्ति है और ग्रन्थकी प्रतिज्ञा रामचरित तक समाप्त नहीं होती बल्कि रामचरित (रामभावित) मानस या चित्रको उभाड़कर रखे बिना, ग्रन्थकी प्रतिज्ञा पूरी नहीं होती और ऐसा चित्र बस एक है, वह है भरतका—

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥

(मानस, २।२१७ ७)

ऐसा चित्र है, जिसकी थाह कौशल्या, वशिष्ट, जनक किसीको नहीं लगती। केवल रामको थाह लगती है, पर उनसे कहा जाय कि बतलायें कितना गहरा है तो वे भी नहीं कह सकते।

'भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी॥

(मानस, २।२८८.२)

साधारण काव्यशास्त्रका पण्डित कहेगा कि यह तो प्रबन्ध काव्यकी दृष्टिसे काव्य दोष हुआ कि मुख्य नायकसे अधिक सहायकका ऐसा गुणगान किया जाये कि मुख्य नायक भी उनकी महिमा नहीं बखान सकते।

प्रीतिसे तुलसीका वही तात्पर्य है जो शाण्डिल्यका 'परानुरक्ति' से या नारदका 'परमप्रेम' से। समन्वय भावनाको छानकर भक्तिके स्वरूपका निरूपण किया जाये तो स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि ईश्वर विषयक स्नेह 'भक्ति' है। इस प्रेममें वह शक्ति है कि पाहनसे भी परमेश्वरको काढ़ लेता है। इस प्रेमका आनन्द—भक्तिका रस काव्यके नवरस एवं रसनाके छः रसोंसे अधिक मधुर है। भरतकी विरहासक्ति इसी उत्कर्षका द्योतक है—

पेम अमिय मंदरु बिरहु भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर॥

(मानस, २।२३८)

मानसकारने इसी प्रेमकी अतिशयतापर बल दिया है। यद्यपि लौकिक प्रेममें विषय है, किन्तु वही भगवद्परक होनेपर विषय नहीं रहता। भगवान-का स्पर्श आदि लौकिक होनेपर भी अलौकिक है। पाषाणी अहिल्या, निषाद, गीधराज जटायु, शबरी, कपियोंकी धन्यता इसके उत्कृष्ट उदाहरण हैं। जगद्-विषयक भूमिका यहीं उलट जाती है। लीलारसकी विशेषता ही यह है कि बाह्य रूपसे प्रतीत होता है कि विषय यह है किन्तु वह निर्विषयी बन जाता है—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

(मानस, ७।१३० (ख)

भगवदीय रसकी विलक्षणता ही यह है कि अलौकिक प्रेमकी अविच्छिन्न धारावाहिता बनी ही रहती है।

यह भगवदीय-रस दिव्यातिदिव्य विशुद्ध रस है। अतएव कहा भी गया है कि विभिन्न लोकरसों (रागों) में विरसता अति ठिनतासे होती है। उत्कृष्ट वैराग्य यदि कोई है तो यही श्रीकृष्ण-रस ही है। यह कोटिशः प्रयत्न करनेपर भी नहीं मिलता। संसारके राग, शब्द, स्पर्श आदि ऐसे हैं, जो छूटते ही नहीं। परन्तु उसके बीच यदि यह श्रीकृष्ण-राग समाविष्ट हो जाये, तब सब छूट जाते हैं। मानसकारका भी वचन है—

रमा-बिलासु राम अनुरागी।
तजत बमन जिमि जन बड़ भागी॥

(मानस, २।३२३.८)

यह विश्वविलास, साम्राज्य आदि सब रमा-विलास है। इसमें सच्ची विरसता—वैराग्य होना कठिन है। पर इसमें कहीं श्रीकृष्णरस समाविष्ट हो जाय तो वे समस्त लोकरस (राग) तुरन्त फीके पड़ जायँ। यही सच्चा वैराग्य है। रास-पञ्चाध्यायीके श्रवण, पठन और मननका यही फल है कि जग रस विरस हो जायँ। यह परमहंसोंकी संहिता है। इसे अन्य श्रोता भी श्रद्धासे सुने तो उसे परमहंसोंकी तरह ही जगसे विराग हो जाय। इसके अन्तमें फलश्रुति है—

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथवर्णयेद् यः ।
भक्तिं परा भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥
(भा., १०।३३.४०)

अतः यह श्रीकृष्ण-रस सर्वरसोपमर्दी है। सब रस सड़ जाते हैं—नीरस हो जाते हैं, परन्तु यह सदा नवनवायमान उत्तरोत्तर वृद्धयाभिमुख रहता है। तभी व्रजगोपियोंके लिए अथवा वैसे भावुकजनके लिए जब वे श्रीश्याम-रसका आस्वादन करने लगते हैं, उनके लिए समस्त विषय-रस नीरस हो जाते हैं। यही श्रीराम, श्रीकृष्ण रसोपासकोंकी कसौटी है।

श्रीमद्भागत एवं श्रीरामचरितमानसका रस-परिपाक निरूपण—एक और दृष्टि

रस स्वयं प्रकाश्य है। रस निष्पत्ति सामाजिकके हृदयमें होती है। यह बाहरसे उद्भूत नहीं होता। उसे ब्रह्मानन्द-सहोदर कहा गया है[1]। शिशुमें क्या रसोद्रेक नहीं है? ठीक यही बात भक्ति-रस सम्बन्धमें है। भक्ति स्वयं एक स्वतंत्र रस है। इस रसका प्रधान उद्दीपन-भाव 'श्रद्धा' है। श्रद्धा अपनी चरमस्थितिमें बाह्य उद्दीपनकी अपेक्षा नहीं रखती।

श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरितमानसमें भक्ति-रसका पदे-पदे परिपाक हुआ है। यह परिपाक केवल श्रद्धालु लोगोंके लिए हुआ है। जैसे कई दिनोंके भूखे व्यक्तिको किसी प्रकारका शृङ्गार रसोद्रेक करानेमें असफल है, उसी प्रकार श्रद्धाविहीनको भगवदीय वर्णनमें रसोद्रेक नहीं हुआ करता।

जहाँ सम्पूर्ण ग्रन्थ ही रस परिप्लुत है, वहाँ समस्या हो जाती है कि कहाँसे उदाहरण प्रस्तुत किया जाये और कहाँसे परित्यक्त? श्रीमद्-भागवतमें भगवान् नृसिंहका वर्णन है। स्वयं भागवतकारके शब्दोंमें—

'नृसिंह रूपस्तदलं भयानकम्' (भा., ७।८.२०)

प्रह्लाद स्वयं इस रूपकी स्तुति करते हुए अत्युग्र वर्णन करते हैं—

नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्यजिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात्।
आन्त्रस्रजः क्षतजकेसरशङ्कुकर्णान्निर्ह्रादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात्॥
(भा., ७।९.१५)

किन्तु कहते हैं—'प्रभु! मैं आपके इस रूपसे डरता नहीं हूँ, परन्तु मैं इस उग्र संसार-चक्रसे कुचले जोनेसे त्रस्त हूँ।

---

१. **सत्वोद्रेकादखण्ड स्व प्रकाशानंद चिन्मयः।**
वेद्यान्तर स्पर्श शून्यो ब्रह्मास्वाद सहोदरः॥
साहि. द., ३।२

'प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु' (भा., ७।९.१६) अर्थात् आप प्रसन्न होकर मुझे अपवर्ग मरणके लिए—मोक्षदायी मृत्युके लिए कब पुकारेंगे ? क्या मरण किसीको प्रिय होता है ? लेकिन यहाँ कितनी तीव्र लालसासे कहा जा रहा है—'आप मुझे अपवर्गमें मरण देनेके लिए कब पुकारेंगे ?' क्या यहाँ रस-परिपाकमें किंचित् भी कमी है ? लेकिन साहित्यके किस रसका परिपाक है ? भयानक तो समाप्त हो गया जब प्रह्लादने कह दिया 'नाहं बिभेमि' (भा., ७।९.१५) और किसी रसकी सम्भावना है ? यहाँ तो भक्तिरस है जो हृदयको द्रवित किये दे रहा है।

मुख्य रस—

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनोंमें 'रसानुकूल-भाषा' के प्रसंगमें उदाहरण देकर स्पष्ट किया गया है कि दोनों ग्रन्थोंमें साहित्यके नौ रस अपनी भरपूर ओजस्विताके साथ आये हैं, लेकिन श्रीमद्भागत और श्रीरामचरितमानस दोनों ग्रन्थोंका मुख्य रस 'भक्ति-रस' ही है। श्रीमद्-भागवत तो प्रतिज्ञा करके चला है—

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्षयाः॥

(भा., १।५.१०)

श्रीमद्भागवत तो भगवद्-शांकित वाणीको ही परम श्रेयस्कर लक्ष्य मानकर प्रवृत्त हुआ है—

तद् वाग् विसर्गोजनताघ विप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानियच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः॥

(भा., १।५.११)

इसलिए श्रीमद्भागवतमें भक्ति-रस मुख्य है। इसके लिए तर्क या वाद-विवादकी आवश्यकता नहीं है।

श्रीरामचरितमानस इससे कुछ भिन्न प्रतिज्ञा लेकर नहीं चला। 'मानस' का कहना है—

भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई॥
रामचरित सर बिनु अन्हवाएँ। सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ॥

(मानस, १।१०.४-५)

इसलिए मानसके सम्बन्धमें स्वयं मानसकारका कथन है—

राम भगति भूषित जियँ जानी। सुनहहिं सुजन सराहि सुबानी॥

(मानस, १।८.७)

श्रीमद्भागवतकार भी ग्रन्थके उपसंहारमें कहते हैं—

'श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद् वैष्णवानां प्रियं।

(भा., १२।१३.१८)

श्रीरामचरितमानसके सम्बन्धमें यही बात उपसंहारमें कही गयी है—

राम उपासक जे जग माहीं। एहि सम प्रिय तिन्ह कें कछु नाहीं॥

(मानस, ७।१२९.३)

मुख्य रसके पोषक रस—

भक्ति-रस विचित्र रस है, यह रस जहाँ जागृत होता है, जहाँ श्रद्धाका उद्दीपन प्राप्त कर लेता है, वहाँ ऐसा कोई रस ही नहीं रह जाता जो इसका परिपोषक न हो। क्या किसी माताको अपने पुत्रसे वितृष्णा होते किसी भी अवस्थामें देखा गया है? भक्ति तो निखिल जननी है, जिसके अंकमें भगवान् और भक्त दोनों ही क्रीड़ा करते हैं। इसलिए भगवान्‌की कोई ऐसी अवस्था नहीं होती जो श्रद्धालु भक्तके हृदयमें रसका जागरण न करे। शृंगार, करुण आदि तो भक्ति रसके पोषक ही हैं, इनमें तो कुछ कहना नहीं है। शान्त-रस स्वयं ही भक्तिकी महिमा वर्णन करेगा। नाम ही लेना हो तो 'हास्य' का नाम सबसे पहिले लिया जाना चाहिये। जो भक्ति-रसका पोषक है अथवा नहीं? ऐसा प्रश्न उठ सकता है, तो इस प्रश्नके समाधानमें इतना ही संकेत देना पर्याप्त होगा कि श्रीमद्भागवतमें यदि हास्य-रसके परिपाकके दर्शन करने ही हो तो भगवान् श्रीकृष्णकी बालक्रीड़ाके वर्णनमें इस रसकी पूर्णिताके दर्शन किये जा सकते हैं—

..... **'वीक्ष्य कौमार चापलम्**

(भा., १०।८.२८)

..... **प्रहसितमुखी न ह्युपालब्धुमैच्छत्'**

(भा., १०।८.३१)

अद्भुत-रस, वीर, रौद्र, भयानक और वीभत्स—ये भी भक्तिके पोषक हैं। इस सम्बन्धमें भी किसीको आशंका नहीं होती, क्योंकि श्रीराम

और श्रीकृष्ण दोनोंके चरितोंमें युद्धके वर्णन हैं और वे वर्णन नायकमें श्रद्धालुकी श्रद्धाका वर्धन ही करते हैं। युद्धमें वीर, रौद्र, भयानक और वीभत्स न आनेसे युद्ध-वर्णन ही कैसा ? इसलिए इनके सम्बन्धमें सोदाहरण विवेचन अनावश्यक है। श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें युद्धोंके उत्कृष्ट वर्णन हैं। उनमें वीर, रौद्र और वीभत्स—इन रसोंका परिपाक है और ये रस 'भक्ति' को ही पुष्ट करते हैं। यह तथ्य सूर्यकी भाँति ही स्पष्ट है।

भयानक रसकी पराकाष्ठा भगवान्‌के नृसिंहावतारमें और अद्भुत रसकी चरम सीमा भगवान्‌के वामनावतारमें साकार हुई है। श्रीमद्भागवतमें दोनों चरितोंके वर्णनमें भयानक और अद्भुत-रस परिपुष्ट होकर भक्ति रसको उद्दीप्त करते हैं, यह बात भी विवेचनकी अपेक्षा नहीं रखती।

श्रीरामचरितमानसमें 'अद्भुत' और 'भयानक' दोनों रसोंका वर्णन सुन्दरकाण्डमें बहुत स्पष्ट आया है। श्रीहनुमानजीके शरीरका वर्णन है—

कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा॥

(मानस, ५।१५.८)

यह शरीर किसका है ? जिसे देखकर क्षण भर पहिले ही श्रीजानकी-ने कहा है—

हैं सूत कपि सब तुम्हहि समाना। (मानस, ५।१५.६)

भयानक-रसका स्वरूप—

अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास। (मानस, ५।२५)

देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला॥

(मानस, ५।२५.१-२)

संस्कृत या हिन्दी साहित्यमें आधुनिक कालको छोड़ दें, तो हास्य आया ही बहुत कम है। श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें इस रसका परिपाक नहीं हुआ है, लेकिन कोई सम्भावना नहीं है कि इनमें हास्य आता तो वह भक्ति-रसका पोषक नहीं होता। मानसमें प्रक्षिप्त रूपमें किन्हीं प्रतियोंमें 'राम-कलेवा' देखनेमें आता है। मिथिलाकी नारियों और अवधके राजकुमारोंमें जो 'नोक झोंक' वहाँ वर्णित है, वह हास्य-रस भक्ति-रसका

पोषक नहीं है, ऐसा कहा नहीं जा सकता। श्रीरामचरितमानसमें नारद-मोहको श्रीरामकथाकी भूमिकामें देकर गोस्वामीजीने हास्य-रसको भक्ति रसके पोषकके रूपमें अत्यन्त विलक्षण रूपसे प्रस्तुत किया है—

जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहिं न बिलोकी भूली॥
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि दसा हर गन मुसुकाहीं॥

(मानस, १।१३४.१-२)

श्रीकृष्णके सम्बन्धमें बिल्वमंगलने बहुत सुन्दर हास्यका उदाहरण प्रस्तुत किया है—

पङ्काक लिप्त सकलावयवं विलोक्य,
दामोदरं वदित कोपवसाद्यशोदा।
त्वं सूकरोऽसि गत जन्मनि पूतनारे,
इत्युक्ति सस्मित मुखो हरिशंतनोति॥

इस 'हास्य' में भक्तिका पोषण है या नहीं? आपको इसमें भी कुछ सोचना या विचारणीय है?

तात्पर्य यह है कि भक्तिके साथ जो कोई भी रस आयेगा, वह रस होगा तो भक्तिका पोषक ही। इसलिए श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरित-मानसमें सभी नौ रस 'भक्ति' के पोषक ही हैं।

रससांकर्य एवं रसाभासादिके भागवत एवं मानसमें उदाहरण

रसभावौ तदाभासौ भावस्य प्रथमोदयौ।
सन्धिः शबलता चैतिसर्वेऽपि रसनाद्रसाः॥

(साहि. द., ३।२५९)

भक्ति-भगवतीको अपने सब रसरूप पुत्र प्रिय, सुन्दर ही लगते हैं। उनके अंकमें आकर रस तो उन्हें पुष्ट करते ही हैं, रससांकर्य अथवा रसा-भासादि भी उन्हें पुष्ट, अभिवृद्ध करते है। उदाहरणके लिए—धूलि, कीचड़-सना बालक माता-पिताको ही प्रिय नहीं लगता, किसी भी सहृदय द्रष्टाको प्रिय लगता है। इसीलिए—

तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ।
पङ्काङ्गरागरुचिरावुपगुह्य दोर्भ्याम्॥

(भा., १०।८.२३)

अथवा

धूसर धूरि भरें तनु आए। भूपति बिहसि गोद बैठाए॥

(मानस, १।२०२.६)

रसाभास—

अनौचित्य प्रवृत्तत्व आभासो रसभावयोः॥ (साहि. द, ३।२६२)

अर्थात् रस तथा भाव अनुचित प्रवर्तन ही रसाभाव कहा जाता है। श्रीमद्भागवतके (१०।६७.१३) द्विविद प्रसंगमें रसाभासका उदाहरण मिल जाता है।

श्रीरामचरितमानसमें रसाभास 'जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुन्दर बरनारि' (मानस, १।१८२ ख) प्रसंगमें अवलोकनीय है। इसी प्रकार क्रोधका रसाभास नारद मोहके प्रसंगमें भगवान्‌के प्रति—

'डहकि डहकि परिचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू॥

(मानस, १।१३६.३)

में सम्पूर्ण आक्रोश प्रस्फुटित हो गया है। क्रोधके रसाभासका दूसरा उदाहरण है—भरतका माँ कैकेयीके प्रति आक्रोश—

जो हसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बैठहि जाई॥

(मानस, २।१६१.८)

किन्तु यह रोष भक्तिका ही पोषक है।

रस सांकर्य—

भावस्य शान्तावुदये सन्धि मिश्रितयोः कमात्। (सा. द., ३।२६७)

बीभत्समें शृङ्गार या शृङ्गारमें बीभत्स रससांकर्य है, इसमें दो मत तो नहीं हैं? भीष्म श्रीकृष्णके किस सौन्दर्यका वर्णन कर रहे हैं, जिनके कवच कट गये हैं, जिनका शरीर घावोंसे भर गया है फलतः जो रक्त लथपथ है, उनका ध्यान करते शर-शैयापर पड़े भीष्म कह रहे हैं—

'स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः।' (भा., १।९.३८)

'मुकुन्द' ध्यान देने योग्य हैं। ऐसे श्रीकृष्ण मुकुन्द हैं। उनके श्रीमुख-पर कुन्दके समान उज्ज्वल-हास्य है। यहाँ रौद्र-बीभत्स दोनोंका सांकर्य और उसके साथ शृङ्गारका मुकुन्द। यह रससांकर्यमें शर-शैयापर पड़े भीष्मको भक्तिके अमृत-समुद्रमें निमज्जित कर रहा है—

तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु
यद् यत् समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः ।
नृत्यन् पदानुनमयन् दमयाम्बभूव
पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान् पुराणः ॥

(भा., १०।१६.२९)

श्रीकृष्ण कालियके फणपर चित्र-ताण्डव कर रहे हैं। पदाघातसे नाग-फण फट गये हैं, उसके रक्तके छींटे पड़े हैं श्रीकृष्णके चरणोंपर। उस शोभाका वर्णन 'पुष्पः प्रपूजित इवेह' कहकर भागवतकार करते हैं, 'शतैक-शीर्षानाग' विष उगल रहा है। कथा भयानक-रसके परिपाकमें कोई त्रुटि है ? ऐसे नागके सिरपर लगभग पाँच वर्षका बालक नृत्य कर रहा है। अद्‌भुत-रस परिपक्व हो गया या नहीं ? नागके फण चिथड़े-चिथड़े हो गये हैं, जिससे श्रीकृष्णके चरण रक्त-रंजित हो गये, वीभत्स-रस साकार हो गया। इस रस-सांकर्यमें रसाभास शृङ्गार आ कूदता है—'पुष्पैः प्रपूजित इवेह' लेकिन वहाँ आता है भक्ति-देवीके अंकमें। उसके साथ शब्द है—'पुमान् पुराणः' अतः उसका आगमन रसोंको विकृत करनेके स्थानपर सबको भक्ति-रसमें डुबाकर अधिक प्रफुल्ल कर देता है।

श्रीरामचरितमानसमें लगभग ऐसा ही उदाहरण है, जहाँ वीभत्स और शृंगार है, जिसको रस-सांकर्य कहा जा सकता है। दोनों गलबहियाँ दिये आते हैं और भक्तिरसको परम पुष्ट करते हैं—

भुजदंड सर कोदण्ड फेरत रुधिर कन तन अति बने ।
जनु रायमुनीं तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने ॥

(मानस, ६।१२०, छं २.)

तनपर हैं तो रुधिर-कण—होना तो वीभत्स चाहिये, पर 'अति बने' आ गया शृङ्गार, कुछ कोर-कसर थी, तो उसे उपमाने पूरा कर दिया।

इस प्रकार वीभत्स-रस तथा शृङ्गार-रस दोनोंने मिलकर भक्तिरसको परम पुष्ट कर दिया है।

रसाभाव—

रस बाहुल्य ही सर्वत्र काव्यको शोभित नहीं करता, अपितु उसे बोझिल भी बना देता है। कोई अत्यन्त सुन्दर वस्त्रमें आवृत अवगुंठनवती नववधु हो, तो पता नहीं लगता कि उस वस्त्रके आवरणमें कोई काली-कराल-वदना है अथवा छुई-मुई इन्द्र-वधूटी। सौन्दर्य तब प्रकट होता है

जब वस्त्रालंकारके साथ कर-पद-मुखकी झलक भी मिलती हो। महाकाव्यमें भी अनलंकृत रसाभाव-पूर्ण वर्णन उसको सुशोभित करते हैं, बोझिल होनेसे बचाते हैं। अलंकारों और रसोंको पूर्ण परिस्फुट होनेका अवसर देते हैं। श्रीरामचरितमानसमें—

अनुज क्रिया करि सागर तीरा। कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा॥

(मानस, ४।२७.१)

इस प्रकारके कथा-प्रवाहके वर्णन बहुत हैं, जहाँ कोई रस और अलंकार नहीं है। ऐसे सब स्थल कथा-प्रवाहको बनाये रखनेके लिए हैं और उपवनमें खिले पुष्पोंके सदृश रस-अलंकारोंकी शोभा को बढ़ाते ही हैं।

श्रीमद्भागवतमें भी ऐसे प्रसंग सभी स्कन्धोंमें हैं। पंचम स्कन्धका भूगोल-खगोल-वर्णन, नवम स्कन्धकी वंशावली तो इस प्रकारकी है ही, किन्तु ये सौन्दर्याभिव्यक्तिमें सहायक ही हैं।

निष्कर्ष

श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरितमानसका मुख्य रस 'भक्ति-रस' है। दोनों ग्रन्थोंमें इस 'भक्ति-रस' का पूर्ण परिपाक हुआ है। रस परिपाक स्पष्ट प्रस्फुटित रखनेके लिए, वर्ण्य-विषयकी धाराको अखण्ड रखनेके लिए रसाभावपूर्ण वर्णन भी जितने आवश्यक हैं, उतने हैं। भक्ति-रस ही ऐसा है कि दूसरे सब रस उसके पोषक होते हैं। यहाँ तक कि रसाभास एवं रस-सांकर्य भी दोनों ग्रन्थोंमें भक्ति-रसको पुष्ट ही करते हैं, यह तथ्य दोनों ग्रन्थोंके विवेचनसे सुस्पष्ट हो जाता है।

अध्याय—६

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसका सादृश्य विधान

(अ) साम्य

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनोंको लोक-मानसकी श्रद्धा प्राप्त है। दोनोंका ही श्रद्धा-भक्ति सहित सतत पारायण एवं अनुष्ठान होता है।

भारतीय परम्परामें प्रत्येक आध्यात्मिक ग्रन्थके पारायण अधिकारका निर्णय होता है और यह बतलाया जाता है कि कैसे लोगोंको इस ग्रन्थके श्रवणका अधिकार नहीं है। श्रीमद्भागवतमें सम्पूर्ण ग्रन्थके सम्बन्धमें तो ऐसी बात नहीं कही गयी, किन्तु श्रीकृष्णने उद्धवको उपदेश करनेके अन्तमें कह दिया कि 'भागवत-धर्म' का उपदेश दाम्भिकों, नास्तिकों, शठों, शुश्रूषा न करनेवाले, अभक्तों, दुर्विनीतोंको नहीं देना चाहिये—

नैतत्त्वया दाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च।
अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम्॥

(भा., ११।२९.३०)

श्रीरामचरितमानसमें भी कह दिया—

यह न कहिअ सठहीं हठसीलहि। जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि॥
कहिअ न लोभिहि क्रोधिहि कामिहि। जोन भजइ सचराचर स्वामिहि॥
द्विज द्रोहिहि न सुनाइअ कबहूँ। सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ॥

(मानस, ७।१२७.३-५)

शैलीगत-साम्य—

(१) श्रीमद्भागवतके एकाह, द्वयाय, त्रयाह सप्ताह, पाक्षिक एवं मासिक पाठ होते हैं। इसी प्रकार श्रीरामचरितमानसका भी एकाह, नवाह तथा मासिक पाठ होता है।

(२) श्रीमद्भागवत महापुराण मूलतः अनुष्टुप छन्दोंमें रचित हुआ। यह इसका प्रधान छन्द है। इसी प्रकार श्रीरामचरितमानसका मूल छन्द चौपाई है।

(३) श्रीमद्भागवतकी रचना स्कन्धात्मक है। अतः स्पष्ट न होनेपर भी श्रीमद्भागवतको कल्पवृक्षका (बोपदेवकृत हरिलीला, २) रूपक दिया गया है, किन्तु श्रीरामचरितमानसको मानस-सरसे उपमित किया गया है।

विषयगत-साम्य—

(१) श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनोंमें ही देवताओं, उपदेवताओं (राक्षस, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, किन्नर, यक्ष, वानर, रीछ आदि) का उल्लेख है। दोनों ग्रन्थोंमें इस उपदेवता वर्गको जन्म-सिद्ध मानकर ही वर्णन किया गया है। इस वर्गमें दोनों ग्रन्थोंके अनुसार कामरूपत्व अर्थात् इच्छानुसार रूप बना लेनेकी शक्ति है।

(२) श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस, दोनों ग्रन्थोंमें विमानोंका वर्णन है (श्रीमद्भागवत, १०.७६ में शाल्वके 'सौभ' नामक विमानका वर्णन है तथा श्रीरामचरितमान, ६।११६.४, ७.४ में पुष्पक विमानका विवेचन है।)

(३) श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनों ग्रन्थोंमें दिव्यास्त्रोंके प्रयोगका वर्णन है। इन दिव्यास्त्रोंमें आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र आदि तो सामान्य अस्त्र हैं और ब्रह्मास्त्र जैसे विशेष दिव्यास्त्रोंका वर्णन है।

(४) श्रीमद्भागवतमें राक्षसों द्वारा मायाका प्रयोग, माया-युद्धका अनेक स्थानोंपर वर्णन है। (भा., ४.१० में) ध्रुवके विरुद्ध यक्षों द्वारा भी मायाके प्रयोगोंका तथा (भा., १०।७६.७-८ में) शाल्व द्वारा माया प्रयोग-विवेचन है। (मानस, ६।५१.१-५, ६।८५.१-५, ६।१००.१-८ छं.) में राक्षसों द्वारा माया-युद्ध और मायाके प्रयोगका वर्णन है।

(५) श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णके अनेक रूपत्वका वर्णन है। देवर्षि नारदको वे प्रत्येक रानियोंके भवनमें एक ही समय उपस्थित मिले थे (भा., १०.६९)। श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामके अनेक रूपत्वका वर्णन दो स्थानोंपर है। एक तो (मानस, १।२००.७ में) माता कौशल्याको

दो स्थानोंपर प्रकट होकर स्पष्ट किया तथा दूसरे वनसे लौटकर समस्त अयोध्यावासियोंसे अनेक रूप होकर एक साथ मिलते हैं—

सानुज मिलि पल महुँ सब काहू। कीन्ह दूरि दुखु दारुन दाहू॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं। जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं॥

(मानस, २।२४३.३-४)

अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला॥

(मानस, ७।५५)

श्रीजानकीका भी अनेक रूपत्व प्रकट है—

सीय सासु प्रति बेष बनाई। सादर करइ सरिस सेवकाई॥

(मानस, २।२५१.२)

(६) श्रीमद्भागवत (१०।३.९-१९) में श्रीकृष्णके चतुर्भुज रूपमें आविर्भूत होने तथा (८.१८.१-३) में भगवान् वामनका चतुर्भुज प्रकट होना वर्णित है। श्रीरामचरितमानस, (१.१९१. छं १) में भी श्रीरामके चतुर्भुज रूपमें आविर्भूत होनेका वर्णन है। दोनों ही ग्रन्थोंमें श्रीराम एवं श्रीकृष्णका माताओंकी प्रार्थनापर शिशु-रूप होना वर्णित है।

(७) श्रीमद्भागवत, (१०।७.३५-३६ एवं १०।८.३७-३९) में श्रीकृष्णने माताको मुखमें विश्वका दर्शन कराया है। श्रीरामचरितमानस (१।२०१) में इसी प्रकार श्रीराम द्वारा माताको सम्पूर्ण विश्व दिखानेका वर्णन है।

सिद्धान्तगत-साम्य—

(१) श्रीमद्भागवत, (१।२.६) एवं श्रीरामचरितमानस (७।१२९.२), दोनों ग्रन्थोंका लक्ष्य जीवमात्रको जन्म-मरणसे छुटकारा दिलाना है। इसके साधनके रूपमें दोनों ग्रन्थ भगवद्भक्तिको ही मुख्य मानते हैं।

(२) दोनों ही ग्रन्थ भगवद्कथामें अनुरागको मुख्य मानते हैं। यह कथा अनुराग ही भव-सागरसे पार होनेका आधार है (भा., १।२.६)—

भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा॥

(मानस, ७।५२.३)

(३) श्रीमद्भागवत (१२।३.५) एवं श्रीरामचरितमानस दोनों ही ग्रन्थोंमें चारों युगोंके साधनोंका विवेचन है—

कृतजुग सब जोगी बिग्यानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी॥
त्रेताँ बिबिध जग्य नर करहीं। प्रभुहिं समर्पि कर्म भव तरहीं॥
द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा॥
कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥

(मानस, ७।१०२.१-४)

(४) दोनों ही ग्रन्थोंमें कलि-कालका साधन (भा., १२।३.५१) भगवन्नाम ही माना है। भगवन्नामसे ही कलिमें उद्धार होता है। अतः कलिकी प्रशंसा की है—

एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥

(मानस, ७।१२९.५-६)

आध्यात्मिक-साम्य—

साधन ग्रन्थ कहते हैं कि जीवके साथ तीन ग्रन्थियाँ होती हैं। (१) ब्रह्म-ग्रन्थि, (२) विष्णु-ग्रन्थि, और (३) रुद्र-ग्रन्थि। इन तीनोंका भेदन होनेपर ही मुक्ति होती है।

श्रीराम एवं श्रीकृष्ण दोनों ही मानस एवं भागवतके अनुसार ब्रह्माकी प्रार्थनासे अवतीर्ण होते हैं, अतः ब्रह्म-ग्रन्थिका तो प्रश्न नहीं उठता। दोनों चतुर्भुज शंख-चक्र-गदा-पद्म-युक्त ही प्रकट होते हैं, इससे सिद्ध है कि स्वयं विष्णु हैं, अतः यहाँ भी न ग्रन्थि है और न ग्रन्थिका भेदन। अवतार-लीलाओंमें यह प्रकट करना है कि ग्रन्थि भेदन मनुष्यको करना ही पड़ता है। शिव-धनुषको रुद्र-ग्रन्थिका प्रतीक कहा गया है। इसीसे धनुर्भङ्ग दोनों अवतारोंमें है। इस समतामें किंचित अन्तर है। श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं इसलिए वे किशोर होनेपर भी मर्यादाके अनुसार ताड़का-बध करते हैं, वह भी बाण प्रहारसे। वल्लभाचार्यजी (सुबोधिनी, १०.६) 'अविद्या पूतना.....' कहते हैं। इसी प्रकार ताड़का भी अविद्या है। श्रीकृष्ण तो लीला-पुरुषोत्तम हैं अतः दूध पीते-पीते ही पूतनाको मार देते हैं। श्रीराम धनुर्भङ्ग कर जानकीको स्वीकार करते हैं। सामान्य लोक-मर्यादाका बंधन लीला-पुरुषोत्तमको स्वीकार नहीं। वह तो धनुष तोड़नेके पूर्व ही सम्पूर्ण ब्रजलीला समाप्त कर देते हैं। रासलीलामें भी धनुष कोई

बाधा नहीं देता। श्रीराम तो धनुष-भङ्गके बहुत समय बाद रावण-वध करते हैं—'मोह दशमौलि तद् भ्रात अहंकार' (विनयपत्रिका, ५८.४) परन्तु श्रीकृष्ण धनुर्भङ्गके पश्चात् ही अहंकार नष्ट करनेमें दीर्घ समय नहीं देते। अगले दिवल ही कंस-वध कर देते हैं। वल्लभाचार्यजीके तत्वदीप-निबन्धके अनुसार कंस अहंकार है।

कथा-साम्य—

(१) श्रीमद्भागवत स्कन्ध ४ में शिव चरितके अन्तर्गत अध्याय ३ श्लोक ८-१४ में सतीका अपने पिताके घर जानेका आग्रह तथा श्लोक १६-२५ में भगवान् शंकरके द्वारा सतीको समझाया जाना है एवं अध्याय ४ श्लोक ४.८ में सतीका दक्षयज्ञमें पहुँचना और सत्कृत न होना, श्लोक ९ में उस यज्ञमें शिवके भागका न होना तथा श्लोक २४-२७ सतीके देह-त्यागका वर्णन है। अध्याय ५ में भगवान् शिवके द्वारा वीरभद्रका भेजा जाना और वीरभद्रके द्वारा दक्ष-यज्ञका विध्वंस वर्णित है।

श्रीरामचरितमानसमें (१।५९.७ से १।६४.३ तक) दक्षके यज्ञका वर्णन, सतीके जानेका आग्रह, शिव द्वारा समझाया जाना, सतीका पितृगृहमें पहुँचकर यज्ञमें भगवान् शिवका भाग न देखकर दुःखी होना और दक्ष एवं सभाको फटकारते हुए योगाग्निमें शरीरको भस्म कर देना, भृगु द्वारा शिवगणोंके उत्पातसे यज्ञ-रक्षा, शिवके द्वारा वीरभद्रको भेजकर दक्ष-यज्ञका विध्वंस। इसमें भगवान् शंकरका सतीको समझाना बहुत कुछ वही है जो भागवतमें है। श्रीमद्भागवतकी कथा कुछ संक्षिप्त अवश्य कर दी गयी है, किन्तु संकेत सबका है।

(२) श्रीमद्भागवत[1] एवं श्रीरामचरितमानस[2] दोनों ही ग्रन्थोंमें श्रीकृष्ण और श्रीरामके सहयोगमें रहनेवालोंका परम सौभाग्य तो बतलाया ही गया है। इसके साथ ही यदुवंशियोंको अत्यन्त भाग्यहीन (भा., ३।२.८) कहा गया है और मानस (१।१५.३) में भी—

सिय निंदक अघ ओघ नसाए

(३) पूर्व जन्मकी स्मृतियुक्त महापुरुष विद्याध्ययन आदिमें रुचि नहीं लेते हैं। यह वर्णन श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें समान रूपसे वर्णित है।

---

१. भा., १०।१२.१२। २. मानस, १।१५.२।

श्रीमद्भागवत (५।८.५-६) में जड़भरत उत्पत्तिसे पूर्व जन्मके ज्ञानके कारण अपनेको पागल दिखलाते रहे। पिता सब प्रयत्न करके हार गये, कई महीनोंमें भी उन्होंने गायत्री याद नहीं की।

इसी प्रकार श्रीरामचरितमानस (७।१०८.८) में काकभुशुण्डिकी अध्ययनमें कोई रुचि नहीं—

प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई। हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई॥

वर्णनात्मक साम्य—

श्रीमद्भागवतका विराट् वर्णन

पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम्।
महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे॥
द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरूरुद्वयं वितलं च।
महीतलं तज्जघनं महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणान्ति॥
उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य।
तपो ररार्टीं विदुरादिपुंसः सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः॥
इन्द्रादयो बाहव आहुरस्राः कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः।
नासत्यदस्रौ परमस्य नासे घ्राणोऽस्यगन्धो मुखमग्निरिद्धः॥
द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत्पतङ्गः पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च।
तद्भ्रूविजृम्भः परमेष्ठिधिष्ण्यमापोऽस्य तालू रस एव जिह्वा॥
छन्दांस्यनन्तस्य शिरो गृणन्ति दंष्ट्रा यमः स्नेहकला द्विजानि।
हासो जनोन्मादकरी च माया दुरन्तसर्गो यदपाङ्गमोक्षः॥
व्रीडोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभो धर्मः स्तनोऽधर्मपथोऽस्य पृष्ठम्।
कस्तस्य मेढ्रं वृषणौ च मित्रौ कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघाः॥
नद्योऽस्य नाड्योऽथ तनूरुहाणि महीरुहा विश्वतनोर्नृपेन्द्र।
अनन्तवीर्यः श्वसितं मातरिश्वा गतिर्वयः कर्म गुणप्रवाहः॥
ईशस्य केशान् विदुरम्बुवाहान् वासस्तु संध्यां कुरुवर्य भूम्नः।
अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च स चन्द्रमाः सर्वविकारकोशः॥
विज्ञानशक्तिं महिमामनन्ति सर्वात्मनोऽन्तःकरणं गिरित्रम्।
अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजा नखानि सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशे॥

वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रं मनुर्मनीषा मनुजो निवासः।
गन्धर्वविद्याधरचारणाप्सरः स्वरस्मृतीरसुरानीकवीर्यः॥
ब्रह्माननं क्षत्रभुजो महात्मा विड्ऊरुरङ्घ्रिश्रितकृष्णवर्णः।
नानाभिधाभीज्यगणोपपन्नो द्रव्यात्मकः कर्म वितानयोगः॥

(भा., २।१.२६-३७)

श्रीरामचरितमानसका विराट् वर्णन

बिश्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु॥

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला॥
जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा॥
श्रवण दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी॥
अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला॥
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा॥
रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना॥

अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान॥
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥

(६।१४-१५ क)

श्रीमद्भागवतके अनुसार सती-चरित (भा., ४।३५-४.२७) है तथा श्रीरामचरितमानसके अनुसार सती-चरित (मानस, १।६०.-१।६१)।

श्रीमद्भागवतमें भक्तापराध करनेवालोंका त्रस्त होकर भागना—

तदभिद्रवदुद्वीक्ष्य स्वप्रयासं च निष्फलम्।
दुर्वासा दुद्रुवे भीतो दिक्षु प्राणपरीप्सया॥
तमन्वधावद् भगवद्रथाङ्गं
दावाग्निरुद्धूतशिखो यथाहिम्।
तथानुषक्तं मुनिरीक्षमाणो
गुहां विविक्षुः प्रससार मेरोः॥

दिशो नभः क्ष्मां विवरान् समुद्रां-
ल्लोकान् सपालांस्त्रिदिवं गतः सः ।
यतो यतो धावति तत्र
तत्र सुदर्शनं दुष्प्रसहं ददर्श ॥
अलब्धनाथः स यदा कुतश्चित्
संत्रस्तचित्तोऽरणमेषमाणः ।
देवं विरिञ्चं समगाद् विधात-
स्त्रह्यात्मयोनेऽजिततेजसो माम् ॥

(भा., ६।४ ४६-५२)

प्रत्याख्याती विरिञ्चेन विष्णुचक्रोपतापितः ।
दुर्वासाः शरणं यातः शर्व कैलासवासिनम् ॥

(भा., ६।४.५५)

ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ ।
वैकुण्ठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह ॥
संदह्यमानोऽजितशस्त्रवह्निना
तत्पादमूले पतितः सवेपथुः ।
आहाच्युतानन्त सदीप्सित प्रभो
कृतागसं माव हि विश्वभावन ॥

(भा., ६।४.६०-६१)

ब्रह्मंस्तद् गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम् ।
क्षमापय महाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति ॥

(भा., ६।४.७१)

श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामके बाणके भयसे जयन्तका लोक-लोकान्तरोंमें भ्रमण—

सीता चरन चोंच हति भागा । मूढ़ मंदमति कारन कागा ॥
चला रुधिर रघुनायक जाना । सींक धनुष सायक संधाना ॥
अति कृपाल रघुनायक सदा दीन पर नेह ।
ता सन आइ कीन्ह छलु मूरख अवगुन गेह ॥

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा॥
धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं॥
भा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका॥
काहूँ बैठन कहा न ओही। राखि को सकइ राम कर द्रोही॥

(मानस, ३।०.७-१.५)

इस प्रसंगमें यह वैषम्य भी ध्यान देने योग्य है कि श्रीमद्भागवतमें दुर्वासाको ब्रह्मा, रुद्र, विष्णुने किस प्रकार अस्वीकार किया है।[1] किन्तु श्रीरामचरित-

---

१. (क) अलब्धनाथः स यदा कुतश्चित् संत्रस्तचित्तोऽरणमेषमाणः।
देवं विरिञ्चं समगाद् विधातस्त्रह्यात्मयोनेऽजिततेजसो माम्॥
स्थानं मदीयं सहविश्वमेतत् क्रीडावसाने द्विपरार्धसंज्ञे।
भ्रूभङ्गमात्रेण हि संदिधक्षोः कालात्मनो यस्य तिरोभविष्यति॥
अहं भवो दक्षभृगुप्रधानाः प्रजेशभूतेशसुरेशमुख्याः।
सर्वे वयं यन्नियमं प्रपन्ना मूर्ध्न्यर्पितं लोकहितं वहामः॥

(भा., ६।४.५२-५४)

(ख) वयं न तात प्रभवाम भूम्नि यस्मिन् परेऽन्येऽप्यजजीवकोशाः।
भवन्ति काले न भवन्ति हीदृशाः सहस्रशो यत्र वयं भ्रमामः॥
अहं सनत्कुमारश्च नारदो भगवानजः।
कपिलोऽपान्तरतमो देवलो धर्म आसुरिः॥
मरीचिप्रमुखाश्चान्ये सिद्धेशाः पारदर्शनाः।
विदाम न वयं सर्वे यन्मायां मायया ऽऽवृताः॥
तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं दुर्विषहं हि नः।
तमेव शरणं याहि हरिस्ते शं विधास्यति॥

(भा., ६।४.५६-५६)

(ग) ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ।
वैकुण्ठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह॥
संदह्यमानोऽजितशस्त्रवह्निना तत्पादमूले पतितः सवेपथुः।
आहाच्युतानन्त सदीप्सित प्रभो कृतागसं माव हि विश्वभावन॥ ★

मानसमें यह सब विस्तारसे नहीं है। केवल 'ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका' लिखकर काम चला लिया है। इसमें इन तीनों लोकोंके अधीश्वरोंकी मर्यादाका संरक्षण भी है।

श्रीमद्भागवतमें महान विभूतियोंका मोह और श्रीकृष्ण-माहात्म्य-दर्शन—

तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुट्यनेहसा।
पुरोवदृश्यं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम्॥

★ अजानता ते परमानुभावं कृतं मयाघं भवतः प्रियाणाम्।
विधेहि तस्यापचितिं विधातर्मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोऽपि॥

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा॥

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः।
वशिकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥

मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम्।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत् कालविद्रुतम्॥

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥

उपायं कथयिष्यामि तव विप्र शृणुष्व तत्।
अयं ह्यात्माभिचारस्ते यतस्तं यातु वैभवान्।
साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम्॥
तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे।
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा॥
ब्रह्मंस्तद् गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम्।
क्षमापय महाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति॥

(भा., ९।४.६०-७१)

यावन्तो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि ।
मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः ॥

इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे ।
तावन्त एव तत्राब्दं क्रीडन्तो विष्णुना समम् ॥

एवमेतेषु वेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मभूः ।
सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथञ्चन ॥

एवं सम्मोहयन् विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् ।
स्वयैव मायया जोऽपि स्वयमेव विमोहितः ॥

तभ्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि ।
महती तरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः ॥

तावत् सर्ववत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् ।
व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥

चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदाराजीवपाणयः ।
किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ॥

श्रीवत्साङ्गददोरत्नकम्बुकङ्कणपाणयः ।
नपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्राङ्गुलीयकैः ॥

आङ्घ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः ।
कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ॥

चन्द्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापाङ्गवीक्षितैः ।
स्वकार्यानामिव रजःसत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकाः ॥

आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः ।
नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक् पृथगुपासिताः ॥

अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः ।
चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता महदादिभिः ॥

कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः ।
स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ॥

सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्तयः ।
अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम् ॥

एव सकृद् ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् ।
यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ॥

ततोऽतिकुतुकोद्वृत्तस्तिमितैकादशेन्द्रियः ।
तद्धाम्नाभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीव पुत्रिका ॥
(भा., १०।१३.४०-५६)

श्रीरामके सम्बन्धमें सतीका मोह और श्रीरामकी महिमा-दर्शन—

चलीं सती सिव आयसु पाई । करहिं बिचारि करौं का भाई ॥
..... । गईं सती जहँ प्रभु सुखधामा ॥

पुनि पुनि हृदयँ बिचारु करि धरि सीता कर रूप ।
आगें होइ चलि पंथ तेहिं जेहिं आवत नरभूप ॥

लछिमन दीख उमाकृत बेषा । चकित भए भ्रम हृदयँ बिसेषा ॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा । प्रभु प्रभाउ जानत मतिधीरा ॥
सती कपटु जानेउ सुरस्वामी । सबदरसी सब अंतरजामी ॥
सुमिरत जाहि मिटइ अग्याना । सोइ सरबग्य रामु भगवाना ॥
सती कीन्ह चह तहँहुँ दुराऊ । देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ ॥
निज माया बलु हृदयँ बखानी । बोले बिहसि राम मृदु बानी ॥
जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू । पिता समेत लीन्ह निज नामू ॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू । बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ॥

राम बचन मृदु गूढ़ सुनि उपजा अति संकोचु ।
सती सभीत महेस पहिं चलीं हृदयँ बड़ सोचु ॥

जाना राम सतीं दुखु पावा । निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा ॥
सतीं दीख कौतुकु मग जाता । आगें रामु सहित श्री भ्राता ॥
फिरि चितवा पाछें प्रभु देखा । सहित बंधु सिय सुंदर बेषा ॥
जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना । सेवहिं सिद्ध मुनीस प्रबीना ॥
देखे सिव बिधि बिष्नु अनेका । अमित प्रभाउ एक तें एका ॥
बंदत चरन करत प्रभु सेवा । बिबिध बेष देखे सब देवा ॥

सतीं बिधात्री इंदिरा देखीं अमित अनूप ।
जेहिं जेहिं बेष अजादि सुर तेहि तेहि तन अनुरूप ॥

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते । सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते ॥
जीव चराचर जो संसारा । देखे सकल अनेक प्रकारा ॥
पूजहिं प्रभुहि देव बहु बेषा । राम रूप दूसर नहिं देखा ॥

अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न बेष घनेरे॥
सोइ रघुबर सोइ लछिमनु सीता। देखि सती अति भईं सभीता॥
हृदय कंपि तन सुधि कछु नाहीं। नयन मूदि बैठीं मग माहीं॥
बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी। कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी॥

(मानस, १।५१.४,८-५३, ५३.३-५४.७)

वर्षा एवं शरद वर्णन—

श्रीमद्भागवतमें—

निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति न ग्रहाः।
यथा पापेन पाखण्डा न हि वेदाः कलौ युगे॥

श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूका व्यसृजन् गिरः।
तूष्णीं शयानाः प्राग् यद्वद् ब्राह्मणानियमात्यये॥

आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः।
पुंसो यथास्वतन्त्रस्य देहद्रविणसम्पदः॥

हरिता हरिभिः शष्पैरिन्द्रगोपैश्च लोहिताः।
उच्छिलीन्ध्रकृतच्छाया नृणां श्रीरिव भूरभूत्॥

क्षेत्राणि सस्यसम्पद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः।
धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम्॥

जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया।
अबिभ्रद् रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया॥

सरिद्भिः सङ्गतः सिन्धुश्चुक्षुभेऽश्वसनोर्मिमान्।
अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग् यथा॥

गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः।
अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाधोक्षजचेतसः॥

मार्गाबभूवुः सन्दिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः।
नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव॥

लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः।
स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव॥

अनुवियति माहेन्द्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात्।
व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान् पुरुषो यथा॥

न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्धनैः ।
अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ।।

मेघागमोत्सवाहृष्टाः प्रत्यनन्दञ्छिखण्डिनः ।
गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाच्युतजनागमे ।।

पीत्वापः पादपाः पद्भिरासन्नानात्ममूर्तयः ।
प्राक् क्षामास्तपसा श्रान्ता यथा कामानुसेवया ।।

सरस्स्वशान्तरोधस्सु न्यूषुरङ्गापि सारसाः ।
गृहेष्वशान्तकृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ।।

जलौघैर्निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे ।
पाखण्डनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ।।

व्यमुञ्चन् वायुभिर्नुन्ना भूतेभ्योऽथामृतं घनाः ।
यथाऽऽशिषो विश्पतयः काले काले द्विजेरिताः ।।

शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः ।
भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ।।

व्योम्नोऽब्दं भूतशाबत्यं भुवः पङ्कमपांमलम् ।
शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाशुभम् ।।

सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः ।
यथात्यक्तैषणाः शान्ता मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ।।

गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम् ।
यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ।।

नैवाविदन् क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः ।
यथाऽऽयुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः ।।

गाधवारिचरास्तापमविन्दञ्छरदर्कजम् ।
यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ।।

शनैः शनैर्जहुः पङ्कं स्थलान्यामं च वीरुधः ।
यथाहंममतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ।।

निश्चजाम्बुरभूत्तूष्णीं समुद्रः शरदागमे ।
आत्मन्युपरते सम्यङ्मुनिर्व्युपरतागमः ।।

केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन् कर्षका दृढसेतुभिः ।
यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेनयोगिनः ।।

शरदर्काशुजांस्तापान् भूतानामुडुपोऽहरत् ।
देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम् ॥
खमशोभन निर्मेघं शरद्विमलतारकम् ।
सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥

(भा., १०।२०.८ से २४ तक, ३३ से ४३ तक)

श्रीरामचरितमानसका वर्षा-शरद-वर्णन—

हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पंथ ।
जिमि पाखंड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रन्थ ॥

दादुर धुनि चहु दिसा सुहाई । बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई ॥
नव पल्लव भए बिटप अनेका । साधक मन जस मिलें बिबेका ॥
अर्क जवास पात बिनु भयऊ । जस सुराज खल उद्यम गयऊ ॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी । करइ क्रोध जिमि धरमहि दूरी ॥
ससि सम्पन्न सोह महि कैसी । उपकारी कै सम्पति जैसी ॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा । जनु दंभिन्ह कर मिला समाजा ॥
महाबृष्टि चलि फूटि किआरीं । जिमि सुतंत्र भएँ बिगरहिं नारीं ॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना । जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ॥
देखिअत चक्रबाक खग नाहीं । कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं ॥
ऊषर बरषइ तृन नहिं जामा । जिमि हरिजन हियँ उपज न कामा ॥
बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा । प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना । जिमि इंद्रिय गन उपजें ग्याना ॥

कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं ।
जिमि कपूत के उपजें कुल सद्धर्म नसाहिं ॥
कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग ।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग ॥

बरषा बिगत सरद रितु आई । लछिमन देखहु परम सुहाई ॥
फूलें कास सकल महि छाई । जनु बरषाँ कृत प्रगट बुढ़ाई ॥
उदित अगस्ति पंथ जल सोषा । जिमि लोभहि सोषइ संतोषा ॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा । संत हृदय जस गत मद मोहा ॥
रस रस सूख सरित सर पानी । ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी ॥

जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥
पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी॥
जल संकोच बिकल भइँ मीना। अबुध कुटुंबी जिमि धनहीना॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी॥

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि॥

(मानस, ४।१४.०-१६.०)

रङ्गशालामें श्रीकृष्ण (भा., १०।४३.१७) और श्रीरामके अनेक रूपोंमें दर्शन—

देखहिं रूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर रसु धरें सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी॥
रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रगट कालसम देखा॥
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूषन लोचन सुखदाई॥

नारि बिलोकहिं हरषि हियँ निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप॥

बिदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक जाति अवलोकहिं कैसें। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसें॥
सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सांत सुद्ध सम सहज प्रकासा॥
हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुख दाता॥

(मानस,१।२४०.५-२४१.५)

सत्संग माहात्म्य--

न रोधयति मां योगो न सांख्यं धर्म एव च।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूतँ न दक्षिणा॥

व्रतानि यज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमा यमाः।
यथावरुन्धे सत्सङ्गः सर्वसङ्गापहो हि माम्॥

सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः।
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः॥

विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः ।
रजस्तमः प्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन् युगेऽनघ ॥
बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः ।
वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः ॥
सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः ।
व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे ॥
ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः ।
अव्रतातप्ततपसः सत्सङ्गान्मामुपागताः ॥
केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः ।
येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा ॥
यं न योगेन सांख्येन दानव्रततपोऽध्वरैः ।
व्याख्यास्वाध्यायसंन्यासैः प्राप्नुयाद् यत्नवानपि ।

(भा., ११।१२.१-६)

श्रीमद्भागवतके अनुसार श्रीरामचरितमानसमें—

सुनि आचरज करै जनि कोई । सतसंगति महिमा नहिं गोई ॥
बालमीक नारद घटजोनी । निज निज मुखनि कही निज होनी ॥
जलचर थलचर नभचर नाना । जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥
मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई ॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ । लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ॥
बिनु सतसंग बिबेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
सतसंगत मुद मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परस कुधात सुहाई ॥

(मानस, १।२.२-६)

उदरमें ब्रह्माण्ड-दर्शन—

श्रीमद्भागवतमें—

तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः
सोऽन्तश्शरीरं मशको यथाविशत् ।
तत्राप्यदो न्यस्तमचष्ट कृत्स्नशो
यथा पुरामुह्यदतीव विस्मितः ॥

खं रोदसी भगणानद्रिसागरान्
द्वीपान् सवर्षान् कुकुभः सुरासुरान् ।
वनानि देशान् सरितः पुराकरान्
खेटान् व्रजानाश्रमवर्णवृत्तयः ॥
महान्ति भूतान्यथ भौतिकान्यसौ
कालं च नानायुगकल्पकल्पनम् ।
यत् किंचिदन्यद् व्यवहारकारणं
ददर्श विश्वं सदिवावभासितम् ॥
हिमालयं पुष्पवहां च तां नदीं
निजाश्रमं तत्र ऋषीनपश्यत् ।
विश्वं विपश्यञ्छ्वसिताच्छिशोर्वै
वहिर्निरस्तो न्यतपल्लयाब्धौ ॥

(भा., १२।८.२७-३०)

उत्तरकाण्डमें श्रीरामके उदरमें काकभुशुण्डिका ब्रह्माण्ड-दर्शन—

उदर माझ सुनु अंडज राया । देसेउँ बहु ब्रह्मांड निकाया ॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका । रचना अधिक एक ते एका ॥
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा । अगनित उडगन रबि रजनीसा ॥
अगनित लोकपाल जम काला । अगनित भूधर भूमि बिसाला ॥
सागर सरि सर बिपिन अपारा । नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा ॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर । चारि प्रकार जीव सचराचर ॥

जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ ॥

एक एक ब्रह्माण्ड महुँ रहउँ बरष सत एक ।
एहि बिधि देखत फिरउँ मैं अंड कटाह अनेक ॥

लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता । भिन्न बिष्नु सिव मनु दिसित्राता ॥
नर गंधर्ब भूत बेताला । किंनर निसिचर पसु खग ब्याला ॥
देव दनुज गन नाना जाती । सकल जीव तहँ आनहि भाँती ॥
महि सरि सागर सर गिरि नाना । सब प्रपंच तहँ आनइ आना ॥
अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा । देखेउँ जिनस अनेक अनूपा ॥

अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी॥
दसरथ कौसल्या सुनु ताता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता॥
प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखउँ बालबिनोद अपारा॥

भिन्न भिन्न मैं दीख सबु अति बिचित्र हरिजान।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ आन॥

सोइ सिसुपन सोइ सोभा सोइ कृपाल रघुबीर।
भुवन भुवन देखत फिरउँ प्रेरित मोह समीर॥

भ्रमत मोहि ब्रह्माण्ड अनेका। बीते मनहुँ कल्प सत एका॥
फिरत फिरत निज आश्रम आयउँ। तहँ पुनि रहि कछु काल गवाँयउँ॥
निज प्रभु जन्म अवध सुनि पायउँ। निर्भर प्रेम हरषि उठि धावउँ॥
देखेउँ जन्म महोत्सव जाई। जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई॥
राम उदर देखउँ जग नाना। देखत बनइ न जाइ बखाना॥
तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना। माया पति कृपाल भगवाना॥
करउँ बिचार बहोरि बहोरी। मोह कलिल ब्यापित मति मोरी॥
उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह बिसेषा॥

देखि कृपाल बिकल मोहि बिहँसे तब रघुबीर।
बिहँसतहीं मुख बाहेर आयउँ सुनु मतिधीर॥

सोइ लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम।
कोटि भांति समुझावउँ मनु न लहइ बिश्राम॥

(मानस, ७।७९।३-८२ ख)

अत्युक्ति-साम्य—

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनोंमें ही अनेक स्थानोंपर अत्युक्तियाँ हैं। यह अत्युक्तियाँ कालके सम्बन्धमें, संख्याके सम्बन्धमें और दूरीके सम्बन्धमें है। स्मरणीय है कि अत्युक्ति काव्यका दूषण नहीं, अपितु भूषण है, जो प्रायः सभी पुराणों एवं काव्योंमें सहज रूपसे समाविष्ट है तथा काव्यके सौन्दर्यको अभिव्यक्त करनेमें सहायक है। इन सबका संकलन तो नहीं दिया जा रहा है, किन्तु उदाहरणार्थ कुछ संकेत दिये जा रहे हैं—

(क) कालके सम्बन्धमें—

(१) श्रीमद्भागवत ५।७.८ में कहा गया है कि भरत 'वर्षायुक्तसहस्र'

पर्यन्त राज्य करते रहे। अयुत सहस्रको आप छोटा भी कहें तो एक करोड़ वर्ष तो मानना ही पड़ेगा।

(२) इसी प्रकार (६।१४.११) तस्य भार्या सहस्राणां सहस्राणि दशा भवन् है अर्थात् चित्रकेतुके एक अरब पत्नियां थीं।

(ख) संख्याके सम्बन्धमें—

(१) यादवोंके वर्णनमें भी कोई सीमा नहीं है। (श्रीमद्भागवत १०।९०.४१) में ३ करोड़ ८८ सहस्र तो यदुकुल कुमारोंको पढ़ानेवाले आचार्य थे।) ऐसी स्थितिमें कितने यदुवंशी होंगे और बारह योजनकी द्वारिकापुरीमें वे कैसे समायेंगे ?

मथुरापर जरासंधने अठारह बार आक्रमण (१०।५०.४२, १०।५२.६) किया है और प्रत्येक बार तेइस अक्षौहिणी सेना लेकर आता था। महाभारत युद्धमें कुल अठारह अक्षौहिणी सेना दोनों पक्षोंकी सम्मिलित थीं। अतः मथुरामें यदि उपरोक्त २३ अक्षौहिणी सेना घेरा डालती है, तो उसका विस्तार कितना होगा ? उससे गोकुल, वृन्दावन आदि अछूते कैसे रह गये, यह समझना ही कठिन है।

श्रीरामचरितमानस—

श्रीरामचरितमानसमें यह अत्युक्तियाँ इसी प्रकारकी हैं। रावणके सम्बन्धमें कथन है—

दिगपालन्ह के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए॥

(मानस, १।१८१.७)

दिग्पालोंमें ईशानके दिग्पाल[1] भगवान् शिव, ऊर्ध्वके ब्रह्मा, अधः के शेष, यह सब रावणके डरसे भाग गये हों, ऐसा तो कहीं भी वर्णन नहीं है।

इसी प्रकार—

---

१. पूर्वके दिक्पाल इन्द्र, नैऋत्यके निऋति, दक्षिणके यम, आग्नेयके अग्नि, पश्चिमके वरुण, वायव्यके वायु, उत्तरके कुबेर, ईशानके रुद्र, ऊपरके ब्रह्मा और नीचेके शेष हैं। (विश्व-कोष)

भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न सुतंत्र।

—मानस, १.१८२ (क)

कहना भी अत्युक्ति है, क्योंकि विश्वमें ही बालि था, सहस्रार्जुन था, बाणासुर भी था जिनसे रावण पराजित हुआ था और अयोध्या तो रावणके नियंत्रणमें कभी रही नहीं।

संख्याके सम्बन्धमें—

इसी प्रकार संख्याके सम्बन्धमें श्रीरामकी सेनाका जो वर्णन है—

अस मैं सुना श्रवन सुना दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर॥

(मानस, ५।५४.३)

अठारह पद्मयूथप अर्थात् सेनापति हैं। अब यदि एक यूथमें दस वानर सैनिक भी मान लिये जायें तो वानरोंकी बड़ी सेना लंकामें कहाँ खड़ी होगी? क्योंकि लंका जिस पर्वत शिखरपर थी, उसमें तीन शिखर थे, इसीसे उसे त्रिकूट कहते हैं। इस त्रिकूट पर्वतका क्षेत्रफल ही बारह योजन बतलाया गया है। वानर सेना जिस त्रिकूट शिखरपर है, वह 'सुबेल' है। द्वितीय शिखरपर लंका और तृतीय शिखरपर रावणका अखाड़ा।

कालके सम्बन्धमें—

श्रीरामचरितमानसमें प्रतापभानु-चरितमें—

जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग॥

(मानस, १।१५५)

वर्णनसे लगता है कि प्रतापभानु जब कपटी मुनिके पास पहुँचा—युवा ही था। किसी-किसी यज्ञको करनेमें ढाई-तीन वर्ष लगते हैं। अगले वर्णनके साथ यह टिप्पणी दी जा रही है। यदि इन बड़े यज्ञोंको एक सहस्र बार भी करे तो उसकी आयु कई सहस्र वर्षकी होनी चाहिये। जो वर्णनसे सम्भव नहीं लगता।

इसी प्रकार—

'कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे'। (मानस, ७।२३.१)

एक अश्वमेध यज्ञ एक हजार दिन[1] में पूरा होता है। कोटिन्हको अगर तीन करोड़ मानें तो लगभग आठ करोड़ वर्षमें यज्ञ होंगे, जबकि श्रीरामने सभीके मतोंसे ११ या १६ हजार वर्ष तक राज्य किया है। (स्मरण रखने योग्य है कि सौ अश्वमेध यज्ञ करनेवाला जन्मान्तरमें इन्द्र हो जाता है इसीसे इन्द्रका नाम 'शतक्रतु' है पृथुके सौवें अश्वमेध यज्ञको इन्द्रने नष्ट किया था—श्रीमद्भागवत, ४।१९.० के आधारपर)।

कविसत्य[2]—

भारतीय साहित्यकी कुछ मान्यताएँ ऐसी हैं जो बहुत प्राचीन परम्परासे चली आ रही हैं, जैसे—

(क) कीट-भृङ्ग न्याय।
(ख) चकोरका चन्द्रमापर अनुराग।
(ग) चक्रबाक जोड़ेका रात्रिमें वियुक्त रहना।
(घ) स्वातीकी वर्षासे सीपमें मुक्ता उत्पन्न होना।
(ङ) हंसका नीर-क्षीर विवेक।

ये प्रकृतिके क्षेत्रमें सत्य नहीं हैं, किन्तु भारतीय साहित्य परम्परामें इन्हें सत्य माना गया है। प्रायः इसी रूपमें इनको सभी कवियोंने अपनाया है। 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' ने 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' में इनको 'कविसत्य' ही कहा है। इनका सत्य भी समझ लेने योग्य है—

(क) कीट-भृङ्ग न्याय—

भृङ्गी कीड़ेको पकड़ती है, हल्का-सा डंक मारकर मूर्छित कर देती है। उसके शरीरपर वह अपने अण्डे दे देती है और कीड़ेको मिट्टीसे बनाये अपने घरमें बन्द कर देती है। मूर्छित होनेके कारण कीड़ा मरता नहीं है, सड़ता भी नहीं। अण्डेमें-से जब भृङ्गीके बच्चे निकलते हैं, तब कीड़ेको खा लेते हैं और घरके बाहर आ जाते हैं। यह देखकर लोगोंमें यही धारणा हो गयी कि क्रीड़ा ही भृङ्गी बन गया।

(ख) चकोरका चन्द्रमापर अनुराग—

अनेक वनोंमें बहुत चकोर हैं। 'कुलू' के यात्री निवासके चौकीदारने

---

१. आश्वलायन श्रौत सूत्र।
२. 'ये कवि सत्य' लेख 'विवेक रश्मि' परमार्थ आश्रम, हरिद्वार।

चकोर पाल रक्खा था। उसका पिंजड़ा चांदनी रातमें बाहर रखकर देख लिया गया। श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र' द्वारा कि चकोर चन्द्रमामें कोई रुचि नहीं लेता। अवश्य ही यदि चांदनीमें उड़ते कीड़े देख लिये जाये तो उनका आखेट कर लेता है।

(ग) चक्रवाकका जोड़ेसे रात्रिमें वियुक्त रहना—

चक्रवाक जलपक्षी है। इसे चकवा-चकवी भी कहते हैं। इस कथनमें कोई तथ्य नहीं है कि चकवा-चकवी रात्रिमें वियुक्त रहते हैं।[1]

(घ) स्वातीकी वर्षासे सीपमें मुक्ता उत्पन्न होना—

मोती किसी स्वातीकी बूँदसे उत्पन्न नहीं होता। मुक्ता शुक्ति समुद्र तलमें होती है। सम्भव ही नहीं है कि यह शुक्ति समुद्र जलसे ऊपर मुख खोले रहे और उसमें समुद्रकी लहरका जल प्रवेश न करे। शुक्तिमें जब कोई रेत-कण प्रवेश कर जाता है, तब उसके चारों ओर शुक्तिमें भीतरके जीवका शरीर-रस एकत्र होता है। इसीसे मुक्ता बनता है। इस प्रकार शुक्तिमें छोटी मूर्तियाँ डालकर उनपर मोतीका पानी चढ़ानेका काम अनेक समुद्री किनारेके स्थानोंमें होता है।

(ङ) हंसका नीर-क्षीर विवेक—

हंस दूध और पानीको पृथक-पृथक नहीं कर सकता है। उसकी चोंचमें ऊपर कोई खट्टा रस निकलता रहता है जिससे शुद्ध दूधमें भी वह चोंच हिलावे तो दूध फट जायेगा। हंस फटे हुए दूधका छेना खाता है। दूध नहीं पीता। इसीको उसका 'नीर-क्षीर विवेक' कह दिया गया है।

हंस मानसरोवरके क्षेत्रमें पाया जाता है। रूसके साइबेरिया क्षेत्रमें भी होता है। ऐसा पक्षी है जो बहुत शीतल स्थान पसन्द करता है। न मानसरोवरमें मोती होता है और न रूसके साइबेरिया प्रदेशमें। हंस भी काई और जलीय घासें ही खाता है। उसके समक्ष छोटे मोती डाल दिया जावे तो उनमें-से कुछ अवश्य चुग लेगा, पर ऐसा तो कबूतर भी करेगा। पक्षियोंको अण्डेका छिलका बनानेके लिए चूनेकी आवश्यकता होती है। इसलिए पक्षी कंकड़ भी चुगते हैं। इसी आवश्यकतासे हंस मोती भी खा ले

---

१. प्रसिद्ध उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा (जो अच्छे शिकारी भी थे) ने इस पक्षीको रात्रिमें साथ जल-क्रीड़ा करते देखा है।

सकता है। मोती उसका मुख्य भोजन नहीं है। इसलिए हंसका मोती चुगना भी कवि सत्य ही है।

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें भी कवि सत्य है। इनके थोड़ेसे उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

श्रीमद्भागवतमें 'कीट-भृङ्ग न्याय' वर्णित है—

कीटः पेशस्कृतं ध्यायन् कुड्यां तेन प्रवेशितः।
याति तत्सात्मतां राजन् पूर्वरूपमसंत्यजन्॥

(भा., ११।९.२३)

श्रीरामचरितमानसमें—

भइ मम कीट भृंग की नाई। (मानस, ३।२४.७)

चकोरकी चन्द्रासक्ति उपमित की गयी है—

'सिय मुख ससि भए नयन चकोरा'

(मानस, १।२२९.३)

चक्रवाक-युग्मका रात्रि वियोग उपमित हुआ है।

संपति चकई भरतु चक मुनि आयस खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजराँ राखे भा भिनुसार॥

(मानस, २।२१५)

हंसका नीर-क्षीर विवेकको निम्न प्रकार उपमित किया गया है—

भरतु हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्ह उजियारी॥

(मानस, २।२३१.६-७)

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें भी गज-मुक्ता और सर्प-मणिकी चर्चा है—

'मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥

(मानस, १।१०.१)

वस्तुतः हाथीके सिरमें मुक्ता होता है या नहीं, सर्पके पास मणि होती है या नहीं यह विवादास्पद है। प्राणि-विज्ञानसे अनभिज्ञ होनेके कारण यह निर्णय करना मेरा कार्य नहीं है, किन्तु वर्तमान समयमें कोई

ऐसे स्थान उपलब्ध नहीं हैं, जहाँ इन दोनोंको सार्वजनिक रूपसे देखा जा सके।

मानस एवं भागवतकी सूक्ष्म समताएँ

श्रीमैथिलीशरण गुप्तका प्रथम काव्य 'भारत-भारती' जब प्रकाशित ही हुआ था, तब उसका प्रारम्भ था—

'पाठक प्रथम सर्वत्र ही जय जानकी जीवन कहो'

वह युग ही या जबकि काव्य नपी-तुली मर्यादाओंके अन्तर्गत आबद्ध था। अनेक विद्वानोंने ध्यान आकर्षित किया कि ग्रन्थका प्रारम्भ 'प' से है जो अशुभाक्षर है, अतः कविने पाठको बदला और अब आप देखते हैं—

वाचक प्रथम सर्वत्र..... ।[1]

श्रीमद्भागवत एवं मानस दोनों ही अद्‌भुत ग्रन्थ हैं। यद्यपि मानसका प्रारम्भ अमृताक्षर 'व' से होता है।

वर्णानामर्थसंघानां..... ।

तुलसी तो 'परमहंस संहिता' श्रीमद्भागवतके इस तथ्यसे परिचित थे कि ग्रन्थका प्रारम्भ 'ज' (जन्माद्यस्य) से होता है जो 'दग्धाक्षर' है और अवश्य ही इससे प्रभावित रहे कि अपने मानसको भाषाबद्ध करनेका प्रारम्भ 'ज' (जो सुमिरत.....) से कर देते हैं।

तथ्य विचार करने योग्य है। श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनों ही संसार और संसारासक्तिको केवल अमृत देनेको ही नहीं है, अपितु मायाके सम्पूर्ण प्रपंचको भस्म करनेके लिए भी हैं। कबीरने ठीक ही कहा है—

'कबिरा खड़ा बजारमें लिए लुआठी हाथ।
जो घर फूँके आपनो चले हमारे साथ॥

क्या कबीरने कोई झोपड़ी भी जलायी? नहीं, 'घर जलाने' में कबीरका जो अभिप्राय है वही जो 'परम हंस संहिता' श्रीमद्भागवतमें 'प्रोज्झित.....।' (१।१.२) से वर्णित है। इसीमें दग्धाक्षर 'ज' प्रारम्भ किया है। इतना ही नहीं, अपितु श्रीमद्भागवतकी दो प्रमुख स्तुतियाँ, मधुर-रसकी सर्वश्रेष्ठ स्तुति

---

१. सरस्वतीकी फाइलें—सन् १९२५।

'गोपीगीत' (१०।३१.१) और निर्गुण स्तुतिमें सर्वश्रेष्ठ वेदस्तुति' (१०।८७.१४) भी 'ज' से प्रारम्भ होती है।

मानसकार तुलसी भागवतकारके ही अनुयायी हैं और इसीलिए दग्धाक्षरके इस महत्वको वह उपेक्षित नहीं कर सके। ग्रन्थका प्रारम्भ तो 'जो सुमिरत सिधि होइ·····' (मङ्गलाचरणका सोरठा १) से किया ही है, श्रीजानकी भी प्रथम स्तुति 'जय जय गिरिवर राज किशोरी' (१।२३४.५) से करती हैं। मानसकी प्रथम स्तुति भी 'जय जय सुरनायक जन सुखदायक' (१.१८५. छं. १) से तथा अन्तिम स्तुतिसे पूर्व सनकादिकी स्तुति 'जय भगवंत अनंत अनामय' (७।३३.२) 'ज' से है। साहित्यमें इन अक्षरोंका विचार अत्यन्त सूक्ष्म माना जाता है। यहाँ इतनी सूक्ष्मता तक व्यास एवं तुलसीका विचार सम है, किन्तु रीति-परम्पराके यह सर्वथा विपरीत है, पर इन ग्रन्थोंमें सर्वथा अनुकूल पद्धतिको ग्रहण किया है।

वैषम्य

शैलीगत-वैषम्य—

(१) श्रीमद्भागवतमें ४, ५, ६, ८, ९, १० से लेकर १५ दिन, २७ दिन आदिके पाठ भी होते हैं। इस प्रकारके पाठ श्रीरामचरितमानसके नहीं होते। श्रीमद्भागवतके इन पाठोंकी विधि प्राप्त है, किन्तु श्रीरामचरितमानसकी ऐसी कोई परम्परा प्राप्त नहीं है।

(२) श्रीमद्भागवतमें अनुष्टुप छन्द धाराबद्ध चलता है। बीच-बीचमें कुछ गिने छन्दोंके पश्चात् कोई दूसरा छन्द नहीं है, किन्तु रामचरितमानसमें ८ या अधिक अर्द्धालियोंके पश्चात् दोहा या सोरठाकी अनिवार्य समायोजना है।

(३) श्रीमद्भागवतमें स्कन्ध ४ के ७ वें अध्यायमें भगवत-स्तुतिमें प्रत्येक देवता अलग-अलग छन्दोंमें स्तुति करते हैं। इसी प्रकार स्कन्ध ७ के ८वें अध्यायमें भगवान् नृसिंहकी अलग-अलग देवता पृथक्-पृथक् छन्दोंमें स्तुति करते हैं। श्रीरामचरितमानसमें इस प्रकार एकके बाद दूसरा छन्द किसी भी स्तुतिमें परिवर्तित नहीं किया गया है। जहाँ भी स्तुतियाँ हैं वह एक ही छन्दमें है। श्रीमद्भागवतमें उपरोक्त दोनों स्तुतियोंमें जैसे यक्ष,

किम्पुरुष, पितर, सिद्ध, विद्याधर, नाग, गन्धर्व आदि स्तुति करते हैं, वैसे यह वर्ग श्रीरामचरितमानसमें कहीं स्तुति नहीं करता है।

(४) श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णकी किसी लीलामें इन्द्रका प्रत्यक्ष सहयोग नहीं है। इन्द्र गोवर्धन-धारण प्रसंगमें बाधक होते हैं। भौमासुर-वधमें प्रार्थी होते हैं, फिर बाधक बन जाते हैं। इन्द्रके श्रीकृष्णसे मिलनेके कई प्रसंग वर्णित हैं। श्रीरामचरितमानसमें इन्द्र आदि अन्य देवता अप्रत्यक्ष रूपसे श्रीरामके राज्याभिषेकमें बाधा उपस्थित करते हैं, किन्तु प्रत्यक्ष रूपसे वे कहीं विरोधी नहीं बनते हैं। श्रीरामको लंका युद्धमें वे अपना रथ भी भेजते हैं। (६।८८.२) अमृत वर्षा (६।११३.५) करके मृत वानर-रीछोंको जीवित भी करते हैं, श्रीरामके विवाहमें देवता आते हैं पर प्रत्यक्ष नहीं होते।

(५) श्रीमद्भागवतमें कहीं भी भागवतको कल्पवृक्षका रूपक स्पष्ट नहीं किया गया है, किन्तु श्रीरामचरितमानसमें मानस-सरका रूपक विस्तार सहित बालकाण्ड दोहा ३५ से दोहा ४३ तक मानस और उससे निकली सरयूका सांगरूपक स्पष्ट किया गया है।

(६) श्रीमद्भागवतका प्रारम्भ किसी देव विशेषकी वन्दनासे नहीं है। श्रीमद्भागवतके किसी स्कन्धके भी प्रारम्भमें कोई वन्दना नहीं है। श्रीमद्भागवतका प्रथम मंगलाचरण 'सत्यं परं धीमहि' है, इस प्रकार गायत्री-स्वरूप है (पद्मपुराण, उ. माहा. ६.६१)।

(७) श्रीमद्भागवतमें सरस्वतीकी उत्पत्ति वर्णित है, किन्तु सरस्वतीकी कोई वन्दना नहीं है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवतमें गणेशका तो नाम भी नहीं है। केवल अमृत-मंथन प्रसंगमें 'विलोक्य विघ्नेश विधिं' (८।७.८) इस 'विघ्नेश' में कुछ टीकाकर गणेशका नाम और अमृत-मंथनमें उनके द्वारा दी गयी बाधा मानते हैं। श्रीरामचरित-मानसका प्रारम्भ ही गणेश एवं सरस्वती वन्दनासे होता है। प्रत्येक काण्डका प्रारम्भ वन्दनासे करते हैं।

(८) श्रीमद्भागवतमें गुरु-वन्दना, सन्त-असन्त वन्दना आदिका निरूपण नहीं है। श्रीरामचरितमानसमें यह प्रसंग बहुत विस्तारसे है। इसमें गुरु-वन्दना, सन्त-वन्दना यहाँ तक कि खल-वन्दना भी है। सन्त-असन्तोंका निरू-पण भी विस्तारसे है।

(९) श्रीमद्भागवतमें नाम-महिमा तो है, किन्तु नाम-वन्दना नहीं है। श्रीरामचरितमानसमें (बालकाण्ड, दोहा १८ से २७ दोहा पर्यन्त) नाम-वन्दना बहुत विस्तारसे दी गयी है।

(१०) श्रीमद्भागवतके वक्ता भगवान् व्यास, शुकदेव या देवर्षि नारद जो भी रहे हैं, किसीको भी अपनेमें दैन्य प्रदर्शितकी कोई आवश्यकता नहीं हुई है।

श्रीरामचरितमानसमें तुलसीदासका दैन्य प्रारम्भसे ही विस्तारसे वर्णित है—

जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढ़इ कथा पार नहिं लहऊँ॥
ताते मैं अति अलप बखाने। थोरे महुँ जानिहहिं सयाने॥

(मानस, १।११ ५-६)

(११) श्रीमद्भागवत-स्कन्ध ४ के १९वें अध्यायमें स्कन्ध ५ के अध्याय १ से १० तक तथा १३वें अध्यायसे २६वें अध्याय तक, स्कन्ध १२ के छठे अध्यायमें गद्य भी है। श्रीरामचरितमानसमें इस प्रकारका गद्य कहीं भी नहीं है।

(१२) श्रीमद्भागवतमें प्रत्येक स्कन्धका एक स्वतन्त्रविषय है। इसीको सर्ग, विसर्ग आदि भी कहते हैं। श्रीरामचरितमानसमें इस प्रकारका स्पष्ट कोई अन्तर नहीं है। यद्यपि बालकाण्डमें दोहा ४७ से दोहा १२० तक शिवचरित है, किन्तु यह भी श्रीरामचरितका पूरक है। सम्पूर्ण ग्रन्थमें श्रीरामचरित ही है।

विषयगत-वैषम्य—

(१) श्रीमद्भागतमें भूगोल-खगोल तथा वंशावलियाँ आदि हैं। श्रीरामचरितमानसमें ऐसा कुछ नही है।

(२) श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌के चौबीसों अवतारोंका वर्णन है। श्रीरामचरितमानसमें केवल एक ही अवतार कथा है, दूसरे अवतारोंका कहीं-कहीं नामोल्लेखमात्र है। चौबीसों अवतारोंकी कथा नहीं है।

(३) श्रीमद्भागवतके सप्तम स्कन्धके ११वें अध्यायसे १५वें अध्याय

तक तथा एकादश स्कन्धके १७वें-१८वें अध्याय तक वर्णाश्रम धर्मका निरूपण है, किन्तु श्रीरामचरितमानसमें वर्णाश्रम धर्मका केवल उल्लेख मात्र है—

'बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग' (७।२०)

(४) श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्ण चक्रका प्रयोग करते हैं और गरुड़-वाहन भी बनते हैं। यह अलौकिकता उनमें मथुरा जानेपर प्रायः बनी रहती है। वे चतुर्भुज भी होते हैं। एक मतसे वे मथुरा, द्वारिका, हस्तिनापुरमें चतुर्भुज ही रहते हैं[1]। श्रीरामचरितमानसमें श्रीराम नित्य द्विभुज हैं। रथके अतिरिक्त दूसरे वाहनके रूपमें श्रीहनुमानजीके कन्धेपर बैठना ही स्वीकार करते हैं।

(५) श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णने किसी मायाका प्रयोग युद्ध आदिमें नहीं किया है, किन्तु श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामने खरदूषण-वधके प्रसंगमें मायाका एकबार प्रयोग किया है—

सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक करयो॥
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरयो॥

(मानस, ३।१९ छं.२१)

(६) श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णने किसीको अपने मुखमें प्रवेश नहीं कराया है। इसी प्रकार श्रीकृष्णका चक्र तो कृत्याके पीछे काशी तक गया है और काशीको जलाया है। उन्होंने किसीके पीछे मंत्र प्रेरित वाण भी नहीं छोड़ा है। बाल-मुकुन्दकी नासिकामें मार्कण्डेय ऋषिके प्रवेशका वर्णन है (भा., १२।९.२७-३०)।

श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामका वाण काक जयन्तके पीछे सम्पूर्ण लोकोंमें घूमता फिरा है (३।१.१-५)। इसी प्रकार श्रीरामके मुखमें काक-भुशुण्डि प्रवेश कर गये हैं (७।७९.२-७.८२ क) और उन्होंने सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंका दर्शन वैसे ही किया है जैसे बाल-मुकुन्दके उदरमें मार्कण्डेय ऋषि ने।

(७) श्रीमद्भागवतमें चौदहों मन्वन्तरोंका विवेचन है। मानसमें इस प्रकारका कोई वर्णन नहीं है।

---

१. भगवान् वासुदेव, द्वारिकाधीश।

(८) श्रीमद्भागवतमें किसी भिन्न कल्पकी कथाका कोई संकेत नहीं है, किन्तु श्रीरामचरितमानसमें कई कल्पोंकी कथाओंका बालकाण्डके दोहा १२१ से १३३ तक संकेत है।

सिद्धान्तगत-वैषम्य—

श्रीमद्भागवतमें चारों पुरुषार्थोंका प्रयोजन (भा, १।२.८-१०) स्पष्ट सूचित किया है। श्रीरामचरितमानसमें परम पुरुषार्थ श्रीरामके चरणोंमें प्रीति ही है। चारों पुरुषार्थोंका स्पष्ट प्रयोजन वर्णित नहीं है—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

(भा., २।२०४)

श्रीमद्भागवत और श्रीरामचरितमानसके सिद्धान्तोंमें कोई वैषम्य नहीं है। दोनों ही ग्रन्थ मोक्षपरक हैं। दोनों ही मोक्षका प्रधान साधन भक्ति मानते हैं।

४. कथागत-वैषम्य—

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसकी कथाओंका तुलनात्मक विवेचन नहीं करना चाहिये, जहाँ एक ही कथा दोनों ग्रन्थोंमें आयी है। अन्यथा श्रीमद्भागवतमें अनेक मन्वन्तरोंकी कथाएँ हैं। उसमें सभी अवतारोंके चरित हैं, यह वैषम्य तो है ही।

(१) श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं एवं श्रीकृष्ण लीला-पुरुषोत्तम हैं, अतः दोनोंके चरितोंमें बहुत अधिक वैषम्य है। यह वैषम्य रहेगा ही।

(२) श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनोंमें ही शिवचरित है। शिवचरितमें साम्य और वैषम्य दोनों ही है। श्रीमद्भागवतमें जो शिवचरित है, उसमें पार्वती-चरित सर्वथा ही नहीं है। उसमें सतीचरित है, जो चतुर्थ स्कन्धके द्वितीय अध्यायसे सप्तम अध्याय पर्यन्त है। इस सती-चरितमें दक्षके द्वारा विश्वस्रष्टाके सत्रमें भगवान् शिवका शाप देना वर्णित है।

श्रीरामचरितमानसमें इस कथाका केवल संकेत मात्र है—

ब्रह्मसभाँ हम सन दुखु माना। तेहि तें अजहुँ करहिं अपमाना॥

(मानस, १।६१.३)

नन्दीश्वरने दक्षको शाप (भा., ४।२.२०-२६) दिया है, किन्तु श्रीरामचरितमानसमें इनकी चर्चा नहीं है। महर्षि भृगु द्वारा शिव भक्तोंको शाप (भा., ४।२.२७-३२) देनेका उल्लेख भी नहीं है।

(३) श्रीमद्भागवतमें सती द्वारा पितृ-गृह जानेके आग्रहसे ही (४.३ में) कथा प्रारम्भ होती है, इससे पहिले (४.२ में) दक्ष द्वारा शिवका अपमान ही है, सतीका कोई पूर्व-चरित नहीं है।

श्रीरामचरितमानसमें सतीके द्वारा श्रीरामकी परीक्षा, शिवके द्वारा सतीका त्याग, बालकाण्ड दोहा ४७ की प्रथम पंक्तिसे दोहा ५९ की तृतीय पंक्ति तक वर्णित है. जिसमें शिव द्वारा त्यागे जानेपर सतीका अकुलाहट, पश्चाताप, शिव द्वारा समाधिमें बैठ जानेका वर्णन है, जो श्रीमद्भागवतमें नहीं है।

(४) श्रीमद्भागवतमें 'दक्ष-यज्ञ-विध्वंस' के पश्चात् देवताओं द्वारा शिव-स्तवन, शिवका सन्तुष्ट होना, दक्षको बकरेका सिर लगाकर जीवित कर देना आदि कथा चतुर्थ स्कन्धके छठे अध्यायसे सातवें अध्याय तक है।

श्रीरामचरितमानसमें उपरोक्त चरित नहीं है और श्रीमद्भागवतमें पार्वती चरित नहीं है।

(५) श्रीमद्भागवतमें रामचरित है। इस रामचरितमें 'मानस' के रामचरितसे जो वैषम्य है, वह बहुत स्पष्ट है। श्रीमद्भागवतका श्रीरामचरित, स्कन्ध ९ के अध्याय १० से ११ वें अध्याय तक है। इस चरितका आधार वाल्मीकीय रामायण है। इसलिए इसमें जनकपुर-प्रसंगमें शिव धनुषको तीन सौ व्यक्ति श्रीरामके सन्मुख ले आते हैं (भा., ९।१०.६)।

श्रीरामचरितमानसमें यह धनुष कहींसे लानेका वर्णन नहीं है। वह यज्ञशालामें ही उपस्थित है।

(६) श्रीमद्भागवतमें परशुराम श्रीरामके विवाह सम्पन्न होनेपर अयोध्या लौटते समय मार्गमें मिलते हैं। इस प्रकारका वर्णन वाल्मीकि-रामायणमें है।

श्रीरामचरितमानसमें परशुराम धनुष-भंग होते ही यज्ञशालामें उपस्थित हो जाते हैं।

(७) श्रीमद्भागवतमें श्रीजानकीके द्वितीय वनवासका वर्णन है। किसीके द्वारा प्रवाद सुनकर श्रीरामने सीताको पुनः वनवास दिया है

(९।११.८-११)। श्रीजानकीके पृथ्वी-प्रवेशका वर्णन भी श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धके नवें अध्यायके श्लोक ९, ११, १५ में है।

श्रीरामचरितमानसमें इस द्वितीय वनवासकी कोई चर्चा नहीं है।

(८) श्रीराम एवं श्रीकृष्ण दोनोंको स्वजन-वियोग प्राप्त हुआ है। श्रीमद्भागवतमें तो श्रीकृष्णके ब्रज छोड़नेपर मथुरा और वहाँसे द्वारिका जानेका वर्णन है, फिर वे ब्रज लौटकर नहीं आये। अवश्य ही ब्रजके लोग सूर्य-ग्रहणके समय कुरुक्षेत्रमें उनसे मिले, किन्तु श्रीमद्भागवतमें स्वजन-वियोगपर श्रीकृष्णके प्रलाप या रोनेका कोई वर्णन नहीं है। केवल शाल्व-युद्धमें जब शाल्वने मायाके वसुदेवका वध किया, तब श्रीकृष्णके दुःखी होनेका (१०।७७.२३-२४) में वर्णन है, किन्तु शुकदेवजीने वहीं इसका खण्डन किया है कि यह तथ्य नहीं है। ऐसा कोई-कोई ऋषि कहते हैं, पर श्रीकृष्णमें शोक-मोह सम्भव नहीं है (भा., १०।७१.३०-३१)।

श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामको स्वजन-वियोग प्रथम तो अयोध्यासे जाते समय ही प्राप्त हुआ है, किन्तु इस समय वह दुःखी नहीं हुए—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥

(मानस, २, मं. २)

चित्रकूटमें भरत-मिलापके पश्चात् गुरु वशिष्ठ द्वारा महाराज दशरथके सुरपुर-गमनके समाचारसे श्रीरामका अत्यन्त दुःखी होना वर्णित है—

'सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा'

(मानस, २।२४६.३)

द्वितीय अवसर है-सीता-हरणका प्रसंग, जहाँ (३।२९.६-१६) श्रीरामका विलाप-प्रलाप तक पहुँच गया है।

तृतीय अवसर है—लंका-युद्धमें मेघनाद द्वारा लक्ष्मण शक्ति प्रयोगका प्रसंग। यह लंकाकाण्डके दोहा ६० की द्वितीय पंक्तिसे ६१ वें दोहों तक श्रीराम लक्ष्मणके वियोगकी आशंकासे दुःखी होकर प्रलाप करते हैं।

(९) श्रीराम एवं श्रीकृष्णके चरित जो श्रीरामचरितमानस और श्रीमद्भागवमें वर्णित हैं, उनका एक प्रधान अन्तर यह है कि श्रीरामचरित-मानसमें तो एक प्रतिनायक है—रावण। यद्यपि श्रीरामको मारीच आदिको

भी मारना पड़ा है, किन्तु यह सब रावणके अनुचर हैं। बिराध, कंबध और बालिको प्रतिनायक नहीं कहा जा सकता। वे अल्प बाधा देकर ही मारे गये हैं।

श्रीकृष्ण-चरितमें कोई एक प्रतिनायक नहीं है। उनका प्रतिनायक बाल्यकालमें कंस है। ब्रजमें जिन असुरोंको उन्होंने मारा, वे सब तो कंसके ही अनुचर हैं, किन्तु कंस-वधके पश्चात् ही जरासंध प्रतिनायक हो गया। इस प्रकार उनके अनेक प्रतिद्वन्दी हैं, सब प्रबल हैं और सबसे प्रबल संघर्ष करना पड़ता है। जरासंध, शिशुपाल, पौण्ड्रक, दन्तवक्र आदि अनेक प्रतिद्वन्दी हैं, जिनका श्रीकृष्ण सामना करते हैं।

(१०) श्रीमद्भाग तमें श्रीकृष्णके किसी प्रतियोगीके पूर्वजन्मका चरित नहीं है, केवल संकेत है कि हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु ही शिशुपाल और दंतवक्र हुए। कंस भी कालनेमि था। यह संकेत मात्र है। जरासंधके पूर्व चरितका तो उल्लेख ही नहीं है।

श्रीरामचरितमानसके प्रमुख प्रतिनायक रावणके पूर्व चरितको प्रताप-भानु-चरितके रूपमें विस्तारसे निरूपण किया गया है।

(११) श्रीमद्भागवतके अनुसार श्रीकृष्ण-अवतार जिनसे हुआ, वे वसुदेव और देवकी पूर्व-जन्ममें स्वायंभुव मन्वन्तरमें सुतपा नामके प्रजापति थे और इनकी पत्नी पृश्नि थीं जो पीछे देवकी हुईं (भा., १०।३.३२)।

श्रीरामचरितमानसमें कृष्णावतारकी कोई चर्चा नहीं है। श्रीरामके अवतारोंका भी जो कारण दिया है, उसमें भी एक कल्पमें बालकाण्ड, दोहा १२२ की तृतीय पंक्तिके अनुसार 'कश्यप-अदिति' माता-पिता हुए, किन्तु जिस रामचरितकी कथा मानसमें है, उस कथामें दशरथ-कौशल्या स्वायंभुव मनु और शतरूपा हुए थे, वह बालकाण्ड दोहा १४१ से दोहा १५१ के प्रथम पंक्ति तक स्पष्ट हो जाती है।

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें लौकिक और अलौकिक भावोंकी अभिव्यक्ति

लौकिक और अलौकिक भावकी मान्यता देश और कालके अनुसार परिवर्तित होती रहती है। किसी देशमें या किसी कालमें जो भाव अलौकिक माने जाते हैं, वही दूसरे देशमें अथवा दूसरे कालमें लौकिक माने जाते हैं, जैसे आजसे सौ वर्ष पूर्व पुष्पक विमानका वर्णन अलौकिक माना जाता था, किन्तु आज उसे लौकिक मानते हैं। इसी प्रकार त्रेतामें अनेक मुख, अनेक हाथके लोग अलौकि नहीं माने जाते थे। द्वापरमें श्रीकृष्णके अतिरिक्त शिशुपाल ही चतुर्भुज त्रिनेत्र उत्पन्न हुआ था। उस समय इसे बहुत अद्भुत नही माना गया था। इसीलिए श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें लौकिक एवं अलौकिक भावोंका वर्गीकरण ग्रन्थ-निर्माणकी मान्यताको देखते हुए किया गया है।

प्रो० रामदास गौड़ने लिखा है 'भारतवर्षका प्राचीन इतिहास देवताओं और मानवोंका मिला-जुला इतिहास है[1]।' श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें यही बात लागू होती है। श्रीरामचरितमानसमें भी महाराज दशरथके स्वर्ग जाने और मरणोपरान्त भी स्वर्गसे लौटकर लंका-विजयोपरान्त श्रीरामसे मिलनेकी बात आयी है। देवता भी श्रीरामकी स्तुति करने आते ही थे। इसीलिए दोनों ग्रन्थोंमें लौकिक-अलौकिक भावोंकी अभिव्यक्ति अनेक स्थानोंपर इतनी मिली-जुली है कि उसमें सीमा-रेखा बनाना अत्यन्त कठिन है।

श्रीमद्भागवतका वर्णन सर्ग, विसर्ग आदि क्रमसे होनेके कारण सप्तम स्कन्ध तकका वर्णन वर्तमान सृष्टिके पहिले प्रथम मन्वन्तरका वर्णन है। इस काल-दीर्घताको अलौकि मानें तो श्रीमद्भागवतका लौकिक-अलौकिक विभाजन निम्न प्रकारसे होगा—

---

१. हिन्दुत्व—ज्ञान मण्डल, बनारस।

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसके लौकिक भावोंकी अभिव्यक्ति

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसका प्रारम्भ ही लौकिक भावसे हुआ है। एक हजार वर्षका सत्र[1] करने बैठे थे। इसी सत्रमें यज्ञ-कर्मके विश्राम समयमें वे सूतसे प्रश्न करते हैं। सूतका उत्तर पारमार्थिक भले हो, प्रथम स्कन्धके द्वितीय अध्याय तक लौकिक ही है।

श्रीरामचरितमानसका प्रारम्भ भी इसी प्रकार होता है। तुलसीदास जितनी भी विनम्रतायुक्त वन्दना करते हैं, गुरु-महिमा, सन्त-महिमा यहाँ तक मानसका रूपक भी लौकिक भाव ही है। रूपक तो काव्यकी विशेषता ही है।

श्रीमद्भागवतके (प्रथम स्कन्धके तृतीय अध्यायके २८वें श्लोकसे) सूत अपनी ओरसे उपदेश देने लगते हैं—लौकिक भावका वर्णन प्रारम्भ हो जाता है। चतुर्थ अध्यायके अन्त लौकिक भावकी बात है, क्योंकि भगवान् व्यास लौकिक व्यक्ति ही हैं।

श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्ध पञ्चम अध्यायके (श्लोक २३ से देवर्षि नारद अपने पूर्व जन्मका वर्णन करते हैं। यह वर्णन छठे अध्यायके १६वें) श्लोक पर्यन्त लौकिक भावका ही रहता है, क्योंकि नारदके पूर्व जन्मका चरित लौकिक ही है। श्रीरामचरितमानसमें प्रतापभानुका पूरा चरित लौकिक है।

श्रीमद्भागवतके स्कन्ध १ अध्याय ७ से प्रारम्भ होकर स्कन्ध १ अध्याय १६ श्लोक १६ तकका सब विवेचन लौकिक भावोंका है। इसमें जो श्रीकृष्णका ब्रह्मास्त्रका व्यर्थ करना है, वह भी श्रीकृष्णके लौकिक लीलामय-स्वरूप, आगे प्रकट होनेवाले उनके पौरुषोंको देखते हुए अलौकिक नहीं है। उस कालमें दिव्यास्त्रोंका प्रयोग तो अत्यन्त साधारण बात थी। इसीलिए कालकी दृष्टिसे इसे अलौकिक नहीं कहा जा सकता। स्तुतियोंमें जो श्रीराम, श्रीकृष्णका परत्व वर्णित है, यह भी लौकिक भाव ही है, क्योंकि लोग महा-पुरुषोंका स्तवन करते ही हैं। (केवल उन स्तुतियोंको छोड़कर जो अलौकिक

---

१. वर्तमान सयममें तो एक हजार वर्षका संकल्प ही अलौकिक हो जायेगा, किन्तु ऋषियोंकी दीर्घायुको देखते हुए यह समय लौकिक ही है।

व्यक्तियों के द्वारा की गयी हैं। उनकी चर्चा उन-उन स्थानोंपर की जायेगी।) इस प्रकार स्तुतियोंको भी लौकिक भावके अन्तर्गत ही माना जाना चाहिये। श्रीरामचरितमानसमें महाराज दशरथको पुत्र इच्छा, पुत्रेष्टि-यज्ञ, रानियोंके अन्तर्वत्नी होने तकका वर्णन लौकिक भावोंका वर्णन है।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १ अध्याय १७ के ४३वें श्लोकसे प्रथम स्कन्धके अन्त तक तथा द्वितीय स्कन्धके प्रथम अध्याय तक लौकिक भावोंका वर्णन है। यद्यपि इसमें द्वितीय स्कन्धके प्रथम अध्यायमें विराटकी धारणा है, किन्तु यह विवेचन धारणाके लिए है, वास्तविक रूपमें वैसा है या नहीं—यह नहीं कहा गया है। स्कन्ध २ अध्याय २ के २१वें श्लोक तक लौकिक भावका ही वर्णन है, भले ही यह योगीके देहत्यागका है।

स्कन्ध २ अध्याय २ के ३३वें श्लोकसे स्कन्ध २ अध्याय ४ के २५वें श्लोक पर्यन्त वर्णन लौकिक भावका है। इसमें शुकदेवजी का मंगलाचरण है।

स्कन्ध २ के ८वें अध्यायसे ९वें अध्यायके चतुर्थ श्लोक तकका वर्णन लौकिक है। २।९.३७ से द्वितीय स्कन्धके अन्तका वर्णन भी लौकिक है।

स्कन्ध ३ के प्रारम्भसे ही ५वें अध्यायके २२वें श्लोक पर्यन्त विदुर-चरित, विदुर-उद्धव-संवाद, विदुर-मैत्रेय-संवाद सब लौकिक वर्णन है। स्कन्ध ३ के ७वें अध्यायसे विदुरका प्रश्न, मैत्रेयका सामान्य उपदेश लौकिक है। एकादश अध्यायका वर्णन यद्यपि सृष्टिका वर्णन है, किन्तु यह वर्णन कालका, परमाणुका, युगोंका होनेसे लौकिक ही है। अवश्य ही यह लौकिक-अलौकिक मिला-जुला कहा जा सकता है। इसी अध्यायके २६वें श्लोक तक का वर्णन इसी प्रकारका है।

तृतीय स्कन्धके २१वें अध्यायसे लौकिक सृष्टिका वर्णन प्रारम्भ होता है। इसमें महर्षि कर्दमकी तपस्या जो २१वें श्लोक तक वर्णित है, लौकिक ही है। ३।२१.३३ से ३।२४.५ महर्षि कर्दम, उनका गृहस्थ वर्णित है, यद्यपि इसमें कर्दमकी सिद्धिका वर्णन है तथा उन्होंने तपोबलसे विचित्र विमान उत्पन्न किया है, किन्तु तपस्या और उससे प्राप्त सिद्धिको लौकिक भाव ही मानना चाहिये, क्योंकि मंत्र और तपकी शक्ति भी उसी प्रकार लौकिक है, जिस प्रकार विज्ञानकी दूसरी शक्तियाँ है।

तृतीय स्कन्धके अध्याय २४ के २०वें श्लोकसे तृतीय स्कन्धके अन्त पर्यन्त कपिल-देवहूति-संवाद सम्पूर्ण लौकिक है, भले ही इसमें भगवान्

कपिलने जीवकी गतिका वर्णन किया हो, किन्तु यह उपदेश ही है, और माता देवहूतिकी उत्तम गति, यहाँ तक कि उनके शरीरका जलके रूपमें रूपान्तरण भी लौकिक भाव है। यद्यपि आज इसे अलौकिक ही कहा जायेगा। लेकिन पारमार्थिक साधनाकी पराकाष्ठामें जिन भूमिकाओंका वर्णन है, उन्हींमें ये छठी और सातवीं भूमिकाका यह वर्णन है। यह लोकमें प्राप्त होती है। माता देवहूतिको छठी और सातवीं भूमिका प्राप्त हुई, जिसे लौकिक भाव ही कहा जायेगा।

चतुर्थ स्कन्धका (८वें अध्यायके २४वें श्लोक तकका) ध्रुव-चरित वहाँ तक लौकिक है, जहाँ तक विमाताके द्वारा अपमानित होकर वे तपस्याको चल देते हैं। तेरहवें अध्यायकी कथा लौकिक ही है। इसमें ध्रुवकी वंशावली, वेनकी उत्पत्ति है। १४वें अध्यायका वेन-चरित भी लौकिक है। इसमें जो ऋषियोंने उसके शरीरका मंथन करके 'निषाद' को उत्पन्न किया है, यह शरीर-मंथनसे किसीकी उत्पत्ति विद्या विशेष कही जा सकती है। १५वें अध्यायके २२वें श्लोकसे सम्पूर्ण १६वें अध्याय तककी कथा लौकिक है। इसमें पृथुकी विनम्रता और बंदियों द्वारा उनकी स्तुति है। २१वें अध्याय अध्यायान्त वर्णन लौकिक है, इसमें पृथुने प्रजाको उपदेश किया है। २३वाँ अध्याय पृथुके वैराग्य, परमधामकी प्राप्तिका लौकिक वर्णन ही है। २४वें अध्यायमें प्रचेताओंका तपको निकल देने तकका वर्णन श्लोक २३ तक लौकिक है। २५वें अध्यायसे २९वें अध्याय तकका वर्णन यद्यपि देवर्षि नारदके द्वारा हुआ है, किन्तु यह 'पुरंजनोपाख्यान' सर्वथा लौकिक ही है। मनुष्य शरीरको पुर मानकर परोक्ष रूपसे जीवके संसार-भ्रमणका यह वर्णन है।

पञ्चम स्कन्धके चतुर्थ अध्यायसे अष्टम अध्याय पर्यन्त ऋषभ-चरित और भरत-चरित सीधा लौकिक वर्णन है। ९वें अध्यायके १६वें गद्य तक जड़भरत भी लौकिक हैं। १०वें अध्यायसे १५वें अध्याय तकका वर्णन जड़-भरतका रहूगणको उपदेश और राजा भरतकी वंशावली सब लौकिक वर्णन है। ५।१९।१६ से ३१वें श्लोक तक भारतवर्षका वर्णन लौकिक है।

षष्ठ स्कन्धके प्रारम्भसे प्रथम अध्यायके २७वें श्लोक तकका वर्णन लौकिक है। यह अजामिलका साधारण व्यक्ति जैसा वर्णन है। अध्याय १४ के श्लोक १ से १६वें श्लोक तक चित्रकेतुका वर्णन लौकिक है। चित्रकेतुको अंगिराका मिलना, पुत्रकी मृत्यु, विलाप आदि इस अध्यायके अन्त तकका लौकिक वर्णन है।

सप्तम स्कन्धमें (अध्याय ११ से १५वे अध्याय) देवर्षि नारद द्वारा युधिष्ठिरको लौकिक धर्मोंका उपदेश है। अष्टम स्कन्धमें सब अलौकिक कथायँ हैं, लौकिक चरित नहीं।

नवम स्कन्ध प्रारम्भसे चतुर्थ अध्यायके ४६वें श्लोक तक लौकिक चरित है। सामान्य वंशावली ही चल रही है। छठें अध्यायसे सम्पूर्ण नवम स्कन्ध पर्यन्त सूर्यवंश, निमिवंश और चन्द्रवंशकी वंशावली लौकिक चरित है।

श्रीमद्भागवतमें (दशम स्कन्ध, पूर्वार्द्ध १०।१.२६ से ३३वें श्लोक तक) वसुदेवके विवाहका साधारण लौकिक प्रसंग है। १०।१.५६ से १०।२.४ तकका देवकीके अनेक पुत्रोंका होना, कंस द्वारा मारा जाना भी जाना भी लौकिक प्रसंग ही है, यहाँ तक कि कंसको देवर्षि नारदका समझाना भी कोई अलौकिकता नहीं है। (१०।४.१४ से १०।५.१८) तकका प्रसंग कंसका पश्चाताप, उसकी पुनः असुरोंसे मंत्रणा, नन्दोत्सव आदि लौकिक प्रसंग हैं। (१०।६.१८ से १०।७.६) तकका प्रसंग सर्वथा लौकिक प्रसंग हैं। इसमें पूतनाका उद्धार, नन्द-गृहके ओत्थानिक उत्सवकी चर्चा है। (१०।७ ८ से १०।७.१७ तक) गोप-गोपी स्नेहका वर्णन लौकिक-चरित है। (१०।८.१ से १०।८.३५ तक) नामकरण, बाल-चापत्य माखन-चोरी सब लौकिक लीलाएँ हैं। (१०। ११.१ से १०।११.४० तक) गोपोंका वृन्दावन जाना श्रीकृष्णका वत्स-चारण, बन-क्रीड़ा लौकिक चरित है (१०।११.५२ से १०।।२.२६) तक गोपोंका प्रेम, बन-भोजन-लीला, अघासुरकी उपस्थिति और उसके मुखमें गोप-बालकोंका चले जाने तककी लौकिक लीला है (१०।१२.३६ से १०।१३.१४ तक) वन-भोजनकी लीला (१०।१४.४३ से १०।१५.४६ तककी) लौकिक लीला है, जिसमें श्रीकृष्णका सखाओंके साथ वृन्दावनकी क्रीड़ा एवं धेनुक-बध है। (१८वें अध्याय) का लौकिक चरित है। यहाँ प्रलम्ब-बध है, किन्तु यह भी लौकिक लीलाके समान बन गयी है। १६वें अध्यायके १०वें श्लोक तक मुंजाटवीमें अग्नि लगने तककी लीला लौकिक है (१०।१६.१५ से १०।२४.३८) तकके लौकिक चरितमें वर्षा-शरदका वर्णन, गोपियोंका पूर्व-राग, चीर-हरण है। यज्ञ-पत्नियोंपर श्रीकृष्णकी कृपा है। इन्द्र-पूजाका निषेध है। (२६वां अध्याय भी लौकिक चरित है), इसमें नन्दबाबाने गोपोंकी शंकाओंका समाधान किया है।

दशम स्कन्धके २५वें अध्यायके युगल-गीतसे लेकर अरिष्ट-वध, केशी-वधके ३७वें अध्यायके ६वें श्लोक तक लौकिक लीला है। १०।३७ २५ से १०

के ३९ एवं ४० तकके अध्याय तक व्योम-वध, अक्रूरका आगमन, श्रीराम-कृष्णका मथुराको प्रस्थान यह सब लौकिक चरित है। ४१वें अध्यायसे ४५वें अध्यायके ३७वें श्लोक तकके लौकिक चरितमें मथुरा पहुँचना, नगर-दर्शन, कुब्जा, माली, दर्जीको कृतार्थ करना, कुवलयापीड़, मुष्टिक, चाणूक आदि पहलवानों और कंसका वध, उग्रसेनका राजतिलक, श्रीराम-कृष्णका गुरुकुल जाकर अध्यापन करना यह सब लौकिक चरित है। १०।४५ ४७ से दशम स्कन्ध पूर्वार्द्धके अन्त पर्यन्त तककी लौकिक लीलाएँ हैं, इसमें उद्धवको व्रज-भेजना, उनका लौटना, कुब्जापर कृपा, अक्रूरको हस्तिनापुर भेजना आदि सब है।

दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध) के ५०वें अध्यायमें जरासंधका मथुरापर आक्रमण श्लोक ८ तक है। ५२वें अध्यायके प्रारम्भसे ५४वें अध्याय तक रुक्मिणी-हरण तथा अन्य विवाहोंकी लौकिक लीला है। ५६वें अध्यायके प्रारम्भसे ५८वें अध्यायके अन्त तक श्रीकृष्णके अनेक विवाहोंका लौकिक-चरित है। यद्यपि इसीमें कालिन्दी-विवाह, जाम्बवंतसे गुफामें युद्ध तथा जाम्बवंती विवाह है, किन्तु इन्हें अलौकिक कहना कठिन है। ६०वें अध्यायसे ६१वें अध्यायके अन्त तक रुक्मिणी-परिहास, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध-विवाहकी लौकिक लीला ही है।

श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामका गुरुकुल-वास श्रीकृष्णके गुरुकुल-वासकी तरह अल्पकालिक ही है, किन्तु उसमें कुछ अलौकिक दक्षिणा नहीं है। महर्षि विश्वामित्रके साथ श्रीराम-लक्ष्मणका उनके आश्रममें आगमन, उनकी यज्ञ-रक्षा लौकिक चरित है। यद्यपि राक्षसोंका विनाश उससे भी अल्पकालीन है जितना अल्पकालमें श्रीबलराम-कृष्णके द्वारा तेरह अक्षौहिणी सेनाका संहार है, किन्तु दिव्यायुधोंकी शक्तिको देखते हुए इस लीलाको अलौकिक नहीं कहा जा सकता।

श्रीरामचरितमानसमें जनकपुर प्रवेशसे लेकर धनुभंग, परशुराम-पराभव, श्रीराम-विवाह, बारातका अयोध्या लौटना, राजतिलककी तैयारी, श्रीरामका बनवास, ऋषियोंसे भेंट, चित्रकूटमें भरतका मिलन, भरतका लौटना, श्रीरामका चित्रकूटसे आगे जाकर पंचवटी-निवास, सूर्पणखाके मिलन तककी कथा लौकिक कथा है। यह प्रसंग श्रीरामचरितमानसके बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड तथा अरण्यकाण्डके दोहा १७ तकका है।

श्रीमद्भागवतके ६५वें अध्यायके प्रारम्भसे श्रीबलरामका नन्द ब्रज जाना एवं लौटना है। ६६वें अध्यायके प्रारम्भसे ६८वें अध्यायके ३९वें श्लोक तककी कथा लौकिक है। इसमें पौण्ड्रक-वध, श्रीकृष्णके चक्रसे काशीका जलना है। यद्यपि यह अलौकिक प्रतीत होता है, किन्तु चक्र तो श्रीकृष्णके लौकिक आयुधोंमें आ गया है। अतः अलौकिक नहीं कहा जा सकता। श्रीबलरामका द्विविद-वध, दुर्योधन द्वारा साम्बके बन्दी किये जाने-पर उनका हस्तिनापुर जाना, कौरवों द्वारा तिरस्कार होनेपर उनके क्रुद्ध होने तककी लीला लौकिक चरित है। १०।६८.४३ से ५८वें श्लोक तक कौरवोंका संत्रस्त होना, बलरामका साम्ब-सहित लौटना लौकिक चरित है। ७०वें अध्यायके प्रारम्भसे ८५वें अध्यायके ३३वें श्लोक तक सब लौकिक चरित है। इसमें युधिष्ठिरका राजसूय-यज्ञ, जरासन्ध-वध शाल्व-वध, श्रीबलरामकी तीर्थयात्रा, बल्वल-वध, सुदामा-चरित, कुरुक्षेत्रमें ग्रहण-स्नान आदि हैं। यद्यपि इसमें शाल्वका विमान युद्ध भी है, किन्तु राक्षसोंके लिए माया प्रयोग विमान आदि उस समयकी दृष्टिसे सामान्य है।

श्रीरामचरितमानसका लंकाकाण्डका सम्पूर्ण युद्ध वर्णन लौकिक है। यद्यपि इसमें भी राक्षसोंकी माया दिव्यास्त्रके प्रयोग, गरुड़का आगमन, श्रीहनुमानका संजीवनी आगमन, आदि सभी कुछ है, किन्तु यह सब चरित उन-उन पात्रोंके लिए सामान्य लौकिकके सदृश ही है। हनुमान या राक्षसोंकी शक्तिको देखते हुए इन चरितोंको अलौकिक नहीं कहा जा सकता।

श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध ९०वां अध्याय भी लौकिक चरित है, इसमें राजमहिषियोंका प्रेम वैचित्र्य है।

एकादश स्कन्धके प्रथम अध्यायमें यदुकुलको शाप लौकिक ही है। अध्याय २ से अध्याय ५ तक वसुदेवको नौ योगेश्वरोंका उपदेश है। यद्यपि योगेश्वर अलौकिक हैं, किन्तु वसुदेवजी एवं उन्होंने जो उपदेश प्राप्त किया है—वह लौकिक-जनोंके कामका है, अतः इस चरितको लौकिक ही मानना चाहिये।

श्रीरामचरितमानसमें श्रीरामका अयोध्या-आगमन, राज्याभिषेक तकका प्रसंग लौकिक है।

श्रीमद्भागवत ११।६.३३ से ११।३०.३८ तकका प्रसंग श्रीकृष्णका उद्धवको उपदेशका प्रसंग है। यह लौकिक प्रसंग ही है। यद्यपि इसमें

ऐलोपाख्यान अलौकिक है, किन्तु यह उपाख्यानके रूपमें ही आया है और उपदेशका ही अंश है।

श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड दोहा १४ (ख) से लेकर दोहा ५१वें तककी नारद-स्तुतिका प्रसंग लौकिक है। इसमें अयोध्याकी प्रजाकी स्थिति, प्रजाको उपदेश, भरतके प्रश्नोंका उत्तर आदि सब आ जाता है।

श्रीमद्भागवत, ११।३१.१४ से १२।८.५ तकका प्रसंग लौकिक है। इसमें कलियुगमें होनेवाले राजाओंकी वंशावली, शुकदेवजीके उपदेशका उपसंहार, परीक्षितका देहत्याग, जनमेजयका सर्पयज्ञ, वेद शाखाओंका विस्तार, शौनकका मार्कण्डेयजीके सम्बन्धका प्रश्न है।

श्रीमद्भागवत, १२.११ से लेकर अन्त तक लौकिक चरित है। यह ग्रन्थका उपसंहार है। श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड दोहा १२९ से आगेका अंश ग्रन्थका उपसंहार होनेसे लौकिक ही है।

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसके अलौकिक भावोंकी अभिव्यक्ति

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें अलौकिक भावोंका वर्णन श्रीराम और श्रीकृष्णकी लीलाकी सहायता एवं परिपूर्णताके लिए आवश्यक है। अलौकिक भाव एवं अलौकिक-तत्व (देवता-राक्षस आदि) के चरितोंके बिना भगवदावतारकी लीलाकी न पृष्ठभूमि बनती, न लीला सम्पूर्ण होती। इसलिए इन अलौकिक भावों एवं चरितोंकी आवश्यकता लीलाकी पूर्तिमें आवश्यक है।

श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके तृतीय अध्यायसे ही अलौकिक भावोंका प्रारम्भ हो जाता है। भगवान्‌के विराट-रूपका वर्णन, उनके अवयवों-में सम्पूर्ण लोकोंकी कल्पना, अवतारोंका वर्णन यह सब अलौकिक भाव हैं।

श्रीरामचरितमानसमें सम्पूर्ण शिवचरित ही अलौकिक है, क्योंकि भगवान् शंकर, सती, कामादि, पार्वती या हिमालयादि सब लौकिक व्यक्तित्व नहीं हैं। जहाँ तक पार्वतीने भगवान् शंकरसे अवतार कथाओंका प्रश्न किया है और भगवान् शंकरने अनेक कल्पोंके अवतार कथाओंकी चर्चा की है, उनमें मनु-शतरूपाकी तपस्यासे पूर्वके सब चरित अलौकिक भाव ही हैं।

जय-विजयके शापकी कथा, जलंधरकी कथा, नारद-मोह, यह सब अलौकिक भाव ही हैं।

श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके पञ्चम अध्यायसे व्यासजीको देवर्षि नारदका उपदेश है। नारद स्वयं लौकिक नहीं हैं, कारण कि वे ब्रह्माके मानसपुत्र हैं, अतः इनकी चर्चा ही अलौकिक भावकी है। अवश्य ही इस कथामें वे जो पूर्व जन्मका स्मरण करते हैं, वह कथा लौकिक भावकी है।

श्रीरामचरितमानसमें मनु-शतरूपाके सन्मुख भगवान्‌का प्राकट्य, उनका वरदान देना अलौकिक भाव है।

श्रीमद्भागवतमें देवर्षि नारदका उत्तरचरित स्कन्ध १ अध्याय ६ के १८वें श्लोकसे इस अध्यायके अन्त पर्यन्त अलौकिक चरित है। ब्रह्माके मानसपुत्र होने तथा भगवान्‌से वीणा प्राप्तिका वर्णन वे करते हैं।

श्रीरामचरितमानसमें रावणकी अनेक लोकोंपर विजयको अलौकिक-चरित ही कहना पड़ेगा, क्योंकि लौकिक चरितमें कुबेरपर विजय प्राप्त कर पुष्पक आदिका लाना नहीं कहा जा सकता। रावणके अत्याचारोंसे पीड़ित पृथ्वीका ब्रह्मलोक जाना, देवताओंका ब्रह्माके साथ भगवान्‌की स्तुति तथा ब्रह्माका आकाशवाणी श्रवण कर देवताओंको आश्वासन आदि अलौकिक भाव हैं।

श्रीमद्भागवतमें (१।१६.१७ से) पृथ्वी एवं धर्मका संवाद, परीक्षितके द्वारा कलि-निग्रह (स्कंध १ अध्याय १७ के ४०वें श्लोक तक) अलौकिक भाव है, किन्तु परीक्षितको जो शापकी प्राप्ति हुई, इस शापकी प्राप्तिमें यह अलौकिक वर्णन ही सहायक है।

श्रीरामचरितमानसकी कथाकी तुलना श्रीमद्भागवतके प्रसंगोंसे श्रीकृष्ण-चरित प्रारम्भ होनेके साथसे की जानी चाहिये, क्योंकि श्रीरामावतार एवं श्रीकृष्णावतार दोनोंकी कथाएँ समान रूपसे तुलनात्मक हैं। इसलिए श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके शेषांशसे दशम स्कन्धके श्रीकृष्णावतारसे पूर्वकी चर्चा यहाँ पहिले की जायेगी।

श्रीमद्भागवतमें २।२.२२ से २।२.३२ तक अलौकिक भावका वर्णन है। यह वर्णन है कि योगी किन मानव गतियोंको पानेमें समर्थ होता है। योग पथकी महत्ता स्पष्ट करनेके लिए है।

स्कन्ध २ अध्याय ५ के ७वें अध्याय तकका वर्णन नारद-ब्रह्मा संवाद ब्रह्मलोकका है। यह वर्णन पृथ्वीपर ही नहीं हुआ, इसलिए इस संवाद-को अलौकिक भाव कहा जाना चाहिये।

स्कन्ध २ अध्याय ९ के ५वें श्लोकसे २६वें श्लोक पर्यन्त तकका वर्णन भी अलौकिक है। इसमें ब्रह्माको भगवद्-दर्शन और भगवान्‌के द्वारा उन्हें चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश दिया गया है।

स्कन्ध २ अध्याय ५ के श्लोक २३ से स्कन्ध ५ के अध्याय ६ के श्लोक ४७ पर्यन्त मूल सृष्टिका वर्णन है। यह वर्णन भी अलौकिक भावका है, क्योंकि लोकमें इसे किसी प्रकार देखा नहीं जा सकता। विराटका विवेचन एवं उनके अंगोंका वर्णन जो स्कन्ध ३ के अध्याय ८ का वर्णन है, इसीके द्वितीय श्लोकके पश्चात् अलौकिक वर्णन प्रारम्भ हो जाता है, क्योंकि इसमें भगवान् शेषका वर्णन है, विष्णुकी नाभिकमलसे ब्रह्माकी उत्पत्ति, ब्रह्मा द्वारा स्तुति, भगवान्‌के द्वारा ब्रह्माको उपदेश ये सब ९वें अध्यायके ४३वें श्लोक तक चलता है। इस अलौकिक वर्णनके द्वारा श्रीमद्भागवतकी परम्पराको सूचित किया है। यही परम्परा लौकिक बनती है।

तृतीय स्कन्धके १०वें अध्यायमें मैत्रेयजी जो वर्णन करते हैं वह सब इस अध्यायका वर्णन अलौकिक भावोंका ही है, क्योंकि सृष्टिका यह सब वर्णन लौकिक विवेचनके अन्तर्गत नहीं आता। इसमें ब्रह्माने कितने प्रकारकी सृष्टि की यह वर्णन है। (३।११।२६ से ३।१२।०) तक यह अलौकिक सृष्टिका विवेचन है। इस सृष्टिका वर्णन आगेकी मानव सृष्टिके वर्णनमें सहायक है।

स्कन्ध तृतीयके १३वें अध्यायका सम्पूर्ण वर्णन वाराहावतारका है। इसलिए यह अलौकिक है, क्योंकि ब्रह्माकी नासिकासे वाराहावतार हुआ। इसीमें दिति-कश्यप-संवाद, सनत्कुमारोंका जय-विजयको शाप, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपुका प्राकट्य और भगवान्‌के द्वारा हिरण्याक्ष-वध करना है। १९वें अध्यायका सम्पूर्ण चरित अलौकिक भावकी अभिव्यक्ति है। यह आगेके लौकिक सृष्टि वर्णनके लिए आधारभूमि दी गयी है। २०वें अध्याय का वर्णन भी ब्रह्माके द्वारा अनेक प्रकारकी सृष्टिका वर्णन है, यह सब दिव्य वर्णन है।

स्कन्ध ३ अध्याय २१ के ३२वें श्लोक तकका वर्णन कर्दमको भगवद्-दर्शन और भगवान्‌का कर्दमको वरदान है। यह अलौकिक भाव मानकर ही है जो कर्दमके अगले चरितको प्रशस्त करता है। ३।२४.६ से ३।२४.१८ तक कपिलके प्राकट्यपर देवताओंका उत्सव, ब्रह्माका कर्दमसे संवाद अवश्य ही अलौकिक-चरित है, क्योंकि ब्रह्मा ही लौकिक नहीं है।

चतुर्थ स्कन्धका प्रारम्भ ही अलौकिक वर्णनसे होता है। दक्षकी तीनों ही कन्यायें और उनकी संतति अलौकिक है। महर्षि अत्रिकी तपस्या यद्यपि पुत्र-प्राप्तिको थी किन्तु उनका संकल्प ही अलौकिक है, 'जो कोई विश्वका स्वामी हो, वह हमें अपने समान पुत्र दे।' इसीलिए उनको ब्रह्मा, विष्णु, महेशका दर्शन, उनके अंशसे पुत्रोंकी प्राप्ति, सब अलौकिक है। यह अलौकिक-कथा श्रीकृष्णके अवतरणकी पृष्ठभूमि है, क्योंकि अत्रिके पुत्रोंमें ही चन्द्रमा हैं, जिनके वंशमें कृष्णावतार हुआ है। द्वितीय अध्यायसे सप्तम अध्याय पर्यन्त शिवचरित सम्पूर्ण ही अलौकिक है। इस शिवचरितका श्रीरामचरितमानसके शिवचरितसे बहुत कुछ साम्य है (यह साम्य-वैषम्यके अध्यायमें दिया जा चुका है)

अष्टम अध्यायके २५वें श्लोकसे १२वें अध्यायके अन्त तकका सम्पूर्ण चरित ही अलौकिक है, क्योंकि ध्रुवको नारदका मिलना, ध्रुवकी लोकोत्तर तपस्या, भगवद् दर्शन, ध्रुवका प्रजापतिकी कन्यासे विवाह, उपदेवता यक्षोंसे युद्ध और अन्तमें ध्रुव-लोककी प्राप्ति इसके अन्तर्गत है।

पन्द्रहवें अध्यायसे पृथुकी उत्पत्ति लौकिक होते हुए भी अलौकिक है। यद्यपि वे भी ऋषियोंके द्वारा बने राजाके शरीरके मंथनसे उत्पन्न हुए हैं, किन्तु उन्हें समुद्र, नदी, पर्वत तथा देवताओंने जो उपहार दिये हैं, तथा उनका शरीर लक्षण आदि अलौकिक है। सत्रहवें, अठारहवें अध्यायकी कथा अलौकिक है। पृथु द्वारा पृथ्वीका दोहन लौकिक नहीं हो सकता। उन्नीसवें तथा बीसवें अध्यायमें पृथुके अश्वमेधीय अश्वका इन्द्रके द्वारा हरण, पृथुका इन्द्र-वधका उद्योग, उनको भगवान्‌के दर्शन अलौकिक प्रसंग हैं। २२वां अध्यायकी कथा भी अलौकिक है। पृथुको सनत्कुमारोंका दर्शन, उनका उपदेश संवाद आदि सब अलौकिक भाव हैं। २४वें अध्यायमें प्रचेताओंको रुद्रका दर्शन, रुद्र-गीत अलौकिक वर्णन है। ३०वें अध्यायमें प्रचेताओंको नारायणका दर्शन तो अलौकिक है ही, वे समुद्रमें डूबकर तपस्या

करते हैं, यह भी अलौकिक कहना चाहिये। ३१वें अध्यायकी कथाको अलौकिक कहनेका कारण है कि इसमें प्रचेतसोंको नारदका उपदेश है।

स्कन्ध पञ्चमके प्रथम अध्यायका प्रियव्रत-चरित सम्पूर्ण ही अलौकिक है, क्योंकि उन्होंने सप्तद्वीपका विभाग आदि किया है। अध्याय २का आग्नीध्र-चरित भी अलौकिक है। इनसे पूर्वचित्ति अप्सरा मिली और उससे सन्तानों-को उत्पत्ति हुई। अध्याय ३ में राजा नाभिको भगवद्-दर्शन और वरदान देना अलौकिक भाव है। यहाँ तकका सब विवेचन ऋषभदेव, भरत-चरितके लौकिक वर्णनको क्रम देनेको ही आया है, इसलिए यह कथाका सहायक है।

स्कन्ध ५ अध्याय ८ के १७वें श्लोकसे २०वें श्लोक तकका वर्णन भद्रकालीका प्रकट होना तथा जड़भरतकी निर्भीकता अलौकिक भाव है। १६वें अध्यायसे १८वें अध्याय १५वें श्लोक तक जो भूगोलका वर्णन है वह भी अलौकिक है, स्थूल लौकिक जगतका नहीं। २०वें अध्यायसे २२वें अध्याय पर्यन्तका वर्णन भी अलौकिक है। इसमें द्वीपान्तरोंका, सूर्यरथका, ग्रह-नक्षत्रोंका वर्णन प्रायः अलौकिक है। केवल ग्रहोंका वर्णन लौकिक सम्भव है, पर ज्योतिष मेरा विषय नहीं है। कोई ज्योतिषी ही निर्णय कर सकता है कि इसका कितना वर्णन लौकिक है। २३वें अध्यायका 'शिशुमार-चक्र' का वर्णन सर्वथा अलौकिक है, क्योंकि ग्रह-नक्षत्र तो चलते रहते हैं। शिशुमारके अमुक अंगपर ग्रह या नक्षत्र भावनासे ही कल्पित किया जा सकता है। २४वें अध्यायसे २६वें अध्याय तक नरकोंका विवेचन भी अलौकिक है।

स्कन्ध ६ के अध्यायवें १के २८ श्लोकसे तृतीय अध्याय तकका वर्णन जिसमें अजामिलके पास यमदूत आते हैं, यमदूतों और विष्णुदूतोंकासंवाद, यमराजका अपने दूतोंका निर्देश सब अलौकिक है। चतुर्थ अध्यायका वर्णन भी अलौकिक है। यह दक्षका वर्णन दक्षपुत्रोंसे नारदका वर्णन, दक्षकी संततिका वर्णन, इन्द्र द्वारा विश्वरूप वध, वृत्तचरित आदि १३वें अध्याय तकका अलौकिक वर्णन है। १५वें अध्यायसे जब चित्रकेतुको अंगिरा और देवर्षि नारद मिलते हैं, वहाँसे १७वें अध्यायके अन्त तकका वर्णन तथा चित्रकेतुका सम्पूर्ण उत्तरचरित अलौकिक वर्णन है। १८वें तथा १९वें अध्यायमें वर्णित वंशावली और मरुतोंकी उत्पत्ति सब अलौकिक वर्णन है।

स्कन्ध ७ के अध्याय १ से १०वें अध्याय तकका हिरण्यकशिपुका अलौकिक वर्णन है, क्योंकि हिरण्यकशिपुकी तपस्या और उसका राज्य सब

अलौकिक है। हिरण्यकशिपु स्वर्गमें आधिपत्य करके निवास करता था। वहीं नृसिंहका प्रादुर्भाव हुआ है। अतः सम्पूर्ण प्रह्लाद-चरित अलौकिक है।

अष्टम स्कन्ध सम्पूर्ण अलौकिक-चरित है। इसमें अत्रिकी तपस्या, गजेन्द्र-मोक्ष, अमृत-मंथन, मोहिनी-चरित, वामनावतार, बलि-बन्धन, मत्स्य-चरित सभी अलौकिक कथायें हैं।

स्कन्ध ९ के अध्याय ४ के ४५वे श्लोकसे ७१वें श्लोक तक दुर्वासाके पीछे चक्रके दौड़नेकी कथा अलौकिक है। ५वें अध्यायमें भी अम्बरीषकी क्षमा और दुर्वासाका पराभव अलौकिक मानना चाहिये, क्योंकि अम्बरीष एक वर्ष पर्यन्त केवल जल पीकर रहे, यह तितीक्षा लोकमें असम्भवप्राय है।

दशम, स्कन्ध (पूर्वार्द्ध) के प्रथम अध्यायमें ही भूमिका दैत्योंके त्राससे आक्रान्त होना, ब्रह्माकी शरणमें जाना, ब्रह्मा द्वारा भगवान्‌की प्रार्थना, भगवान् द्वारा अवतार लेनेका आश्वासन, यह सब अलौकिक प्रसंग है।

श्रीरामचरितमानसमें भी यह प्रसंग इसी प्रकारका है (सादृश्य-असादृश्यकी चर्चा की जा चुकी है) यह अलौकिक प्रसंग रामावतारका कारण है।

श्रीमद्भागवत १०।१.३४ के प्रसंगमें जो आकाशवाणी हुई है, वह अलौकिक प्रसंग है, १०।२ ५ से १०।३ ४५ में श्रीकृष्ण-जन्म-प्रसंग जिसमें देवताओंकी गर्भस्तुति, श्रीकृष्णका प्राकट्य, वसुदेव द्वारा भगवान्‌की स्तुति, यह सब अलौकिक भाव हैं।

श्रीरामचरितमानसमें भी श्रीरामका प्राकट्य इसी प्रकार चतुर्भुज रूपमें हुआ। माता कौशल्या द्वारा उनकी स्तुति, एवं माताके आदेशसे ही वे शिशु-रूप हुए।

श्रीमद्भागवत १०.३.४६ से १०.४.१३ तकका प्रसंग जिसमें वसुदेवका श्रीकृष्णको गोकुल पहुँचाना, कन्याका लाना, कंसके हाथसे कन्याका छूटकर आकाशमें जाना अलौकिक है। वसुदेवकी बेड़ी खुलना, यमुना पार होना आदि घटनायें श्रीकृष्णचरितके लिए भूमि प्रशस्त करती हैं। १०।६.४ से १०।६.१७ तक पूतना-वधका अलौकिक प्रसंग है। १०।७।७ में शकटोच्चाटन-लीला अलौकिक तो है ही, तीन महीनेका शिशु छकड़ा उलट दे—यह लौकिक

नहीं हो सकता। १०।८.१८ से इस अध्यायके अन्त तकके अलौकिक वर्णनमें तृणावर्त्तका नाश एवं श्रीकृष्णने मुखमें विश्वका दर्शन कराया है।

श्रीरामचरितमानसमें भी इसी प्रकार शिशु रामके मुखमें माता कौशल्याने सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका दर्शन किया है।

(१) मुख्य चरितमें अति-मानवीय शक्तियोंका सहयोग—

भागवतमें असुर-वधका वर्णन तो बहुत है। लीला-चरित एवं अन्य अवतारोंका वर्णन भी है। श्रीकृष्णावतारमें असुर मनुष्य रूपमें ही रहने लगे थे, इसलिए कंस द्वारा भेजे असुरोंका वर्णन है, किन्तु रावण सरीखे त्रिभुवन-जयीका वर्णन नहीं है। श्रीकृष्णका युद्ध, भौमासुर, वाणासुर और शाल्वसे हुआ है किन्तु श्रीराम मर्यादा-पुरुषोत्तम होनेसे युद्धमें भी सदैव मर्यादाका पालन करते रहे हैं, परन्तु श्रीकृष्ण लीला-पुरुषोत्तम हैं, अतः कोई युद्ध दिन-भर नहीं किया। वह चक्र उठाकर प्रतियोगीको मार देनेमें तनिक भी संकोच नहीं करते।

(२) कृष्णावतार द्वापरमें था। उस समयके असुरोंकी संख्या भी सीमित है। 'द्वापर' के अन्त तक स्थिति ऐसी हो गयी—धराका वातावरण ऐसा बन चुका था कि पृथ्वीको उपदेवताओंने भी त्याग दिया।[1] देवताओं, गन्धर्व, अप्सराओंका मुख्य कार्य स्तुति करना, बाजे बजाना और पुष्पवर्षा मात्र रह गया। उपदेवताओंमें वानर, भालु श्रीरामके सहायक रहे हैं, परन्तु श्रीमद्भागवतमें केवल द्विविद नामके वानरका वर्णन है, जिसका वध बलरामने किया और ऋक्षराज जामवन्त ही त्रेताके उपदेवताओंमें-से द्वापरमें बचे हैं। मानसके उपदेवताओंमें नागदेवता एवं सुरसाका वर्णन है। कृष्णावतारमें कालियनाग भी उपदेवता है। दानवोंमें-से भयका वर्णन भागवतमें किंचित अधिक है, पर मानसमें भयका उल्लेख मात्र है—'भय तनुजा मन्दोदरि नामा'[2]। दैत्योंमें-से मानसमें केवल माल्यवान और प्रहस्त-का वर्णन है, क्योंकि रावणकी माता दैत्यकुलकी कन्या है, इसलिये ये लंकामें रहते हैं। कृष्णचरितमें दैत्यकुलमें केवल वाणासुरका उल्लेख है। स्मरणीय

---

१. श्रीरामचरित, प्रथम खण्ड पृष्ठ ३२

२. मानस, १।१७७.२

है कि दैत्य, दानव और राक्षस, यह असुरोंके तीन मुख्य कुल हैं। राक्षस कुलमें तो रावण ही मुख्य प्रतिपक्षीय है। भागवतमें इन तीनों कुलोंका ही विस्तृत वर्णन है, पर कृष्णचरितमें अल्प वर्णन है। नृसिंहका अवतार ही दैत्य हिरण्यकशिपुके वध करनेको हुआ।

देव—

ब्रह्मा, शिव और इन्द्र इन तीनोंका उल्लेख भागवत और मानसमें है। मानसमें तीनोंका संक्षिप्त विवेचन है। तीनों ही श्रीरामकी स्तुति करते हैं[१]। उनके विवाहोत्सवका आनन्द लेकर कृतार्थ होते हैं[२] या पुष्प-वर्षा करते हैं[३]। पर भागवतकी श्रीकृष्ण-कथामें इन्द्र,[४] ब्रह्मा[५] के गर्व-मोचनकी विस्तृत कथा है। शिव[६] से संग्रामका विवेचन है। जहाँ शक्तियोंकी चर्चा है।

शक्तियाँ—

वहाँ मानसमें कालीका कोई उल्लेख नहीं है, पर गिरिजा-पूजनके रूपमें गौरी[७] का उल्लेख है। भागवतमें ब्रज-बालाओं द्वारा कात्यायनीपूजा[८] और द्वारिकामें द्वारिकावासियों द्वारा दुर्गा-पूजा[९] का वर्णन है। मानस एवं भागवत श्रीकृष्ण-कथामें लक्ष्मीकी तो कोई महत्ता ही नहीं है। मानसमें उनको श्रीजानकी[१०] का सूक्ष्मांश बताया है और भागवतमें ब्रजकी भूमिका शृङ्गार करनेवाली[११] यद्यपि समुद्र-मंथन[१२] प्रसंगमें उनकी उत्पत्ति एवं स्वयम्बरके विवेचनमें महिमाका प्रतिपादन भी है। सरस्वतीकी स्थिति तो विपरीत ही है, ब्रह्माकी पुत्रीके रूपमें उनका उल्लेखमात्र है,[१३] न वन्दना है, न महत्व और न कृष्ण-चरितमें योगदान ही है। पर मानसमें ग्रन्थके आरम्भमें ही उनकी वन्दना है।[१४] मानसकार उनके तीन रूप मानता है,

---

१. मानस, ६।११०-१११, ११४-११५
२. मानस, १।३१६.१-८
३. मानस, १।३१६. छं. १
४. भागवत, १०।२५.२७
५. भागवत, १०।१३.१४.०
६ भागवत, १०।६३.
७. मानस, १।१३४.४-८
८. भागवत, १०।२२.२-४
९. भागवत, १०।५६.३५-३६
१०. मानस, १।१४७.३
११. भागवत, १।५.१८
१२. भागवत, ८।८.८-२५
१३. भागवत, ३।१२.२८
१४. मानस-१। मंगला. श्लोक १

एक रूपसे ब्रह्मलोक[१] में निवास करती है, दूसरेमें कठपुतली हैं[२], तीसरे भक्त हृदयमें निवास करने वाली हृद्तन्त्री है।[३] इस प्रकार मानसमें तो सरस्वतीके कार्यका श्रीरामचरितके परिपाकमें बहुत योगदान है। यही मंथरा[४] के मनमें विपर्यय उत्पन्न करनेवाली है।

कामदेव[५] का वर्णन भी मानसके शिवचरितमें विस्तारसे है और यहाँ स्पष्ट भी कर दिया है कि द्वापरमें श्रीकृष्णके पुत्र[६] होंगे और यही प्रद्युम्न थे।

दोनों ग्रन्थोंमें भूत-प्रेत, डाकिनी-शाकिनीकी चर्चा है, पर केवल युद्धस्थलमें नाचने-गाने, रक्त पीने एवं अपना महोत्सव मनानेके रूपमें इन्हें स्पष्ट किया 'गया है। भागवतमें तो श्रीकृष्ण-शिवके युद्धमें भूतोंके आनेका वर्णन है, पर मानसमें शिव-बारातमें जाते हैं।

श्रीमद्भागवत १०।८.३६ से १०।८.५२ तक अलौकिक चरित है। श्रीकृष्णने पुनः माताको अपने मुखमें ब्रह्माण्ड दर्शन कराया। नन्द एवं यशोदाके पूर्वजन्मका चरित वर्णित है, वह भी मानव-चरित नहीं, अपितु द्रोण-नामके वसुका चरित है। १०।९.१६ से सम्पूर्ण दशम अध्याय अलौकिक-चरितका है, जिसमें ऊखल-बन्धन, यमलार्जुन-उद्धार है। १०।११.४१ से १०।११.५१ तक वत्सासुर-वध और वकासुर-वध, १०।१२.२७ से १०।१२.३१ तक अघासुर-वधकी लीलाएँ हैं, इसमें अघासुरकी जीवन-ज्योति श्रीकृष्णमें विलीन होती है। १०।१३.१५ से १०।१४.४२ तक ब्रह्माका मोह भी अलौकिक लीला है। १०।१५.५० से १०।१७.२५ तक की लीलाएँ भी अलौकिक हैं। विषैले जलको पीनेसे मरे गोप-बालकों एवं बछड़ोंको जीवन दिया। 'कालिय-दमन' और दावाग्नि-पान तक भी यह लीलाएँ अलौकिक भावकी हैं। १०।१९.११ से १४वें श्लोक तक पुनः 'दावाग्नि-पान' की अलौकिक लीला है।

---

१. मानस, १।१०.४

२. मानस—(सारदं दारुनाटिजय)

३. मानस—२।२९६.७

४. मानस, १।१२.०

५. मानस—१।८२.८ से ८६.६ तक

६. मानस—१।८७.१

दशम स्कन्धका सम्पूर्ण २५वाँ अध्याय गोवर्धन-धारणकी अलौकिक लीला है। २७ एवं २८वाँ अध्याय अलौकिक लीलाका है। २९वें अध्यायसे ३४वें अध्याय पर्यन्त तक श्रीकृष्णका इन्द्र द्वारा अभिषेक, इन्द्र-स्तुति, नन्द-बाबाका वरुण-लोकसे ले आना, अलौकिक चरित है। सम्पूर्ण 'रास-पञ्चाध्यायी' भी अलौकिक है, क्योंकि उसी समय श्रीकृष्ण एवं गोपियाँ भी अपने-अपने घरोंमें उपस्थित थीं। यह दिव्य-लीला सामान्य भू-लोककी लीला नहीं है। अजगरका उद्धार, शंखचूड़ यक्षका वध अलौकिक लीलाएँ हैं। ये लीलाएँ श्रीकृष्णके ऐश्वर्य एवं माधुर्यको प्रकट करती हैं। ३७वें अध्यायके १०वें श्लोकसे २४वें श्लोक तक देवर्षि नारदका भविष्य-कथन अलौकिक प्रसंग है। १०।३९.४१ से ४०वें अध्यायके अन्त तक अक्रूरका भगवत-दर्शन, स्तवन सब अलौकिक है। १०।४५ ३८ से लेकर १०।४५ ४६ तक मृत गुरुपुत्रको यम-लोकसे लाकर दक्षिणा-स्वरूप गुरुको प्रदान करना अलौकिक लीला है।

दशम स्कन्ध (उत्तरार्द्ध) के ५०वें अध्यायके ९वें श्लोकसे इस अध्याय के अन्त तककी लीला अलौकिक लीला है। इसमें आकाशसे आयुधोंसे सुसज्जित दो रथोंका श्रीबलराम एवं श्रीकृष्णके लिए उतरना, बिना प्रयासके तेईस अक्षौहिणी सेनाका संहार, सम्पूर्ण मथुराकी प्रजाको रात्रिमें ही द्वारिका पहुँचा देना, यह लीला द्वारिकाकी लौकिक लीलाकी सहायिका है। ५१वें अध्यायान्तन तक कालयवनको भस्म करा देना, मुचुकुन्दपर कृपा, यह लीला भी लौकिक नहीं है। इस पूरी लीलामें श्रीकृष्ण चतुर्भुज रहे हैं। उन्होंने मुचुकुन्दको स्पष्ट ही अपनी भगवत्ता सूचित की है। अध्याय ५५वेंका प्रद्युम्न-चरित, शम्बर-वध आदि सभी अलौकिक है। इसमें शम्बर और प्रद्युम्न दोनों मायाका प्रयोग करते हैं और प्रद्युम्न आकाश मार्गसे ही लौटकर आते हैं। ५९वें अध्यायमें भौमासुरसे युद्ध, सोलह सहस्र राजकन्याओंके साथ एक ही कालमें पाणिग्रहण, स्वर्ग जाकर पारिजात-हरणकी लीलाएँ अलौकिक हैं।

श्रीरामचरितमानस बालकाण्डके दोहा २१० में 'अहिल्या-उद्धार' की कथा अलौकिक चरित है। अरण्यकाण्डमें 'मंगलाचरण' की पंक्ति ५ से दोहा १ की पंक्ति १४ तक जयन्तपर बाण चलानेकी कथा अलौकिक है। खर-दूषण संहारकी कथा भी अलौकिक है, इसमें श्रीरामने (अरण्य. दोहा १९, छन्दकी पंक्ति २८-२९ में) मायाका प्रयोग किया है।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० के ६२वें अध्यायमें अनिरुद्धका अपहरण, ६३वें अध्यायमें श्रीकृष्णका शंकरसे युद्ध, वाणासुरका पराभव आदि सब

अलौकिक चरित है। ६४वें अध्यायमें नृगके उद्धारकी कथा भी अलौकिक प्रसंग है। १।६५.२३ से अध्यायान्त तककी कथा श्रीबलराम द्वारा यमुना-कर्षण अलौकिक चरित है। १०।६८.४१ से ४२ तकके दो श्लोकोंमें श्रीबलरामका अलौकिक पौरुष है। उनका हस्तिनापुरका कर्षण कर गङ्गामें डालनेका प्रयास है। सम्पूर्ण ६९वां अध्याय देवर्षि नारदका भगवान्‌के अनेक भवनोंमें अनेक क्रीड़ा करते हुए देखना अलौकिक भाव है। १०.८५.६४ से १०।८५.६९ तकका अलौकिक चरित है। माता देवकीके आग्रहसे श्रीराम-कृष्णका पाताल जाकर बलिके यहाँसे अपने मरे भाईयोंको वापस लाना और उन सबका पुनः अदृश्य हो जाना है। १०.८६ में वर्णित श्रीकृष्णका मुनियोंके साथ मिथिला जाना भी अलौकिक चरित है, क्योंकि इसमें श्रीकृष्णने देश और काल दोनोंपर अपना प्रभुत्व दिखाया है, वे राजा बहुलाश्व एवं विप्र श्रुतिदेवके यहाँ एक साथ गये। विप्रके यहाँ एक दिन और राजाके यहाँ एक मास रहे और यहाँ कालको भी एक कर दिया। एक साथ ही दोनोंके यहाँसे लौटे। ८७वें अध्यायमें वेदस्तुति, ८८वें अध्यायमें भस्मासुर-प्रसंग, शिवका परित्राण, ८९वें अध्यायमें मृगु द्वारा त्रिदेवोंकी परीक्षा, मृत ब्राह्मणकुमारका भूमा पुरुषके समीपसे लाना अलौकिक चरित है।

श्रीरामचरितमानसमें लंका-विजयके पश्चात् देवताओं द्वारा श्रीराम-स्तुति, महाराज दशरथका मिलन, इन्द्रकी अमृत-वर्षासे वानरोंका जीवित होना, जानकीजीकी अग्नि-परीक्षा अलौकिक प्रसंग है।

श्रीमद्भागवतमें ११।६.३२ का प्रसंग देवताओं द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति, ब्रह्माका उनसे स्वधाम पधारनेकी प्रार्थना अलौकिक प्रसंग है।

श्रीरामचरितमानसमें उत्तरकाण्ड दोहा १२ (क) से १४ (ख) तककी वेद-स्तुति और शिव-स्तुति अलौकिक चरित है।

श्रीमद्भागवत १।।३०.३९ से ११।३१.१३ तकका श्रीकृष्ण द्वारा व्याधको सशरीर स्वर्ग भेजना, उनका रथ और आयुधोंके सहित आकाशमें विलीन होकर परमधाम प्रयाण अलौकिक चरित है।

श्रीरामचरितमानसमें उत्तरकाण्ड दोहा ५१ से दोहा १२९ तकका सम्पूर्ण प्रसंग अलौकिक है, क्योंकि यह 'गिरिजा-शंभु-संवाद' तथा 'काक-भुशुण्डि-गरुड़ संवाद' है। यह दोनों अलौकिक संवाद कैलास एवं नीलगिरि-पर हुए हैं, जो दिव्य स्थान हैं।

श्रीमद्भागवतमें १२।८.६ से लेकर १२।१२.४२ तकका 'मार्कण्डेय-चरित' अलौकिक चरित है, जो कि मायासे देखा गया है।

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनों ही ग्रन्थ मानवके परम कल्याणके साधनका प्रतिपादन करनेवाले हैं। यह अपने आपमें लोक-व्यवहारसे उठकर अलौकिकतामें प्रवेश है। साधनका जीवन भी लौकिक होता है, पर वह लोकसे उठकर लोकोत्तर बनता है। इस प्रकार जैसे साधकका जीवन लौकिक-अलौकिक मिश्रित होता है, श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसके चरित भी लौकिक-अलौकिक मिश्रित हैं। यह चरित लौकिक चरितमें सहायक है, उसे पुष्ट करनेवाले हैं।

निष्कर्ष

श्रीकृष्ण एवं श्रीराम दोनों परात्पर परम पुरुष हैं, इसलिए अलौकिक तो हैं ही, किन्तु दोनों ही लोकमें मर्यादाकी स्थापनाको अवतरित हुए हैं। इनके अलौकिक-चारु-चरितोंको लौकिक रूपमें प्रतिपादित करनेका प्रयोजन मानवीय गुणोंकी जागृति करना है।

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनोंका ही लक्ष्य भगवद्-भक्ति है। इस भक्तिको उद्दीप्त करनेके लिए, श्रद्धाकी परिपुष्टिके लिए श्रीराम एवं श्रीकृष्णके दिव्य सद्गुण, अचिन्त्य-शक्ति, अपार कृपाका वर्णन दोनों ग्रन्थ करते हैं। साथ ही दोनों ग्रन्थ दोनों अवतारोंको लोक-चरितका आदर्श मानकर ही चले हैं। इसलिए यथासम्भव दोनोंमें श्रीकृष्ण एवं श्रीरामके चरितोंको लौकिक रखा है, क्योंकि दोनोंको लोकमें, लोकके साथ ही व्यवहार करना है। इसीलिए श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानसमें दोनोंके मंगलमय चरित सप्रयोजन लौकिक एवं अलौकिक भावोंकी अभिव्यक्ति कर रहे हैं।

उपसंहार

दोनों ग्रन्थोंका परवर्ती प्रभाव उद्देश्यपूर्ति योजनामें सहायक है

(अ) श्रीमद्भागवतका परवर्ती प्रभाव योजना पूर्तिमें सहायक है—

हिन्दू-धर्मके स्मार्त्त स्वरूपमें मूलतः पाँच सम्प्रदाय हैं। इसीलिए स्मार्त्त हिन्दूको पञ्चदेवोपासक कहा जाता है। ये सम्प्रदाय हैं— (१) वैष्णव, (२) शैव, (३) शाक्त, (४) गाणपत्य एवं (५) सौर। देशमें 'गाणपत्य' एवं 'सौर' बहुत सीमित रह गये हैं। 'गाणपत्य' सम्प्रदाय महाराष्ट्र एवं गुजरातके कुछ भागोंमें और 'सौर' सम्प्रदाय आन्ध्रके बहुत थोड़े भागमें शेष रह गया है।

श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनों ही वैष्णव ग्रन्थ हैं। इसीलिए इनका प्रभाव वैष्णव सम्प्रदायोंमें ही सम्भव है यद्यपि वैष्णवोंमें 'चतुःसम्प्रदाय' शब्द बहुत प्रचलित है, किन्तु वैष्णवोंके चतुःसम्प्रदायसे तात्पर्य है—(१) रामानुजका विशिष्टाद्वैत, (२) निम्बार्कका दैताद्वैत, (३) अ—मध्वका द्वैत, आ—मध्य गौड़ेश्वरोंका अचिन्त्य भेदाभेद, (४) बल्लभका शुद्धाद्वैत—जिसका व्यावहारिक रूप पुष्टि-मार्ग कहा जाता है। इसके अतिरिक्त ब्रजके कतिपय भक्ताचार्योंके भक्ति-सिद्धान्तोंका अनुगमन करनेवालोंकी संख्या बाहुल्यके कारण उनको भी 'सम्प्रदाय' नामसे अभिहित किया जाता है। उनमें (१) श्रीहितहरिवंशजी (२) रसिकाचार्य स्वामी-हरिदासजी, (३) श्रीवंशीअलीजी आदि महात्मा हुए। दक्षिणमें श्रीविष्णु-स्वामी बहुत पहले हुए हैं। उत्तरमें स्वामी रामानन्दजी आदि महात्मा हुए, जिनके प्रभावीशिष्योंके कारण अनेक अवान्तर वैष्णव-मतोंका आविर्भाव हुआ। इन सब वैष्णव-सम्प्रदायोंमें केवल श्रीरामानुज-सम्प्रदाय नारायणोपासक हैं। श्रीरामानन्द सम्प्रदाय रामोपासक है। शेष सब वैष्णव-सम्प्रदाय श्रीकृष्णोपासक हैं।

दार्शनिक सिद्धान्त-भेदोंके अनुसार जो सम्प्रदाय हैं, उनमेंसे श्रीशंकराचार्य और श्रीरामानुजाचार्य प्रस्थानत्रय (ब्रह्मसूत्र, गीता और ग्यारह-

उपनिषद्) मानते हैं। श्रीवल्लभाचार्यजी और श्रीमध्वाचार्यजी 'प्रस्थान-चतुष्टय' मानते हैं। 'चतुर्थ प्रस्थान' के रूपमें श्रीमद्भागवतको स्वीकार करते हैं।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुके माध्व गौड़ेश्वर सम्प्रदायमें तो श्रीमद्भागवतको ही मुख्य प्रस्थान माना जाता है। उसके अनुरूप ही शेष तीनों 'प्रस्थान' स्वीकृत किये जाते है। श्रीकृष्णोपासक-सम्प्रदायोंकी चर्चा ही व्यर्थ है, क्योंकि उनके परमाराध्य श्रीकृष्ण हैं, इसलिए उनपर श्रीमद्भागवतका कितना प्रभाव है—यह भलीभाँति समझा जा सकता है।

श्रीशंकराचार्यजीने स्वयं अपने 'वासुदेव सहस्रनाम भाष्य' में श्रीमद्भागवतके श्लोक नामोल्लेखपूर्वक उद्धृत किये हैं। श्रीशंकराचार्यजीके पूर्ववर्ती उनके परमगुरु गौड़पादाचार्यजी श्रीशुकदेवजीके साक्षात् शिष्य कहे जाते हैं। उनकी 'माण्डूक्यकारिका' में श्रीमद्भागवतके श्लोक उद्धृत हैं।[1] स्वयं शंकराचार्यजीने अपने 'प्रबोध-सुधकर' में जो श्रीकृष्णके ध्यानका वर्णन किया है, स्पष्ट ही वह श्रीमद्भागवतमें वर्णित श्रीकृष्णके वन-भोजनका ध्यान है।

श्रीरामानुज-सम्प्रदायमें अनेक श्रीकृष्ण-भक्त हुए हैं। बहुत अधिक ग्रन्थ श्रीमद्भागवतसे प्रभावित हैं। श्रीमद्भागवतपर रामानुज सम्प्रदायके विद्वानोंकी टीकाएँ हैं।

इस प्रकार देशमें जो वैष्णव उपासक सम्प्रदाय हैं, उनका अधिकांश साहित्य श्रीमद्भागवतसे प्रभावित है। शांकर-सम्प्रदायमें श्रीधरस्वामी और मधुसूदन सरस्वती जैसे श्रीमद्भागवतके व्याख्याता श्रीकृष्ण-भक्त हुए हैं।

श्रीमद्भागवतके परवर्ती प्रभावकी चर्चा और उस प्रभावसे निर्मित साहित्यकी विपुलता संख्या करनेमें नहीं आती। श्रीमद्भागवत एवं श्रीकृष्णका प्रभाव तो मुसलमानों एवं ईसाइयों तकपर भी पड़ा है। इसलिए उनमें 'रसखान' एवं 'ताज' जैसे श्रीकृष्ण-भक्त हुए हैं।

---

१. 'भागवत-दर्शन' की भूमिका—स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती।

जहाँ तक संस्कृत-वाङ्मयका सम्बन्ध है, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव श्रीमद्भागवतका अधिकांश कवियोंपर पड़ा। श्रीमद्भागवतसे प्रभावित ग्रन्थोंकी सूची ही इतनी बड़ी होगी कि स्वयं श्रीमद्भागवतसे कई गुना बड़ी होगी।

श्रीमद्भागवतका उद्देश्य था—भक्तिका प्रचार। श्रीमद्भागवतका परवर्ती प्रभाव उसकी योजना-पूर्तिमें कितना सहायक हुआ, यह देश और विदेशोंमें भी श्रीकृष्णोपासनाके वर्तमान प्रभावसे और विगत वर्षमें मनायी गयी 'सूर-पंचशती' के द्वारा भी अनुमित किया जा सकता है। कहना नहीं होगा कि सूरदास, अन्य अष्टछापी कवि, अन्य साम्प्रदायिक कवि तथा ब्रजके दूसरे सब पदकर्त्ता श्रीमद्भागवतके आश्रित हैं।

'श्रीरामचरितमानसका परवर्ती प्रभाव योजना-पूर्तिमें सहायक है'

गोस्वामी तुलसीदासको हुए अभी कुल चार सौ वर्ष हुए हैं। इतने अल्पकालमें भी देशके सम्पूर्ण हिन्दी भाषी क्षेत्रमें श्रीरामचरितमानस घर-घर, जन-जनका कण्ठहार हो गया है। रूसी, अँग्रेजी, जर्मनी आदि अनेक विदेशी भाषाओंमें श्रीरामचरितमानसके अनुवाद हुए हैं, जिनकी विस्तृत चर्चा आगे की जायेगी। जिस श्रीराम-भक्तिके प्रचारके लिए श्रीरामचरितमानसका प्रणयन हुआ, वह तो राम-भक्तिका मूलाधार ही बन गया। श्रीरामचरित-मानसके प्रभावसे प्रभावित हिन्दीमें कितनी रचनाएँ हुई हैं, उनकी गणना करना तो अब सम्भव ही नहीं है।

देशकी दूसरी भाषाओंमें जो रामकथाएँ हैं, उनको वाल्मीकीय-रामायणसे प्रभावित कहा जा सकता है। हिन्दीमें जो कुछ प्रमुख राम-कथाएँ लिखी गयीं, उनमें-से भी सबकी सूची उपलब्ध नहीं है। प्राप्त तो उनमें-से बहुत कम है। इन सबके निर्माणकी प्रेरणा मानस है।

देश और विदेशोंकी अनेक भाषाओंमें श्रीरामचरितमानसका अनुवाद हुआ है।

श्रीरामचरितमानसका प्रचार भारतके अतिरिक्त भी विश्वके अनेक देशोंमें है। इस प्रकारकी थोड़ी-सी और भी जानकारी आपको प्रिय होगी,

जिससे यह भी सिद्ध होता है कि श्रीरामचरितमानस भारतसे बाहर कितना प्रिय रहा है—मानसपर सर्वप्रथम शोध-निबन्ध (थीसिस) इटली निवासी डा० एल. पी. टर्सीटरीने लिखा, जिसपर उन्हें 'फ्लोरेन्स' विश्वविद्यालय (इटली) से सन् १९११ ई० में डाक्टरेटकी उपाधि प्रदान की गयी। इसके शोधका विषय था—'रामचरितमानस और वाल्मीकि रामायणका तुलनात्मक अध्ययन'।

दूसरा शोध-निबन्ध लन्दन विश्वविद्यालयके अन्तर्गत सन् १९१८ ई० में डा० जे. एन. कारपेण्टरका था। इनका शोध-विषय था—'तुलसीका धर्म-दर्शन'।

लेनिनग्राडमें सोवियत विद्वान एवं रूसी भाषामें मानसके पद्यानुवादक श्री ए. वारान्निकोवकी अन्तिम इच्छा (वसीयत) के अनुसार उनकी कब्रपर श्रीरामचरितमानसके कुछ दोहे-चौपाइयां अंकित हैं।

श्रीराम-भक्तोंमें भी इतर धर्मावलम्बियोंकी नामावली नगण्य नहीं है। रहीम तो गोस्वामीजीके निकट सम्पर्कमें रहनेवाले घनिष्ट मित्रोंमें थे। बादमें भी अनेक श्रीराम-भक्त मुसलमान हुए हैं, अब भी हैं। गिने-चुने ईसाई भी हैं, वैसे 'रामकथा' का विशद् अन्वेषण करनेवाले डा० कामिल बुल्के ईसाई हैं।

निष्कर्षतः श्रीरामचरितमानसका परवर्ती प्रभाव देश-विदेशमें इतना व्यापक है कि यदि यह कहें कि यह विश्व साहित्यका मूर्धन्य ग्रन्थ है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस ग्रन्थ-रत्नके समकक्ष आज तक किसी अन्य ग्रन्थकी रचना नहीं हो सकी। अपनी उद्देश्यपूर्तिमें यह अद्वितीय ग्रन्थ है।

निष्कर्ष

पुराणोंमें श्रेष्ठ श्रीमद्भागवत ग्रन्थ यद्यपि चरित-प्रधान ग्रन्थ है, किन्तु आद्योपान्त प्रधान नायकका निर्वचन स्पष्ट नहीं है। श्रीबोपदेवजीका कथन है कि श्रीमद्भागवतमें सर्वत्र श्रीनारायणकी चर्चा है। अतः नारायण ही प्रधान नायक हैं। 'मुक्ताफल' में नारायणके चार रूपोंकी चर्चा की गयी है। इसमें नव-रस हैं। श्रीबोपदेवजीने मुक्ताफलमें श्रीमद्भागवतके ही आठ सौ श्लोकोंका संग्रह किया है, उसमें विष्णु-भक्तका शृंगार, विष्णु-भक्तका हास्य,

विष्णु-भक्तका करुण आदि ऐसे नौ रसोंपर नौ शीर्षक देकर नौ अध्याय बनाये हैं, किन्तु इन अध्यायोंमें श्रीमद्भागवतके श्लोकोंका ही संग्रह है। दशम-स्कन्ध तो वृहद् महाकाव्य ही है। श्रीमद्भागवतको लेकर अनेक महाकाव्य लिखे गये हैं 'कुमार सम्भव' कालिदासने शिव-पुराण एवं श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धसे लिया है। शिशुपाल-बध, पारिजात-हरण आदि श्रीमद्भागवतसे ही कवियोंने लिया है। महाकाव्योंका भाव-पक्ष, कथा-वस्तु ही नहीं, अपितु ढांचा (Structure) भी श्रीमद्भागवतसे लिया गया है।

श्रीरामचरितमानस महाकाव्य है, इस सम्बन्धमें हिन्दीके विद्वानोंमें कोई विप्रपत्ति नहीं है। श्रीमद्भागवत महापुराण है, इसके प्रतिपादनकी भी आवश्यकता नहीं। विशेष ध्यान देनेकी बात है—श्रीरामचरितमानसकी रचना मानसकारके अनुसार 'स्वान्तस्तमःशान्तये' (मानस, ७।१३०, श्लोक १)।

(१) श्रीमद्भागवत भगवत-प्रेम-प्राप्तिको ही चरम लक्ष्य मानता है। मानसकार श्रीरामचरितमानसकी महिमामें कहते हैं—

जो एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥
होइहहिं राम चरन अनुरागी। कलिमल रहित सुमंगल भागी॥

(मानस, १।१४.१०-११)

श्रीमद्भागवत, १२।१३.८ में यही ग्रन्थके माहात्म्यके सम्बन्धमें कहा है।

(२) दोनोंको लोकमें शास्त्रकी महिमा प्राप्त है—श्रीरामचरितमानसको श्रीमद्भागवतके समान ही श्रद्धा प्राप्त है।

(३) श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्ण-चरित होनेपर भी दूसरे पुराणों—जैसे 'ब्रह्मवैवर्त्त पुराण' 'गर्ग-संहिता'—आदिके समान गोलोकका कोई नाम नहीं है। श्रीमद्भागवतका श्रीकृष्णचरित पृथ्वीके धरातलपर ही प्रतिष्ठित है। इसी प्रकार श्रीरामचरितमानसमें बैकुण्ठका नाम तो है, पर साकेतका कहीं नामोल्लेख नहीं है। तुलसीका श्रीरामचरित भी इसी भूमिके धरातलपर प्रतिष्ठित हुआ है।

(४) कामना-पूर्ति तो श्रद्धासे होती है—जैसे दुर्गासप्तशतीके श्लोकोंका अनुष्ठान होता है, वैसे ही श्रीरामचरितमानसके अनुष्ठान होते हैं।

(५) श्रीरामचरितमानस पग-पगपर भगवद्भक्तिकी प्रेरणा देता है।

(६) श्रीरामचरितमानस 'तत्त्व-विरूपण' एवं वैराग्यकी प्रेरणा देता है।

(७) 'अधिकारी-निरूपण' आदि सदाचारका वर्णन श्रीरामचरित-मानसमें पुराणोंके समान है।

श्रीकृष्णलालकी मान्यता है कि 'श्रीरामचरितमानसको पुराण कहना अधिक उचित है'[१], और इस मान्यताका समर्थन करते हुए डा० हजारीप्रसाद द्विवेदीका कहना है कि 'रामचरितमानसको पुराण कहना समीचीन है[२]।' इसके खण्डनमें डा०विजयबहादुर अवस्थी दिग्भ्रान्त हो गये हैं। उन्होंने अकारण ही श्रीमद्भावतके पौराणिक दस लक्षण श्रीरामचरितमानसमें ढूँढ़नेका प्रयास किया है[३]। पुराणके दस लक्षण ही नहीं होते पञ्च-लक्षण भी होते हैं—'केचित् पञ्चविधं ब्रह्मन् महदल्पव्यवस्थया' (भा., १२।७.१०) तथा—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्॥[४]

---

१. मानस दर्शन, पृष्ठ १४७।

२. हिन्दी साहित्यका आदिकाल, पृष्ठ ६३।

३. श्रीरामचरितमानसपर पौराणिक प्रभाव, पृष्ठ २८७-२२८।

४. शिवपुराण, १।१.१४१, वायुपुराण, १।४.१०, मार्कण्डेयपुराण, १३७।१३, भविष्यपुराण, १।२.४-५, ४।२.११, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, ४।१३१.६, वाराह-पुराण, २।४, स्कन्द पुराण, ७।१.२,८२-८२, कूर्मपुराण, १।१.१२, देवी-भागवत, १।२.१८।

दस लक्षण महापुराणोंमें होते हैं और पञ्च-लक्षण पुराणोंमें। ऊपर दिए श्रीमद्भागवतके प्रमाणमें यह स्पष्ट है।

वस्तुतः पुराणोंकी चार कोटियाँ हैं—(१) महापुराण, (२) पुराण, (३) उपपुराण, (४) औपपुराण। इनमें प्रत्येक अठारह कहे जाते हैं। यद्यपि अब ये पाये नहीं जाते। नेपालके राजकीय पुस्तकालयमें ये पूरे ७२ पुराण ब्राह्मी लिपिमें थे[1], किन्तु वर्तमान नेपाल नरेशके शासनकालमें पुस्तकालयका बड़ा भाग अग्नि लगनेसे भस्म हो गया, उसमें ये सम्पूर्ण पुराण नष्ट हो गये[2]।

उपपुराणोंमें एवं औपपुराणोंमें ये पञ्च-लक्षण भी नहीं होते—जैसे सूर्य पुराण और गणेश पुराणमें केवल प्रतिपाद्य देवताका वर्णन है।

श्रीरामचरितमानसमें सर्ग-विसर्ग नहीं मिलता, यह बात ठीक है, केवल उनका संकेत है। डा० विजयबहादुर अवस्थीने 'सर्ग-विसर्ग' आदिकी जो परिभाषा[3] की है वह भी श्रीमद्भागवत सम्मत् नहीं है। श्रीरामचरित-मानसमें 'निरोध' का वर्णन है, 'पोषण' का वर्णन है, 'ऊति' का भी वर्णन है। 'निरोध' की परिभाषा अवतारमें सबके मनका निरोध मानते हुए श्रीवल्लभाचार्यजी और श्रीजीवगोस्वामी भी श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धको निरोध स्कन्ध मानते हैं।

श्रीरामचरितमानसमें सबके मनका 'निरोध' श्रीराममें होता है। खरदूषण तक उनके सौन्दर्य-माधुर्यपर सम्मोहित हो जाते हैं। 'पोषणं तद्नुग्रहः' श्रीरामचरितमानसमें इस अनुग्रहका पूरा वर्णन है। श्रीरामचरित मानसके उत्तरकाण्डमें 'मुक्ति' का वर्णन ज्ञान और भक्ति दोनोंके द्वारा दोहा ११४ से उत्तरकाण्डके अन्त तक प्रतिपादित किया गया है। जीवोंकी वासनाओंका नाम 'ऊति' है और इसका प्रतिपादन भी श्रीरामचरितमानसमें

---

१. 'कल्याण' स्कन्द पुराणांक—सम्पादकीय वक्तव्य।

२. श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र' द्वारा नेपाल-यात्रा १९८० ई० के पश्चात्के अनुसार।

३. श्रीरामचरितमानसपर पौराणिक प्रभाव, पृष्ठ २२८।

ठीक-ठीक हुआ है। ईश-कथा तो मानसमें है ही । इसलिए केवल रामावतारकी कथा होनेसे ईश-कथा नहीं है अथवा संकेतमात्र है—यह बात ठीक नहीं है। श्रीराम परमब्रह्म हैं, वे ही आश्रय-तत्त्व हैं, इसका प्रतिपादन भी श्रीरामचरितमानसमें पूर्णतः हुआ है। इसलिए श्रीरामचरितमानस 'उपपुराण' या 'औपपुराण' की श्रेणीमें भी नहीं लिया जा सकता। महापुराण भले ही न कहा जाये, पुराण तो कहा ही जायेगा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत एवं श्रीरामचरितमानस दोनों ग्रन्थोंके मंथनसे यही निष्कर्ष पाया जाता है कि श्रीमद्भागवत काव्यात्मक महापुराण है और श्रीरामचरितमानस पुराणात्मक महाकाव्य। दोनों ही महाग्रन्थोंका एक ही लक्ष्य है—मनुष्यकी शाश्वत मंगल साधना।

साम्य-चर्चा

परिशिष्ट—१

शब्द-साम्य

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
प्रोवाचासुरये सांख्यं सत्त्वग्रामविनिर्णयम् । १।३.१०	सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना । १।१४१.७
तत्सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टो यदिह किञ्चन। १।४.१३	प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू । १।११६.५
तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः । पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ।। १।४.३३	देखि राम मुनि आवत हरषि दंडवत कीन्ह । स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहँ दीन्ह ।। ७।३२.०
तथायं चावतारस्ते भुवो भारजिहीर्षया । १।७.२५	प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा । १।२०५.६
गङ्गौघमुदन्वति । १।८.४२	जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं । १।२६३.२
त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं १।९.३३	तरुन तमाल बरन तनु सोहा । २।११४.६
कामं ववर्ष पर्जन्यः १।१०.४	मागें बारिद देहिं जल,···· ७।२३.०
सर्वकामदुघा मही १।१०.४	ससि सम्पन्न सदा रह धरनी । ७।२२.६
नद्यः समुद्रा गिरयः सवनस्पतिवीरुधः । फलन्त्योषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै ।। १।१०.५	सागर निज मरजादाँ रहहीं । ७।२२.९ सरिता सकल बहहिं बर बारी । ७।२२.८ फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन । ७।२२.१ प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी । ७।२२.७ लता बिटप मागें मधु चवहीं । ७।२२.५
सर्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनुद्रुतचेतसः । वीक्षन्तः स्नेहसम्बद्धा विचेलुस्तत्र तत्र ह ।। १।१०.१३	देखि लोग सब भए सुखारे । एकटक लोचन चलत न तारे ।। १।२४३.३

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
न्यरुन्धन्नुद्गलद्बाष्पमौ- त्कण्ठ्याद्देवकीसुते । निर्यात्यगारान्नोऽभद्र- मिति स्याद्बान्धवस्त्रियः ।। १।१०.१४	सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं । मंगल जानि नयन जल रोकहिं ।। ७।६.३
मृदङ्गशङ्खभेर्यश्च वीणापणवगोमुखाः । धुन्धुर्यानकघण्टाद्या नेदुर्दुन्दुभयस्तथा ।। १।१०.१५	झाँझि मृदंग संख सहनाई । भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई ।। १।२६२.१ बीना बेनु संख धुनि द्वारा । २।३६.५ घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं । १।३०१.७
प्रत्युद्ययुः प्रजाः सर्वा भर्तृदर्शनलालसाः । १।११.३	नर अरु नारि हरषि सब धाए । ७।२.४
अपीच्यदर्शनं श्यामं १।१२.८	स्याम सरीरु सुभायँ सुहावन । १।३२६.१
तडिद्वाससमच्युतम् १।१२.८	तड़ित बिनिंदक पीत पट. १।१४७.०
अथाजगाम भगवान् नारदः १।१३.३७	तेहिं अवसर मुनि नारद आए । ७।५०.०
शिवैषोद्यन्तमादित्यमभिरौत्यनलानना । १।१४.१२	खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला । २।१५७.५
मामङ्ग सारमेयोऽयमभिरेभत्यभीरुवत् । १।१४.१२	रोवहिं खर सृकाल बहु स्वाना । ६।१०१.७
धूम्रा दिशः परिधयः कंपते भूः सहाद्रिभिः । १।१४.१५	दस दिसि दाह होन अति लागा । ६।१०१.९
असृग् वर्षन्ति जलदा बीभत्समिव सर्वतः । १।१४.१६	बरषहिं बलाहक रुधिर कच रज असुभ अति सक को कही । ६।१०१. छ.१
सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथो दिवि । १।१४.१७	भयउ परब बिनु रबि उपरागा । ६।१०१.९
दैवतानि रुदन्ती व स्विद्यन्ति ह्युच्चलन्ति च । ६।१४.२०	प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी । ६।१०१.१०

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
शरासंन सयुगशौण्डिराददे । १।१६१०	तब प्रभु कोपि तीव्र सर लीन्हा । ६।७०.४
तत्र तत्रोपश्रृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनाम् । प्रगीयमाणं च यशः कृष्णमाहात्म्यसूचकम् ॥ १।१६.१३	निज गुन सहित राम गुन गाथा । सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा ॥ २।२२३.१
सर्वं ह्येतद् भवान् वेद भूतभव्यभवत्प्रभुः । करामलकवद् विश्वं विज्ञानावसितं तव ॥ २।५.३	जानहिं तीनि काल निज ग्याना । करतल गत आमलक समाना ॥ १।२६.७
अन्ये च विविधा जीवा जलस्थलनभौकसः। २।६.१४	जलचर थलचर नभचर नाना । जे जड़ चेतन जीव जहाना ॥ १।२.४
न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते । २।६.३३	मृषा न कहउँ मोर यह बाना । ७।१५.७
तस्य वै दुहिता ब्रह्मन्देवहूतीति विश्रुता । पत्नी प्रजापतेरुक्ता कर्दमस्य त्वयानघ ॥ ३।२१.३	देवहूति पुनि तासु कुमारी । जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी ॥ १।१४१.५
जज्ञे च कर्दमगृहे द्विज देवहूत्यां स्त्रीभिः समं नवभिरात्मगतिं स्वमात्रे । ऊचे ययाऽऽत्मशमलं गुणसङ्गपङ्क- मस्मिन् विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे ॥ २।७.३	आदिदेव प्रभु दीनदयाला । जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला ॥ १।१४१.६
वक्षःस्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाह- दन्तैर्विडम्बितककुब्जुष ऊढहासम् । २।७.२५	जानहिं दिग्गज उर कठिनाई । जब जब भिरउँ जाइ बरिआई ॥ जिन्ह के दसन कराल न फूटे । उर लागत मूलक इव टूटे ॥ ६.२४.५-६
प्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण । ३।१.१४	फरकत अधर कोप मन माहीं ।
रुषा प्रस्फुरिताधरम् । ४।१८.१	१।१३५.२
कात्स्न्र्येन चाद्येह गतं विधातु रर्वाक्सृतौ कौशलमित्यमन्यत । ३।२.१३	जनु बिरंचि सब निज निपुनाई । बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ॥ १।२२९.६

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
भगवान् स्वात्ममायाया गतिं तामवलोक्य सः। ३।४.३	निज माया बल देखि बिसाला। १।१३१.८
धर्मश्चतुष्पान्मनुजान् कृते समनुवर्तते। ३।११.२१	चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा..... ॥ ७।२०.३
तिर्यङ्नृपितृदेवानां सम्भवो यत्र कर्मभिः। ३।११.२५	त्रिजग देव नर जोइ तनु धरऊँ। ७।१०९.१
एतौ तौ पार्षदौ मह्यं जयो विजय एव च। ३।१६.२	द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु बिजय जान सब कोऊ॥ १।१२१.४
क्षुभितोदरः ३।१७.७	छुभित पयोधि..... । ६।७८.६
यस्त्वद्विधानामसतां प्रशान्तये रूपाणि धत्ते सदनुग्रहेच्छया। ३।१७.३१	धरइ जो बिबिध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन्ह सिखावनु दाता॥ ५।२०.७
.....द्विषतोर्विमर्दनं दिदृक्षुरागादृषिभिर्वृतः स्वराट्। ३।१८.२०	सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढ़े बिमाना॥ ६।८०.१
प्रवृद्धरोषः स कठोरमुष्टिना नदन् प्रहृत्य..... । ३।१९.१५	आवत कपिहि हन्यो तेहिं मुष्टि प्रहार प्रघोर। ६।८३.०
अन्तरधीयतासुरः ३।१९.१५	अंतरधान भयउ छन एका। ६।९५.१
अथोरुधासृजन्मायां। ३।१९.१७	करैं लाग माया बिधि नाना। ६।५०.७
प्रववुर्वायवश्चण्डास्तमः पांसवमैरयन्। दिग्भ्यो निपेतुर्ग्रावाणः क्षेपणैः प्रहिता इव। ३।१९.१८	बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा। ६।५१.३ बरषि धूरि कीन्हेसि अँधिआरा। ६।५१.४
वर्षद्भिः पूयकेशासृग्वि- ण्मूत्रास्थीनि चासकृत्। ३।१९.१९	बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। ६।५१.३

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
आततायिभिरुत्सृष्टा- हिंस्रा वाचोऽतिवैशसाः । ३।१६.२१	मारु काटु धुनि बोलहिं नाची । ६।५१.२
तदा दितेः समभवत्सहसा हृदि वेपथुः । ३।१६.२३	मंदोदरि उर कंपति भारी । ६।१०१.१०
कदम्बचम्पकाशोककरंजबकुलासनैः कुन्दमन्दारकुटजैश्चूतपोतैरलङ्कृतम् । ३।२१.४२	चंपक बकुल कदंब तमाला । पाटल पनस परास रसाला ।। ३।३६.६
कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कुररैर्जलकुक्कुटैः । सारसैश्चक्रवाकैश्च चकोरैर्वल्गु कूजितम् ।। ३।२१.४३	बोलत जलकुक्कुट कलहंसा । ३।३६.२
स्वयैव कान्त्या क्षिपतीमिव श्रियम् । ३।२२.१६	श्री बिमोह जिसु रूप निहारी । १।१२६.४
.....पतिमिङ्गितकोविदा । ३।२३.१	पिय हिय की सिय जाननिहारी । २।१०१.३
महामरकतस्तल्या जुष्टं विद्रुमवेदिभिः ।। द्वारःसु विद्रुमदेहल्या भात वज्रकपाटवत् । शिखरेष्विन्द्रनीलेषु हेमकुम्भैरधिश्रितम् ।। चक्षुष्मत्पद्मरागाग्र्यैर्वज्रभित्तिषु निर्मितैः । ३।२३.१७-१६	मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची । मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची ।। सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे । प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे ।। ७।२६, छं. १
हंसपारावतव्रातैस्तत्र तत्र निकूजितम् । ३।२३.२०	मोर हंस सारस पारावत । ७।२७.५
लिखन्त्यधोमुखी भूमिं पदा नखमणिश्रिया । ३।२३.५०	चारु चरन नख लेखति धरनी । २।५७.५
पेतुः सुमनसो दिव्याः खेचरैरपवर्जिताः । ३।२४.८	सुमनबृष्टि अकास तें होई । १।१६३.२

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
जरयत्यासु या कोशं निगीर्णमनलो यथा । ३।२५.३३	जिमि सो असन पचवै जठरागी । ७।११८.६
यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ । ३।२६.११	जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं । १।२६३.२
ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तमः । ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः।। ३।२६.३१	तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ श्रुतिधारी । तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी ।। ७.८५.५
न चास्य कश्चिद्दयितो न द्वेष्यो न च बान्धवः । ३।२६.३६	जद्यपि सम नहिं राग न रोषू । २।२१८.३
रत्नप्रदीपा आभान्ति । ३।३३.१७	रतनदीप सुठि चारु चँदोवा । १।३५५.४
अतिष्ठदेकपादेन····· । ४।१.१६	ठाढ़े रहे एक पद होऊ । १।१४४.१
·····निर्दन्दोऽनिलभोजनः ४।१.१६	·····रहे समीर अधार । १।१४४.०
प्रणम्य दण्डवद्भूमा···· ४।१.२४	परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी । ३।६.२१
कस्तं चराचर गुरुं । ४।२.२	तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना । १।११०.५
·····दृष्ट्वार्कमिव रोचिषा । ४।२.५	रबि सम तेज सो बरनि न जाई । ७।११.२
ऋते विरिञ्चं शर्वं च····· । ४।२.६	बिष्नु बिरंचि महेसु बिहाई । १।६०.२
अनाहुता अप्यभियन्ति बन्धुषु । ४।३.१६	जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा । जाइअ बिनु बोलेहुँ न सँदेहा ।। १।६१.५
सम्भावितस्य स्वजनात्पराभवो यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ।। ४।३.२५	संभावित कहुँ अपजस लाहू । मरन कोटि सम दारुन दाहू ।। २।६४.७
अरुद्रभागं तमवेक्ष्य चाध्वरं । ४।४.६	कतहुँ न दीख संभु कर भागा । १।६२.४

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
छिन्द्यात्प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चे- जिह्वामसूनपि ततो बिसृजेत्स धर्मः । ४।४.१७	काटिअ तासु जीभ जो बसाई । श्रवन मूदि न त चलिअ पराई ॥ १।६३.४
महद्धाहेति वादः सुमहानजायत । ४।४.२८	भयउ सकल मख हाहाकारा । १।६३.८
उपलभ्य पुरैवैतद्भगवानब्जसम्भवः । नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याध्वरमीयतुः॥ ४।६.३	विष्नु बिरंचि महेसु बिहाई । चले सकल सुर जान बनाई ॥ १।६०.२
पर्यक्कृताचलच्छायो । ४।६.३२	अबिरल छाहँ सुखद सब काला । २।२३६.४
लिङ्गं च तापसाभीष्टं भस्मदण्डजटाजिनम् । अङ्गेन संध्याभ्ररुचा चन्द्रलेखां च बिभ्रतम् ॥ ४।६.३६	जटा मुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन बिसाल । नीलकंठ लावन्यनिधि सोह बालबिधु भाल ॥ १।१०६.०
श्यामो हिरण्यरशनोऽर्ककिरीटजुष्टो नीलालकभ्रमरमण्डितकुण्डलास्यः । ४।७.२०	कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा । कुटिल केस जनु मधुप समाजा ॥ १।१४६.५
मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः । ४।७.३५	मन करि बिषय अनल बन जरई । १।३४.८
एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्वकलेवरम् । जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायामिति शुश्रुम ॥ ४।७.५८	सतीं जो तजी दच्छ मख देहा । जनमी जाइ हिमाचल गेहा ॥ १।८२.२
स्पृष्ट्वा मूर्धन्यघघ्नेन पाणिना । ४।८.२५	सिर परसे प्रभु निज कर कंजा । १।१४७.८
ततो गन्तासि मत्स्थानं,···· ४।९.२५	पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं । ६।११६.(घ)
सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैश्च तद्विधैः । ४।९.५४	सफल रसाल पूगफल केरा । २।५.६

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
भल्लैः संछिद्यमानानां शिरोभिश्चारुकुण्डलैः ।	छाँड़े बिपुल नाराच ।
ऊरुभिर्हेमतालाभैर्दोर्भिर्वलयवल्गुभिः ॥	लगे कटन बिकट पिसाच ॥
हारकेयूरमुकुटैरुष्णीषैश्च महाधनैः ।	उर सीस भुज कर चरन ।
आस्तृतास्ता रणभुवो रेजुर्वीरमनोहराः ॥	जहँ तहँ लगे महि परन ॥
४।१०.१८-१९	३।१९.८-९
मृगेन्द्रविक्रीडितयूथपा इव । ४।१०.२०	जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ । ६।१९
ववृषू रुधिरौघासृक्पूयविण्मूत्रमेदसः । ४।१०.२४	बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा । बरषइ कबहुँ उपल बहु छाड़ा ॥ ६।५१.३
ससृजुस्तिग्मगतय आसुर्या माययासुराः । ४।१०.२८	करैं लाग माया बिधि नाना । ६।५०.७
क्षिप्रं विनेशुर्विदुर क्लेशा ज्ञानोदये यथा । ४।११.२	ग्यान उदयँ जिमि संसय जाहीं । ६।४६.४
उन्नद्धफणा इवाहयः । ४।११.४	फुंकरत जनु बहु ब्याल । ३।१९.छं. १
यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनः । ४।१३.४८	पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी । ६।३३.१४
तरवो भूरिवर्ष्माणः प्रासूयन्त मधुच्युतः । ४।१९.८	लता बिटप मागें मधु चवहीं । ७।२२.५
अन्वद्रवदभिक्रुद्धो रावणं गृध्रराडिव । ४।१९.१६	सुनत गीध क्रोधातुर धावा । ३।२८.१५
विप्राः सत्याशिषस्तुष्टाः श्रद्धया लब्धदक्षिणाः आशिषो युयुजः·····। ४।१९.४१	दिए दान आनंद समेता । चले बिप्रबर आसिष देता ॥ १।२९४.८
सभ्याः शृणुत भद्रं वः साधवो य इहागताः । ४।२१.२१	सुनहु सभासद सकल मुनिंदा । १।६३.१

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
कृतो मेऽनुग्रहः पूर्वं हरिणाऽऽर्तानुकम्पिना । तमापादयितुं ब्रह्मन् भगवन् यूयमागताः ।। ४।२२.४२	जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा । तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा ।। ५।६.५
प्राणा दाराः सुता ब्रह्मन् गृहाश्च सपरिच्छदाः । राज्यं बलं मही कोश इति सर्वं निवेदितम् ।। ४।२२.४४	देव धरनि धनु धामु तुम्हारा । मैं जनु नीचु सहित परिवारा ।। २।८७.६
कीर्त्योर्ध्वगीतया पुम्भिस्त्रै- लोक्ये तत्र तत्र ह । ४।२२.६३	महि पाताल नाक जसु ब्यापा । १।२६४.५
सदारोऽगात्तपोवनम् । ४।२३.३	नारि समेत गवन बन कीन्हा । १।१४२.१
कन्दमूलफलाहारः शुष्कपर्णाशनः क्वचित् । ४।२३.५	करहिं अहार साक फल कंदा । १।१४३.१
अब्भक्षः कतिचित्पक्षान् वायुभक्षस्ततः परम् । ४।२३.५	कछु दिन भोजनु बारि बतासा । १।७३.५
महन्मन इव स्वच्छं प्रसन्नसलिलाशयम् । ४।२४.२०	संत हृदय जस निर्मल बारी । ३।३८.७
आहूतं मन्यते पान्थो यत्र कोकिलकूजितैः । ४।२५.१९	सुंदर खग गन गिरा सुहाई । जात पथिक जनु लेत बोलाई ।। ३।३९.४
ततः क्षुत्तृट्परिश्रान्तो ·····। ४।२६.११	खेद खिन्न छुद्धित तृषित····· । १।१५७
चरमशरीरेण विप्रत्वं गतमाहुः । ५।९.२	चरम देह द्विज कै मैं पाई । ७।१०९.३
मक्षिकेव गरुत्मतः ।। ५।१४.४२	मसक कहूँ खगपति हित करहीं । ६।११७.९

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते। ५।२५.२	ब्रह्मांड भवन बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी। ६।८२. छं. १
महाकिरीटकटकः स्फुरन्मकरकुण्डलः। ६।४.३८	कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। १।१४६.५
कृतान्त इव लोकानां युगान्तसमये यथा। ६।६.१२	मानहुँ कालु देह धरि बैसा। ६।६१.७
दग्धशैलप्रतीकाशं सन्ध्याभ्रानीकवर्चसम्। ६।६.१३	सहित प्रान कज्जल गिरि जैसें। ६।१८.४
लिहता जिह्वयर्क्षाणि ग्रसता भुवनत्रयम्। ६।६.१६	बिस्व ग्रसिहि जनु एहि बिधि अर्पा। ६।६६.५
वित्रस्ता दुद्रुवुर्लोका वीक्ष्य सर्वे दिशो दश। ६।६.१७	डरे सकल सुर चले पराई। ६।६५.६
न राति रोगिणोऽपथ्यं वाञ्छतो हि भिषक्तमः। ६।६.५०	कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी॥ १।१३२.१
दोर्भ्यामुत्कृत्तमूलाभ्यां बभौ रक्तस्रवोऽसुरः। छिन्नपक्षो यथा गोत्रः खाद् भ्रष्टो वज्रिणाहतः॥ ६।१२.२६	काटें भुजा सोह खल कैसा। पच्छहीन मंदर गिरि जैसा॥ ६।६६.११
कियदिव सवितुरिव खद्योतैः। ६।१६.४६	रबि सन्मुख खद्योत अँजोरी। ३।१०.२
मूर्ध्ना सञ्जगृहे शापम्····। ६।१७.३७	श्राप सीस धरि·····। १।१३७.०
	लीन्ह श्राप मैं सीस चढ़ाई। ७।१११.१६
·····एतावत्साधुलक्षणम्। ६।१७.३७	उमा संत कइ इहइ बड़ाई। ५।४०.७

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
संशयः सुमहाञ्जातः**** । ७।१.३	नाथ एक संसउ बड़ मोरें । १।४४.७
श्वित्रो न जातो जिह्वायां नान्धं विविशतुस्तमः । ७।१.१८	गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा । २।१६१.२
पार्षदप्रवरौ विष्णोः**** ७।१.३२	द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ । १।१२१.४
****विप्रशापात्पदाच्च्युतौ ।। ७।१.३२	बिप्र श्राप तें दूनउ भाई । १।१२१.५
प्रोक्तौ पुनर्जन्मभिर्वां त्रिभिर्लोकाय कल्पताम् । ७।१.३८	तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना ।। १।१२२.१
हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः । ७।१.३९	कनककसिपु अरु हाटकलोचन । १।१२१.६
हतो हिरण्यकशिपुर्हरिणा सिंहरूपिणा । ७।१.४०	होइ नरहरि दूसर पुनि मारा । १।१२१.८
हिरण्याक्षो धरोद्धारे बिभ्रता सौकरं वपुः।। ७।१.४०	धरि बराह बपु एक निपाता । १।१२१.७
रावणः कुम्भकर्णश्च सर्वलोकोपतापनौ ।। ७।१.४३	कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान । १।१२२.०
यत्र यत्र द्विजा गावो वेदा वर्णाश्रमाः क्रियाः । तं तं जनपदं यात सन्दीपयत वृश्चत ।। ७।२.१२	जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं । नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं ।। १.१८२.६
हिरण्यकशिपू राजन्नजेयमजरामरम् । आत्मानमप्रतिद्वन्द्वमेकराजं व्यधित्सत ।। ७।३.१	जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ । एकछत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ ।। १।१६४.०

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
वरदोऽहमनुप्राप्तो ब्रियतामीप्सितो वरः । ७।३.१७	मागहु बर प्रसन्न मैं ताता । १।१७६.२
नैतत्पूर्वेषयश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे । ७।३.१६	अस तपु काहुँ न कीन्ह भवानी । भए अनेक धीर मुनि ग्यानी ।। १।७४.१
अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे ऐकपत्यं च देहिनाम् । ७।३.३७	एकछत्र रिपुहीन महि राज कलप सत होउ । १।१६४.०
रत्नाकराश्च रत्नौघान्···· ७।४.१७	सागर निज मरजादाँ रहहीं । डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं ।। ७।२२.६
सर्वर्तुषु गुणान् द्रुमाः ७।४.१८	फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन । ७।२२.१
मा भैष्ट विबुधश्रेष्ठाः सर्वेषां भद्रमस्तु वः । ७।४.२५	जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा । १।१८६.१
दिवौकसः न्यवर्तन्त गतोद्वेगा····· ७।४.२६	तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना । १।१८६.८
भ्रुवोर्विजृम्भणत्रस्तसमस्तधिष्ण्यपम् । ७।५.४६	कर जोरें सुर दिसिप बिनीता । भृकुटि बिलोकत सकल सभीता ।। ५।१६.७
दुर्लभं मानुषं जन्म····· ७।६.१	बड़ें भाग मानुष तनु पावा । ७।४२.७
औपस्थ्यजैह्वयं बहु मन्यमानः ७।६.१३	सिस्नोदर पर····· ७।३६.१
नीयमानां भयोद्विग्नां रुदतीं कुररीमिव । ७।७.७	बिलपति अति कुररी की नाईं । ३.३०.३
क्रुद्धस्य यस्य कम्पन्ते त्रयो लोकाः सहेश्वराः । ७।८.७	कंपहिं लोकप जाकीं त्रासा । ५।३६.४
विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापतिः प्रभुः । विसृज्य राज्यं तपसे सभार्यो वनमाविशत् ।। ८।१.७	बरबस राज सुतहि तब दीन्हा । नारि समेत गवन बन कीन्हा ।। १।१४२.१

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
जगाद जीमूतगभीरया गिरा····। ८।६.१६	बोले घन इव गिरा गँभीरा। ६।७४.१२
सम्भ्रान्तमीनोन्मकराहिकच्छपात्···· । ८।७.१८	मकर उरग झष गन अकुलाने। ५।५७.७
कबन्धास्तत्र चोत्पेतुः पतितस्वशिरोऽक्षिभिः। ८।१०.४०	बिनु मौलि धावत रुंड। ३।१६.छं. १२
वणिक्पथा भिन्ननवो यथार्णवे। ८।११.२५	मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। २।८५.३
माल्यैश्चावाकिरन्विभुम्। ८।११.४०	बरसहिं सुमन रंग बहु माला। १।२६१.६
इति ब्रुवाणो भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत। ८।१२.१७	अंतरधान भए अस भाषी। १।७६.७
सेयं गुणमयी माया न त्वामभिभविष्यति। ८।१२.४०	अब न तुम्हहि माया निअराई। १।१३७.८
यां न व्रजन्त्यधर्मिष्ठाः खला भूतद्रुहः शठाः। मानिनः कामिनोलुब्धा एभिर्हीना व्रजन्ति यत्॥ ८।१५.२२	हरि हर बिमुख धर्म रति नाहीं। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाहीं॥ १।१०५.१
बभूव तूष्णीं पुलकाकुलाकृतिः। ८।१७.६	अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवइ बचन कही। १।२१०. छं. २
प्रीत्या शनैर्गगद्दया गिरा हरिं तुष्टाव सा देव्यदितिः कुरूद्वह। ८।१७.७	अति निर्मल बानीं अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई। १।२१०. छं.३

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
श्यामावदातो ज्वषराजकुण्डल- त्विषोल्लसच्छ्रीवदनाम्बुजः पुमान् । श्रीवत्सवक्षा वलयाङ्गदोल्लस- त्किरीटकाञ्चीगुणचारुनूपुरः ॥ ८।१८.२	लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी । भूषन बनमाला नयन बिसाला । सोभासिंधु खरारी ॥ १।१९१.छं.२
प्रतिवीरं दिग्विजये नाविन्दत गदायुधः । ८।१९.५	आपुनु चलेउ गदा कर लीन्ही । १।१८१.४
	प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा । १।१८१.९
तमायान्तं समालोक्य शूलपाणिं कृतान्तवत् । ८।१९.८	आवत देखि कृतांत समाना । ३।२८.१२
हाहाकारो महानासीद् रोदस्योः सर्वतोदिशम् । ८।२१.२७	हाहाकार भयउ जग भारी । १।८६.७
बदर्याख्यं गतो राजा…… ९।३.३६	बदरीबन कहुँ सो गई…… ४।२५.०
ब्रह्मदण्डो दुरत्ययः ९।४.१४	बिप्रश्राप अति घोर । १।१७४
……वैकुण्ठ गुणानुवादने । ९।४.१८	रामचंद्र गुन बरनैं लागा । ५।१२.५
गृहेषु दारेषु सुतेषु बन्धुषु । ९।४.२७	जननी जनक बंधु सुत दारा । ५।४७.४
देहे पञ्चत्वमापन्ने…… १०।१.३९	पंच रचित अति अधम सरीरा । ४।१०.४
मत्स्याश्वकच्छपनृसिंह वराह……	मीन कमठ सूकर नरहरी । ६।१०९.७
१०।२.४०	
अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः । १०।३.१	पावन काल लोक बिश्रामा । १।१९०.२
ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः । १०।३.४	सीतल मंद सुरभि बह बाऊ । १।१९०.३

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्ध चारणाः। १०।३.६	किंनर नाग सिद्ध गंधर्बा। १।६०.१
मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः। १०।३.७	बरषहिं सुमन देव मुनि बृंदा। ६।१०२.११
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं। १०।३.६	उर श्रीबत्स रुचिर बनमाला। १।१४६.६
पीताम्बरं.....। १०।३.६	पीत पुनीत मनोहर धोती। १।३२६.३
उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपलौकिकम्। १०।३.३०	.....तजहु तात यह रूपा। १।१६१.७
अदृष्ट्वान्यतमं लोके शीलौदार्यगुणैः समम्। १०.३.४१	आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। १।१४६.२
ततो बालध्वनिं श्रुत्वा..... १०।४.१	सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी॥ १।१६२.१
सर्वः स्वकृतं विन्दतेऽवशः १०।४.२१	निज कृत करम भोग सबु भ्राता। २।६१.४
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै। १०।५.२	नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह। १।१६३.०
बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते। १०।८.१५	इन्ह के नाम अनेक अनूपा। १।१६६.४
जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्रतुः। १०।८.२१	जानु पानि बिचरनि मोहि भाई। १।१६८.११
रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा। १०।१४.२५	यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः। १। श्लोक ६

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
यथादेहः प्रियतमः····· । १०।१४.५२	जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि । २।१४१.२
रन्तुं भगवान् मनो दधे ।। १०।१५.३	रमेउ राम मनु देवन्ह जाना । २।१३२.६
पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गैः । १०।१५.४३	मुख सरोज मकरंद छबि करइ मधुप इव पान । १।२३१.०
गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः । १०।१५.४५	मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ । २।८६.७
आर्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबन्धाः । १०।१६.३१	छूटे केस न देह सँभारा । ४।१०.२
परिष्वज्याङ्कमारोप्य मुमोचाश्रुकलां मुहुः । १०।१७.१८	लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि । २।१६४.०
रुषाहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा । १०।१८.२८	मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा । ४।७.३
गिरिर्यथा मघवत आयुधाहतः ।। १०।१८.२९	परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा ।। ६।८३.२
क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत् । १०।१९.१६	निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति । ५।३१.०
अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः।। १०.२३.१९	जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं । १।२९३.२
हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे···· । १०।२७.६	निज इच्छाँ प्रभु अवतरइ····· । ४।२६
	लता बिटप मागें मधु चवहीं । ७।२२.५

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा। १०।३३.३०	समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं॥ १।६८.८
तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृदिकृत्व निमील्य च। १०।३२.८	लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥ १।२३१.७
शापो मेऽनुग्रहायैव कृतस्तैः करुणात्मभिः। १०।३४.१४	मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना। १।२१०. छं. ३
प्रत्यपोवाह भगवान् गजः प्रतिगजं यथा। १०।३६.११	मिरे जुगल मानहुँ गजराजा॥ ५।१८.७
गूढ़ो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः। १०।३७.१२	ईस्वर सर्ब भूतमय अहई॥ ७।१०९.१५
प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः। १०।३८.९	मृगमाला फिरि दाहिनि आई। १।३०२.६
विमोहितोऽयं जन ईश मायया। १०।५१.४६	नाथ जीव तव मायाँ मोहा। ४।२.२
प्रवर्षणाख्यं भगवान् नित्यदा यत्र वर्षति॥ १०।५२.१०	रामु प्रबरषन गिरि पर छाए। ४।११.१०
चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलंकृतम्। १०।५३.८	ध्वज पताक तोरन पुर छावा। १।१९३.१
पतत्पताकाध्वज वारितातपाम्। १०।६९.६	
वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन्..... १०.५३.२७	फरकेउ बाम नयन अरु बाहू। ६।९९.५
सखीभिः परिवारिता। १०।५३.४१	संग सखीं सब सुभग सयानीं। १।२२७.३
विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता। १०।५३.५२	भए मोहबस सब नरनाहा॥ १।२४७.७

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥ १०।५४.३	दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहुँ मघा मेघ झरि लाई ॥ ६।७२.३
परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्तितोमरौ। १०.५४.२९	तोमर मुद्गर परसु प्रचंडा। सूल कृपान परिघ गिरिखंडा ॥ ६।३६.८
यद् यदायुधमादत्त तत् सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः। १०।५४.२६	अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुकहीं प्रभु काटि निवारे ॥ ६।५०.६
विवेश पत्न्या गगनाद् विद्युतेव बलाहकः। १०।५५.२६	राजत रामु सहित भामिनी। मेरु सृंग जनु घन दामिनी ॥ ६.११८.५
नीलवक्त्रालकालिभिः। १०.५५.२८	कुटिल केस जनु मधुप समाजा ॥ १।१४६.५
स्नेहस्नुतपयोधरा। १०।५५.३०	स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए ॥ २।५१.४
नष्टं मृतमिवागतम्। १०।५५.३७	मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे ॥ १।३०७.४
अभिमृश्यारविन्दाक्षः पाणिना शंकरेण तम्। १०।५६.३०	कर परसा सुग्रीव सरीरा। ४।७.६
तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम्। १०।५७.८	तेल नावँ भरि नृप तनु राखा। २।१५६.१
मुखेषु तं चापि शरैरताडयत्....। १०।५९.९	बिसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ। ६।७०.२
पदा सुजातेन नखारुणश्रिया भुवं लिखन्त्यश्रुभिरञ्जनासितैः। १०।६०.२३	चारु चरन नख लेखति धरनी। २।५७.५
नमस्ये त्वां महादेव लोकानां गुरुमीश्वरम्। १०।६२.७	तुम्ह त्रिभुवन गुर बेद बखाना ॥ १।११०.५

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
त्रिलोक्यां प्रतियोद्धारं न लभे त्वद्दृते समम्। १०।६२.८	प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा। १।१८१.९
कं त्वं मृगयसे सुभ्रूः कीदृशस्ते मनोरथः। १०।६२.१५	केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। १।७७.३
यथान्तको दण्डधरो जिघांसया। १०।६२.३३	काल त्रोन सजीव जनु आवा॥ ६।७०.३
ब्रह्मादयः सुराधीशा मुनयः सिद्धचारणाः। गन्धर्वाप्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन्॥ १०।६३.६	सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढ़े बिमाना॥ ६।८०.१
नेत्रैः सिषिचतुर्जलैः। १०।६५.३	निज लोचन जल सींचि जुड़ावा। ४।२.६
शूलैर्गदाभिः परिघैः शक्त्यृष्टिप्रासतोमरैः। असिभिः पट्टिशैर्बाणैः प्राहरन्नरयो हरिम्॥ १०।६६.१६	सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारहीं। करि कोप श्रीरघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं॥ ३।१९. छं. ३
पुरग्रामाकरान् घोषानदहद् वह्निमुत्सृजन्। १०।६७.३	नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं। १।१८२.६
चक्रे किलकिलाशब्दमात्मानं सम्प्रदर्शयन्। १०।६७.११	सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा। ५।२७.२
विरेजे रक्तधारया। १०।६७.१६ गिरिर्यथा गैरिकया····। १०।६७.२०	सोनित स्रवत सोह तनु कारे। जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे॥ ६।६८.७
दातुः प्रतीपैः फणिनामिवामृतम्। १०।६८.२७	भयउँ जथा अहि दूध पिआएँ। ७।१०५.६
शक्रादयो लोकपाला यस्यादेशानुवर्तिनः। १०।६८.३४	सुरपति बसइ बाहँबल जाकें। २।२४.२
कूजितां हंससारसैः। १०।६९.४	बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। ३।३९.२

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
गिरीन् नदीरतीयाय पुरग्रामव्रजाकरान्। १०।७१.२१	नाघत सरित सैल बन बाँके। २।१५७.१
हरिश्चन्द्रो रन्तिदेव उञ्छवृत्तिः शिबिर्बलिः। १०।७२.२१	सिबि दधीच हरिचंद नरेसा। २।६४.३
त्वन्मायामोहितोऽनित्या। १०।७३.१०	तव माया बस फिरउँ भुलाना। ४।१.६
ईशो दुरत्ययः काल। १०।७४.३१	कालु सदा दुरतिक्रम भारी। ७।६३.८
चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत्। १०।७४.४५	तासु तेज प्रभु बदन समाना। ६।७०.८
मृदङ्ग शङ्ख पणवधुन्धुर्यानकगोमुखाः। वादित्राणि विचित्राणि..... ॥ १०.७५.६	झाँझि मृदंग संख सहनाई। भेरि ढोल दुंदुभी सुहाई॥ बाजहिं बहु बाजने सुहाए। १।२६२.१-२
क्षणेन नाशयामास नैशं तम इवोष्णगुः। १०।७६.१७	प्रभु छन महुँ माया सब काटी। जिमि रबि उएँ जाहिं तम फाटी॥ ६।६६.१
पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहुभाषिणः। १०।७७.१६	सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु। १।२७४.०
आत्मा वै प्राणिनां प्रेष्ठः। १०।८०.४०	देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। १।२०७.४
सत्याः सन्तु मनोरथाः १०।८०.४२	सुफल मनोरथ होहुँ तुम्हारे। १।२३६.४
भगवान् धनुरादाय सज्यं कृत्वाथ लीलया॥ १०।८३.२५	अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा। १।२६०.५
राज्ञो निरीक्ष्य परितः। १०।८३.२६	अवचट चितए सकल भुआला। १।२४७.६
खं वायुर्ज्योतिरापो भूस्तत्कृतेषु यथाशयम्। १०।८५.२५	छिति जल पावक गगन समीरा। ४।१०.४

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
समेतः पादरजसा पुनीहीदं निमेः कुलम् । १०।८६.३६	अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे । ६।११५.५
वणिज इवाज सन्त्यकृतकर्णधरा जलधौ । १०।८७.३३	करनधार बिनु जिमि जलजानू । २।२७६.५
ततः कैलासमगमत् स त देवो महेश्वरः । १०।८६.५	बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा । १।५७.६
अथो जगाम वैकुण्ठं यत्र देवो जनार्दनः । १०।८६.७	ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाए । १।८७.४
श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालया वृतम् । १०।८६.५६	उर श्रीबत्स रुचिर बनमाला । १।१४६.६
प्रीतः सम्पूजयाञ्चक्रे आसनस्थान् यथार्हतः । ११।२.२६	पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे । १।३३०.१
प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः । ११।२.५४	सरदातप जिमि ससि अपहरई । ४।१६.६
तत्तत् कर्मफलं गृह्णन् भ्रमतीह सुखेतरम् । ११।३.६	फिरत सदा माया कर प्रेरा । ७।४३.५
हीना मया कल्पसमा बभूवुः । ११।१२.११	अरध निमेष कलप सम बीता । १।२६६.८
मन्मायामोहितधियः पुरुषाः पुरुषर्षभ । ११।१४.६	हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं । १।११४.६
यथाग्निना हेम मलं जहाति । ११।१४.२५	कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें । २।२०४.५
कालः कलयतामहम् । ११।१६.१०	भुवनेस्वर कालहु कर काला । ५।३८.१
·····दग्धकर्माशयोऽमलः । ११।१७.३६	ममता मल जरि जाइ ।। ७।११७ (क)
·····पुत्रवित्तैषणातुरः । ११।१७.५६	सुत बित लोक ईषना तीनी । ७।७०.६
एवं स भौतिकं दुःखं दैविकं दैहिकं च यत् । ११।२३.४१	दैहिक दैविक भौतिक तापा । ७।२०.१

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
गोभूहिरण्यवासोभिर्गजाश्वरथवेश्मभिः । ११।३०.८	गज रथ तुरग हेम गो हीरा। १।१६५.८
युयुधुः क्रोधसंरब्धा । ११।३०.१४	भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा । ६।५३.२
पृथ्वीं सागरमेखलाम् । १२।३.४	भूमि सप्त सागर मेखला । ७।२१.१
स्वप्ने यथा शिरच्छेदं पञ्चत्वाद्यात्मनः स्वयम् । १२।५.४	जौं सपनें सिर काटै कोई ।। १।११७.२
हाहाकारो महानासीद् भुवि खे दिक्षु सर्वतः। १२।६.१४	हाहाकार भयउ जग भारी। १।८६.७
मत्तभ्रमरसंगीतं मत्तकोकिलकूजितम् । १२।८.१६	कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा । १।१२५.२

परिशिष्ट २

भाव-साम्य

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत । १।१.८	गूढ़उ तत्तव न साधु दुरावहिं । आरत अधिकारी जहँ पावहिं ।। १।१०६.२
यद्विभेति स्वयं भयम् । १।१.१४	जासु त्रास डर कहुँ डर होई । १।२२४.७
अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः । लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया ।। १।१.१८	पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा । १।१०६.५
प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे । १।२.१	बहु बिधि उमहि प्रसंसि पुनि बोले कृपानिधान । १।१२० (क)
मुनयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमङ्गलम् । १।२.५	पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा । सकल लोक जग पावनि गंगा ।। १।१११.७
अपश्यन् सहसोत्तस्थे वैक्लव्याद्दुर्मना इव । १।६.१८	मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें । ३।६.१६
अस्त्रं ब्रह्मशिरो मेने···· ··· । १।७.१६	ब्रह्म अस्त्र तेहिं साँधा । ५।१६.०
प्राणकृच्छ्र उपस्थिते । १।७.२०	संकठभयउ हरिहि मम प्राना । ६।५३.६
मन्दं जहाम वैकुण्ठो । १।८.४४	मन मुसकाइ भानुकुल भानू । २।४०.५
दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवश्च्युतमिवामरम् । १।६.४	सुरपुर तें जनु खँसेउ जजाती ।। २।१४७.६
पूजयामास धर्मज्ञो देशकालविभागवित् । १।६.६	पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे । १।३३०.१
स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम् । १।६.२४	तब लगि रहहु दीन हित लागी । जब लगि मिलौ तुम्हहि तनु त्यागी ।। ३।७.६

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः। १।९.४५	नभ तें सुरन्ह सुमन बहु बरषे। ६।१०७.१३
न सेहिरे विमुह्यन्तो विरहं शार्ङ्गधन्वनः। १।१०.१०	सहि न सके रघुबर बिरहागी। २।८३.४
प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिदृक्षया। ववृषुः कुसुमैः..... ॥ १।१०.१६	जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागीं॥ १।२१९.४
	चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नारीं। १।३००.४
	बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह निरखहिं। ७।३ (ख)
विकीर्यमाणः कुसुमैः रेजे मधुपतिः पथि। १।१०.१८	हियँ हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद। १।२२३.०
स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो जितेन्द्रिया निर्जितमातरिश्वनः। पश्यन्ति भक्त्युत्कलितामलात्मना.... १।१०.२३	निर्मल मन जन सो मोहि पावा। ५।४३.५
अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः। १।१०.२७	धन्य भूमि बन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा॥ २।१३५.१
तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद्। १।११.९	निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति। ५।३१.०
	निमिष बिहात कलप सम तेही। १।२६०.१
	अरध निमेष कलप सम बीता॥ १।२६९.८
	सो छन कपिहि कलप सम बीता। ५।११.१२

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
सर्वर्तुसर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः।	सब तरु फरे राम हित लागी।
उद्यानोपवनारामैर्वृतपद्माकरश्रियम् ॥	रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी ॥
१।११.१२	६।४.५
	फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन।
	७।२२.१
गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम्।	ध्वज पताक पट चमर सुहाए।
चित्रध्वजपताकाग्रैरन्तः प्रतिहतातपाम् ॥	१।२८८.२
१।११.१३	छावा परम बिचित्र बजारू।
	१।२९५.७
द्वारि द्वारि गृहाणां च दध्यक्षतफलेक्षुभिः।	कनक कलस तोरन मनि जाला।
अलंकृतां पूर्णकुम्भैर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥	हरद दूब दधि अच्छत माला ॥
१।११.१५	१।२९५.८
नटनर्तकगन्धर्वाः सूतमागधवन्दिनः।	मागध सूत बंदि नट नागर।
गायन्ति चोत्तमश्लोकचरितान्यद्भुतानि च॥	गावहिं जसु तिहु लोक उजागर ॥
१।११.२०	१।३४७.१
भगवांस्तत्र बन्धूनां पौराणामनुवर्तिनाम्।	पुरजन परिजर जातिजन
यथाविध्युपसंगम्य सर्वेषां मानमादधे ॥	जाचक मंत्री मीत।
१।११.२१	मिले जथाबिधि सबहि प्रभु
	परम कृपाल बिनीत ॥
	१।३०८.०
जातकं कारयामास वाचयित्वा च मङ्गलम्।	नंदीमुख सराध करि
१।१२.१३	जातकरम सब कीन्ह।
	१।१९३.०
हिरण्यं गां महीं ग्रामान्	हाटक धेनु बसन मनि
हस्त्यश्वान्नृपतिर्वरान्।	नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह।
प्रादात्स्वन्नं च विप्रेभ्यः	१।१९३.०
प्रजातीर्थे स तीर्थवित् ॥	गज रथ तुरग हेम गो हीरा।
१।१२.१४	दीन्हें नृप नानाबिधि चीरा ॥
	१।१९५.८

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
राजा तमर्हयाञ्चक्रे कृतासनपरिग्रहम् । १।१३.६	चरन पखारि कीन्हि अति पूजा । १।२०६.३
मा कंचन शुचो राजन् यदीश्वरवशं जगत् । लोकाः सपाला यस्येमे वहन्ति बलिमीशितुः । स संयुनक्ति भूतानि स एव वियुनक्ति च ॥ १।१३.४०	ईस रजाइ सीस सबही कें । उतपति थिति लय बिषहु अमी कें ॥ देबि मोह बस सोचिअ बादी । २।२८१.५-६ बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला । माया जीव करम कुलि काला ॥ अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई । जोग सिद्ध निगमागम गाई ॥ करि बिचार जियँ देखहु नीकें । राम रजाइ सीस सबही कें ॥ २।२५३.६-८
इत्युक्त्वाथारुहत् स्वर्गं नारदः..... । १।१३.५६	कहि अस ब्रह्म भवन मुनि गयऊ । १।७०.१
ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वहः । १।१४.२	असगुन भयउ भयंकर भारी । ६।१३.२
कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्यस्तर्तुधर्मिणः । पापीयसीं नृणां वार्ता क्रोधलोभानृतात्मनाम् ॥ १।१४.३	सो कलिकाल कठिन उरगारी । पाप परायन सब नर नारी ॥ ७।९६.८ पर त्रिय लंपट कपट सयाने । मोह द्रोह ममता लपटाने ॥ ७।९९.१
शोकेन शुष्यद्वदनहृत्सरोजो हतप्रभः । १।१५.२	सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी । २।१४४.४
नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि । १।१५.१८	अबलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास । १।४२.०

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
यथा मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्याद् यथा नटः । १।१५.३५	जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ । ७।७२. (ख)
विच्छायासि म्लायतेषन्मुखेन । १।१६.१९	काहे तव मुख रहे सुखाई । ६।६१.८
आलक्षये भवतीमन्तरार्धि । १।१६.१९	नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा । २।२२१.४
पातालमेतस्य हि पादमूलं । २।१.२६	पद पाताल सीस अज धामा । ६।१४.१
कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः । २।१.२९	श्रवन दिसा दस बेद बखानी । ६।१४.४
हासो जनोन्मादकरी च माया । २।१.३१	माया हास बाहु दिगपाला । ६।१४.५
कृष्णानुभावश्रवणे श्रद्दधानो महामनाः । २।४.३	बहु लालसा कथा पर बाढ़ी । १।१०३.२
तमो विशीर्यते मह्यं हरेः कथयतः कथाम् । २।४.५	तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना । कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना ।। १।१०७.२
दुर्विभाव्यमधीश्वरैः । २।४.६	पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई । १।१८५. छं. १
हरेरद्भुतकर्मणः । २।४.८	
यथा गोपायति विभुर्यथा संयच्छतेपुनः । ....आत्मानं क्रीडयन् क्रीडन् करोति विकरोति च ।। २।४.७	जो सृजि पालइ हरइ बहोरी । बालकेलि सम बिधि मति भोरी ।। २।२८१.२
हृषीकेशमनुस्मृत्य प्रतिबक्तुं प्रचक्रमे । २।४.११	करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी । हरषि सुधा सम गिरा उचारी ।। १।१११.५
एकः सृजसि भूतानि भूतैरेवात्ममायया । २।५.४	जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा । १।१८५. छं. ३

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
मां खेदयत्येतदजस्य जन्म- विडम्बनं यद्वसुदेवगेहे । ३।२.१६	मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ।। १।१६१. छ. २
क्रीडामृगो नूनमयं वधूनाम् । ३।२.५	नारि बिबस नर सकल गोसाईं । नाचहिं नट मर्कट की नाईं ।। ७।९८.१
हिरण्यं रजतं शय्यां वासांस्यजिनकम्बलान् । यानं रथानिभान् कन्या धरां वृत्तिकरीमपि ।। ३।३.२७	कंबल बसन बिचित्र पटोरे । भाँति भाँति बहु मोल न थोरे ।। गज रथ तुरग दास अरु दासी । धेनु अलंकृत कामदुहा सी ।। १।३२५.३-४
संछिन्नः संशयो मह्यं तव सूक्तासिना विभो । ३।७.१५	तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेऊ । १।११९.२
अनापृष्टमपि ब्रूयुर्गुरवो दीनवत्सलाः । ३।७.२६	जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई । सोउ दयाल राखहु जनि गोई ।। १।११०.४
नेमुर्निरीक्ष्य नवितृप्तदृशो मुदा कैः । ३।१५.४२	एकटक रहे निमेष न लावहिं । ७।३२.४
सोऽद्यैव नो नयनमूलमनन्त राद्धः । ३।१५.४६	नयन बिषय मो कहुँ भयउ सो समस्त सुख मूल । १।३४१.०
चेतोऽलिवद् यदि नु ते पदयो रमेत । ३।१५.४६	पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना । १।२१०. छं.३
हतश्रियौ ब्रह्मशापादभूतां विगतस्मयौ । ३।१६.३३	बिप्र श्राप तें दूनउ भाई । तामस असुर देह तिन्ह पाई ।। १।१२१.५

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
अन्वेषन्नप्रतिरथो लोकानटति कण्टकः । ३।१८.२३	प्रतिमट खोजत कतहुँ न पावा । १।१८१.६
विद्योतमानं वपुषा तपस्युग्रयुजा चिरम् । नातिक्षामं भगवतः स्निग्धापाङ्गावलोकनात्। तद्वचाहृतामृतकलापीयूषश्रवणेन च ॥ ३।२१.४६	मृतक जिआवनि गिरा सुहाई । श्रवन रंध्र होइ उर जब आई ॥ हृष्टपुष्ट तन भए सुहाए । १।१४४.७-८
उपगुह्य च बाहुभ्यामौत्कंठ्योन्मथिताशयः । ३।२२.२४	लीन्हि रायँ उर लाइ जानकी । १।३३७.६
भूषणानि परार्ध्यानि वरीयांसि द्युमन्ति च । ३।२३.२६	दिब्य बसन भूषन पहिराए । जे नित नूतन अमल सुहाए ॥ ३।४.३
गायन्ति तं स्म गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसो मुदा । ३।२४.७	नभ दुंदुभीं बाजहिं बिपुल गन्धर्ब किन्नर गावहीं । नाचहिं अपछरा बृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं ॥ ७।११. छं. १
पयः फेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः । आसनानि च हैमानि सुस्पर्शास्तरणानि च ॥ ३।३३.१६	सुभग सुरभि पय फेन समाना । कोमल कलित सुपेती नाना । १।३५५.२ जरित कनक मनि पलँग डसाए । १।३५५.१ उपबरहन बर बरनि न जाहीं । १।३५५.३
प्रजामात्मसमां मह्यं प्रयच्छत्विति चिन्तयन् । ४।१.२०	चाहउँ तुम्हहि समान सुत प्रभु सन कवन दुराउ । १।१४६.०
अप्सरोमुनिगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगैः । ४।१.२२	सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किन्नर मुनिबृंद । १।१०५.०

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
नैतादृशानां स्वजनव्यपेक्षया। गृहान् प्रतीयादनवस्थितात्मनाम्। ४।३.१८	तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गएँ कल्यानु न होई॥ १।६१.६
अथापि मानं न पितुः प्रपत्स्यसे मदाश्रयात्कः परितप्यते यतः। ४।३.२०	हमरें बयर तुम्हउ बिसराई। १।६१.२
तामागतां तत्र न कश्चनाद्रियद्। ४।४.७	दच्छ त्रास काहुँ न सनमानी। १।६२.१
ऋते स्वसॄर्वै जननीं च सादराः प्रेमाश्रुकण्ठ्यः परिषस्वजुर्मुदा॥ ४।४.७	सादर भलेहिं मिली एक माता। भगिनीं मिलीं बहुत मुसुकाता॥ १।६२.२
चुकोप लोकानिव धक्ष्यती रुषा। ४।४.९	समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा। १।६२.८
तथाप्रियो देहभृतां प्रियात्मनः। ४।४.११	जगदातमा महेसु पुरारी। १।६३.५
कर्णौ पिधाय निरियाद्यदकल्प ईशे धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने। ४।४.१७	पिता मंदमति निंदत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही॥ तजिहउँ तुरत देह तेहि हेतू। १।६३.६-७
ददर्श देहो हतकल्मषः सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना। ४।४.२७	अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। १।६३.८
तैः समन्वितः पितृभिः सप्रजेशैः। ययौ·····कैलासमद्रिप्रवरं प्रियं प्रभोः॥ ४।६.८	सब सुर बिष्नु बिरंचि समेता। गए जहाँ सिव कृपानिकेता॥ १।८७.५
जन्मौषधितपोमन्त्रयोगसिद्धैर्नरेतरैः। जुष्टं किन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा॥ ४।६.९	सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनिबृंद। बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुखकंद॥ १।१०५.०

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
ददृशुः शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवान्तकम्। ४।६।३३	बैठे सोह कामरिपु कैसें। धरें सरीरु सांतरसु जैसें॥ १।१०६.१
सनन्दनाद्यैर्महासिद्धैः शान्तैः संशान्तविग्रहम्। ४।६.३४	
यस्मिन् यदा पुष्करनाभमायया दुरन्तया स्पृष्टधियः पृथग्दृशः। ४।६.४८	सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल। १।१४०.०
परितुष्टात्मभिस्तात साधु साध्वित्यथाब्रुवन्। ४।७.६	साधु साधु करि ब्रह्म बखाना॥ १।१८४.८
भूयाननुग्रह अहो भवता कृतो मे दण्डस्त्वया मयि भृतो यदपि प्रलब्धः। ४।७.१३	प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। ५।५८.५
सोऽयं प्रसीदतु भवान् प्रणतात्मबन्धुः। ४।७.३०	कृपा करहु प्रनतारति मोचन। १।१४५.६
सुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं सुरसुन्दरम्। ४।८.४५	सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। १।१९८.९
तरुणं रमणीयाङ्गमरुणोष्ठेक्षणाधरम्। ४।८.४६	अधर अरुन रद सुंदर नासा। १।१४६.२
मयैतत्प्रार्थितं व्यर्थं चिकित्सेव गतायुषि। ४।९.३४	काल बिबस कहुँ भेषज जैसें। ६।९.५
स्वाराज्यं यच्छतो मढचा- न्मानो मे भिक्षितो बत। ईश्वरात्क्षीणपुण्येन फलीकारानिवाधनः॥ ४।९.३५	जथा दरिद्र बिबुधतरु पाई। बहु संपति मागत सकुचाई॥ १।१४८.५

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
गदापरिघनिस्त्रिंशमुसलाः साश्मवर्षिणः । ४।१०.२५	सक्ति सूल तरवारि कृपाना । अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना ।। डारइ परसु परिघ पाषाना । लागेउ बृष्टि करै बहु बाना ।। ६।७२.१-२
स एव विश्वं सृजति स एवावति हन्ति च। ४.११.२५	जो सृजि पालइ हरइ बहोरी । २।२८१.२
मन्ये महाभागवतं नारदं देवदर्शनम् । ४।१३.३	नारद बिष्नु भगत पुनि ग्यानी । १।१२३.६
विज्ञाय निर्विद्य गतं पतिं प्रजाः पुरोहितामात्यसुहृद्गणादयः । विचिक्युरुर्व्यामतिशोककातरा···· । ४।१३.४८	जागे सकल लोग भएँ भोरु । गे रघुनाथ भयउ अति सोरू ।। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं ।। २।८५.१-२
प्रशंसन्ति स्म तं विप्रा ४।१५.७	प्रभुहि प्रसंसहिं देहिं असीसा । १।२६१.५
गन्धर्वप्रवरा जगुः । ४।१५.७	गावहिं गुन गंधर्ब बरूथा । १.१६०.६
मुमुचुः सुमनोधाराः ४।१५.७	सुमनबृष्टि अकास तें होई । १।१६३.२
सिद्धा नृत्यन्ति स्वः स्त्रियः ।। ४।१५.७	नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना ।। ६।९.९
एष स्वसद्मोपवने समेत्य सनत्कुमारं भगवन्तमेकम् । ४।१६.२५	सुंदर उपवन देखन गए । ७।३१.२ जानि समय सनकादिक आए । ७।३१.३
सादिशोविदशो देवी रोदसी चान्तरंतयोः । धावन्ती तत्र तत्रैनं ददर्शानूद्यतायुधम् ।। ४।१७.१६	ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका । फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका ।। ३।१.४
लोके नाविन्दत त्राणं ४।१७.१७ त्रस्ता तदा निववृते हृदयेन विदूयता । ४।१७.१७	काहूँ बैठन कहा न ओही । ३।१.५ भा निरास उपजी मन त्रासा । ३।१.३
त्राहि मामपि भूतानां पालनेऽवस्थितो भवान् । ४।१७.१८	त्राहि त्राहि दयाल रघुराई । ३।१.११

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक् । ४।२१.१२	भूमि सप्त सागर मेखला । एक भूप रघुपति कोसला ।। ७।२१.१
अन्यत्र ब्राह्मणकुलादन्यत्राच्युतगोत्रतः । ४।२१.१२	सुर महिसुर हरिजन अरु गाई । हमरें कुल इन्ह पर न सुराई ।। १।२७२.६
उत्थितः सदसो मध्ये तारणामुडुराडिव । ४।२१.१४	उडगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे । १।२४०.३
गुणायनं शीलधनं कृतज्ञं वृद्धाश्रयं संवृणतेऽनु सम्पदः । ४।२१.४४	तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ । धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ ।। १।२६३.३
तत्रोपजग्मुर्मुनयश्चत्वारः सूर्यवर्चसः । ४।२२.१	जानि समय सनकादिक आए । तेज पुंज गुन सील सुहाए ।। ७।३१.३
विवेश वह्निं ध्यायती भर्तृपादौ । ४।२३.२२	पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली । ६।१०८. छं. १
य इदं सुमहत्पुण्यं श्रद्धयावहितः पठेत् । श्रवयेच्छृणुयाद्वापि स पृथोः पदवीमियात् । ४।२३.३१	यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा ।। १।१६१. छं.४
हंससारसचक्राह्वकारण्डवनिकूजितम् । ४।२४.२१	चक्रबाक बक खग समुदाई । ३।३६.३ बोलत जलकुक्कुट कलहंसा । ३।३६.२
पस्पर्श पादयुगलमाह चोत्सङ्गलालिताम् । ४।२६.२०	गहि पद बिनय कीन्ह बैठारी । २। ३.६
भगवंस्ते वचोऽस्माभिर्न सम्यगवगम्यते । कवयस्तद्विजानन्ति न वयं कर्ममोहिताः ।। ४।२६.१	किमि समुझौं मैं जीव जड़ कलि मल ग्रसित बिमूढ़ । १।३०(ख)
संशयोऽत्र तु मे विप्र संछिन्नस्तत्कृतो महान् । ४।२६.५७	गयउ मोह संसय नाना भ्रम । ७।६३.२ तव प्रसाद संसय सब गयऊ । ७।१२४.६ नाथ कृपा मम गत संदेहा । ७।१२८.८
उद्विग्नमीनयुगलं..... ५।२.१३	खेलत मनसिज मीन जुग । १।२५८

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
योऽसौ त्वया करसरोजहतः पतङ्गो ५।२.१४	बहुबिधि क्रीड़हिं पानि पतंगा। १।१२५.५
ममाहमेवाभिरूपः कैवल्यात्'''' ५।३.१७	आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। १।१४६.२
आत्मतुल्यमनुपलभमानः। ५।३.१८	
अंश कलया अवतरिष्यमि। ५।३.१८	अंसन्ह सहित देहधरि ताता। १।१५१.२
गृहेषु रंस्यन् यथा वानरः सुतदारवत्सलो। ५।१४.३२	मैं पावँर पसु कपि अति कामी। ४।२०.३
नाद्यापि ते निवर्तन्ते ६।५.३३	तिन्ह फिरि भवनु न देखा आई। १।७८.१
एवं त्वं निरनुक्रोशो। ६।५.३८	साचेहुँ उन्ह कें मोह न माया। १।९६.३
तैर्विसृष्टेषुभिस्तीक्ष्णैर्निर्भिन्नाङ्गोरुबाहवः। ६।७.१९	छाँड़े बिपुल नाराच। ३।१९.छं.८ उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन॥ ३।१९ छं.९
पठेयुराख्यानमिमं सदा बुधाः शृण्वन्त्यथो पर्वणि पर्वणीन्द्रियम्। धन्यं यशस्यं निखिलाघमोचनं रिपुञ्जयं स्वस्त्ययनं तथाऽऽयुषम्॥ ६।१३.२३	समर बिजय रघुबीर के चरित जे सुनहिं सुजान। बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहि देहिं भगवान॥ ६।१२१ (क)
सम्पन्नस्य गुणैः सर्वै- श्चिन्ता वन्ध्यापतेरभूत्। ६।१४.१२	भै गलानि मोरें सुत नाहीं। १।१८८.१
पञ्चषड्ढायनार्भाभाः पूर्वेषामपि पूर्वजाः। ७।१.३६	देखत बालक बहुकालीना। ७।३१.४
दिग्वाससः शिशून् मत्वा'''' ७।१.३६	आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं। ७।३१-६
पापिष्ठामासुरीं योनिं बालिशौ यातमाश्वतः। ७।१.३७	तामस असुर देह तिन्ह पाई। १।१२१.५

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
सूदयध्वं तपोयज्ञस्वाध्यायव्रतदानिनः । ७।२.१०	द्विज भोजन मख होम सराधा । सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा ।। १।१८०.८
भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्मा भून्मम प्रभो। ७।३.३५	हम काहू के मरहिं न मारें। १।१७६.४
देवासुरमनुष्येन्द्रान् गन्धर्वगरुडोरगान् ।। सिद्धचारणविद्याध्रानृषीन् पितृपतीन् मनून् । यक्षरक्षःपिशाचेशान् प्रेतभूतपतीनथ ।। सर्वसत्वपतीञ्जित्वा वशमानीय विश्वजित्। ७।४.५-७	किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा । हठि सबही के पंथहिं लागा ।। ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी । दसमुख बसबर्ती नर नारी ।। १।१८१.११-१२
अकृष्टपच्या तस्यासीत् सप्तद्वीपवती मही । ७।४.१६	ससि संपन्न सदा रह धरनी । ७।२२.६
दैतेयचन्दनवने जातोऽयं कण्टकद्रुमः । ७।५.१७	बेनुमूल सुत भयहु घमोई । ६।९.३
व्यक्तं त्वं मर्तुकामोऽसि योऽतिमात्रं विकत्थसे । ७।८.१२	मृत्यु निकट आई खल तोही । लागेसि अधम सिखावन मोही ।। ५।२३.३
तत्रोपव्रज्य विबुधा ब्रह्मेन्द्रगिरिशादयः । ऋषयः पितरः सिद्धा विद्याधरमहोरगाः ।। मनवः प्रजानां पतयो गन्धर्वाप्सरचारणाः । यक्षाः किंपुरुषास्तात वेताला: सिद्धकिन्नराः।। ७।८.३७-३८	तासु मरन सुनि सुर गंधर्बा । चढ़ि बिमान आए नभ सर्बा ।। ६।७६.२
एवं प्रलोभ्यमानोऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः । एकान्तित्वाद् भगवति नैच्छत्..... ।। ७।९.५५	मागहु बर बहु भाँति लोभाए । परम धीर नहिं चलहिं चलाए ।। १।१४४.३
वरः क्रूरनिसर्गाणामहीनाममृतं यथा । ७।१०.३०	भयउँ जथा अहि दूध पिआएँ ।। ७।१०५.६

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
न यस्य साक्षाद् भवपद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् । ७।१०.५०	सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान । नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान ।। १।१२
ततस्ते सेश्वरा लोका उपासाद्येश्वरं विभो । ७।१०.५६	सब सुर बिष्नु बिरंचि समेता । गए जहाँ सिव कृपानिकेता ।। १।८७.५
सुनन्दायां वर्षशतं पदैकेन भुवं स्पृशन् । तप्यमानस्तपो घोरमिदन्वाह भारत ।। ८।१.८	बरष सहस दस त्यागेऊ सोऊ । ठाढ़े रहे एक पद दोऊ ।। १।१४४.१
गजेन्द्रोभगवत्स्पर्शाद् विमुक्तोऽज्ञानबंधनात् । प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः ।। ८।४.६	गीध देह तजि धरि हरि रूपा । भूषन बहु पट पीत अनूपा ।। ३।३१.१
रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत् सौदामनी यथा । ८।८.८	करत प्रकासु फिरइ फुलवाईं । १।२३०.२
यस्तु पर्वणि चन्द्रार्कावभिधावति वैरधीः । ८।६.२६	अजहुँ देत दुख रबि ससिहि सिर अवसेषित राहु । १।१७०
यानं वैहायसं नाम कामगं मयनिर्मितम् । ८।१०.१६	मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गयउ अकास । ६।७२
अथो सुराः प्रत्युपलब्धचेतसः परस्य पुंसः परयानुकम्पया । ८।११.१	राम कृपा करि चितवा सबही । भए बिगतश्रम बानर तबही ।। ६।४७.२
अहं कलानामृषभो विमुह्ये ययावशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः । ९।१२.४३	सिव बिरंचि कहुँ मोहइ को है बपुरा आन । ७।६२ (ख)

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
प्राकारेणाग्निवर्णेन साट्टालेनोन्नतेन च ।। रुक्मपट्टकपाटैश्च द्वारैः स्फटिकगोपुरैः । जुष्टां विभक्तप्रपथां विश्वकर्मविनिर्मिताम् ।। सभाचत्वररथ्याढ्यां विमानैर्न्यर्बुदैर्युताम् । शृङ्गाटकैर्मणिमयैर्वज्रविद्रुमवेदिभिः ।। ८।१५.१४-१६	धवल धाम ऊपर नभ चुंबत । कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत ।। बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं । गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं ।। मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची । मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची ।। सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे । प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे ।। ७।२६.७,८ एवं छं. १
हित्वात्रिविष्टपं जग्मुर्गीर्वाणाः कामरूपिणः । ८।१५.३२	देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा । १।१८१.६
शंखदुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवानकाः । चित्रवादित्रतूर्याणां निर्घोषस्तुमुलोऽभवत् ।। ८।१८.७	हने निसान पनव बर बाजे । भेरि संख धुनि हय गय गाजे ।। झाँझि बिरव डिंडिमीं सुहाई । सरस राग बाजहिं सहनाई ।। १।३४३.१-२
तत्पादशौचं जनकल्मषापहं स धर्मवित्मूर्ध्न्यदधात् सुमङ्गलम् । ८।१८.२८	पद पखारि पादोदक लीन्हा । ७.४७.२
यद् यद् वटो वाञ्छसि तत्प्रतीच्छ मे त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये । गां काञ्चनं गुणवद् धाम मृष्टं तथान्नपेयमुत वा विप्रकन्याम् । ग्रामान् समृद्धांस्तुरगान् गजान् वा रथांस्तथार्हत्तम सम्प्रतीच्छ ।। ८।१८.३२	मागहु भूमि धेनु धन कोसा । सर्बस देउँ आजु सहरोसा ।। १।२०७.३

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
स तन्निकेतं परिमृश्च शून्य- मपश्यमानः कुपितो ननाद । ८।१६.११	दिगपालन्ह के लोक सुहाए । सूने सकल दसानन पाए ।। १।१८१.७
नाहं बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात् । ८।२०.५	नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू । २।२१०.५
गुरुणाभर्त्सितः शप्तोजहौ सत्यं न सुव्रत :। छलैरुक्तोमयाधर्मोनायंत्यजति सत्यवाक् ।। एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापममरैरपि । ८।२२.३०-३१	भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्ह महारिषि साप । मुनि दुर्लभ बर पायउँ देखहु भजन प्रताप । ७।११४ ख. ०
गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः । रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि।। ८।२४.५	असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु । जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु । १।१२१.०
ये भूता ये भविष्याश्च ९।१.५	भए जे अहहिं जे होइहहिं आगें । १।१३.६
स एकदा महाराज विचरन् मृगयां वने । ९।१.२३	चढ़ि बर बाजि बार एक राजा । मृगया कर सब साजि समाजा ।। १।१५५.३
ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः । पुरुरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम ।। ९।१.४२	जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा । हरि हित आपु गवन बन कीन्हा ।। १।१५२.८
विस्मितः परमप्रीतस्तनयां परिषस्वजे । ९।३.२३	हरषि उठाइ लियो उर लाई । ६।१२०.१२
भुवो भारावताराय भगवान् भूतभावनः । ९।३।३४	.....भंजन महिभारा । १।४७.७
अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवण कीर्तनः । ९।३.३५	अंसन्ह सहिज मनुज अवतारा । १।१८६.२

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
न प्राभूद् यत्र निर्मुक्तो ब्रह्मदण्डो दुरत्ययः। ६।४.१४	किएँ अन्यथा होइ नहिं बिप्रश्राप अति घोर।। १।१७४
गृहेषु दारेषु सुतेषु बन्धुषु द्विपोत्तमस्यन्दनवाजिपत्तिषु। अक्षय्यरत्नाभरणायुधादि- ष्वनन्तकोशेष्वकरोदसन्मतिम्।। ६।४.२७	जननी जनक बन्धु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा।। सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी।। ५।४७.४-५
एतदन्यश्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम्। वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय विस्तृतम्।। १०।१.१२	जो प्रभु मैं पूछा नहिं होई। सोउ दयाल राखहु जनि गोई।। १।११०.४
एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम्। प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः।। १०।१.१४	सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता। सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता।। भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहै रघुपति गुन गाहा।। ७।६३.५-६
तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद् भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः। १०।२.३३	चलत कुपंथ बेद मग छाँड़े। १।११.२
यर्ह्येवाजन जन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम्।। १०।३.१	जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल। १।१९०.०
मही मङ्गलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा।। १०।३.२	चर अरु अचर हर्षजुत राम जनम सुखमूल। १।१९०.०
नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः। १०।३.३	भइ सरजू अति निर्मल नीरा। ७।२.१०

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
द्विजालिकुलसंनादस्तबका वनराजयः । १०।३.३	वन कुसुमित गिरिगन मनिआरा । १।१६०.४
विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः सनं तदा । १०।३.६	नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना ।। ६।६.६
देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः । १०।३.८	बंदऊँ कौसल्या दिसि प्राची । १।१५.४
अविरासीद् यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ।। १०।३.८	प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू । १।१५.५
सान्द्रपयोदसौभगम् । १०।३.६	तनु घनस्यामा···· १।१६१. छं.१
महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डल- त्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् । १०।३.१०	कुंडल मकर मुकुट सिर भ्राजा । कुटिल केस····· ।। १।१४६.५
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभि- र्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ।। १०।३.१०	कल किंकिनि कटि सूत्र मनोहर । १।३२६.४
	भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी । १।१६१. छं. १
स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं सुतं विलोक्यानकदुन्दुभिस्तदा । १०।३.११	हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी । १।१६१.छं. १
अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं परं नताङ्गः कृतधीः कृताञ्जलिः ।। १०।३.१२	कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता । १।१६१ छं. २
विश्वं यदेतत् स्वतनौ निशान्ते यथावकाशं पुरुषः परो भवान् । बिभर्ति सोऽयं मम गर्भगोऽभू- दहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत् ।। १०।३.३१	ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै । मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै । १।१६१. छं. ३

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
पित्रोः सम्पश्यतो सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः। १०।३.४६	सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा। १।१९१. छं.४
ते तु तूर्णमुपव्रज्य १०।४.२	संभ्रम चलि आईं सब रानी। १।१९२.१
यथेन्द्रियग्रामं उपेक्षितस्तथा रिपुर्महान् बद्धबलो न चाल्यते॥ १०।४.३८	रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि। ३।२१ (क)
नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः। १०।५.१	दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना॥ १।१९२.३
वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै। कारयामास विधिवत्···· १०।५.२ तथा ९।४.३३-३४	चारि लच्छ बर धेनु मगाईं। कामसुरभि सम सील सुहाईं॥ सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं। मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हीं॥ १।३३०.२-३
धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलंकृते। १०।५.३	
व्रजः सम्मृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः। १०।५.६	गलीं सकल अरगजाँ सिंचाईं। १।३४३.५
चित्रध्वजपताकास्त्रक्चैलपल्लवतोरणैः। १०।५.६	बंदनवार पताका केतू। सबन्हि बनाए मंगल हेतू॥ ७।८.२
गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः। आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः॥ १०।५.१४	मृगमद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा॥ १.१९३.८
खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च। द्वीपान् नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि॥ १०।७.३६	देखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड। रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड॥ अगणित रबि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महिकानन॥ १.२०१. तथा १

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
सम्मील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत् सुविस्मिता ॥ १०।७.३७	तन पुलकित मुख बचन न आवा । नयन मूदि चरननि सिरु नावा ॥ १।२०१.५
पङ्काङ्गरागरुचिरावुपगुह्य दोर्भ्याम् । १०।८.२३	धूसर धूरि भरें तनु आए । भूपति बिहसि गोद बैठाए ॥ १।२०२.६
एतद् विचित्रं सहजीवकाल- स्वभावकर्माशयलिङ्गभेदम् । सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये व्रजं सहात्मानमवाप शङ्काम् ॥ १०।८.३६	काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ । सोउ देखा जो सुना न काऊ ॥ देखी माया सब बिधि गाढ़ी । अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी ॥ देखा जीव नचावइ जाही । देखी भगति जो छोरइ ताही ॥ १।२०१.२ से ४
इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः । वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥ १०।८.४३	बिसमयवंत देखि महतारी । भए बहुरि सिसुरूप खरारी ॥ १।२०१.६
हरिं सामन्यतात्मजम् । १०।८.४५	जगत पिता मैं सुत करि जाना ॥ १।२०१.७
कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तु····· । १०।८.५२	प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा ॥ १।४८.१
गोप्यन्वधावन्न यमाप योगिन क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः ॥ १०।९.६	निगम नेति सिव अंत न पावा । ताहि धरै जननी हठि धावा ॥ १।२०२.८
स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् । १०।१०.२१	कवनेउँ जन्म मिटिहि नहिं ग्याना । ७।१०८.८
नोपेयातां यदाऽऽहूतौ क्रीडासङ्गेन पुत्रकौ । १०।११.१३	नहिं आवत तजि बाल समाजा । १।२०२.६
धूलिधूसरिताङ्गस्त्वं····· १०।११.१८	धूसर धूरि भरें तनु आए । १।२०२.६

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
प्रेत्यागतमिवौत्सुक्या····· १०।११.५४	मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे। १।३०७.४
प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते। १०।१२.१५	प्रान प्रान के जीव के जिव सुख के सुख राम। २।२६०.०
तथा १०।५६.२६, ११।८.३५	ए प्रिय सबहि जहाँ लनि प्रानी। १।२१५.७
ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरुवो गुह्यमप्युत। १०।१३.३	गूढ़उ तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहिं॥ १।१०९.२
कृष्णस्य विष्वक् पुरुराजिमण्डलै- रभ्याननाः फुल्लदृशो प्रजार्भकाः। सहोपविष्टा विपिने विरेजु- इछदा यथाम्भोरुहकर्णिकायाः॥ १०।१३.८	मुनि समूह महँ बैठे सन्मुख सब की ओर। सरद इंदु तन चितवत मानहुँ निकर चकोर॥ ३।१२.०
यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद् विहारादिकं सर्वविष्णुमयंगिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ॥ १०।१३.१९	अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला॥ ७।५.५
एवं सम्मोहयन् विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम्। स्वयैव माययाजोऽपि स्वयमेव विमोहितः॥ १०।१३.४४	मायापति सेवक सन माया। करइ त उलटि परइ सुरराया॥ २।२१७.२
प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम्। १०।१४.५	राम कृपाँ बैकुंठ सिधारा। ३।८.१

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि । मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥ १०।१४.९	जासु प्रबल माया बस सिव बिरंचि बड़ छोट । ताहि दिखावइ निसिचर निज माया मति खोट ॥ ६।५१.०
अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष । १०।१४.१०	तव माया बस फिरउँ भुलाना । ४।१.९
क्वेदृग्विधाविगणिताण्डपराणुचर्या- वाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् । १०।१४ ११	रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड । १।२०१.०
अजानतां त्वत्पदवीमनात्मन्या- त्माऽऽत्मना भासि वितत्य मायाम् । १०।१४.१९	अतुलित बल अतुलित प्रभुताई । मैं मतिमंद जानि नहिं पाई ॥ ३।१.१२
जन्मासतां दुर्मदनिग्रहाय प्रभो विधातः सदनुग्रहाय च ॥ १४।१४.२०	जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो । नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो ॥ ६।१०९.८
सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैव वल्लभः । १०।१४.५०	सब कें देह परम प्रिय स्वामी । ५।२१.४
तन्मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं । १०।१५.३	कूजहिं खग मृग नाना बृंदा । ७।२२.३
फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः । १०।१५.४	फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ । ३।४०.०
धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्त्वत् पादस्पृशो..... । १०।१५.८	परसि राम पद पदुम परागा । मानति भूमि भूरि निज भागा ॥ २।११२.८
	धन्य भूमि बन पंथ पहारा । जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा ॥ २।१३५.१

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना । चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ॥ १०।१५.३२	तेहिं अंगद कहुँ लात उठाई । गहि पद पटकेउ भूमि भवाँई ॥ ६।१७.५
नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे । १०।१५.३५	यह बड़ि बात भरत कइ नाहीं । २।२१६.३
क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन् मूढस्य त्वामजानतः । १०।१६.५१	छमहु चूक अनजानत केरी । १।२८१.४
स च बृन्दावनगुणैर्वसन्त इव लक्षितः । १०।१८.३	भूप बागु बर देखउ जाई । जहँ बसंत रितु रही लोभाई ॥ १।२२६.३
ततः समन्ताद् बनधूमकेतु । १०।१९.७	जहँ जाहिं मर्कट भागि । तहँ बरत देखहिं आगि ॥ ६।१००.छं.४
कृष्ण कृष्ण महावीर हे रामामितविक्रम । दावाग्निना दह्यमानान् प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः ॥ १०।१९.६	पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं । यह खल खाइ काल की नाईं ॥ ६।८१.७
कुसुमितवनराजिशुष्मभृङ्ग- द्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम् । १०।२१.२	कुसुमित बिबिध बिटप बहुरंगा । कूजहिं कोकिल गुंजहिं भृंगा ॥ १।१२५.२
अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः । १०।२१.७	लेहु नयन भरि रूप निहारी । १।३३४.३
सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाम्बुद आतपत्रम् । १०।२१.१६	जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया । करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया ॥ ३।६.५
लोकेशमानिनां मौढ्याद्ध- रिष्ये श्रीमदं तमः । १०।२५.१६	उर अंकुरेउ गरब तरु भारी ॥ बेगि सो मैं डारिहउँ उखारी । १।१२८.४-५
ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम् । १०।२७.७	तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं । ३।१८.६

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्त- स्तम्भो वृथोद्यमः । १०।२७.१३	प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्हीं । मरजादा पुनि तुम्हरी कीन्हीं । ५।५८.५
नानारसौघाः सरितो वृक्षा आसन् मधुस्रवाः । १०।२७.२६	सरिता सकल बहहिं बर बारी । ७।२२.८
अकृष्टपच्यौषधयो गिरयोऽबिभ्रदुन्मणीन् । १०।२७.२६	प्रगटीं गिरिन्ह बिबिध मनि खानी । ७।२२.७
तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुतः । मध्ये मणीनां हैमानां महामरकतो यथा ।। १०।३३.७	सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसें । छबिगन मध्य महाछबि जैसें ।। १।२६३.१
गावो हिरण्यं वासांसि मधु मध्वन्नमाहृताः । ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवोनः प्रीयतामिति ।। १०।३४.३	हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह । १।१८३
कटाक्षिप्याद्रवत्तूर्णमिन्द्रमुक्तोऽशनिर्यथा । १०।३६.१०	धावा क्रोधवंत खग कैसें । छूटइ पबि परबत कहुँ जैसें ।। ३।२८.१०
स निजं रूपमास्थाय गिरीन्द्रसदृशं बली । १०।३७.३२	निज तनु प्रगटेसि मरती बारा । ६।५७.५
कंसो बताद्याकृत मेऽत्यनुग्रहं द्रक्ष्येऽङ्घ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः । १०।३८.७	बलि परम हित जासु प्रसादा । मिलेहु राम तुम्ह समन बिषादा ।। ४।६.१९
अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो । १०।३८.१०	प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा । १।२०५.६
देहंभृतामियानर्थो.....। १०.३८.२७	देह धरे कर यह फलु भाई । ४।२२.६
विचरस्व महीं कामं कन्यावेशितमानसः । अस्त्वेव नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ।। १०।५१.६२	अस उर धरि महि बिचरहु जाई । अब न तुम्हहि माया निअराई ।। १।१३७.८

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
पद्भयां पद्मपलाशाभ्यां चेरतुर्बहुयोजनम् । १०।५२.८	कोमल चरन चलत बिनु पनहीं । २।३१०.४
गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ।। १०।५२.३९	जिमि ससु चहै नाग अरि भागू । १।२६६.१
निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य । १०।५२.४१	बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति । ५।३१.०
अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा। १०।५३.३७	बरु साँवरो जानकी जोगू । १।२४८.६
किंचित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत् । १०।५३.३८	जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे । १।२५४.७
अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः। १०।५३.३८	तौ जानकिहि मिलिहि बरु एहू । १।२२१.६
पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः पादपल्लवम् । १०।५३.४०	गई मुदित मन गौरि निकेता । १।२२७.५
सखीभिः परिवारिता । १०।५३.४१	....सखिन्ह समेता । १।२२७.५
नमस्ये त्वाम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसन्तानयुतां शिवाम् । १०।५३.४६	जय गजबदन षडानन माता । जगत जननि दामिनि दुति गाता ।। १।२३४.६
भूयात् पतिर्मे भगवान् कृष्णस्तदनुमोदताम्। १०।५३.४६	निज अनुरूप सुभग बरु मागा । १।२२७.६
पेतुः शिरांसि रथिना- मश्विनां गजिनां भुवि । १०।५४.७	उर सीस भुज कर चरन । जहँ तहँ लगे महि परन ।। ३।१९.छं.९
तदा महोत्सवो नृणां यदुपुर्यां गृहे गृहे । १०।५४.५४	मंगलमय निज निज भवन लोगन्ह रचे बनाइ । १।२९६.०

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
बभौ प्रतिद्वार्युपक्लृप्तमङ्गलै- रापूर्णकुम्भागुरुधूपदीपकैः । १०।५४.५६	कंचन कलस विचित्र सँवारे । सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे ।। ७।८.१
तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् । प्रलम्बबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं रुचिराननम् ।। १०।५५.२७	भुज प्रलंब कंजारुन लोचन । स्यामल गात प्रनत भय मोचन ।। ५।४४.४
विचित्रवाजैर्निशितैः शिलीमुखैः । निकृत्तबाहूरुशिरोध्रविग्रहं ।। १०।५६.१६	छाँड़े बिपुल नाराच । लगे कटन बिकट पिसाच ।। उर सीस भुज कर चरन । जहँ तहँ लगे महि परन ।। ३।१६.८-९
यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह । हरिस्तान्यच्छिनत्तीक्ष्णैः शरैरेकैशस्त्रिभिः ।। १०।५६.१७	कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारै । बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारै ।। ६।९०.५
विराजिते वितानेन दीपैर्मणिमयैरपि । १०।६०.३	मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची । ७।२६. छं. १
रत्नप्रदीपनिकरद्युतिभिर्निरस्त । १०।६६.१२	
पयः फेननिभे शुभ्रे पर्यङ्के कशिपूत्तमे । १०।६०.६	सुभग सुरभि पय फेन समाना । कोमल कलित सुपेतीं नाना ।। १।३५५.२
अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम् । विप्रकृष्टंव्यवहितं सम्यक्पश्यन्तियोगिनः ।। १०।६१.२१	जानहिं तीनि काल निज ग्याना । १।२६.७
तं नागपाशैर्बलिनन्दनो बली घ्नन्तं स्वसैन्यं कुपितो बबन्ध ह । १०।६२.३५	नागपास बाँधेसि लै गयऊ । ५।१६.२
स उत्तमश्लोककराभिमृष्टो विहाय सद्यः कृकलासरूपम् । १०।६४.६	परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुंज सही । १।२१०.छं.१

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदानं । १०६४.७ अनुद्दश्य इह यस्य भवापवर्गः । १०।६४.२६	जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी । ३।८.७ जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे ।। ते सब भए परम पद जोगू । २।२१६.१-२
यथावयो यथासख्यं यथासम्बन्धमात्मानः । १०।६५.४	जथाजोग मिले सबहि कृपाला । ७।५.५
भूयः पार्श्वमुपातिष्ठत् कृष्णस्याक्लिष्टकर्मणः । १०।६६.४२	अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आइ निषंग । ६।१३(ख)
चकम्पे तेन पतता सटङ्कः सवनस्पतिः । पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवाम्भसि ।। १०।६७.२६	डोली भूमि गिरत दसकंधर । छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर ।। ६।१०२.५
जयशब्दो नमः शब्दः साधु साध्विति चाम्बरे । १०।६७.२७	नभ प्रसून झरि धन्य धन्य धुनि । २।२८३.६
राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते । १०।६८.४४	अतुलित बल अतुलित प्रभुताई । मैं मतिमंद जानि नहिं पाई ।। ३।१.१२
स्वमेव मूर्ध्नीदमनन्त लीलया भूमण्डलं बिभर्षि सहस्रमूर्धन् । १०।६८.४६	ब्रह्मांड भवन बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी । ६।८२.छं.२
उत्फुल्लेन्दीवराम्भोजकह्लारकुमुदोत्पलैः । १०.६९.४	बिकसे सरसिज नाना रंगा । ३।३९.१
हरेः स्वकौशलं यत्र त्वष्ट्रा कात्स्न्र्येन दर्शितम् । १०।६९.७	जनु बिरंचि सब निज निपुनाई । बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ।। १।२२९.६
तं संनिरीक्ष्य भगवान् सहसोत्थितः श्रीपर्यङ्कतः १०।६९.१४	हरषि मिले उठि रमानिकेता । १।१२७.५

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्नाबिभ्रज्। १०।६६.१५	पद पखारि पादोदक लीन्हा। ७।४७.२
इतिहासपुराणानि शृण्वन्तं मंगलानि च ॥ १०।६६.२८	बेद पुरान सुनहिं मन लाई। १।२०४.६
चरन्तं मृगयां क्वापि····· १०।३६.३५	बन मृगया नित खेलहिं जाई। १।२०४.१
अथोषस्युपवृत्तायां कुक्कुटान् कूजतोऽशपत्। १०।७०.१	प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड़ बर बोलन लागे ॥ १।३५७.५
तत्रोपविष्टः परमासने विभु- बर्भौ स्वभासा ककुभोऽवभासयन्। १०।७०.१८	तुरत दिव्य सिंघासन मागा ॥ रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई ॥ ७।११.१-२
मा भैष्ट दूत भद्रं वो घातयिष्यामि मागधम्। १०।७१.१६	निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह। ३।६.०
दोर्भ्यां परिष्वज्य रमामलालयं मुकुन्दगात्रं नृपतिर्हताशुभः। १०।७१.२६	भुज बिसाल गहि हृदयँ लगावा। ५।४५.२
लेभे परां निर्वृतिमश्रुलोचनो हृष्यत्तनुर्विस्मृत लोकविभ्रमः। १०।७१.२६	राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी। ७।४.छं १
उद्दीप्तदीपबलिभिः प्रतिसद्मजाल १०।७१.३३	दीप मनोहर मनिमय नाना। १।२८८.३
मूर्धन्यहेमकलशै रजतोरुशृङ्गैः। १०।७१।३३	कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत। ७।२६.७
सद्यो विसृज्य गृहकर्म पतींश्च तल्पे द्रष्टुं ययुर्युवतयः·····१०।७१.३४	जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। ७।२.७

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
नार्यो विकीर्य कुसुमैर्मनसोपगुह्य सुस्वागतं विदधुरुत्स्मयवीक्षितेन।। १०।७१.३५	हियँ हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद। जाहिं जहाँ जहँ बंधु दोउ तहँ तहँ परमानंद।। १।२२३.०
विजित्य नृपतीन्सर्वान्कृत्वा च जगतीं वशे। १०।७२.६	सप्त दीप भुजबल बस कीन्हे। १।१५३.७
निशम्य भगवद्गीतं प्रीतः फुल्लमुखाम्बुजः। १०।७२.१२	सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। ७।७.६ तथा ७।१६.१
क्षुत्क्षामाः शुष्कवदनाः संरोधपरिकर्शिताः। ददृशुस्ते घनश्यामं पीतकौशेयवाससम्।। १०।७३.२	भूषन बहु पट पीत अनूपा।। स्याम गात बिसाल भुज चारी। ३।३१.१-२
ईशो दुरत्ययः काल १०।७४.३१	कालु सदा दुरतिक्रम भारी। ७।९३.८
निन्दां भगवतः शृण्वंस्त- त्परस्य जनस्य वा। ततोनापैति यः सोऽपि यात्यधः सुकृताच्च्युतः।। १०।७४.४०	संत संभु श्रीपति अपबादा। सुनिअ जहाँ तहँ असि मरजादा।। काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूदि न त चलिअ पराई।। १।६३.३-४
चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिर्वासुदेवमुपाविशत्। १०।७४.४५	तासु तेज प्रभु बदन समाना। ६।७०.८
जन्मत्रयानुगुणितवैरसंरब्धया धिया। १०।७४.४६	मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज बचन प्रवाना।। १।१२२.१
य इदं कीर्तयेद् विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम्। राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते।। १०।७४.५५	यह रावनारि चरित्र पावन रामपद रतिप्रद सदा। कामादिहर बिग्यानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा।। ६।१२०.छं.२

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
आसीनः काञ्चने माक्षादासने मघवानिव । १०।७५.३५	सुनासीर सत सरिस सो संतत करइ बिलास । ६।१०.०
अहो असाध्विदं सूत यद् रणान्मेऽपसर्पणम् । १०।७६.२८	सठ रनभूमि छड़ाइसि मोही । धिग धिग अधम मंदमति तोही ।। ६।९९.८
हाहाकारोमहानासीद्भूतानांतत्र पश्यताम्। १०।७७.१६	हाहाकार भयउ जग भारी । १.८६.७
तं त्वाद्य निशितैर्बाणैरपराजितमानिनम् । १०।७७.१८	आजु करउँ खलु काल हवाले । ६।८९.८
नयाम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेर्ममाग्रतः । १०।७७.१८	जौं रन भूप भाजि नहिं जाही । ६।८९.७
पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहुभाषिणः । १०।७७.१९	सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु । १।२७४.०
त्वं मातुलेयो नः कृष्ण मित्रध्रुङ्मा जिघांससि । अतस्त्वां गदया मन्द हनिष्ये वज्रकल्पया ।। १०।७८.५	निसिचर निकर सुभट संघारेहु । कुंभकरन घननादहि मारेहु ।। आजु बयरु सबु लेउँ निबाही ।। ६।८९.६-७
गदानिर्भिन्नहृदय उद्वमन् रुधिरं मुखात् । प्रसार्यकेशबाह्वङ्घ्रीन्धरण्यांन्यपतद्व्यसुः।। १०।७८.९	उर माझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि परयो । ६।९३.छं.१
ततःसूक्ष्मतरंज्योतिःकृष्णमाविशदद्भुतम् । १०।७८.१०	तासु तेज प्रभु बदन समाना । ६।७०.८
तस्य चापततः कृष्णश्चक्रेण क्षुरनेमना । शिरो जहार राजेन्द्र सकिरीटं सकुण्डलम् ।। १०।७८.१२	तब प्रभु कोपि तीव्र सर लीन्हा । धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा ।। ६।७०.४

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
मुनिभिः सिद्धगन्धर्वैर्विद्याधरमहोरगैः ।	तासु मरन सुनि सुर गंधर्वा ।
अप्सरोभि. पितृगणैर्यक्षैः किन्नरचारणैः ॥	चढ़ि बिमान आए नभ सर्बा ।
उपगीयमानविजयः कुसुमैरभिवर्षितः ।	बरषि सुमन दुंदभीं बजावहिं ।
१०।७८.१४-१५	श्रीरघुनाथ बिमल जसु गावहिं ॥
	६।७६.२-३
जगाम नैमिषं यत्र ऋषयः सत्रमासते ।	तीरथ बर नैमिष बिख्याता ।
१०।७८.२०	१।१४२.२
तमागतमभिप्रेत्य मुनियो दीर्घसत्रिणः ।	बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा ।
१०।७८.२१	१।१४२.३
मुञ्चन्नार्तस्वरं शैलो यथा वज्रहतोऽरुणः ।	परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा ।
१०।७९.६	६।८३.२
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामहे प्रभो ।	अब प्रभु चरित सुनावहु मोही ।
१०।८०.१	७।१.१४
किमनेन कृतं पुण्यमवधूतेन भिक्षुणा ।	एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं ।
१०।८०.२५	२।१००.८
श्रिया हीनेन लोकेऽस्मिन् गर्हितेनाधमेन च।	लोक बेद सब भाँतिहि नीचा ।
१०।८०.२५	२।१९३.३
यद्दरिद्रतमो लक्ष्मीमाश्लिष्टोबिभ्रतोरसि ।	यह तौ राम लाइ उर लीन्हा ।
१०।८१.१५	२।१९३.६
मुरारेरंसेऽनुरक्तहृदया निदधे स्वमालाम् ।	सियँ जयमाल राम उर मेली ।
१०।८३.२९	१।२६३.८
महार्हवासोऽलंकारैः शय्यासनपरिच्छदैः ॥	कहि न जाइ कछु दाइज भूरी ।
दासीभिः सर्वसम्पद्भिर्भटेभरथवाजिभिः ।	रहा कनक मनि मंडपु पूरी ॥
आयुधानि महार्हाणि ददौ पूर्णस्य भक्तितः ॥	कंबल बसन बिचित्र पटोरे ।
१०।८३.३७-३८	भाँति भाँति बहु मोल न थोरे ॥
	गज रथ तुरग दास अरु दासी ।
	धेनु अलंकृत कामदुहा सी ॥
	१।३२५.२-४

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
द्वैपायनो नारदश्च च्यवनो देवलोऽसितः । विश्वामित्रः शतानन्दो भरद्वाजोऽथ गौतमः।। रामः सशिष्यो भगवान् वसिष्ठो गालवो भृगुः । १०।८४.३-४	बामदेउ अरु देवरिषि बालमीकि जाबालि । आए मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपसालि ।। १।३३०.०
वित्तैषणां यज्ञदानैर्गृहैर्दारसुतैषणाम् । आत्मलोकैषणां देव कालेन विसृजेद् बुधः ।। १०।८४.३८	सुत बित लोक ईषना तीनी । केहि कै मति इन्ह कृत न मलीनी ।। ७।७०.६
वसुदेव भवान् नूनं भक्त्या परमया हरिम् । जगतामीश्वरं पार्चः स यद् वां पुत्रतांगतः ।। १०।८४.४१	जासु सनेह सकोच बस राम प्रगट भए आइ । २।२०६.०
समेतः पादरजसा पुनीहीदं निमेः कुलम् । १०।८६.३६	अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे । ६।११५.५
द्युपतय एव ते न ययुरन्तमनन्ततया त्वमपि यदन्तराण्डनिचया ननु सावरणाः । १०।८७.४१	बिधि हरि संभु नचावनिहारे ।। तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा । २।१२६.१-२
यथाभिकामं वितरामि ते वरम् । १०।८८.२०	मागहु बर जोई भाव मन महादानि अनुमानि । १।१४८
ततः कैलासमगमत् स तं देवो महेश्वरः । १०।८६.५	बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा । १।५७.६
अथो जगाम वैकुण्ठं यत्र देवो जनार्दनः । १०।८६.७	ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाए । १।८७.४
तन्निशम्याथ मुनयो विस्मिता मुक्तसंशयाः । १०।८६.१५	सुनि सब कें मन अचरजु आवा । १।१२६.४
मनोजवं निर्विविशे सुदर्शनं गुणच्युतो रामशरो यथा चमूः । १०।८६.५१	जिमि अमोघ रघुपति कर बाना । ५।०.८

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
अवात्सीन्नारदोऽभीक्ष्णं कृष्णोपासनलालसः। ११।२.१	बार बार नारद मुनि आवहिं। ७।४१.४
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्। ११।२.१४	सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। १।१५२.१
प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायम्भुवस्य यः। ११।२.१५	लघु सुत नाम प्रियव्रत ताही। १।१४१.४
इन्द्रोविशङ्क्य मम धाम जिघृक्षतीति कामंन्ययुङ्क्त..... ११।४.७	मुनि गति देखि सुरेस डेराना। कामहि बोलि कीन्ह सनमाना॥ १।१२४.५
सव्रीडनम्रशिरसः सघृणं तमूचुः। ११।४.६	सहित सहाय सभीत अति मानि हारि मन मैन। गहेसि जाइ मुनि चरन तब कहि सुठि आरत बैन॥ १।१२६.०
धत्ते पदं त्वमविता यदि विघ्नमूर्ध्नि। ११।४.१०	सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥ १।१२५.८
इन्द्रायानम्य सदसि शृण्वतांत्रिदिवौकसाम्। ऊचुर्नारायणबलं शक्रस्तत्रास विस्मितः॥ ११।४.१६	मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभाँ जाइ सब बरनी॥ सुनि सब कें मन अचरजु आवा। १।१२६.३-४
कलिंसभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः। ११।५.३६	कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास। ७।१०३.(क)
पुत्रतामगमद् यद् वां भगवानीश्वरो हरिः। ११.५.४६	भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। रामु पुनीत प्रेम अनुगामी॥ २।३.८

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
मायामनुष्यभावेन गूढैश्वर्ये परेऽव्यये । ११।५.४६	.....मायामनुष्यं हरिं। वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूड़ामणिम्। ५ श्लोक १
यशो वितेने लोकेषु सर्वलोकमलापहम् । ११।६.४	जग पावनि कीरति बिस्तरिहहिं । ६।६५.३
व्यचक्षतावितृप्ताक्षाः कृष्णमद्भुतदर्शनम् । ११।६.५	चितवहिं सादर रूप अनूपा । तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा ॥ १।१४७.६
अव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः । ११।६.१५	भुवनेश्वर कालहु कर काला । ५।३८.१
वदन्ति कृष्ण श्रेयांसि बहूनि ब्रह्मवादिनः । ११।१४.१	श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई । ७।११६.६
आद्यन्तवन्त एवैषां लोकाः कर्मविनिर्मिताः। ११।१४.११	स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई । ७।४१.१
विघ्नान् कुर्वन्त्यर्य ह्यस्माना- क्रम्य समियात् परम् । ११।१८.१४	छोरत ग्रंथि जानि खगराया । बिघ्न अनेक करइ तब माया ॥ ७।११७.६
संक्षिप्तं वर्णयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः । ११।२७.६	सोउ संछेपहिं कहेहु बिचारी । ७।१२०.४
हन्त ते कथयिष्यामि मम धर्मान् सुमङ्गलान् । ११।२९.८	निज सिद्धांत सुनावउँ तोही । ७।८५.२
कृच्छ्रं ययौ मूर्धनि मर्तृपादुके बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः पुनः । ११।२९.४६	प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं । सादर भरत सीस धरि लीन्हीं ॥ २।३१५.४
युयुधः क्रोधसंरब्धा ११।३०.१४	मिरहिं परसपर करि अति क्रोधा । ६।५३.२

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
ववृषुः पुष्पवर्षाणि विमानावलिभिर्नभः । ११।३१.४	तब देवन्ह दुंदभीं बजाई ।। १।८८.६
इत्थं हरेर्भगवतो रुचिरावतार वीर्याणि बालचरितानि च शन्तमानि। अन्यत्र चेह च श्रुतानि गृणन् मनुष्यो भक्तिं परां परमहंसगतौ लभेत ।। ११।३१.२८	यह रावनारि चरित पावन राम पद रतिप्रद सदा । कामादिहर बिग्यानकर सुर सिद्ध मुनि गावहिं मुदा ।। ६।१२०.छं.२
स्त्रीबालगोद्विजघ्नाश्च परदारधनाद्दताः । उदितास्तमितप्राया अल्पसत्त्वाल्पकायुषः ।। १२।१.४१	पर द्रोही पर दार रत पर धन पर अपबाद। ते नर पाँवर पापमय देह धरें मनुजाद ।। ७।३९.०
असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसाऽऽवृताः । १२।१.४२	तामस बहुत रजोगुन थोरा । कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा ।। ७।१०३.५
वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः । १२।२.२	धनवंत कुलीन मलीन अपी । ७।१००.७
पाण्डित्ये चापलं वचः । १२।२.४	पंडित सोइ जो गाल बजावा ।
अनाढ्यतैवासाधुत्वे साधुत्वे दम्भ एव तु । १२।२.५	मिथ्यारंभ दंभ रत जोई । ता कहुँ संत कहइ सब कोई ।। ७।९७.३-४
लावण्यं केशधारणम् । १२।२.६	अबला कच भूषन भूरि छुधा । ७।१०१.१
उदरम्भरता स्वार्थः सत्यत्वे धाष्ट्र्यमेव हि । १२।२.६	उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं । ७।९८.८
अनावृष्ट्या विनङ्क्ष्यन्ति दुर्भिक्षकरपीडिताः । १२।२.१०	कलि बारहिं बार दुकाल परै । ७।१००.१०
विद्युत्प्रायेषु मेघेषु शून्यप्रायेषु सद्मसु । १२।२.१५	देव न बरषहिं धरनीं बए न जामहिं धान ।। ७।१०१.ख

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
पितृभ्रातृसुहृज्ज्ञातीन् हित्वा सौरतसौहृदाः । ननान्दृश्यालसंवादा दीनाः स्त्रैणाः कलौ नराः ॥ १२।३.३७	ससुरारि पिआरि लगी जब तें । रिपुरूप कुटुंब भए तब तें ॥ ७।१००.५
शूद्राः प्रतिग्रहीष्यन्ति तपोवेषोपजीविनः । १२।३.३८	सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना । ७।९८.२
धर्मं वक्ष्यन्त्यधर्मज्ञा अधिरुह्योत्तमासनम् । १२।३.३८	सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना । बैठि बरासन कहहिं पुराना ॥ ७।९९.९
वासोऽन्नपानशयनव्यवायस्नानभूषणैः । हीनाः पिशाचसंदर्शा भविष्यन्ति कलौ प्रजाः ॥ १२।३.४०	कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात । ७।९९ (क)
लीलाकथास्ते कथिताः समासतः कात्स्न्र्येन नाजोऽप्यभिधातुमीशः । १२।४.३८	कहेउँ नाथ हरि चरित अनूपा । ब्यास समास स्वमति अनुरूपा ॥ ७।१२२.१
सिद्धोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवता करुणात्मना । श्रावितो यच्च मे साक्षा- दनादिनिधनो हरिः ॥ १२।६.२	धन्य धन्य मैं धन्य पुरारी । सुनेउँ राम गुन भव भय हारी ॥ ७।५१.६
प्रश्नस्त्वया महर्षेऽयं कृतो लोकभ्रमापहः । १२।८.६	कीन्हिहु प्रस्न जगत हित लागी । १।११९.८
तदाश्रमपदं पुण्यं पुण्यद्रुमलताञ्चितम् । १८।८.१८	आश्रम परम पुनीत सुहावा । १।१२४.२

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
वायुः प्रविष्ट आदाय हिमनिर्झरशीकरान् । सुमनोभिः परिष्वक्तो ववावुत्तम्भयन् स्मरम् ।। १२।८.२०	चली सुहावनि त्रिबिध बयारी । काम कृसानु बढ़ावनिहारी ।। १।१२५.३
तत्रासीत् कुसुमाकरः । १२।८.२१	प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा । १।८५.६
ननृतुस्तस्य पुरतः स्त्रियोऽथो गायका जगुः । मृदङ्गवीणापणवैर्वाद्यं चक्रुर्मनोरमम् ।। १२।८.२४	रंभादिक सुरनारि नबीना । सकल असमसर कला प्रबीना ।। १।१२५.४
अयुतायुतवर्षाणां सहस्राणि शतानि च । व्यतीयुर्भ्रमतस्तस्मिन् विष्णुमायावृतात्मनः ।। १२।६.१६	भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका । बीते मनहुँ कल्प सत एका ।। ७।८१.१
तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः सोऽन्तःशरीरं मशको यथाविशत् । १२।६.२७	बिहँसत तुरत गयउँ मुख माहीं । ७।७६.२
ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मन् विज्ञानं च विरक्तिमत् । ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात्..... १२।१०.३७	ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना । मुनि दुर्लभ गुन जे जग नाना ।। आजु देउँ सब संसय नाहीं । ७।८३.१-२
वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदै- र्गायन्ति यं सामगाः । १२।१३.१	कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावहीं ।। १।५०.छं.१
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो, यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ।। १२।१३.१	मुनि धीर जोगी सिद्ध संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं । १।५०.छं.१

परिशिष्ट—३

साम्य

सदाचार-परक

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
.....ब्राह्मणो नितरां गुरुः । १।७.४३	बिप्र पूज्य अस गावहिं संता । ३।३३.१
यैः कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैरजितात्मभिः । तत् कुलंप्रदहत्याशुसानुबन्धं शुचार्पितम् ॥ १।७.४८	दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू । २।१२५.४
यथापङ्केन पङ्काम्भःसुरया वा सुराकृतम् । १।८.५२	छूटइ मल कि मलहि के धोएँ । ७।४८.५
सङ्गो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितोऽधिया । स एव साधुषु कृतो निःसङ्गत्वाय कल्पते ॥ ३।२३.५५	संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ । ७।३३.०
त एते साधवः साध्वि सर्वसङ्गविवर्जिताः । ३।२५.२४	ए सब लच्छन बसहिं जासु उर । जानेहु तात संत संतत फुर ॥ ७।३७.७
यदृच्छयोपलब्धेन सन्तुष्टो मितभुङ् मुनिः । ३।२७.८	अमित बोध अनीह मितभोगी । ३।४४.८
गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात् । ४।८.३४	पर दुख दुख सुख सुख देखे पर । ७।३७.१
अतिरोषेण तमोद्वारेण पाप्मना । ४।११.७	लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल । १।२७७.०
भूतैः पंचभिरारब्धैर्योषित्पुरुष एव हि । ४।११.१५	छिति जल पावक गगन समीरा । पंच रचित अति अधम सरीरा ॥ ४।१०.४
येनोपसृष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशम् । ४।११.३२	जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल । १।२७७.०
मातृभक्तिः परस्त्रीषु.....४।१६.१७	जननी सम जानहिं परनारी । २।१२९.६

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
स वञ्चितो बतात्मघ्रुक् कृच्छ्रेण महता भुवि । लब्ध्वापवर्ग्यं मानुष्यं विषयेषु विषज्जते ।। ४।२३.२८	जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ । सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ ।। ७।४४.०
क्षणार्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम् । भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ।। ४।२४.५७	तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग । तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ।। ५।४.०
य इमं श्रद्धया युक्तो मद्गीतं भगवत्स्तवम् । ४।२४.७६	ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भुः प्रसीदति । ७।१०७. श्लोक ६
महतां खलु विप्रर्षे उत्तमश्लोकपादयोः । छायानिर्वृतचितानां न कुटुम्बेस्पृहामतिः।। ५।१.३	राम चरन पंकज प्रिय जिन्हही । बिषय भोग बस करहिं कि तिन्हही ।। २।८३.८
उपरतविषयाभिलाषः···· ५।७.११	मन ते सकल बासना भागी । ७।१०६.६
नाहं विशङ्के सुरराजवज्रान्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात् । नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्रा- च्छङ्के भृशं ब्रह्मकुलावमानात् ।। ५।१०.१७	इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला । कालदंड हरि चक्र कराला ।। जो इन्ह कर मारा नहिं मरई । बिप्र द्रोह पावक सो जरई ।। ७.१०८.१३-१४
स्वधर्ममाराधनम्····· ५।१०.२३	चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती । ७।२०.२
येन यावान् यथाधर्मो धर्मो वेह समीहितः । स एव तत्फलं भुङ्क्ते तथा तावदमुत्र वै ।। ६।१.४५	करम प्रधान बिस्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फलु चाखा ।। २।२१८.४

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
कथं विगर्ह्यं नु करोम्यधीश्वराः पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मतिः।। ६।७.३६	उपरोहित्य कर्म अति मंदा। ७।४७.६
जिजीविषूणां जीवानामात्माप्रेष्ठ इहेप्सितः। ६।१०.४	सब कें देह परम प्रिय स्वामी। ५।२१.४
सर्वात्मा न हिंसन्ति भूतग्रामेषु किञ्चन। उच्चावचेषु वैत्येन्द्र मद्भावेन गतस्पृहाः।। ७।१०.२०	उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध। निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध। ७।११२.ख
प्रायः स्वभावविहितो नृणां धर्मो युगे युगे। ७।११.३१	नित जुग धर्म होहिं सब केरे। ७।१०३.१
स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं तिरश्चां पुनरस्य च। ७।१३.२४	नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ७।१२०.१०
तस्यां स्वत्वं स्त्रियां जिह्याद् यस्तेन ह्यजितो जितः। ७।१४.१२	यहि कें एक परम बल नारी। तेहि ते उबर सुभट सोइ भारी।।
गृहस्थस्य क्रियात्यागः ·····। ७।१५.३८	सोचिअ गृही जो मोहबस करइ करम पथ त्याग। २।१७२.०
·····व्रतत्यागो वटोरपि। ७।१५.३८	सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। २।१७१.८
तपस्विनो ग्रामसेवा····· ७।१५.३८	बैखानस सोइ सोचै जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू।। २।१७२.१
·····भिक्षोरिन्द्रियलोलता। ७।१५.३८	सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग। २।१७२.०

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्त- दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय । ८।३.१८	काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप । ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ़ परे तम कूप ।। ७।७३ (क)
यदृच्छयोपपन्नेन संतुष्टो वर्तते सुखम् । ८।१९.२४	जथा लाभ संतोष सदाई । ७।४५.२
न ह्यसत्यात् परोऽधर्म···· ८।२०.४	नहिं असत्य सम पातक पंजा । २।२७.५
एवं सदा कर्मकलापमात्मनः परेऽधिनज्ञे भगवत्यधोक्षजे । सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां तन्निष्ठविप्राभिहितः शशास ह ।। ९।४.२१	करइ जे धरम करम मन बानी । बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी ।। १।१५५.२
ईजेऽश्वमेधैरधियज्ञमीश्वरं महाविभूत्योपचिताङ्गदक्षिणैः । ततैर्वसिष्ठासितगौतमादिभि- र्धन्वन्यभिस्त्रोतमसौ सरस्वतीम् ।। ९।४.२२	जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग । बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग ।। १।१५५.०
गवां रुक्मविषाणीनां रूप्याङ्घ्रीणां सुवाससाम् । पयःशीलवयोरूपवत्सोपस्करसम्पदाम् ।। प्राहिणोत्साधुविप्रेभ्यो गृहेषु न्यर्बुदानिषट् । भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम् ।। ९।४.३३-३४	चारि लच्छ बर धेनु मगाईं । कामसुरभि सम सील सुहाईं ।। सब बिधि सकल अलंकृत कीन्हीं । मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्हीं ।। १।३३०.२-३
·····सर्वः स्वकृतं विन्दतेऽवशः । १०।४.२१	निज कृत करम भोग सबु भ्राता । २।९१.४
हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः १०।७.३१	निज अघ भयउ कुमारगगामी ।। ६।१०९.४

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
साधूनां समचित्तानां..... १०।१० १८	बंदउँ संत समान चित.....। १।३.क
तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं १०।१४.२२	सत हरि भजनु जगत सब सपना। ३।३८.५
एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि १०।१४.२४	निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध। ७।११२.(ख)
गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सुचक्षुषा १०।१४.२४	श्रीगुर पद नख मनि गन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती॥ १।०.५
धर्मोऽथ वा सर्वजनानुकम्पया १०।१६.३५	धर्म कि दया सरिस हरिजाना। ७।१११.१०
न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिन्। १०।१६.३३	राम बिमुख यह अनुचित नाहीं। ६।१०३.१२
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते। सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते॥ १०।२४.१३	काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।..... निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥ २।९१.४
सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक् पुमान्। १०।५४.३८	
स्वेनैव कर्मणाऽनान्यस्य प्रदाता सुखदुःखयो'..... १२।६.२५	
अस्ति चेदीश्वरः कश्चित् फलरूप्यन्यकर्मणाम्। कर्तारं भजते सोऽपि नह्यिकर्तुः प्रभुर्हि सः॥ १०।२४.१४	सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी॥ २।७६.७
धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय। १०।२७.५	असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु। १।१२१.०

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे १०।२७.६	निज इच्छाँ प्रभु अवतरइ·····। ४।२६.०
तवावतारोऽयमधोक्षजेह स्वयम्भराणामुरुभारजन्मनाम्। चमूपतीनामभवाय देव भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम्॥ १०।२७.९	असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु। जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु। १।१२१.०
निर्वैराण्यभवंस्तात क्रूराण्यपि निसर्गतः। १०।२७.२७	सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा। १।६५.२
अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः। भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥ १०।३३.३७	सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥ १।१२१.१
स्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत्। १०।३८.१३	धरम सेतु पालक तुम्ह ताता। १।२१७.८
·····स्वलब्धये। धिया धृतं योगिभिः····· १०।३८.१५	करहिं जोग जोगी जेहि लागी। १।३४० ५
गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां क्रीडामृगः पूरुष ईश नीयते। १०।५१.५२	नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं॥ ७।९८.१
वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः। १०।५१.५९	मागहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए॥ १।१४४.३
पितॄन्देवान्समभ्यर्च्य विप्रांश्च विधिवन्नृप। १०।५३.१०	देव पितर पूजे बिधि नीकी। १।३५०.१
प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौच- ताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः। केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यै- र्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम्॥ १०।५९.४५	जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी। बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी॥ निज कर गृह परिचरजा करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई॥ ७।२३.५-६

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः । तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥ १०।६०.१५	प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि । ६।२३. (ग)
नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नै- र्देवान् साधूँल्लोकसेतून् बिभर्षि । १०।६३.२७	जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो । नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो ॥ ६।१०९.८
यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः । १०।६३.४१	सोचनीय सबहीं बिधि सोई । जो न छाड़ि छलु हरि जन होई ॥ २।१७२.४
विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषभक्षमृतं त्यजन् । १०।६३.४२	नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं । पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं ॥ ७।४३.२
विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः । घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥ १०।६४.४१	सापत ताड़त परुष कहंता । बिप्र पूज्य अस गावहिं संता ॥ ३।३३.१
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः । १०।८४.११	संत दरस जिमि पातक टरई । ४।१६.६
देवाः क्षेत्राणि तीर्थानि दर्शनस्पर्शनार्चनैः । १०।८६.५२	दरस परस मज्जन अरु पाना । हरइ पाप कह बेद पुराना ॥ १।३४.१
विरजधियोऽन्वयन्त्यभिविपण्यव एकरसम् । १०।८७.१६	निर्मल मन जन सो मोहि पावा । ५।४३.५
संसारेऽस्मिन् क्षणार्धोऽपि सत्सङ्गः शेवधिर्नृणाम् । ११।२.३०	सत संगति दुर्लभ संसारा । निमिष दंड भरि एकउ बारा ॥ ७।१२२.६
मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम् । १।२.३३	जिमि हरि सरन न एकेउ बाधा । ४।१६.१

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः । ११।२.४५	निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध ।। ७।११२(ख)
देहेन्द्रियप्राणमनोधियां यो जन्माप्ययक्षुद्भयतर्षकृच्छ्रैः । संसारधर्मैरविमुह्यमानः स्मृत्या हरेर्भागवतप्रधानः ।। ११।२.४६	सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं । दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ।। २।१४६.७
हरिरवशाभिहितोऽप्यघौघनाशः । प्रणयरशनया धृताङ्घ्रिपद्मः स भवति भागवतप्रधान उक्तः ।। ११।२.५५	बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं । जनम अनेक रचित अघ दहहीं ।। १.११८.३
नानुतृप्ये जुषन् युष्मद्वचो हरिकथामृतम् । ११।३.२	नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर । ७।५२(ख)
संसारतापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम् ।। ११।३.२	भव भेषज रघुनाथ जसु सुनहिं जे नर अरु नारि । ४।३०.क
एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यन्तकारिणी । ११।३.१६	जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की । २।१२५.छं १
यथैतामैश्वरीं मायां दुस्तरामकृतात्मभिः । ११।३.१७	हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस ।। ७।११८(क)
दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम् । ११।३.२८	देव धरनि धनु धामु तुम्हारा । २।८७.६

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
परस्परानुकथनं पावनं भगवद्यशः। ११।३.३०	सुनि अनुकथन परस्पर होई। १।४०.३
यः प्राप्य मानुषं लोकं मुक्तिद्वारमपावृतम्। ११।७।७४	साधन धाम मोच्छ कर द्वारा॥ ७।४२.८
दृष्ट्वा स्त्रियं देवमायां तद्भावैरजितेन्द्रियः। प्रलोभितः पतत्यन्धे तमस्यग्नौ पतंगवत्॥ ११।८.७	दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग। भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग॥ ३।४६(ख)
पतङ्गवन्नश्यति नष्टदृष्टिः॥ ११।८.८	जरहिं पतंग मोह बस···· ६।२९.
जीवस्तु गुणसंयुक्तो भुङ्क्ते कर्मफलान्यसौ। ११।१०.३१	जीव करम बस सुख दुख भागी। २।११.४
विद्याविद्ये मम तनू विद्युद्धव शरीरिणाम्। ११।११.३	तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥ ३।१४.४
न स्तुवीत न निन्देत कुर्वतः साध्वसाधु वा। ११।११.१६	निंदा अस्तुति उभय सम ममता मम पद कंज। ७।३८.०
शब्दब्रह्मणि निष्णातो न निष्णायात् परे यदि। श्रमस्तस्य श्रमफलो····· ११।११.१८	बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। ३।२०.६
वन्ध्यां गिरं तां बिभृयान्न धीरः॥ ११।११.२०	राम नाम बिनु गिरा न सोहा। ५।२२.३
स वै मे दर्शितं सद्भिरञ्जसा विन्दते पदम्। ११।११.२५	कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। ७।४५.१
अमानी मानदः कल्पो····· ११।११.३१	सबहि मानप्रद आपु अमानी। ७।३७.४

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
कन्दमूलफलैर्वन्यैर्मेध्यैर्वृत्तिं प्रकल्पयेत् ।	भूमि सयन बलकल बसन
वसीत वल्कलं वासस्तृणपर्णाजिनानि च ।।	असनु कंद फल मूल ।
११।१८.२	ते कि सदा सब दिन मिलहिं
	सबुइ समय अनुकूल ।
	२।६२.०
सत्यपूतां वदेद् वाचं····· ११।१८.१६	कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी ।
	२।१२६.४
देहमुद्दिश्य पशुवद् वैरं कुर्यान्न केनचित् ।	मुनि उदबेगु न पावै कोई ।
११।१८.३१	२।१२५.२
आहारार्थं समीहेत युक्तं तत्प्राणधारणम् ।	तन बिनु बेद भजन नहिं बरना ।।
११।१८.३४	७।६५.५
ऋतं च सूनृता वाणी कविभिःपरिकीर्तिता।	कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी ।।
११।१६.३८	२।१२६.४
स्वर्गिणोऽप्येतमिच्छन्ति	नर तन सम नहिं कवनिउ देही ।
लोकं निरयिणस्तथा ।	जीव चराचर जाचत तेही ।।
११।२०.१२	७।१२०.६
नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं	जो न तरै भव सागर
सुकल्पं गुरुकर्णधारम् ।	नर समाज अस पाइ ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान्	सो कृत निंदक मंदमति
भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ।	आत्माहन गति जाइ ।।
११।२० १७	७।४४
·····चिन्तितस्यानुचिन्तया ।	सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ ।
११।२०.२३	३।३६.८
क्वचिद् गुणोऽपि दोषः स्याद्	ग्रह भेषज जल पवन पट
दोषोऽपि विधिना गुणः ।	पाइ कुजोग सुजोग ।
११।२१.१६	होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग
	लखहिं सुलच्छन लोग ।।
	१।७.(क)

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
यथाम्भसा प्रचलता तरवोऽपि चला इव । चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते भ्रमतीव भूः ।। ११।२२.५३	नौकारुढ़ चलत जग देखा । अचल मोह बस आपुहि लेखा ।। बालक भ्रमहिं न भ्रमहिं गृहादी । कहहिं परस्पर मिथ्याबादी ।। ७।७२.५-६
अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते । ध्यायतोविषयानस्यस्वप्नेऽनर्थागमो यथा।। ११।२२.५५	जौं सपनें सिर काटै कोई। बिनु जागें न दूरि दुख होई ।। १।११७.२
.....साधुर्वे दुर्जनेरितैः । दुरुक्तैर्मिन्नमात्मानं यः समाधातुमीश्वरः ।। ११।२३.२	खल के बचन संत सह जैसें । ४।१३.४
स एवं द्रविणे नष्टे धर्मकामविवर्जितः । उपेक्षितश्च स्वजनैश्चि- न्तामाप दुरत्ययाम् ।। ११।२३.१२	नारि मुई गृह संपति नासी । मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी ।। ७।९९.६
यशो यशस्विनां शुद्धं श्लाघ्या ये गुणिनां गुणाः । लोभः स्वल्पोऽपि तान् हन्ति..... ११।२३.१६	गुन सागर नागर नर जोऊ । अलप लोभ भल कहइ न कोउ ।। ५।३७.८
इति शेषां मया दत्तां शिरस्याधाय सादरम् । ११।२७.४७	प्रभु प्रसाद पट भूषन धरही । २।१२८.२
नैतत्त्वयादाम्भिकाय नास्तिकाय शठाय च। अशुश्रूषोरभक्ताय दुर्विनीताय दीयताम् ।। ११।२९.३०	यह न कहिअ सठही हठसीलहि । जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि ।। ७।१२७.३
वर्णाश्रमवतां धर्मे नष्टे वेदपथे नृणाम् । १२।२.१२	बरन धर्म नहिं आश्रम चारी । ७।९७.१

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैधृतः । सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप ॥ १२।३.१८	चारिउ चरन धर्म जग माहीं । पूरि रहा सपनेंहुँ अघ नाहीं ॥ ७।२०.३
यन्नामधेयं म्रियमाण आतुरः पतन् स्खलन् वा विवशो गृणन् पुमान् । विमुक्तकर्मार्गल उत्तमां गतिं प्राप्नोति यक्ष्यन्ति न तं कलौ जनाः ॥ १२।३.४४	बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं । जनम अनेक रचित अघ दहहीं ॥ १।११८.३
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः । द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥ १२।३.५२	कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग । जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग ॥ ७।१०२ (ख)
कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः । कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥ १२।३.५१	कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास । गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ॥ ७।१०३ क.
अयं हि परमो लाभो नृणां साधुसमागमः । १२।१०.७	गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन । ७।१२५ (ख)
सलोका लोकपालास्तान् वन्दन्त्यर्चन्त्युपासते । अहं च भगवान् ब्रह्मा स्वयं च हरिरीश्वरः ॥ १२।१०.२१	बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी । कहत साधु महिमा सकुचानी ॥ १।२.११

परिशिष्ट—४

साम्य

ज्ञान-परक

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
यथा ह्यवहितो वह्निर्दा- रुष्वेकः स्वयोनिषु । नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥ १।२.३२	एकु दारुगत देखिय एकू । पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥ १।२२.४
यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितो लोकविस्तरः । १।३.३	लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु । ६।१४
यथा नभसि मेघौघो रेणुर्वा पार्थिवोऽनिले । एवं द्रष्टरि दृश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः ॥ १।३.३१	जथा गगन घट पटल निहारी । झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी ॥ १।११६.२
परावरेशो मनसैव विश्वं सृजत्यवत्यत्ति गुणैरसङ्गः । १।५.६	उमा राम की भृकुटि बिलासा । होई बिस्व पुनि पावइ नासा ॥ ६।३४.७
य एक ईशो जगदात्मलीलया तुजत्यवत्यत्ति न तत्र सज्जते ॥ १।१०.२४	
न ह्येष व्यवधात्काल एष सर्वनिराकृतिः । १।६.४	तुम्हहि न व्यापत काल अति कराल कारन कवन । ७।९४(क)
ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी यथा । १।६.७	उमा दारु जोषित की नाईं । सबहि नचावत रामु गुसाईं ॥ ४।१०.७
(स ईश्वरस्त्वं य इदं वशेऽनयन् नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् । ५।१८.२६)	
त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः । १।७.२३	प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी । ७।७१.७
स एव जीवलोकस्य मायामोहितचेतसः । १।७.२४	तव माया बस फिरउँ भुलाना । ४।१.९ नाथ जीव तव मायाँ मोहा । ४।२.२

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्ययम् । न लक्ष्यसे मूढ़दृशा नटो नाट्यधरो यथा ॥ १।८.१६	हृदयँ जमनिका बहु बिधि लागी । ७।७२.८ मायाछन्न न देखिऐ जैसें निर्गुन ब्रह्म । ३।३६(क)
तमिममहमजं शरीरभाजां हृदि हृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम् । प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं ..... १।६.४२	जय जय अबिनासी सब घट बासी ब्यापक परमानन्दा । १।१८५.छं.२ जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं । २।२४३.४
परैत्यनिच्छतो जीर्णो जरया वाससी इव । १।१३.२४	जिमि नूतन पट पहिरइ नर परिहरइ पुरान । ७।१०६ग
यथा क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमाविह । इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम्॥ १।१३.४२	जो सृजि पालइ हरइ बहोरी । बाल केलि सम बिधि मति भोरी ॥ २।२८१.२
भूतैर्भूतानि भूतेशः सृज्यत्यवति हन्त्यजः । आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रैरनपेक्षोऽपि बालवत् ॥ ६।१५.६	
तस्माज्जह्यङ्ग वैक्लव्यमज्ञानकृतमात्मनः । १।१३.४४	अस अनुमानि सोच परिहरहू । २।१६०.४
यतोऽप्राप्य न्यवर्तन्त वाचश्च मनसा सह । ३।६.४०	मन समेत जेहि जान न बानी । १।३४०.७
ब्रह्मन् कथं भगवतश्चिन्मात्रस्याविकारिणः । लीलया चापि युज्येरन्निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः ॥ ३।७.२	ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद । सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद ॥ १।५०.०

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
यमाहुराद्यं पुरुषं सहस्राङ्घ्यूरुबाहुकम् । ३।७.२२	बहु मुख कर पग लोचन सीसा । १।२४१.१
यतोऽभवद्विश्वमिदं विचित्रं संस्थास्यते यत्र च वावतिष्ठते । ३।२२.२०	उमा राम की भृकुटि बिलासा । होइ बिस्व पुनि पावइ नासा ।। ६।३४.७
·····कालरूपेण यो बहिः । ३।२६.१८	कालरूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता । ७।४०.५
मनसश्चन्द्रमा जातो बुद्धिर्बुद्धेर्गिरां पतिः । अहङ्कारस्ततो रुद्रश्चित्तं चैत्यस्ततोऽभवत् ।। ३।२६.६१	अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान । मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान ।। ६।१५(क)
यथा गन्धस्य भूमेश्च न भावो व्यतिरेकतः । ३।२७.१८	बिनु महि गंध कि पावइ कोई ।। ७।८९.४
अपां रसस्य च यथा तथा बुद्धेः परस्य च । ३।२७.१८	जल बिनु रस कि होइ संसारा ।। ७।८८.५
त्वयैव लोकेऽवसिताश्च सेतवो । ४।६.४४	श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह····। २।१२५.छं.१
प्रत्यग्द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यम् । ४।७.३७	जगु पेखन तुम्ह देख निहारे । २।१२६.१
जगदुद्भवस्थितिलयेषु दैवतो । ४।७.३९	जग संभव पालन लय कारिनि । १।९७.४
····दारुषु विभावसुवद्विभासि । ४।९.७	पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू । १।२२.४
सुखं तरति दुष्पारं···· ४।२४.७५	····अति दुस्तरं तरन्ति ते । ७।१२२(ग)
····मोहोऽयमहं ममेति । ५।५.८	मैं अरु मोर तोर तैं माया । ३।१४.२
चेतोभिराकूतिभिरातनोति ५।११.४	बरिआईं बिमोह मन करई । ७।५८.५
कुदेहमानाहिविदष्टदृष्टेः । ५।१२.२	संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता । ७।९२.६

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
कालचक्रनिजायुधं साक्षाद्भगवन्तं···· ५।१४.२६	लव निमेष परमानु जुग बरस कलप सर चंड । ·····कालु जासु कोदंड ।। ६. मं.१
भूयो बनौका इव यान्ति बन्धनम् । ५।१६.२५	बँध्यौ कीर मरकट की नाईं । ७।११६.३
सखा वसन् संवसतः पुरेऽस्मिन् । ६।४.२४	ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती । १।१६.४
कुयोगिनां भिदा····· ६।१६.४७	कुयोगिनां सुदुर्लभं । ३।३.छं १०
लब्ध्वेह मानुषींयोनिं ज्ञानविज्ञानसम्भवाम्। ६।१६.५८	ग्यान बिराग भगति सुभ देनी । ७।१२०.१०
आत्मानं यो न बुद्ध्येत····· ६।१६.५८	पाइ न जेहिं परलोक सँवारा । ७।४२.८
·····न क्वचिच्छममाप्नुयात् । ६।१६.५८	सो परत्र दुख पावइ·····। ७।४३.०
निर्गुणोऽपि ह्यजोऽव्यक्तो····· ७।१.६	एक अनीह अरूप अनामा । १।१२.३
·····भगवान प्रकृतेः परः ७।१ ६	प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी । ७।७१.७
मा भैष्ट विबुधश्रेष्ठाः सर्वेषां मद्रमस्तु वः । मद्दर्शनं हि भूतानां सर्वश्रेयोपपत्तये ।। ७।४.२५	मम दरसन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज सरूपा ।। ३।३५.६
हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वरः । ७।७.३२	ईस्वर सर्ब भूतमय अहई । ७।१०६.१५
न यस्याद्यन्तौ मध्यं च स्वः परो नान्तरं बहिः । ८।१.१२	आदि अंत कोउ जासु न पावा । १।११७.४
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि । ८।३.१०	मन समेत जेहिं जान न बानी । १.३४०.७
····वचसानिरुक्त···· ८।५.२६	

श्रीमद्भागवत

स्वप्नो यथा हि प्रतिबोध आगते। ८।१०.५५

ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः १०।१.४३

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूल-
श्चतूरसः पंचविधः षडात्मा।
सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो
दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः॥
त्वमेक एवास्य सतः प्रसूति-
स्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च।
त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां
पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये॥
१०।२.२७-२८

बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा
क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य।
सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि
सतामभद्राणि मुहुः खलानाम्॥
१०।२.२९

सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान्। १०।२.३४

नेशे महि त्ववसितुं मनसाऽन्तरेण
साक्षात्त्वैव किमुतात्मसुखानुभूतेः॥
१०।१४.२

तथापि भूमन् महिमागुणस्य ते।
१०।१४.६

एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः १०।१४.२३

श्रीरामचरितमानस

जागें जथा सपन भ्रम जाई।
१।१११.२

जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं॥
२।२४३.४

अब्यक्तमूलमनादि तरु
त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंध साखा पंच
बीस अनेक पर्न सुमन घने॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर
बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित
संसार बिटप नमामहे॥
७।१२.छं.५

चिदानंदमय देह तुम्हारी।
बिगत बिकार जान अधिकारी॥
२।१२६.५
नर तनु धरेहु संत सुर काजा।
२।१२६.६

सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु।
२।८७.०

तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा।
औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥
२।१२६.२

तुम्हरेइँ भजन प्रभाव अघारी।
जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी॥
३।१२.५

परमानन्द परेस पुराना॥ १।११५.८

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा ॥ १०।१४.२५	····रज्जौ यथाहेर्भ्रमः। १.मं. श्लोक ६
नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी। १०.२३.४०	बरिआईं बिमोह मन करई। ७.५८.५
न तस्य कश्चिद् दयितः सुहृत्तमो न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा ॥ १०।३८.२२	जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। २।२१८.३
कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप। अनुक्रमन्तो नैबान्तं गच्छन्ति परमर्षयः ॥ १०।५१.३९	सारद सेस महेस बिधि आगम निगम पुरान। नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरन्तर गान ॥ १।१२
निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परं १०।५१.५७	ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद। १।१९८.०
यथैव सूर्यः पिहितश्छायया स्वया छायां च रूपाणि च सञ्चकास्ति। १०।६३.३९	जथा गगन घट पटल निहारी। झाँपेउ भानु कहहिं कुबिचारी ॥ १।११६.२
यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते। १०।६५.२६	ब्रह्मांड भवन बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी ॥ ६।८२.छं.१
दृष्टा मया ते बहुशो दुरत्यया। १०।७०.३७	सुनु खग प्रबल राम कै माया ॥ ७।५८.४
माया विभो विश्वसृजश्च मायिनः। १०।७०.३७	जेहिं बहु बार नचावा मोही। ७।५८.६
तथात्र ब्रूह्यनुष्ठेयं श्रद्दध्मः करवाम तत्। १०।७०.४६	कहहु बेगि का करिअ उपाई। ६।१६.२

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
ये स्युस्त्रैलोक्यगुरवः सर्वे लोकमहेश्वराः ।	बिधि हरि हरु ससि रबि दिसिपाला ।
वहन्ति दुर्लभं लब्ध्वा शिरसैवानुशासनम् ॥	माया जीव करम कुलि काला ॥
स भवानरविन्दाक्षो दीनानामीशमानिनाम्।	अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई ।
१०।७४.२	जोग सिद्धि निगमागम गाई ॥
	करि बिचार जियँ देखहु नीकें ।
	राम रजाइ सीस सबही कें ॥
	२।२५३.६-८
असावहं ममैवैते देहे चास्यान्वयादिषु ।	मैं अरु मोर तोर तें माया ।
१०।८५.१७	३।१४.२
खं वायुर्ज्योतिरापो भूस्तत्कृतेषु यथाशयम् ।	छिति जल पावक गगन समीरा ।
१०।८५.२५	पंच रचित अति अधम सरीरा ॥
	४।१०.४
अगजगदोकसामखिलशक्त्यवबोधक ते ।	सब कर परम प्रकासक जोई ।
१०।८७.१४	१।११६.६
तवपुरुषं वदन्त्यखिल-	ईस्वर अंस जीव अबिनासी ।
शक्तिधृतोंऽशकृतम् ।	७।११६.२
१०।८७.२०	
देहेन्द्रियासुहृदयानि चरन्ति येन	बिषय करन सुर जीव समेता ।
सञ्जीवितानि तदवेहि परं नरेन्द्र ।	सकल एक तें एक सचेता ॥
११।३.३५	१।११६.५
नैतन्मनो विशति वागुत चक्षुरात्मा ।	मन समेत जेहि जान न बानी ।
११।३.३६	१।३४०.७
.....यथानलमर्चिषः स्वाः ।	सहज प्रकासरूप भगवाना ।
११।३.३६	१।११५.६
रजांसि भूमेर्गणयेत् कथंचित्	जल सीकर महि रज गनि जाहीं ।
कालेन नैवाखिलशक्तिधाम्नः ॥	रघुपति चरित न बरनि सिराहीं ॥
११।४.२	७।५१.४

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
यो वा अनन्तस्य गुणाननन्तान्। ११।४.२	राम अनंत अनंत गुन अमित कथा विस्तार। १।३३.०
यत्काय एष भुवनत्रयसन्निवेशो। ११।४.४	बिस्वरूप रघुबंश मनि करहु बचन बिस्वासु। ६।१४.०
यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः। नश्वरं गृह्यमाणं च विद्धि माया मनोमयम्॥ ११।७.७	गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥ ३।१४.३
तेजस्वी तपसा दीप्तो दुर्धर्षोदरभाजनः। सर्वभक्षोऽपि युक्तात्मा नादत्ते मलमग्निवत्॥ ११।७.४५	भानु कृसानु सर्ब रस खाहीं। तिन्ह कहँ मंद कहय कोउ नाहीं॥ १.६८.६
सुपर्णावेतौ सदृशौ सखायौ। ११।११.६	ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती। १।१६.४
त्वं ब्रह्म परमं व्योम पुरुषः प्रकृतेः परः। ११.११.२८	प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ७।७१.७
गुणेष्वाविशते चेतो गुणश्चेतसि च प्रभो। ११।१३.१७	तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास तें काढ़ि। ७।११७.(ग)
....रज्ज्वा वा सर्पचेतसः। ११।२६.१७	रज्जौ यथाहेर्भ्रमः। १।मं.श्लोक ६
विश्वमेकात्मकं पश्यन् प्रकृत्या पुरुषेण च। ११।२८.१	देख ब्रह्म समान सब माहीं। ३।१४.७
यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वाहो वह्वनर्थभृत्। स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते॥ ११।२८.१४	जागें जथा सपन भ्रम जाई। १।१११.२

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
....निस्पृहः स्वसुखानुभूः । ११।२८.४४	फिरत सनेहँ मगन सुख अपनें । १।२४.८
न यत्र वाचो न मनो न सत्वं । १२।४.२०	मन समेत जेहि जान न बानी । १।३४०.७
अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् । १२।५.११	सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा । ७।११०.६
ज्ञानं त्रैकालिकं ब्रह्मन् विज्ञानं च विरक्तिमत् । ब्रह्मवर्चस्विनो भूयात्.....।।१२।१०.३७	ग्यान बिराग जोग बिग्याना । ७।११४.१५
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा..... । १२।१३.१	आदि अंत कोउ जासु न पावा । १।११७.४

परिशिष्ट—५

साम्य

भक्ति-परक

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
तस्मादेकेन मनसा भगवान् सात्वतां पतिः । श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥ १।२.१४	रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि ।। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि ।। ७।१२६.६
गृणन्ति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरन्ति च । १।५.३६	
शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः १।८.३६	
नामानि रूपाणि मनोवचोभिः सन्तन्वतो नटचर्यामिवाज्ञः ।। १।३.३७	नट इव कपट चरित कर नाना । ६।७२.१२ जथा अनेक बेष धरि नृत्य करइ नट कोइ । ७।७२.(ख)
मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्ययम् । न लक्ष्यसे मूढ़दृशा नटो नाट्यधरो यथा ।। १।८.१६	
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत् । शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ।। १।५.११	सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही । १।६.६
नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।। १।५.१२	सोह न राम पेम बिनु ग्यानू । २।२७६.५
ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा । औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः।।	अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा । प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा ।। ३।६.१४
अपश्यन् सहसोत्तस्थे वैल्कव्यादुर्मना इव । १।६.१६	मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें । ३।६.१६

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
भवसिन्धुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्णनम्। १।६.३५	भव सागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा॥ ७।५२.३
अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे। १।७.६	भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥ ७।११८.८
यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे। भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा॥ १।७.७	जे सुनि सादर नर बड़ भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी॥ १।१५१.३
मन्येत्वां कालमीशानमनादिनिधनं विभुम्। १।८.२८	भुवनेस्वर कालहु कर काला। ५.३८.१
सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिमेति॥ १।८.३१	जासु त्रास डर कहुँ डर होई। १।२२४.७
यद्बिभेति स्वयं भयम्। १।१.१४	
त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम्॥ १।८.३६	यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षांवतां। १. मं. श्लोक ६
येषां न चान्यद्भवतः पदाम्बुजात्....। १।८.३७	तुम्हहिं छाड़ि गति दूसरि नाहीं॥ २।१२६.५
रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति। १।८.४२	भक्ति प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे। ५. मं. श्लोक २
तत्कृतं मतिवैषम्यं निरवद्यस्य न क्वचित्। १।९.२१	जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू॥ २।२१८.३
तथाप्येकान्तभक्तेषु पश्च भूपानुकम्पितम्। १।९.२२	तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। २।२१८.५

श्रीमद्भागवत

स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो
जितेन्द्रिया निर्जितमातरिश्वनः ।
१।१०.२३

यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा
जीवन्ति तत्रैष हि सत्वगः किल ।
धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो
भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे ॥
१.१०.२५

भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन्
त्वमेव माताथ सुहृत्पतिः पिता ।
७।१७.४

अहो सनाथा भवता स्म यद्वयं ।
१।११.८

यत्पादपद्ममभवाय भजन्ति भव्याः ।
१।१५.१७

मनसा धारयामासुर्वैकुण्ठचरणाम्बुजम् ।
१।१५.४६

यः श्रद्धयैतद् भगवत्प्रियाणां
पाण्डोः सुतानामिति सम्प्रयाणम् ।
शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं
लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम् ॥
१।१५.५१

ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपाङ्गमोक्ष-
कामास्तपः समचरन् भगवत्प्रपन्नाः ।
सा श्रीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय
यत्पादसौभगमल भजतेऽनुरक्ता ॥
१।१६.३२

श्रीरामचरितमानस

करहिं जोग जोगी जेहि लागी ।
कोहु मोहु ममता मदु त्यागी ॥
१।३४०.५

जब जब होइ धरम कै हानी ।
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा ।
१।१२०.६-८

मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता ।
७।१७.४

अब हम नाथ सनाथ सब
भए देखि प्रभु पाय ।
२.१३५.०

जिन्ह के चरन सरोरुह लागी ।
करत बिबिध जप जोग बिरागी ॥
१।२२५.४

मन ते सकल बसना भागी ।
केवल राम चरन लय लागी ॥
७।१०९.६

भरत चरित करि नेमु
तुलसी जो सादर सुनहिं ।
सीय राम पद पेमु अवसि
होइ भव रस बिरति ॥
२।३२६

जासु कृपा कटाच्छु सुर
चाहत चितवन सोइ ।
राम पदारबिंद रति
करति सुभावहि खोइ ॥
७।२४.०

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
जन्मजाभः परःपुंसामन्तेनारायणस्मृतिः। २।१.६	जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। अंत राम कहि आवत नाहीं॥ ४।६.३
प्रायेण मुनयो राजन्निवृत्ता विधिषेधतः। नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्म गुणानुकथने हरेः॥ २।१.७	जीवन मुक्त महामुनि जेऊ। हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ॥ ७।५२.२
परिनिष्ठितोऽपिनैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया। गृहीतचेता..... ... २।१.६	जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान। ७।४२.०
यस्य श्रद्दधतामाशु स्यान्मुकुन्दे मतिः सती। २।१.१०	सुनि प्रभु पद रति उपजइ जातें मिटहिं कलेस। ७।९६.(क)
भगवान् सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः। २।२.३५	सीय राममय सब जग जानी। १।७.२
तस्मात् सर्वात्मना राजन् हरिः सर्वत्र सर्वदा। श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम्॥ २।२.३६	रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥ ७।१२९.६
पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु सम्भृतम्। पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम्। २।२.३७	जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता॥ होइहहिं राम चरन अनुरागी। कलि मल रहित सुमंगल भागी॥ १।१४.१०-११
	मन क्रम बचन जनित अघ जाई। सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई॥ ७।१२५.३

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात् । २।३.१२	श्रवणवंत अस को जग माहीं । जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं ।। ७।५२.५
बालक्रीडनकैः क्रीडन् कृष्णक्रीडां य आददे । २।३.१५	खेलउँ तहूँ बालकन्ह मीला । करउँ सकल रघुनायक लीला ।। ७।१०९.४
बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य । २।३.२०	जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना । श्रवन रंध्र अहिभवन समाना ।। १।११२.२
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः । २।३.२०	जो नहिं करइ राम गुन गाना । जीह सो दादुर जीह समाना ।। १।११२.६
भारः परं पट्टकिरीटजुष्टम- प्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम् । २।३.२१	ते सिर कटु तुंबरि समतूला । जे न नमत हरि गुर पद मूला ।। १।११२.४
बर्हायिते ते नयने नराणां लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये । २।३.२२	नयनन्हि संत दरस नहिं देखा । लोचन मोरपंख कर लेखा ।। १।११२।३
जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु । २।३.२३	जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी । जीवत सब समान तेइ प्रानी ।। १।११२.५
तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद् गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः । न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ।। २।३.२४	कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती । सुनि हरिचरित न जो हरषाती ।। १।११२.७ जे हरि कथाँ न करहिं रति तिन्ह के हित पाषान ।। ७।४२.०

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्का यवनाः खसादयः । येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥ २।४.१८ तथा २।७.४६	आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे । कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते । ७।१२६ छं.१
सर्वं ह्येतद् भवान् वेद भूतभव्यभवत्प्रभुः । करामलकवद् विश्वं विज्ञानावसितं तव ॥ २।५.३	जानहिं तीनि काल निज ग्याना । करतल गत आमलक समाना ॥ १।२६.७
एकः सृजसि भूतानि भूतैरेवात्ममायया । २।५.४	जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा । १।१८५.छं.३
नाहं न यूयं यदृतां गतिं विदुर्न वामदेवः किमुतापरे सुराः । २।६.३६	बिधि हरि संभु नचावनिहारे ॥ तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा । औरु तुम्हहि को जाननिहारा ॥ २।१२६.१-२
स एष आद्यः पुरुषः कल्पे कल्पे सृजत्यजः । २।६.३८	कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं । १।१३६.२
.....श्रवणमङ्गलनामधेय । २।७.१५	जाकर नाम सुनत सुभ होई । १।१६२.५
विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि । २।७.४०	जल सीकर महि रज गनि जाहीं । रघुपति चरित न बरनि सिराहीं ॥ ७।५१.४
गायन् गुणान् दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य परम् । २।७.४१	सेष सहस सत सकहिं न गाई ॥ ५।५५.१
यथाऽऽत्मतन्त्रो भगवान्..... २।८.२३	परम स्वतंत्र न सिर पर कोई । १।१३६.१

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
वरं वरय भद्रं ते वरेशं मामिवांछितम् । २।९.२०	मागहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि ।। १।१४८.०
पश्यतस्तस्य तद् रूपमात्मनो न्यरुणद्धरिः । २।९.३७	अंतरधान भए अस भाषी । १।७६.७
प्रतिवक्तुं न चोत्सेहे औत्कण्ठ्यात्स्मारितेश्वरः । ३।२.१	श्रीरघुनाथ रूप उर आवा । परमानंद अमित सुख पावा ।। १।११०.८
स मुहूर्तमभूत्तूष्णीं कृष्णा- ङ्घ्रिसुधयाभृशम् । तीव्रेण भक्तियोगेन निमग्नः साधु निर्वृतः ।। ३।२.४	मगन ध्यान रस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह । रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह ।। १।१११.०
प्रवृद्धहर्षो भगवत्कथायां सञ्चोदितस्तं प्रहसन्निवाह । ३।७.४२	भयउ तासु मन परम उछाहा । लाग कहै रघुपति गुन गाहा ।। ७।६३.६
अहीन्द्रतल्पेऽधिशयान एकः । ३।८.१०	सदा छीरसागर सयन । १ मं.सो.३
नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति । ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयान्त्यपावृतमृतं..... ३।९.१५	जा कर नाम मरत मुख आवा । अधमउ मुकुट होइ श्रुति गावा ।। ३।३०.६
यो वा अहं च गिरिशश्च विभुः स्वयं च स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम् । ३।९.१६	जाकें बल बिरंचि हरि ईसा । पालन सृजत हरत दससीसा ।। ५।२०.५
यस्माद्बिभेम्यहमपि द्विपरार्धधिष्ण्यम् । ३।९.१८	सिव चतुरानन जाहि डेराहीं । ७।७०.८
रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेहः ३।९.१९	पूरनकाम राम सुख रासी । ३।२९.१७

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
पूर्तेन तपसा यज्ञैर्दानैर्योगसमाधिना । राद्धं निःश्रेयसं पुंसां मत्प्रीतिस्तत्त्वविन्मतम् ॥ ३।६.४१	जप तप नियम जोग निज धर्मा । श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा ॥ ग्यान दया दम तीरथ मज्जन । जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन ॥ तब पद पंकज प्रीति निरंतर । ७।४८.१,२,४
.....यदर्हणाम्भः सद्यः पुनाति सहचन्द्रललामलोकान् । ३।१६.८	जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी । १।२१०.छं.४
यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत् । ३।२८.२२	
शृणोति गायत्यनुमोदतेऽञ्जसा । ३।१६.३७	कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं । ७।१२८.६
पादारविन्दं भवसिन्धुपोतम् । उपासते कामलवाय तेषां ३।२१.१४	यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां । वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम् । १. मं. श्लोक ६
तव सन्दर्शनादेवच्छिन्ना मे सर्वसंशयाः । ३।२२.५	राम कृपाँ तव दरसन भयऊ ।। तव प्रसाद सब संसय गयऊ ।। ७।६८.८
यदा भ्रंशयितुं भोगा न शेकुर्भगवत्परम् । ३।२२.३४	राम चरन पंकज प्रिय जिन्हही । बिषय भोग बस करहिं कि तिन्हही ।। २।८३.८
वेदाहमाद्यं पुरुषमवतीर्णं स्वमायया । भूतानां शेवधिं देहं बिभ्राणं कपिलं मुने ।। ३।२४.१६	आदिदेव प्रभु दीनदयाला । जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला ।। १।१४१.६

श्रीमद्भागवत

कपिलस्तत्त्वसंख्याता भगवानात्ममायया ।
३।२५.१

अथ मे देव सम्मोहमपाक्रष्टुं त्वमर्हसि ।
३।२५.१०

तं त्वा गताहं शरणं शरण्यं । ३।२५.११

स्वभृत्यसंसारतरोः कुठारम् ।
जिज्ञासयाहं प्रकृतेः पूरुषस्य
नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम् ।। ३।२५.११

मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढ़ाम् ।
३।२५.२२

मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबान्धवाः ।
३।२५.२२

काचित्त्वय्युचिता भक्तिः
कीदृशी मम गोचरा ।
३।२५.२८

येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च
सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ।।
३।२५.३८

एतावानेव लोकेऽस्मिन्
पुंसां निःश्रेयसोदयः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन मनो
मय्यर्पितं स्थिरम् ।।
३।२५.४४

नेश्वरस्याशुभं धत्ते स्वे
महिम्नि स्थितस्य च ।
३।२७.२४

श्रीरामचरितमानस

सांख्य सास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना ।।
१।१४१.७

तौ प्रभु हरहु मोर अग्याना ।
१।१०७.२

श्रवन सुजसु सुनि आयउँ
प्रभु भंजन भव भीर ।
५।४५.०

भव खेद छेदन दच्छ हम
कहुँ रच्छ राम नमामहे ।
७।१२.छं.२

मन बच क्रम मम भगति अमाया ।
७.३७.३

मम हित लागि जन्म इन्ह हारे ।
७।७.८

कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया ।
३।१३.८

स्वामि सखा पितु मातु गुर
जिन्ह के सब तुम्ह तात ।
२।१३०.०

गुरु पितु मातु बंधु पति देवा ।
सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ।।
३।१५ १०

देह धरे कर यह फलु भाई ।
भजिअ राम सब काम बिहाई ।।
४।२२.६

करम सुभासुभ तुम्हहि न बाधा ।
१।१३६.४

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
प्रसन्नवदनाम्भोजं पद्मगर्भारुणेक्षणम् । नीलोत्पलदलश्यामं..... ३।२८.१३	नीलोत्पल तन स्याम काम कोटि सोभा अधिक । ४।३०(ख) नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन । १.मं. सो.३
क्रियया क्रतुभिर्दानैस्तपः स्वाध्यायमर्शनैः । आत्मेन्द्रियजयेनापिसंन्यासेन चकर्मणाम् ।। योगेन विविधाङ्गेन भक्तियोगेन चैव हि । धर्मेणोभयचिह्नेन यः प्रवृत्तिनिवृत्तिमान् ।। आत्मतत्त्वावबोधेन वैराग्येण दृढेन च । ईयते भगवानेभिः सगुणोनिर्गुणः स्वदृक् ।। ३।३२.३४ से ३६ तक	जप तप नियम जोग निज धर्मा । श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा ।। ग्यान दया दम तीरथ मज्जन । जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन ।। आगम निगम पुरान अनेका । पढ़े सुने कर फल प्रभु एका ।। तव पद पंकज प्रीति निरंतर । सब साधन कर यह फल सुंदर ।। ७।४८.१-४
नैतत्खलायोपदिशेन्नाविनीताय कर्हिचित् । न स्तब्धाय नभिन्नाय नैव धर्मध्वजायच ।। न लोलुपायोपदिशेन्न गृहारूढ़चेतसे । नाभक्ताय चमे जातु नमद्भक्तद्विषामपि ।। ३।३२.३९-४०	यह न कहिअ सठही हठसीलहि । जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि ।। कहिअ न लोमिहि क्रोधिहि कामिहि । जो न भजइ सचराचर स्वामिहि ।। द्विज द्रोहिह न सुनाइअ कबहूँ । सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ ।। ७।१२७.३-५
श्रद्दधानाय भक्ताय विनीतायानसूयवे । भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषाभिरयाय च ।। बहिर्जातविरागायशान्तचित्ताय दीयताम् । निर्मत्सराय शुचये यस्याहं पेयसां प्रियः ।। ३।३२.४१-४२	राम कथा के तेइ अधिकारी । जिन्ह कें सतसंगति अति प्यारी ।। गुर पद प्रीति नीति रत जेई । द्विज सेवक अधिकारी तेई ।। ता कहँ यह बिसेष सुखदाई । जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई ।। ७।१२७.६-८

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
य इदं शृणुयाद्ब्रह्म श्रद्धया पुरुषः सकृत् । यो वाभिधत्ते मच्चित्तः स ह्येति पदवीं च मे ॥ ३।३२.४३	जे एहि कथहि सनेह समेता । कहिहहिं सुनिहहिं समुझि सचेता ॥ होइहहिं राम चरन अनुरागी । कलि मल रहित सुमंगल भागी ॥ १।१४.१०-११
श्रुत्वैतच्छ्रद्धयाभीक्ष्णमच्युतप्रियचेष्टितम् । भवेद्भक्तिर्भगवति यया स्यात्क्लेशसंक्षयः॥ ४।१२.४६	
स त्वं भृतो मे जठरेण नाथ ३।३३.४	मम उर सो बासी यह उपहासी···· १।१९१.छं.३
यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद् यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् । श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते ३।३३.६	स्वपच सबर सख जमन जड़ पाँवर कोल किरात । रामु कहत पावन परम होत भुवन बिख्यात ॥ २।१९४.
यद् द्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां सकृत्प्रसंगादघमाशु हन्ति तत् । ४।४.१४	बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं । जनम अनेक रचित अघ ददहीं ॥ १।११८.३
अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि । यद् व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥ ६।२.७	
यत्पादपद्मं महतां मनोऽलिभिर्निषेवितं···· ४।४.१५	मुनि मन मधुप बसहिं जेन्ह माहीं । १।१४७.१
सुरासुरेशैरभिवन्दिताङ्घ्रिः । ४।६.४०	सिव अज पूज्य चरन रघुराई । ७।१२३.३
यथामति गृणन्ति स्म कृतानुग्रहविग्रहम् । ४।७.२४	निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं । ७।९०.४

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
यन्मायया गहनयापहृतात्मबोधा ब्रह्मादयस्तनुभृतस्तमसि स्वपन्तः। ४।७.३०	यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुरा। १।म. श्लोक ६
अंशांशास्ते देव मरीच्यादय एते ब्रह्मेन्द्राद्या देवगणा रुद्रपुरोगाः। ४।७.४३	संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना॥ १।१४३.६
त्वन्माययार्थमभिपद्य कलेवरेऽस्मिन्। ४.७.४४	तव माया बस फिरउँ भुलाना। ४।१.९
मुनयः पदवीं यस्य निःसङ्गेनोरुजन्मभिः। ४।८.३१	जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं। ४।९.३
आराध्यापदुराराध्यं विष्णोस्तत्परमं पदम्। ४।११.११	दुराराध्य पै अहहिं महेसू। १।६९.४
भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्या- ग्रन्थिं बिभेत्स्यसि ममाहमिति प्ररूढम्। ४।११.३०	भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥ ७।११८.८
प्ररूढभावो भगवत्यधोक्षजे। ४।१३.१	भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती। १।११८.८
भजन्त्यथ त्वामत एव साधवो व्युदस्तमायागुणविभ्रमोदयम्। ४।२०.२९	यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं॥ ३।४२.१०
त्वन्माययाद्धा जन ईश खण्डितो। ४।२०.३१	नाथ जीव तव मायाँ मोहा। ४।२.२
कोऽन्वस्य कीर्तिं न शृणोत्यभिज्ञो। ४।२१.१०	श्रवनवंत अस को जग माहीं। जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं॥ ७.५२.५
दर्शनं नो दिदृक्षूणां देहि भागवतार्चितम्। रूपं प्रियतमं स्वानां सर्वेन्द्रियगुणाञ्जनम्॥ ४।२४.४४	उर अभिलाष निरंतर होई। देखिअ नयनपरम प्रभु सोई॥ १।१४३.३ देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। १।१४५.६

श्रीमद्भागवत

तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्र-
पीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति ।
४।२९.४०

यदा यमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः ।
४।२९.४६

अन्तर्हितोऽन्तर्हृदये कस्मान्नोवेद नाशिषः।
४।३०.२९

वहाम सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् ।
५।१.११

यन्नामधेयमधुना स जहाति बन्धम् ।
५।१.३५

अपत्यतामगाद्यस्य हरिः शुद्धेन कर्मणा ।
५।४.६

प्रीतिर्न यावन्मयि वासुदेवे
न मुच्यते देहयोगेन तावत् ।।
५।५.६

ह्यपवर्गमात्यन्तिकं परमपुरुषार्थमपि स्वय-
मासादितं नो एवाद्रियन्ते भगवदीयत्वेनैव
परिसमाप्तसर्वार्थाः । ५।६.१७

यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः प्रस्तूयते ।
५।१२.१३

बिधेहि योगं त्वयि नः स्वभावमिति ।
५।१९.१५

सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ।।
६।२.१४

श्रीरामचरितमानस

नाथ तवानन ससि स्रवत
कथा सुधा रघुवीर ।
७।५२ (ख)

जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी ।
१।१०४.६

सो तुम्ह जानहु अंतरजामी ।
१।१४८.७

राम रजाइ सीस सबही कें ।
२।२५३।८

जासु नाम जपि सुनहु भवानी ।
भव बंधन काटहिं नर ग्यानी ।।
५।१९.३

जासु सनेह सकोच बस
राम प्रगट भए आइ ।
२।२०९

बिनु हरि भजन न भव तरिअ
यह सिद्धांत अपेल ।
७।१२२ (क)

अस बिचारि हरि भगत सयाने ।
मुक्ति निरादर भगति लुभाने ।।
७।११८.७

नित हरि कथा होत जहँ भाई ।
७।६०.७

पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग ।
७।१४(क)

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ ।
नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ।।
१।२७.१

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् । ६।३.२६	यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं । ३।४२.१०
अन्तकोऽसौ बिभेति यस्मात् । ६।९.२१	जाकें डर अति काल डेराई । ५।२१.९
यो नः सपत्नैर्भृशमर्द्यमानान् देवर्षितिर्यङ्नृषु नित्य एव । कृतावतारस्तनुभिः स्वमायया कृत्वाऽऽत्मसात् पाति युगे युगे च ।। ६।९.२६	जब जब नाथ सुरन्ह दुखु पायो । नाना तनु धरि तुम्हइँ नसायो ।। ६।१०९.८
व्रजाम सर्वे शरणं शरण्यं···· ६।९.२७	····सरन सकल सुरजूथा । १।१८५.छं.३
····देहान्निष्क्रान्तमात्मज्योतिररिन्दम । पश्यतां सर्वलोकानामलोकं समपद्यत ।। ६।१२.३५	तासु तेज समान प्रभु आनन। ६।१०२.९ तासु तेज प्रभु बदन समाना । ६।७०.८
विषयतृषो नरपशवो य उपासते विभूतीर्न परं त्वाम् । ६।१६.३८	बिषया बन पाँवर भूलि परे । ७।१३.८ पद पंकज प्रेम न जे करते । ७।१३.१०
यन्नामसकृच्छ्रवणात् पुल्कसकोऽपि विमुच्यते संसारात् ।। ६।१६.४४	पापिउ जा कर नाम सुमिरहीं । अति अपार भवसागर तरहीं ।। ४।२८.३
मानसः सर्वभूतानां वासुदेवः श्रियः पतिः । ६।१८.३३	सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ । २।२५७ ०
हर्षाश्रुपुलकोद्भेदो गिरा गद्गदयागृणात् । ७।३.२५	बिनय करत गदगद गिरा पूरित पुलक सरीर । ७।१३ (ख)

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ ७।५.२३	श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाई । ३।१५.८
कोऽति प्रयासोऽसुरबालका हरेरुपासने । ७।७.३८	कहहु भगति पथ कवन प्रयासा । ७।४५.१
स्वस्यात्मनः सख्युरशेषदेहिनां । ७।७.३८	स्वारथ रहित सखा सब ही के । २।७३.६
उत्थाप्य तच्छीर्ष्यदधात् कराम्बुजं । ७।९.५	सिर परसे प्रभु निज कर कंजा । तुरत उठाए करुनापुंजा ॥ १।१४७.८
हृष्यत्तनुः क्लिन्नहृदश्रुलोचनः । ७।९.६	पुलक सरीर नयन जल बाढ़े । २।१३४.६
क्वाहं रजःप्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन् जातः सुरेतरकुले··· ७।९.२६	निसिचर बंस जनम सुरत्राता । ५।४४.७
	सहज पापप्रिय तामस देहा । ५।४४.८
नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्या- ज्जन्तोर्यथाऽऽत्मसुहृदो जगतस्तथापि । ७।९.२७	सब मम प्रिय सब मम उपजाए । ७।८५.४
	सब पर मोहि बराबरि दाया ॥ ७।८६.७
भक्तियोगस्य तत् सर्वमन्तरायतयार्भक· । ७।१०.१	ए सब राम भगति के बाधक । कहहिं संत तव पद अवराधक ॥ ४।६.१७
यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ । ७।१०.७	जौं अनाथ हित हम पर नेहू । तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू ॥ १।१४५.३
नैकान्तिनो मे मयि जात्विहाशिष आशासतेऽमुत्र च ये भवद्विधाः । ७।१०.११	जाहि न चाहिअ कबहूँ कछु तुम्ह सन सहज सनेह । २।१३१

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
वितायमामेष्यसि मुक्तबन्धः । ७।१०.१३	पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं । ६।११६ (घ)
य एतत् कीर्तयेन्मह्यं त्वया गीतमिदं नरः । त्वां च मां च स्मरन्काले कर्मबन्धात् प्रमुच्यते ।। ७।१०.१४	मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहैं । संसार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं ।। ६।१०५.छं. १
वरं वरय एतत् ते वरदेशान्महेश्वर । ७।१०.१५	देहु एक बर मागउँ स्वामी । ३।४१.२
त्रिःसप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ । यत् साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावनः ।। ७।१०.१८	सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत । श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत ।। ७।१२७
भवान्मे खलु भक्तानां सर्वेषांप्रतिरूपधृक् । ७।१०.२१	भगत सिरोमनि भे प्रहलादू । १।२५.४
हरिरेवैक उर्वीश यन्मयं वै चराचरम् । ७।१४.३४	सीय राम मय सब जग जानी । १।७.२ सातवँ सम मोहि मय जग देखा । ३।३५.३
प्रियः सुहृद् वः खलु मातुलेय आत्माऽर्हणीयो विधिकृद् गुरुश्च ।। ७।१५.७६	स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात । २।१३०
जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् । ८।३.६	औरु तुम्हहि को जाननिहारा । २।१२६.२

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
तस्यानुभावः कथितो गुणाश्च परमोदयाः । भौमान् रेणून् स विममे यो विष्णोर्वर्णयेद् गुणान् ' । ८।५.६	जल सीकर महि रज गनि जाहीं । रघुपति चरित न बरनि सिराहीं ।। ७।५१.४
स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोः । ९।४.१८	राम चरन पंकज मन जासू । १।१६.४
बचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने । ९।४.१८	रामचन्द्र गुन बरनैं लागा । ५।१२.५
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु । ९।४.१८	कर नित करहिं राम पद पूजा । २।१२८.४
श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये । ९।४.१८	सुनत फिरउँ हरि गुन अनुबादा । ७।१०९.१२
मुकुन्दलिंगालयदर्शने दृशौ ९।४.१९	रहहिं दरस जलधर अभिलाषे । २।१२७.६
तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसङ्गमम् । ९।४.१९	राम भगत प्रिय लागहिं जेही । २।१३०.४
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ।। ९।४.१९	प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा । सादर जासु लहइ नित नासा ।। २।१२८.१
पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे ९।४.२०	चरन राम तीरथ चलि जाहीं । २।१२८.५
शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने । ९।४.२०	चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही । ४।१९.१
कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोक जनाश्रया रतिः ।। ९।४.२०	जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु । २।१३१ राम भगत प्रिय लागहिं जेही। २।१३०.४

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥ १०।१.४	जे हरि कथाँ न करहिं रति तिन्ह के हिय पाषान । ७।४२.०
येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन- स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः । आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥ १०।२.३२	जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी । ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी । ७।१२.छं.३
त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया । १०।२.३३	करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी । ३।४२.५
दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम् । १०।११.६	भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन । ७।९२(ख)
सकृद् यदङ्गप्रतिमान्तराहिता मनोमयी भागवतीं ददौ गतिम् । स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभि- व्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुनः ॥ १०।१२.३६	अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ । बसहुँ लखनु सिय रामु बटाऊ ॥ राम धाम पथ पाइहि सोई । जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई ॥ २।१२३.१-२
इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणि- स्तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः । कृच्छ्रात् पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तम ॥ १०।१२.४४	मगन ध्यानरस दंड जुग पुनि मन बाहेर कीन्ह । रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह ॥ १।१११.०
श्रेयः स्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये । तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते । नान्यद्यथास्थूलतुषावघातिनाम् ॥ १०।१४.४	जे असि भगति जानि परिहरहीं । केवल ग्यान हेतु श्रम करहीं ॥ ते जड़ कामधेनु गृहँ त्यागी । खोजत आकु फिरहिं पय लागी ॥ ७।११४.१-२

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया । १०।१४.५	जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा । प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा ।। ३।७.७
गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विभातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य । कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पै- र्भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः ।। १०।१४.७	जल सीकर महि रज गनि जाहीं । रघुपति चरित न बरनि सिराहीं ।। ७।५१.४
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते । १०।१४.८	मन क्रम बचन चरन रत होई । २।७१.८
तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम् । येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ।। १०।१४.३०	जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं । तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं ।। सेवक हम स्वामी सियनाहू । होउ नात यह ओर निबाहू ।। २।२३.५
तावद् रागादयः स्तेनास्ता- वत् कारागृहं गृहम् । तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः ।। १०।१४.३६	तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन विश्राम । जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम ।। ५।४६.०
प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले । प्रपन्नजनतानन्दसन्दोहं प्रथितुं प्रभो ।। १०।१४.३७	ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई । भगत हेतु लीलातनु गहई ।। १।१४३.७
शृण्वन् गृणन्नेति नरोऽखिलार्थान् । १०।१४.६०	जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं । सुख संपति नाना बिधि पावहिं ।। ७।१४.३
गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन् । १०।१६।३	नहिं अघात श्रवणामृत जानी । ५।४८.३

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् । न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वांछन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः ।। १०।१६.३७	जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु । २।१३१.०
अन्तः प्रवेश्य सुचिरं परिरम्यतापं । १०।२३.२३	लोचन मग रामहि उर आनी । १।२३१.७
नन्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शनाः । अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ।। १०।२३.२६	स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा । मन क्रम बचन राम पद नेहा ।। ७।९५.१
तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् । श्रवणमंगलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ।। १०।३१.९	मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की । १।९.छं.१ श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई । ५।१२.७
.....जुषाणातन्मुखाम्बुजम् । आपीतमपि नातृप्यत् सन्तस्तच्चरणं यथा।। १०।३२.७	रामचन्द्र मुख चंद्र छबि लोचन चारु चकोर । करत पान सादर सकल प्रेमु प्रमोदु न थोर ।। १।३२१।०
न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां १०।३२.२२	नाहिन तात उरिन मैं तोही । ७।१.१४
यदर्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः १०।३८.८	जासु चरन अज सिव अनुरागी । ७।१०५.४
....न स्यात् फलमञ्जसा दृशः । १०।३८.१०	होइहैं सफल आजु मम लोचन । ३।९.९

श्रीमद्भागवत

यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः ।
१०।३८.१२

न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतः
कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक् ।
१०।३८.१८

कर्मभिर्भ्राम्यमाणानांयत्र क्वापीश्वरेच्छया।
मंगलाचरितैर्दानैं रतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ।।
१०।४७.६७

यत्र क्वापिसतश्चेतोभूयान्मेत्वत्पदास्पदम्।
१०।६४.२८

अस्य मे पादसंस्पर्शो भवेज्जन्मनि जन्मनि ।
कर्मभिर्भ्राम्यमाणायायेनतच्छ्रेय आत्मनः।।
१०।८३.१६

लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं
कथंचिदव्यंगमयत्नतोऽनघ ।
१०।५१.४७

ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो ।
१०।५१.४८

सत्संगमो यर्हि तदैव सद्गतौ
परावरेशे त्वयि जायते मतिः ।
१०।५१.५४

न कामयेऽन्यं तव पादसेवना-
दकिंचनप्रार्थ्यतमाद् वरं विभो ।।
१०।५१.५६

श्रीरामचरितमानस

जिन्ह हरि भगति हृदयँनहिं आनी ।
जीव त सब समान तेइ प्रानी ।।
१।११२.५

अघ अवगुन छमि आदरहिं
समुझि आपनी ओर ।।
२।२३३

जेहिं जोनि जन्मौं कर्म बस
तहँ राम पद अनुरागऊँ ।
४।९.छं.२

अबहुँक करि करुना नर देही ।
देत ईस बिनु हेतु सनेही ।।
७।४३.६

हृदयँ बहुत दुख लाग जनम
गयउ हरिभगति बिनु ।
१।१४२

बिनु सतसंग न हरि कथा
तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गएँ बिनु राम पद
होइ न दृढ़ अनुराग ।।
७।६१

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु
तुम्ह सन सहज सनेहु ।
२।१३१.०

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
ब्रह्मन्कृष्णकथाः पुण्यामाध्वीर्लोकमलापहाः। को नु तृप्येतशृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः॥ १०।५२.२०	रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥ ७।५२.१
यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै। १०।५२.४३	सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई॥ ६।२१.१
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून् व्रतकृशाञ्छतजन्मभिः स्यात्। १०।५२.४३	जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥ १।८०.५
यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया। एवमीश्वरतन्त्रोऽयमीहते सुखदुःखयोः॥ १०।५४.१२	उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत रामु गुसाईं॥ ४।१०.७
यद्वाञ्छया नृपशिखामणयोऽङ्गवैन्य- जायन्तनाहुषगयादय ऐकपत्यम्। राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमम्बुजाक्ष १०।६०.४१	जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी॥ १।२२५.४
जीवस्य यः संसरतो विमोक्षणं न जानतोऽनर्थवहाच्छरीरतः। लीलावतारैः स्वयशःप्रदीपकं प्राज्वालयत्त्वा तमहं प्रपद्ये॥ १०।७०.३६	सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं। कृपासिंधु जन हित तनु धरहीं॥ १।१२१.१
मय्यावेश्य मनः सम्यङ्- मामन्ते ब्रह्म यास्यथ। १०।७३.२३	.....मोहि सुमिरेहु मन माहिं। पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ संत सब जाहिं॥ ६।११६(घ)
आनन्दाश्रुकलां मुञ्चन्..... १०।७३.३५	गदगद गिरा नयन बह नीरा। ३।१५.११

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
सा वाग् यया तस्य गुणान् गृणीते करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च । स्मरेद् वसन्तं स्थिरजङ्गमेषु शृणोति तत्पुण्यकथाः स कर्णः ॥ शिरस्तु तस्योभयलिंगमानमे- त्तदेव यत् पश्यति तद्धि चक्षुः । अङ्गानि विष्णोरथ तज्जनानां पादोदकं यानि भजन्ति नित्यम् ॥ १०।८०.३-४	जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु । मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहुँ हियँ तासु ॥ २।१२८ कर नित करहिं राम पद पूजा । राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा ॥ चरन राम तीरथ चलि जाहीं । राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥ मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा । पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा ॥ २।१२८.४-६
नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा । तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥ १०।८०.३४	उमा जोग जप दान तप नाना मख ब्रत नेम । राम कृपा नहिं करहिं तसि जसि निष्केवल प्रेम ॥ ६।११७(ख)
सर्वासामपि सिद्धीनां मूलं तच्चरणार्चनम् । १०।८१.१९	साधन सिद्धि राम पग नेहू । २।२८८.८
तस्यैव मे सौहृदसख्यमैत्री दास्यं पुनर्जन्मनि जन्मनि स्यात् । १०।८१.३६	सेवक हम स्वामी सियनाहू । २।२३.६
ते रथैर्देवधिष्ण्याभैर्हयैश्च तरलप्लवैः । १०।८२.७	रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए । १।२९८.३
	जे जल चलहिं थलहि की नाईं । १।९८.७
न किञ्चनोचतुःप्रेम्णा साश्रुकण्ठौ कुरूद्वह । १०।८२.३५	गदगद कंठ न कछु कहि जाई ॥ १।७१.७

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।	यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं····	तेन परहिं भवकूपा ।
१०।८२.४६	१।१६१.छं.४
मायाकृतिं परमहंसगतिं नताः स्म ।	·····मायामनुष्यं हरिं
१०।८३.४	वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं
	भूपालचूडामणिम् ।
	५।मं श्लोक १
मुनीनां स वचः श्रुत्वा पुत्रयोर्धामसूचकम् ।	सुनहु त त तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं ।
तद्वीर्यैर्जातविश्रम्भः परिभाष्याभ्यभाषत ।।	रामु चराचर नायक अहहीं ।।
१०।८५.२	२।७६.६
यदात्थैकान्तभक्तान् मे	अनुज राज संपति बैदेही ।
नानन्तः श्रीरजः प्रियः ।	देह गेह परिवार सनेही ।।
१०।८६.३२	सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना ।
	मृषा न कहउँ मोर यह बाना ।
	७।१५.६-७
यशो वितेने तच्छान्त्यै	त्रैलोक पावन सुजसु सुर
त्रैलोक्यवृजिनापहम् ।	मुनि नारदादि बखानिहैं ।।
१०।८६.३४	४।२६.छं.१
न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते	मुक्ति निरादर भगति लुभाने ।
चरणसरोजहंसकुलसंगविसृष्टगृहाः ।	७।११८.७
१०।८७.२१	
त्वदवगमी न वैत्ति भवदुत्थशुभाशुभयो-	निंदा अस्तुति उभय सम
र्गुणविगुणान्वयांस्तर्हि देहभृतां च गिरः ।	ममता मम पद कंज ।
अनुयुगमन्वहं सगुण गीतपरम्परया	ते सज्जन मम प्रानप्रिय
श्रवणभृतो यतस्त्वमपवर्गगतिर्मनुजैः ।।	गुन मंदिर सुख पुंज ।।
१०।८७.४०	७।३८

श्रीमद्भागवत

सान्द्राम्बुदाभं सुपिशङ्गवाससं
प्रसन्नवक्त्रं रुचिरायतेक्षणम् ।
१०।८६.५५

आच्छिद्य कीर्तिं सुश्लोकां
वितत्य ह्यञ्जसा नु कौ ।
तमोऽनया तरिष्यन्ती-
त्यगात् स्वं पदमीश्वरः ॥
११।१.७

को नु राजन्निन्द्रियवान् मुकुन्दचरणाम्बुजम् ।
न भजेत्..... ११।२.२

श्रुतोऽनुपठितो ध्यात
आदृतो वानुमोदितः ।
सद्यः पुनाति सद्धर्मो
देवविश्वद्रुहोऽपि हि ॥
११।२.१२

मन्येऽकुतश्चिद्भयमच्युतस्य
पादाम्बुजोपासनमत्र नित्यम् ।
११।२.३३

शृण्वन् सुभद्राणि रथांगपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके ।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गतः ॥
एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः ।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः ॥
११।२.३९-४०

श्रीरामचरितमानस

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं
पीताम्बरं सुन्दरं ।
३।मं.श्लोक २

सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं ।
१।१२१.१

श्रवनवंत अस को जग माहीं ।
जाहि न रघुपति चरित सोहाहीं ॥
७।५२.५

कहहिं सुनहिं अनुमोदन करहीं ।
ते गोपद इव भवनिधि तरहीं ॥
७।१२८.६

जिमि हरि सरन न एकउ बाधा ।
४।१६.१

निभर प्रेम मगन मुनि ग्यानी ।
कहि न जाइ सो दसा भवानी ॥
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा ।
को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा ॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई ।
कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ॥
३।६.१०-१२

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
खं वायुमग्निं सलिलं महीं च ज्योतींषि सत्वानि दिशो द्रुमादीन् । सरित्समुद्रांश्च हरेः शारीरं यत् किंच भूतं प्रणमेदनन्यः ॥ ११।२.४१	सीय राममय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥ १।७.२
त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः । ११।६.४८	सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं । १।१२१.१
जनेषु दह्यमानेषु कामलोभदवाग्निना । न तप्यसेऽग्निना मुक्तो गंगाम्भः स्थ इव द्विपः ॥ ११।७.२९	मन करि बिषय अनल बन जरई । होइ सुखी जौं एहिं सर परई ॥ १।३४.८
धर्मान् संत्यज्य यः सर्वान् मां भजेत स सत्तमः ॥ ११।११.३२	गावहिं सुनहिं सदा मम लीला । ३।४५.७
मत्कथाश्रवणे श्रद्धा मदनुध्यानमुद्धव । ११।११.३५ मत्कथाः श्रावयञ्छृण्वन् मुहूर्तं क्षणिको भवेत् । ११।२७.४४	जन्म महोत्सव रचहिं सुजाना । करहिं राम कल कीरति गाना ॥ १।३३.८
प्रायेण भक्तियोगेन सत्संगेन विनोद्धव । नोपायो विद्यते सध्यङ् प्रायणं हि सतामहम् ॥ ११।११.४८	बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग । मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ॥ ७।६१
मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम् । याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः ॥ ११।१२.१५	सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई । २।१३०.६

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
सर्वतो मन आकृष्य मय्यद्धाऽऽवेश्यते यथा । ११।१३.१४	सब कै ममता ताग बटोरी । मम पद मनहि बाँध बरि डोरी ।। ५।४७.५
भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियःसताम् । भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात् ।। ११।१४.२१	भगतिवंत अति नीचउ प्रानी । मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी ।। ७।८५.१०
धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता । ११।१४.२२	धरमु न दूसर सत्य समाना ।। २।९४.५
सलिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेदविधिगोचरः । ११।१८.२८	जिमि हरिभगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि । ४।१६.०
ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टः स्वार्थो हेतुश्च संमतः । स्वर्गश्चैवापवर्गश्च नान्योऽर्थो मत्ते प्रियः।। ११।१९.२	नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा । भक्तिं प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भरां मे कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ।। ५. श्लोक २
ज्ञानं विशुद्धं विपुलं यतैत- द्वैराग्यविज्ञानयुतं पुराणम् । ११।१९.८	कहहु ग्यान बिराग अरु माया । कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया ।। ३।१३.८
आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते त्वद्भक्तियोगं च महद्विमृग्यम् ।। ११।१९.८	अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव । जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव । ७।८४(क)

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
मद्भक्तपूजाभ्यधिका..... ११।१६.२१	राम ते अधिक राम कर दासा। ७।११६.१६
.....लाभो मद्भक्तिरुत्तमः ११।१६.४०	लाभु कि किछु हरि भगति समाना। ७।१११.८
प्रोक्तेन भक्तियोगेन भजतो मासकृन्मुनेः। कामा हृदय्या नश्यन्ति सर्वे मयि हृदि स्थिते। ११।२०.२६	तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥ जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा॥ ५।४६.१-२
न किञ्चित् साधवो धीरा भक्ता ह्येकान्तिनो मम। वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम्॥ ११।२०.३४	अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लुभाने॥ ७।११८.७
तस्मान्निराशिषो भक्ति- निरपेक्षस्य मे भवेत्। ११।२०.३५	सगुनोपासक मोच्छ न लेहीं। ६।१११.७
....कर्मशुद्धिर्मदर्पणम्। ११।२१.१५	हरिहि समर्पें बिनु सतकर्मा। ३।२०.८
गुणसंगं विनिर्धूय मां भजन्तु बिचक्षणाः। ११।२५.३३	यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं। ३।४२.१०
मत्कथाः श्रावयञ्छृण्वन् मुहूर्तं क्षणिको भवेत्। ११।२७.४४	गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। ३।४५.७
तं त्वाखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां सर्वार्थदं..... ११।२६.५	जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें। ३।४१.५

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
यथा त्वच्चरणाम्भोजे रतिः स्यादनपायिनी । ११।२६.४०	जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ । ३।१४.०
दिशो न जाने न लभे च शान्ति । ११।३०.४३	दिसि अरु बिदिस पंथ नहिं सूझा । ३।९.११
संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो- र्नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य ॥ १२।४.४०	भवसागर चह पार जो पावा । राम कथा ता कहँ दृढ़ नावा ॥ ७।५२.३
स तत्संदर्शनानन्दनिर्वृतात्मेन्द्रियाशयः । १२।८.३६	हरष बिबस तन दसा भुलानी । १।१४७.७
वयं ते परितुष्टाः स्म त्वद्बृहद्व्रतचर्यया । १२।९.३	अब प्रसन्न मैं संसय नाहीं । १।१६३.५
वरं प्रतीच्छ भद्रं ते वरदेशादभीप्सितम् । १२।९.३	मागहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि । १।१४८
वचोऽमृतायनमृषिर्ना- तृप्यत् कर्णयोः पिबन् । १२।१०.२६	नहिं अघात श्रवनामृत जानी । ५।४८.३
वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात् कामाभिवर्षणात् । भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि ॥ १२।१०.३४	नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु । जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु ॥ ७।४९.०

श्रीमद्भागवत	श्रीरामचरितमानस
हरिलीला कथाव्रातामृतानन्दितसत्सुरम् । १२।१३.११	ब्रह्म पयोनिधि मंदर ग्यान संत सुर आहिं । कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहिं ।। ७।१२०(क)
भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते । १२।१३.२२	जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु । ७।४६.०
नामसंकीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम् । १२।१३.२३	जासु नाम त्रय ताप नसावन ।। ५।३८.८

सहायक-साहित्य

सहायक ग्रन्थ-सूची (संस्कृत)

१. अग्नि-पुराण	प्र० मनसुख राय मोर, ४ क्लाइव रोड, कलकत्ता।
२. अध्यात्म-रामायण	गीताप्रेस, गोरखपुर।
३. अभिज्ञान-शाकुन्तल	कालिदास, चौखम्बा, वाराणसी।
४. अहिर्बुध्न्यसंहिता	सं.-एम. डी. रामानुजाचार्य, अड्यार लाइब्रेरी, अड्यार, मद्रास (१९१६ ई०)
५. ईशावास्योपनिषद्	गीताप्रेस, गोरखपुर,सं० २००८
६. उज्ज्वलनीलमणि	रूपगोस्वामी, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
७. उत्तर-रामचरित	भवभूति, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
८. ऐतरेयोपनिषद्	गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० २००९
९. काव्यप्रकाश	मम्मट, आनन्द-आश्रम प्रेस, (पूजा, १९२१ ई०)
१०. काव्यमीमांसा	राजशेखर, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा (१९३४ ई०)
११. काव्यादर्श	दण्डी; मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स, वाराणसी।
१२. काव्यालंकार	वामन, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली।
१३. काव्यालंकार	भामह. चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी।
१४. काव्यानुशासन	वाग्भट, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, (१९१५ ई०)
१५. कुमारसम्भव	कालिदास, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।
१६. कूर्मपुराण	प्र० मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता।
१७. केनोपनिषद्	गीताप्रेस, गोरखपुर।
१८. गरुड़-पुराण	प्र० मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता।
१९. गीता (शांकर भाष्य)	गीताप्रेस, गोरखपुर।
२०. तत्वदीप-निबन्ध-बल्लभाचार्य	निद्याविलास प्रेस, वाराणसी।
२१. गीता (भगवद्गीता)	गीताप्रेस, गोरखपुर।
२२. तत्वसन्दर्भ-जीवगोस्वामी	अच्युत ग्रन्थमाला, काशी।
२३. तैत्तिरीयोपनिषद्	गीताप्रेस गोरखपुर।
२४. दशावतार-चरित	चौखम्भा, वाराणसी।
२५. देवी भागवत-पुराण	प्र० मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता।

२६. नारद-पुराण — प्र० मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता।
२७. नारद-पांचरात्र — स्वर्ण प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई, (सं० १९०६)
२८. नारद भक्ति-सूत्र — गीताप्रेस, गोरखपुर।
२९. निरुक्त — यास्क, अजमेर वैदिक पुस्तकालय।
३०. पद्मपुराण — प्र० मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता।
३१. पुरुषोत्तम सहस्रनाम — वल्लभाचार्य, मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रोड कलकत्ता।
३२. ब्रह्मवैवर्तपुराण — प्र० मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता।
३३. ब्रह्मपुराण — प्र० मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता।
३४. ब्रह्म-सूत्र (वेदान्त-दर्शन) — गीताप्रेस, गोरखपुर।
३५. वाल्मीकि-रामायण — गीताप्रेस, गोरखपुर।
३६. विष्णु-पुराण — प्र० मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता।
३७. वायुपुराण — प्र० मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता।
३८. वाराह-पुराण — प्र० मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता।
३९. ब्रह्माण्ड-पुराण — प्र० मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता।
४०. विवेक चूड़ामणि -शंकराचार्य — गीताप्रेस, गोरखपुर।
४१. बाल-बोधिनी अणु भाष्यपर — श्रीधर त्र्यम्बक पाठक शास्त्री, भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना (१९२६ ई०)
४२. वृहद् भागवतामृत -रूपगोस्वामी — बाबा कृष्णदास, राधाकुण्ड।
४३. भक्ति-रसायन — मधुसूदन सरस्वती, अच्युत ग्रन्थमाला, वाराणसी।
४४. भक्ति-निर्णय — अनन्तदेव, सं० मंगलदेव शास्त्री।
४५. भक्ति-चन्द्रिका (शाण्डिल्य भक्ति सूत्रपर) नारायण तीर्थ — सं० गोपीनाथ कविराज, सरस्वती भवन। वाराणसी (१९२४ ई०)
४६. श्रीमद्भागवत — गीता प्रेस, गोरखपुर।
४७. श्रीमद्भागवत टीका भाव प्रकाशिका—श्रीधर स्वामी।
४८. श्रीमद्भागवत टीका सुबोधिनी, बल्लभाचार्य
४९. श्रीमद्भागवत टीका — वृहद् वैष्णव तोषिनी-सनातन गोस्वामी।
५०. सर्वधर्मोत्तमः — पं० द्वारिकानाथ मालवीय, भारती भवन, प्रयाग।

५१. भागवत-चन्द्रिका	वीरराघवाचार्य ।
५२. भागवत-टिप्पणी	लोकनाथ चक्रवर्ती ।
५३. भागवत तात्पर्य दीपिका	नरसिंह ।
५४. भागताद्य पद्यत्रय व्याख्या	मधुसूदन सरस्वती ।
५५. भागवत-सन्दर्भ	जीवगोस्वामी ।
५६. क्रम-सन्दर्भ	जीवगोस्वामी ।
५७. संक्षिप्त वैष्णव तोषिणी	जीवगोस्वामी ।
५८. वैष्णवनन्दिनी	बलदेव विद्याभूषण ।
५९. चूर्णिका	माधव ।
६०. भागवतार्थ प्रकरण	श्रीवल्लभाचार्य ।
६१. भागवत-दर्शन	स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती, वाराणसी ।
६२. भागवत-परिचय	सं० श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र' ।
६३. मुक्ताफल—बोपदेव	ओरियण्टल प्रेस लिमिटेड, कलकत्ता (१९४४ ई०) ।
६४. मत्स्य-पुराण	प्र० मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता ।
६५. योग-वाशिष्ठ	निर्णय सागर, बम्बई ।
६६. रघुवंश—कालिदास	चौखम्भा, वाराणसी ।
६७. योग-दर्शन	गीताप्रेस, गोरखपुर ।
६८. यतीन्द्रमतदीपिका	श्रीनिवासदास, रामकृष्ण मठ, मद्रास, (१९४८ ई०)।
६९. रामानुज सिद्धांत-सार	वरदाचार्य,स० अनन्ताचार्य, सुदर्शन प्रेस,कांची (१९३४ ई०) ।
७०. रस-गंगाधर	जगन्नाथ पण्डितराज, निर्णय सागर प्रेस, (१९३९ई०)।
७१. शाण्डिल्य भक्ति-सूत्रपर भक्ति-चन्द्रिका	वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई (सं० २०११) ।
७२. शिवपुराण	प्र० मनसुखराय मोर, ५ क्लाइव रोड, कलकत्ता ।
७३. षट्-सन्दर्भ	जीवगोस्वामी ।
७४. सर्वदर्शन-संग्रह	सायण माधव सं० वासुदेव शास्त्री, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना (१९५१ ई०) ।
७५. सात्वततन्त्र	सं० अनन्त शास्त्री, व्याकरणाचार्य चौखम्भा संस्कृत सिरींज, वाराणसी ।
७६. स्कन्द-पुराण	व्यास—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ ।
७७. सरस्वतीकण्डाभरण	भोज धारेश्वर, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई ।

७८. साहित्य-दर्पण — विश्वनाथ, सं० शालिग्राम शास्त्री एवट रोड, लखनऊ।

७९. हरि-भक्ति-रसामृत-सिन्धु — रूपगोस्वामी, सं० दामोदर शास्त्री विद्याविलास प्रेस, काशी।

८०. श्रीहरि-भक्ति-रसामृत-सिंधु — व्याख्याता—डा० श्यामनारायण पाण्डेय साहित्य निकेतन, कानपुर।

८१. हरि-भक्ति-रसामृत-सिंधु बिन्दु — विश्वनाथ चक्रवर्ती, सं० भा० विश्वेश्वर दिल्ली विश्वविद्यालय।

८२. हरिभक्ति-रसायन — हरिसूरि-सत्साहित्य प्रकाशन।

८३. हरिलीला-बोपदेव — श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरा।

सहायक ग्रन्थ-सूची (हिन्दी)

१. कबीर वचनावली — सं० अयोध्यासिंह उपाध्याय। नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

२. कैलाश मानसरोवर — स्वामी पूर्णानन्द, पटना।

३. गोस्वामी तुलसीदासी — रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (सं० २००८)।

४. गोस्वामी तुलसीदास — श्यामसुन्दरदास और पीताम्बरदत्त बर्थवाल। हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद उ० प्र०।

५. गोस्वामी तुलसीदास — राजेन्द्र सिंह, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

६. गोस्वामी तुलसीदास
प्रबन्धकार — राजकुमारपाण्डेय।
प्रगीतकार — भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दिल्ली।

७. जायसी ग्रन्थावली — सं० रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

८. तुलसी दर्शन-मीमांसा — डा० उदयभानु सिंह, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

९. तुलसी ग्रन्थावली (४ भाग) — सं० रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

१०. तुलसीदासका कथा-शिल्प — डा० रांगेय राघव, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली।

११. तुलसीदासकी कलात्मक-चेतना — डा० धीरेन्द्र बहादुर सिंह, प्रतिभा प्रकाशन, इलाहाबाद।

१२. तुलसी साहित्य और साधना	डा० इन्द्रपाल सिंह, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
१३. तुलसी साहित्यमें बिम्बयोजना	डा० सुशीला शर्मा कोणार्क प्रकाशन, मण्डेलिया मार्ग
१४. तुलसीदास	चन्द्रवली पाण्डेय, दिल्ली।
१५. तुलसी साहित्यकी वैचारिक पीठिका	डा० मुक्तिनाथ चतुर्वेदी श्रीविष्णु बागीश प्रकाशन, रानी बाजार, बीकानेर।
१६. तुलसीकी काव्यगत चेतना	रामप्रतिपाल मिश्र, एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी, नयी दिल्ली।
१७. तुलसीदास और काव्य	रामनरेश त्रिपाठी, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।
१८. तुलसीदास और उनका युग	राजपति दीक्षित, ज्ञानमण्डल, वाराणसी।
१९. नन्दनन्दन	श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र', श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरा।
२०. निज मन मुकुर	डा० विद्यानिवास मिश्र
२१. परमानन्द पदावली संग्रह	डा० गोवर्धननाथ शुक्ल, अलीगढ़।
२२. भक्ति सुधा	स्वामी करपात्रीजी, भक्ति सुधा साहित्य परिषद, कलकत्ता।
२३. विनयपत्रिका	गीताप्रेस, गोरखपुर।
२४. विनयपीयूष	अंजनीदन्दनशरण, ऋणमोचन घाट, अयोध्या।
२५. भगवान वासुदेव (द्वितीय संस्करण)	श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र', श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरा।
२६. भागवत-सम्प्रदाय	बलदेव उपाध्याय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
२७. भारतीय दर्शन	बलदेव उपाध्याय।
२८. मानस-पीयूष	अंजनीनन्दन शरण। मानस पीयूष कार्यालय, गायघाट, अयोध्या।
२९. मानस-प्रसंग	पं० विजयानन्द त्रिपाठी, वाराणसी।
३०. मानस-मूल	पं० विजयानन्द त्रिपाठी, वाराणसी।
३१. मानसके पंचरत्न	पं० विजयानन्द त्रिपाठी, वाराणसी।
३२. मानस-व्याकरण	पं० विजयानन्द त्रिपाठी, वाराणसी।
३३. मानसमें रामकथा	डा० बलदेवप्रसाद मिश्र।

३४. मानस शंका-समाधान	दीनजी, गीताप्रेस, गोरखपुर ।
३५. मानस शंका-समाधान	दण्डी स्वामी प्रज्ञानानन्द सरस्वती मानस संघ, सतना ।
३६. मानस अनुशीलन	शम्भुनारायण चौबे, सं० सुधाकर पाण्डेय, नागरी प्रचारिणी सभा काशी ।
३७. मानसका साहित्यिक मूल्यांकन	सं० सुधाकर पाण्डेय राधाकृष्ण प्रकाशन, अंसारी रोड, दिल्ली ।
३८. मानसके अनुष्ठान	श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र', मानस संघ, सतना ।
३९. रामचरित (खण्ड-४)	श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र', श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरा ।
४०. रामचरितमानस तुलनात्मक अध्ययन	डा० नगेन्द्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, अंसारी रोड, दिल्ली ।
४१. रामचरितमानसका शास्त्रीय अध्ययन	डा० राजकुमार पाण्डेय पुस्तक संस्थान, नेहरू नगर, कानपुर।
४२. रामचरितमानसकी काव्यकला	डा० हरिहरनाथ दुबे विनोद पुस्तक भण्डार, आगरा ।
४३. श्रीरामचरितमानस	गीताप्रेस, गोरखपुर।
४४. श्रीरामचरितमानस	सं० आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, विक्रम विद्यालय, वाराणसी ।
४५. श्रीरामचरितमानस	आ० विश्वनाथ मिश्र नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी
४६. श्रीरामचरितमानसकी टीकायें	मानस पीयूष, अंजनीनन्दनशरण, गीताप्रेस, गोरखपुर ।
४७. श्रीरामचरितमानसकी विजया टीका	मानसहंसराज पं० विजयानन्द त्रिपाठी, वाराणसी ।
४८. रामानन्दकी हिन्दी रचनाएँ	
४९. रज्जबजीकी बानी	
५०. रामचरितमानसपर पौराणिक प्रभाव	विजयबहादुर अवस्थी, दिल्ली पुस्तक सदन, दिल्ली ।

५१. साध्य और साधन	श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र', श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरा।
५२. समाधान रत्नावली	वेदान्त भूषण पं० रामकुमारदास रामायणी, मणिपर्वत, अयोध्या।
५३. सूर सागर	नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
५४. सूर-रामचरितावली	गीताप्रेस, गोरखपुर।
५५. हिन्दुत्व	प्रो० रामदास गौड, ज्ञानमण्डल, वाराणसी।
५६. हमारे अवतार और देवी-देवता	श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र', श्रीकृष्ण जन्मस्थान, मथुरा।
५७. हमारे धर्मग्रन्थ	श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र', श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरा।
५८. हिन्दुओंके तीर्थस्थान	श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र', श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरा।
५९. रामरक्षा स्तोत्र	गीताप्रेस गोरखपुर।

सहायक पत्र-पत्रिकाएँ

१. अवतार-अंक	'परमार्थ' शाहजहाँपुर ।
२. अवतार-अंक	'संकीर्तन' मेरठ ।
३. कल्याण (कृष्णांक)	गीताप्रेस, गोरखपुर ।
४. कल्याण (भागवतांक)	गीताप्रेस, गोरखपुर ।
५. कल्याण (मानसांक)	गीताप्रेस, गोरखपुर ।
६. कल्याण (रामायणांक)	गीताप्रेस, गोरखपुर ।
७. कल्याण (हिन्दू संस्कृति अंक)	गीताप्रेस, गोरखपुर ।
८. गीता धर्म	वाराणसी ।
९. गीता-सन्देश	बम्बई ।
१०. नागरी प्रचारिणी पत्रिका	वाराणसी ।
११. भक्ति	रिवाड़ी ।
१२. मानसमणि	रामवन, सतना ।
१३. श्रेय	भजनाश्रम, वृन्दावन ।
१४. सङ्कीर्तन	मेरठ ।
१५. सम्मेलन पत्रिका	हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ।
१६. हरिनाम	वृन्दावन ।
१७. गीता-रामायण पत्र-व्यवहार विद्यालयके पाठ	श्रीकृष्ण-जन्मस्थान, मथुरा ।